उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

CSSGO - 03
भैगोलिक चिन्तन का क्रम विकास

CSSGO-03 भैगोलिक चिन्तन का क्रम विकास

इकाई–1	प्राचीन काल में भूगोल – प्राचीन भारत में भूगोल, प्रभाव, अवधारणाएं	**3-25**
इकाई–2	प्रादेशिक भूगोल, यूनान एवं रोम साम्राज्य में भूगोल	**26-49**
इकाई–3	भारतीय एवं ग्रीक– रोमन भूगोल विद्वानों के योगदान की तुलना, अरब भूगोल वेत्ताओं का योगदान	**50-64**
इकाई–4	पुनर्जागरण काल में भूगोल की प्रगति, भौगोलिक यात्राएँ– कोलम्बस, वास्को–डि–गामा, मैंगलेन	**65-81**
इकाई–5	वैज्ञानिक भू–अन्वेषण एवं ज्ञानोदय काल में भूगोल– वैज्ञानिक प्रगति, विशुद्ध भूगोल सम्प्रदायः	**82-89**
इकाई–6	भूगोल का दार्शनिक आधार, काण्ट, आधुनिक भूगोल का जर्मन सम्प्रदाय– हम्बोल्ट एवं रिटर की कृतियाँ एवं संकल्पनाएं	**90-108**
इकाई–7	द्वैतवाद, हेटनर की कृतियाँ एवं संकल्पनाएं।	**109-125**
इकाई–8	भूगोल का फ्रांसीसी सम्प्रदाय– ब्लास, ब्रूंश एवं डेमांजिया की कृतियाँ एवं संकल्पनाएं	**126-136**
इकाई–9	आंग्ल अमेरिकी संम्प्रदाय – संयुक्त राज्य अमेरिका में भूगोल का प्रारम्भ, डेविस की कृतियाँ एवं योगदान	**137-151**
इकाई–10	सेम्पुल – कृतियाँ एवं योगदान, हंटिग्न– कृतियाँ एवं योगदान	**152-163**
इकाई–11	ग्रेट ब्रिटेन में भूगोल– मैकिण्डर एवं स्टाम्प, रूस में भूगोल की प्रगति।	**164-182**
इकाई–12	भारत में भूगोल की प्रगति– पृष्ठभूमि, शिक्षण विस्तार, भौगोलिक शोध	**183-200**
इकाई–13	अभिनव प्रवृत्तियाँ, भूगोल की प्रकृति– पृथ्वी तक का विज्ञान, विभिन्नताओं में अन्तर्सम्बन्ध, प्रादेशिक विशिष्टता का निरूपण	**201-209**
इकाई–14	भूगोल का वैज्ञानिक स्वरूप एवं अन्य विषयों से सम्बन्ध।	**210-224**

उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

परामर्श समिति

प्रो0 सत्यकाम	कुलपति, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
विनय कुमार	कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति ; (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार	आचार्य, इतिहास, निदेशक, समाजविज्ञान, विद्याशाखा, उ0 प्र0 रा0 ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 संजय कुमार सिंह	आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0 प्र0 रा0 ट0 मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 अभिषेक सिंह	सहा0 आचार्य समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 एन.के राना	आचार्य, भूगोल विभाग बी0एच0यू0, वाराणसी
प्रो0 ए0 आर0 सिद्दीकी	आचार्य, भूगोल विभाग इलाहाबाद विश्वविलय प्रयागराज
प्रो0 अःणकुमार सिंह	आचार्य, भूगोल विभाग बी0एच0यू0, वाराणसी

लेखक

डॉ0 पाःली सिंह	सहा0. आचार्य भूगोल राष्ट्रीय पी जी कालेज जमुहई जौनपुर
डॉ0 अभिषेक सिंह	सहायक आचार्य, भूगोल उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सम्पादन

प्रो0 संजय कुमार सिंह	आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

समन्वयक

प्रो0 संजय कुमार सिंह	आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सह -समन्वयक

डॉ0 अभिषेक सिंह	सहायक आचार्य, भूगोल समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

मुद्रितवर्ष– 2024

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ISBN No. –978-81-19530-50-2

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उ प्र राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे मिनियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय साम्रगी में मुद्रित साम्रगी के विचारों एवं आकड़ो। आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं हैं।

प्रकाशन विनय कुमार, कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज, 2024।

मुद्रक – **के0 सी0 प्रिटिंग एण्ड एलाइड वर्क्स, पंचवटी, मथुरा – 281003.**

इकाई–1 प्राचीन काल में भूगोल– प्राचीन काल में भारत में भूगोल, प्रभाव, अवधारणाएं

इकाई की रूपरेखा

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 प्राचीन काल में भूगोल

1.3 पृथ्वी और विश्व के संबंध में मानव जिज्ञासा

1.4 प्राचीन काल में भौगोलिक ज्ञान के मुख्य प्रदेश

1.5 प्राचीन काल में भारतीय विद्वान

1.6 प्राचीन काल में भारतीय भौगोलिक संकल्पना तथा सिद्धांत

1.6.1. खगोलीय ज्ञान

1.6.2. भौतिक भूगोल की वर्णन

1. जंबूद्वीप
2. कुशद्वीप
3. प्लक्षद्वीप
4. क्रोंचद्वीप
5. शाल्मली द्वीप
6. शाक द्वीप
7. पुष्कर द्वीप

1.6.3. मानव भूगोल के वर्णन

1. ग्रामीण एवं नगरीय अधिवास
2. कृषि
3. पशुपालन
4. उद्योग धंधे
5. व्यापार और वाणिज्य
6. भारत के विदेशी संबंध
7. राजनीतिक प्रदेश

1.9 सारांश

1.10 स्वमूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

1.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.12 अभ्यास प्रश्न(सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

1.0 प्रस्तावना

इस पृथ्वी पर मानव जाति के आविर्भाव काल से ही, मानव और पृथ्वी का परस्पर संबंध रहा है समस्त मानव जाति की उत्पत्ति इस पृथ्वी की गोद में हुआ है इस पृथ्वी पर समस्त मानव वर्ग का विकास हुआ है, जिस पृथ्वी पर संसार के मनुष्य जन्म लेते हैं, बड़े होते हैं, और जीवन व्यतीत करते हैं, तथा जिस पृथ्वी पर उत्पन्न हुए फलों तथा अन्य को, पशुओं के दूध तथा मांस को खाकर जल को पीकर सभी मनुष्य जीवित रहते हैं,उस पृथ्वी के विषय में ज्ञान प्राप्त करने की विधि आशा मनुष्य में सदैव बनी रही है।

मानव सभ्यता के आदि–काल से ही मनुष्य की दृष्टि में स्थित सूर्य, चंद्रमा और नक्षत्रों की ओर को जाती रही है। मनुष्य के संबंध में ज्ञान प्राप्त करने के लिए इच्छुक रहा है। जिस पृथ्वी पर मनुष्य का निवास है, जिस पृथ्वी पर मानव के समस्त क्रियाएं होती है तथा उसको भोजन वस्त्र निवास आश्रय और जीवन की सुख सुविधाएं प्राप्त होती हैं, उस पृथ्वी का और मानव का संबंध समीप का है। अतः इस पृथ्वी के विषय में कुछ नहीं कुछ जानकारी, मानव अपने आरंभिक काल से ही करता रहा है। यह पृथ्वी किस आकृति की है इसका आकार कितना है यह किस पदार्थ की बनी है सूर्य, चंद्र, आदि से इसका क्या संबंध है? इसके प्रत्येक ओर व्याप्त वायुमंडल किस प्रकार का है इस पर दिन–रात और ऋतु के परिवर्तन किस प्रकार होते हैं मनुष्य इसके जल, मिट्टी, वनस्पति, किस प्रकार कर सकता है? इस प्रकार के प्रश्न मानव के मस्तिष्क में उठ रहे होते हैं इन प्रश्नों का उत्तर भी विचारता रहा है।

अतः भूगोल का ज्ञान, पशु को प्रागैतिहासिक युगो से ही रहा है प्राचीन काल से भी मनुष्यों ने आदिकालीन उपकरणों की सहायता से छोड़ कर के सूर्य, चंद्रमा, तथा नक्षत्रों की गतियों का ज्ञान प्राप्त किया था।

1.1 उद्देश्य

भौगोलिक चिंतन का उद्देश्य मानव पर्यावरण संबंधों को व्यक्त करने वाली प्रथम विचारधारा को भूगोल का पैराडाइम कहा जाता है। यह विचारधारा उतनी ही पुरानी है जितनी कि मानव की सभ्यता। इस विचारधारा के अंतर्गत उनका इतिहास भूगोल नामक ज्ञान की शाखा में समय के साथ आए बदलावों का लेखा–जोखा है। सापेक्ष जो बदलाव भूमि की विषय वस्तु विचारधारात्मक मिले हुए हैं उनका अध्ययन उनका इतिहास करता है। भौगोलिक विचार जैसा कि आमतौर पर भूगोल के अनुशासन में समझा जाता है, विशेष स्थानों, समय और संदर्भों में भौगोलिक ज्ञान का विकास होता है तदनुसार, पर आदत रूप से एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में भूगोल की प्रकृति कार्यक्षेत्र और कार्यप्रणाली से संबंधित अवधारणाओं का विकास वर्तमान और रुझान जैसा कि वर्तमान साहित्य में परिलक्षित होता है। अध्ययन करके विद्वानों का कार्य योजना को समझना था,जिसके अनुसार उसने सृष्टि एवं विशेष रूप से पृथ्वी की रचना की है। मौलिक रूप से भूगोल मानव और प्रकृति के अंतर संबंधों के स्थानिक अध्ययन से संबंधित है। मनुष्य स्वभाव से ही अपने निवास स्थान के चतुर्दिक स्थित पर्यावरण और समाज के प्रति जिज्ञासु होता है इस प्रकार भौगोलिक चिंतन का इतिहास पृथ्वी के प्राकृतिक पर्यावरण में मानव विकास की संभावनाओं के प्रति मानवीय चेतना की प्रगति क्रमबद्ध विवरण है। भौगोलिक चिंतन के इतिहास में प्राचीन भारतीय भौगोलिक चिंतन सम्यक वर्णन किसी एक पुस्तक में संग्रहित नहीं है बल्कि भौगोलिक चिंतन से संबंधित सामग्री हिंदू पौराणिक कथाएं, दार्शनिक रचनाओं, महाकाव्य एवं संग्रहित है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में पर्याप्त भौगोलिक ज्ञान है ज्ञान प्राचीन भारतीय दर्शन धर्मशास्त्रों तथा प्रकृति चिंतन में इस रूप में संनिहित है कि सभी के वर्णन उसी में समाए हुए प्रतीत होते हैं, इस प्रकार भारतीय मनीषियों के लिए धार्मिक अवधारणा संकुचित रूप में ना होकर प्रकृति मूलक हो गई है। एलेग्जेंडर व हंबोल्ट और कार्ल रिटर को भूगोल का संस्थापक माना जाता है जिन्होंने 19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में ही भूगोल को एक विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया था।

हंबोल्ट ने भौगोलिक अध्ययन को अपनाया था और रिटर ने प्रादेशिक विधि को प्रमुखता प्रदान की थी। हंबोल्ट और रिटर के बाद भूगोल के आयाम में निरंतर विस्तार होता गया और स्थानिक (भौगोलिक) अध्ययनों में उपागम एवं अध्ययन विधियों का प्रयोग किया जाने लगा।बीसवीं शताब्दी के आरंभ से ही भूगोल का विकास दो प्रधान शाखाओं में भूगोल एवं मानव भूगोल के रूप में होने लगा। भौतिक भूगोल के अध्ययन में विज्ञानों के अध्ययन पद्धतियों का भूगोल के सामाजिक विज्ञानों की पद्धतियों का प्रयोग किया जाने लगा।

भौगोलिक चिंतन में रिचथोफेन द्वारा प्रतिपादित क्षेत्रीय विवेचन के दृष्टिकोण के व्यापक प्रचार प्रसार और हेटनर का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है हार्टशोर्न जो कि हेटनर के प्रचारक रहे। इसी तरह कई भूगोलवेत्ता

भौगोलिक चिंतन के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त किए जिसमें विद्वानों का प्रमुख योगदान रहा, इसके अलावा यूनान, रोम एवं अरब, ब्रिटिश विद्वान, जर्मन भूगोलवेत्ता एवं फ्रांसीसी भूगोलवेत्ता रूसी एवं अमेरिकी भूगोलविद का भौगोलिक चिंतन के विकास में योगदान रहा है। अतः इस अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य भौगोलिक चिंतन इतिहास को जानना था।

1.2 प्राचीन काल में भूगोल

भूगोल के ज्ञान का इतिहास जितना लंबा और प्राचीन है उतना लंबा इतिहास विज्ञान का नहीं है। हेटनर के शब्दों में वर्तमान को सिर्फ इतिहास द्वारा ही भली–भांति समझा जा सकता है, यही बात विद्वानों के लिए भी लागू होती है। किसी विज्ञान का वर्तमान स्वरूप समझने के लिए क्लासिक विकास क्रम का अनुसरण करना आवश्यक है। विज्ञान का विभाजन तथा प्रत्येक विभाग के अध्ययन क्षेत्र का निरूपण नहीं होता बल्कि समकालीन आवश्यकता, उपलब्ध ज्ञान एवं क्षमता द्वारा निश्चित होता है, भूगोल इसका अपवाद नहीं है।

भूगोल के प्रति मनुष्य की चेतना सभ्यता एवं संस्कृति के उदय के साथ जागृत हो गई थी। इसका अर्थ यह हुआ कि सभी प्राचीन सांस्कृतिक – यूनान, मिस्र, मेसोपोटामिया, सिंधु घाटी, ह्वांगहो घाटी में कमोवेश ऐसी चिंतन लेखन के प्रमाण मिलते हैं जो भूगोल से जोड़ा जा सकता है। भारत उपनिषद, ब्राम्हण, बाल्मीकि रामायण, महाभारत, पुराण आदि ग्रंथों में बिखरे पड़े हैं। इस भौगोलिक चिंतन की कड़ी निर्बाध 12वीं शताब्दी तक मिलती है यूनान एवं रोम साम्राज्य में इस प्रकार के चिंतन एवं भौगोलिक सर्वेक्षण पूर्व सोफिस्ट काल (535–540 ई. पूर्व) के दार्शनिकों से लेकर प्लेटो, अरस्तु, इरेटोस्थनीज, स्ट्रेबो, टोलेमी, (150 ई पूर्व) तक मिलता है।

तत्पश्चात ईसाई धर्म की स्थापना एवं उस के पदाधिकारियों की हठवादिता के चलते यह चिंतन धारा विलुप्त हो गई। चर्च के प्रभुत्व में बाइबल के अतिरिक्त और किसी ग्रंथ का अध्ययन करना धर्म विरुद्ध माना जाने लगा। बाइबल को हर प्रकार के ज्ञान का भंडार मान लिया गया। उसमे वर्णित अवधारणा पर संदेह करना जो उससे भिन्न कोई मत प्रतिपादित करना वर्जित हो चुका था। इस प्रकार यूरोप में एक अंध युग का प्रारंभ हुआ जो 15 वीं शताब्दी तक बना रहा। सातवीं शताब्दी में मुस्लिम धर्म की स्थापना के साथ अरब जगत में यूनानी एवं भारतीय चिंतकों के विचारों का प्रचार हुआ क्योंकि बगदाद के खलीफाओं ने हर स्रोत से ज्ञान प्राप्त करने पर बल दिया। इस्लाम के प्रभाव में क्षेत्र में जो संपूर्ण मध्य पूर्व, उत्तरी अफ्रीका एवं भूमध्यसागरीय क्षेत्रों में विस्तृत थे। भौगोलिक ज्ञान को 7वीं से 15 वीं शताब्दी तक प्रोत्साहन मिलता रहा। चीन में भी ईसा पूर्व 1000 से लगभग भौगोलिक तथ्यों के प्रति जागरूकता के प्रमाण मिलते हैं? ईसा पूर्व एक कब्र में पुस्तक प्राप्त हुई जिसका नाम है– सम्राट भू की यात्राएं। 8 गुने 1001 से 945 ईसा पूर्व तक शासन किया और विश्व का भ्रमण करने की तीव्र लालसा थी।

पांचवी सदी ईसा पूर्व में चीन 9 प्रांतों में विभक्त था प्रत्येक प्रांत की मिट्टी का स्वरूप,उत्पादन के प्रकार तथा परिवहन मार्गों का विवरण प्रस्तुत करने वाली पुस्तक उपलब्ध है। 128 ईसा पूर्व में चांग चिचेन नामक भूगोलवेत्ता ने भूमध्यसागरीय क्षेत्र की सभ्यता का विवरण दिया था। फाहियान तथा व्हेनसांग जैसे चीनी यात्रियों के भारत भ्रमण से स्पष्ट है कि प्राचीन काल में चीनी लोगों की प्रबल अभिरुचि भ्रमण एवं नए क्षेत्रों की जानकारी प्राप्त करने में की थी। चीनी भाषा की जानकारी के अभाव में चीनी विद्वानों द्वारा भूगोल के क्षेत्र में काल में की गई प्रगति का मूल्यांकन कठिन है तथापि 1959 ई. में की गई एक समीक्षा के अनुसार चीन के प्राचीन कालीन विद्वानों ने आठ प्रकार के अध्ययन किए–

1. मानव समुदायों का अध्ययन
2. चीन के प्रदेशों का विवरण
3. विदेशों का वर्णन
4. यात्रा विवरण
5. चीन की नदियों का विवरण
6. चीन के समुद्र तट का विवरण
7. स्थानीय धरातल
8. भौगोलिक विश्वकोश का निर्माण।

प्राचीन काल में भूगोल विशुद्ध विवरणात्मक तथा तथ्य संकलन से संबंधित था। व्यवहारिक का स्तर पर भौगोलिक ज्ञान, आकृति एवं आकार के आकलन, स्थान विशेष की पृथ्वी तल पर अवस्थिति का निर्धारण, अक्षांश–देशांतर की गणना, ज्ञात जगत का स्थूल आलेखन तथा विभिन्न भौतिक तत्वों जैसे– पर्वत, नदी, वनस्पति आदि के विवरण तक सीमित था। सैद्धांतिक स्तर पर विवेचन पृथ्वी की उत्पत्ति तथा अन्य ग्रहों, नक्षत्रों से संबंध तथा पृथ्वी के विभिन्न पदार्थों में निहित मूल तत्व से संबंधित था। प्रायः इन तत्वों का विवेचन यह मानकर कर लिया जाता था कि ईश्वर के पृथ्वी का निर्माण–विशेष रूप से किया है। इन विद्वानों का कार्य ईश्वर की उस योजना को समझना था और उसने सृष्टि एवं विशेष रूप से पृथ्वी की रचना का अध्ययन किया।

1.3 पृथ्वी और विश्व के संबंध में मानव जिज्ञासा

इस पृथ्वी पर मानव जाति के आविर्भाव काल से ही, मानव परस्पर संबंध रहा है। मानव जाति की उत्पत्ति पृथ्वी की गोद में हुई है जिस पृथ्वी पर समस्त मानव वर्ग का विकास हुआ है, जिस पृथ्वी पर संसार के मनुष्य बड़े होते हैं और जीवन व्यतीत करते हैं, तथा जिस पृथ्वी पर उत्पन्न हुए फलों तथा अन्न को, पशुओं के दूध तथा मांस को खाकर तथा पृथ्वी के जल को पीकर सभी मनुष्य जीवित रहते हैं, उस पृथ्वी के विषय में ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा मनुष्य को सदैव बनी रही है।

मानव सभ्यता के आदिकाल से ही मनुष्य की दृष्टि आकाश में स्थित सूर्य चंद्रमा और नक्षत्रों की ओर जाती रही है। मनुष्य इन के संबंध में ज्ञान प्राप्त करने के लिए इच्छुक रहा है।

जिस पृथ्वी पर मनुष्य का निवास है, जिस पृथ्वी पर मानव जीवन की समस्त क्रियाएं होती हैं, तथा उसको भोजन, वस्त्र,निवास,आश्रय और जीवन की सुख सुविधाएं प्राप्त होती हैं, उस पृथ्वी का और मानव का संबंध अत्यंत समीप का है। अतः इस पृथ्वी के विषय में कुछ न कुछ जानकारी, मानव अपने आरंभिक काल से ही प्राप्त करता रहा है। यह पृथ्वी किस आकृति की है? इसका आकार कितना है? यह किस पदार्थ से बनी है? सूर्य,चंद्र आदि से इनका क्या संबंध है? इसके प्रत्येक ओर व्याप्त वायुमंडल किस प्रकार का है? इस पर दिन–रात और ऋतु के परिवर्तन किस प्रकार होते हैं? मनुष्य इसके जल,मिट्टी,वनस्पति,आदि का उपयोग किस प्रकार कर सकता है? इस प्रकार के असंख्य प्रश्न मानव के मस्तिष्क में उठते रहे हैं, इन प्रश्नों का उत्तर भी विचारता रहा है। अस्तु, भूगोल का ज्ञान,मनुष्यों को प्रागैतिहासिक युगो से ही रहा है। काल में भी मनुष्यों ने आदिकालीन उपकरणों सहायता से परीक्षण करके सूर्य, चंद्रमा तथा नक्षत्रों की गतियों का ज्ञान प्राप्त किया था। पृथ्वी के विभिन्न भागों को जानने के लिए मनुष्यों ने लंबी खोज– यात्राएं की थी। पहाड़ों, नदियों, झीलों तथा मानवीय बस्तियों के रेखा–चित्र और मानचित्र भी बनाए गए थे। खोजपूर्ण यात्राओं के अलावा, कल्पना और गणनाओं के द्वारा भी पृथ्वी की आकृति, आकार, विस्तार और दिशाओं के वर्णन किए गए थे। जलवायु के परिवर्तनों तथा प्राकृतिक वातावरण अन्य तथ्यों के उल्लेख भी किए जाते थे।

1.4 प्राचीन काल में भौगोलिक ज्ञान के मुख्य प्रदेश–

भूगोल के ज्ञान का इतिहास जितना लंबा और प्राचीन है इतना लंबा इतिहास किसी भी दूसरे विज्ञान का नहीं है। प्राचीन समय में भौगोलिक ज्ञान के विकास के छः मुख्य प्रदेश थे, जो आरंभिक मानवीय संस्कृतियों के उदगम प्रदेश माने जाते हैं–

1. भारत– भारत में सिंधु–गंगा प्रदेश (विशेषकर सप्त सैंधव प्रदेश) जिसमें सिंधु, झेलम, चिनाब, रावी, व्यास, सतलज और सरस्वती की उपत्यकाए हैं। यह प्रदेश प्राचीन समय में आर्यावर्त कहलाता था। भारत में भौगोलिक ज्ञान का दूसरा अपेक्षाकृत छोटा क्षेत्र तिन्ने वेली प्रदेश (दक्षिण भारत) था।
2. बेबीलोनिया– (दजला–फरात का दोआब या मेसोपोटामिया)।
3. मिस्र– (नील नदी की उपत्यका)।
4. यूनान– (ईजियन प्रदेश)।
5. सोवियत संघ –(उक्राइन प्रदेश)।
6. चीन का पूर्वी–भाग–(हांगहो घाटी)।

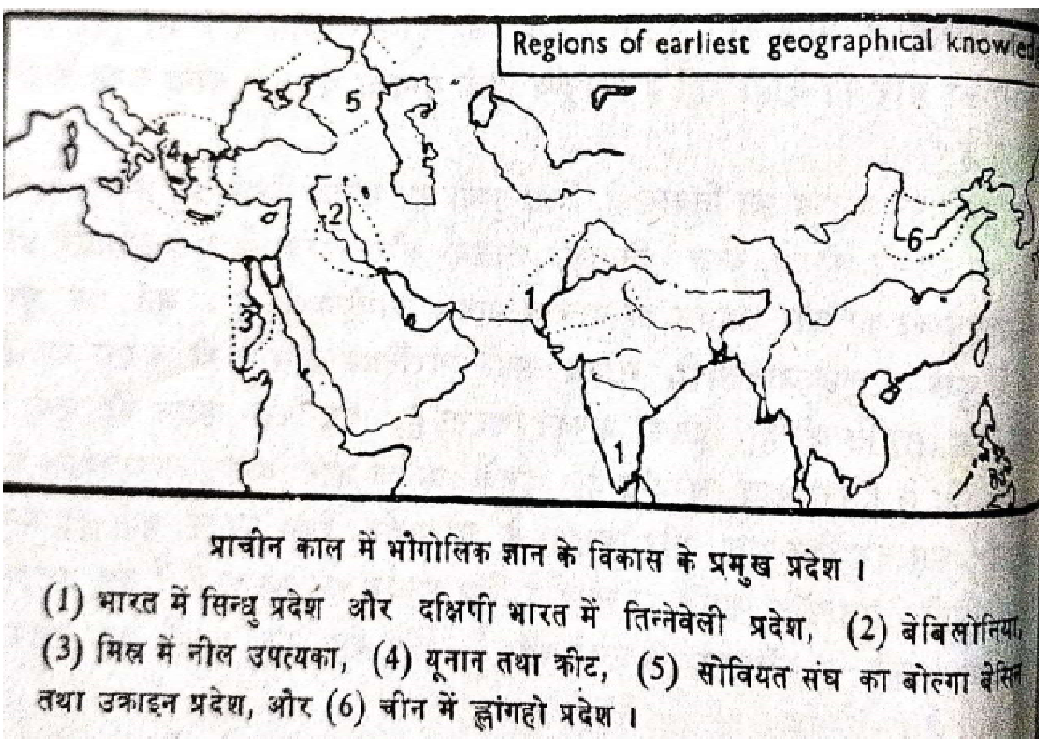
भारत, बेबीलोनिया और मिस्र की समकालीन संस्कृतियां – उपरोक्त 6 प्रदेशों में मानवीय संस्कृति के विकास

के साथ–साथ भौगोलिक ज्ञान का भी विकास होता रहा था। बेबीलोनिया, मिश्र और भारत में सिंधु प्रदेश की संस्कृतियां प्रायः समकालीन थी, तो ताम्र युग तथा कांस्य युग की थीं। नयी संस्कृति इनके बाद के समय की थी। यूनान के साम्राज्य के पतन के साथ–साथ यूनानी सभ्यता भी नहीं प्रभाव में नहीं लगी थी। रोमन साम्राज्य का अभ्युदय हुआ था, परंतु कुछ ही शताब्दियों में समाप्त हो गया था। यूनानी भूगोलवेत्ताओं की संख्या और ज्ञान की प्रगति तुलना में रोमन भूगोलवेत्ता नगण्य जैसे थे। चीन में ह्वांगहो की उपत्यका का प्रदेश तथा उसकी सहायक वी–हो की उपत्यका के क्षेत्र में और कांस्य युग में मानव सभ्यता के विकास के साथ–साथ भौगोलिक ज्ञान का बहुत अधिक विकास हुआ था।

आरंभ में भूगोल का शुद्ध ज्ञान सबसे पहले भारत वर्ष के निवासियों को हुआ। इस बात का निश्चित प्रमाण यह है कि पृथ्वी की आकृति, आकार और सरसंबंधों के शुद्ध वर्णन सबसे पहले भारतीयों ने किए थे, जो आज भी प्राचीन ज्योतिष– ग्रंथों में विद्यमान है। यूनान के निवासी ग्रीक लोग पृथ्वी को चौरस वृत्ताकार तश्तरी के समान मानते थे, जिसको भूमध्य–सागर विभाजित करता था यह दो भाग एशिया तथा यूरोप थे। और एक बहुत बड़ी महासागरीय नदी उस वृत्ताकार तश्तरी रूपी पृथ्वी की परिधि के सहारे–सहारे बहती हुई समुद्रों को परस्पर जोड़ती थी। कोलंबिया प्रदेशके निवासी भी पृथ्वी को चौरस या सपाट आकार का मानते थे। मिस्र में नील नदी की उपत्यका के निवासियों के विचार बेबिलोनिया के निवासियों के विचारों से मिलते–जुलते थे। भारतीय विद्वानों ने पृथ्वी से संबंधित ज्ञान का नाम भूगोल रखा था, इस तथ्य को स्वीकार करता था कि पृथ्वी की आकृति गोलाकार है। इसके अलावा भारतीयों को पृथ्वी के सौर संबंधों का भी शुद्ध ज्ञान था। भारतवर्ष के निवासियों को भौगोलिक ज्ञान का तथा सूर्य, चंद्र, नक्षत्र, निहारिका आदि विश्व के ज्ञान का वर्णन वेदों में है, जो समस्त संसार के प्राचीन ग्रंथों में हैं।

प्राचीन भारत में ऋषि मुनि एवं ज्ञानी की प्रमुख अध्येता, शोधकर्ता, ज्ञानदाता, शिक्षक और लेखक थे जो वनों में स्थित आश्रमों में रहकर प्रयोग तथा ज्ञानार्जन करते थे। प्राचीन भारतीय विद्वानों को पृथ्वी की गोल आकृति, पृथ्वी की घूर्णन गति, दिन–रात के छोटा–बड़ा होने, चंद्रकलाओं, चंद्रमास, चंद्र वर्ष, सौर वर्ष, चंद्र एवं सूर्य ग्रहण, ऋतु परिवर्तन, नदियों, पर्वतों, झीलों, सागरों आदि का अच्छा ज्ञान था और वे कृषि, उद्योग, व्यापार, चिकित्सा, गृह तथा बस्तियों के निर्माण आदि अनन्य विषयों में विशिष्ट जानकारी रखते थे। प्राचीन भारत में भौगोलिक ज्ञान के विकास का अध्ययन ऐतिहासिक विकास–क्रम के अनुसार करना अधिक सार्थक होगा, अतः यहां इसका वर्णन मानव सभ्यता के विकास क्रमानुसार किया गया है।

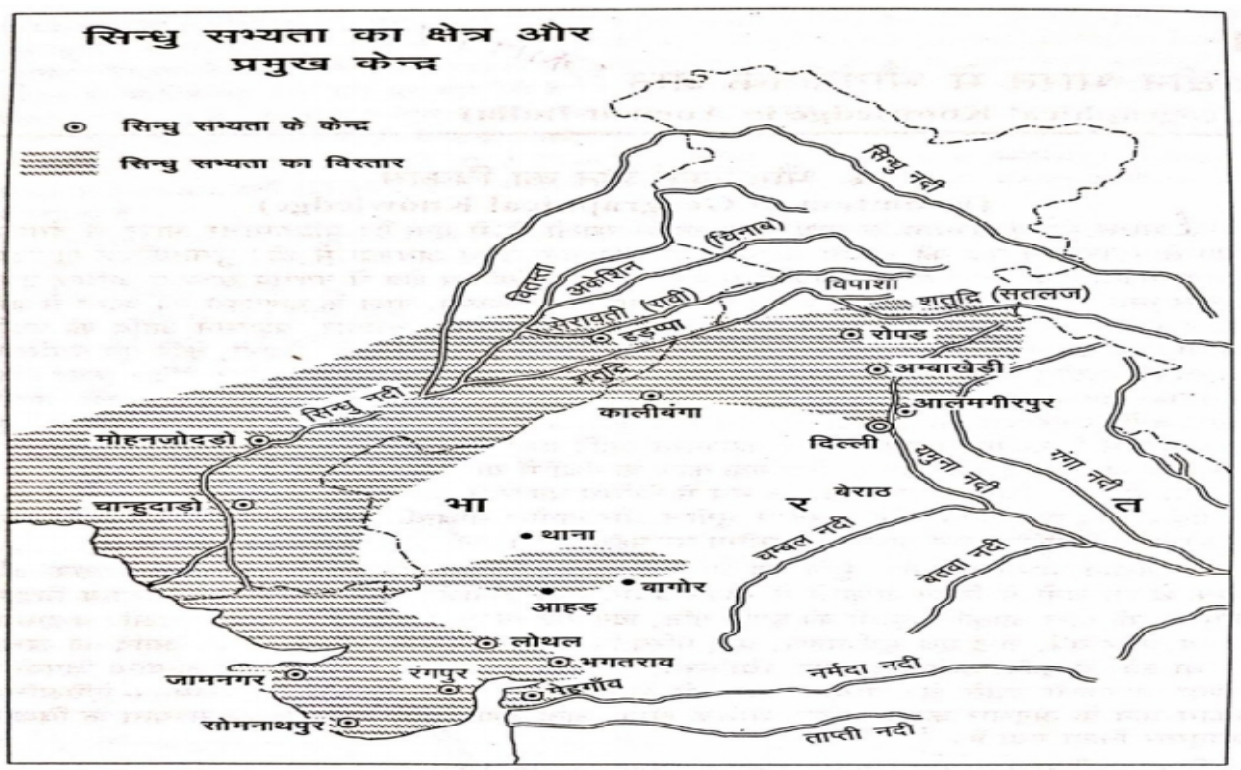
चित्र. 1



प्राचीन काल में भौगोलिक ज्ञान के विकास के प्रमुख प्रदेश।
(1) भारत में सिन्धु प्रदेश और दक्षिणी भारत में तिन्नेवेली प्रदेश, (2) बेबिलोनिया, (3) मिस्र में नील उपत्यका, (4) यूनान तथा क्रीट, (5) सोवियत संघ का बोल्गा बेसिन तथा उक्राइन प्रदेश, और (6) चीन में ह्वांगहो प्रदेश।

1. सिंधु घाटी सभ्यता युग–

आज से लगभग 3500 वर्ष से पहले भारत के पश्चिमोत्तर भाग में सिंधु नदी की घाटी में एक प्रागैतिहासिक मानव सभ्यता विकसित हुई थी, जो संभवतः विश्व की प्राचीनतम सभ्यता है। इस काल में लिखा गया कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं है पुरातात्विक खुदाई से नागरों के जो भग्नावशेष और औजार, मिट्टी के बर्तन मुद्राएं, खिलौने आदि प्राप्त हुए हैं, उनसे विविध प्रकार की भौगोलिक जानकारी प्राप्त होती है। इन साक्ष्य से विदित होता है कि सिंधु घाटी वासियों को भूगोल के विभिन्न आयामों का अच्छा ज्ञान था। सिंधु घाटी सभ्यता में अतिरिक्त संपूर्ण सिंध और बलूचिस्तान, हरियाणा, जम्मू, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र तक था। मोहनजोदड़ो हड़प्पा, आमरी, कालीबंगा नाल, लोथल आदि स्थानों पर खुदाईयों से प्राचीन नगरों के भग्नावशेष पाए गए हैं, जोनगरीय सभ्यता के विकास को प्रमाणित करते हैं। इस संस्कृति को हड़प्पा के नाम से जाना जाता है। हड़प्पा स्थान वर्तमान पाकिस्तान में पंजाब प्रांत के मांटगोमरी जनपद में सहायक रावी नदी के बाएं किनारे पर अवस्थित है। इस संस्कृति के प्रमुख तत्वों में वर्गीकृत नगर विन्यास, व्यवस्थित गृह योजना, भवन निर्माण में पक्की ईंटों का प्रयोग,चौड़ी तथा पक्की सड़कों एवं जल विकास के लिए पक्की नालियों की व्यवस्था, मृदभांड कला, लिपि ज्ञान, बाट एवं माप प्रणाली का ज्ञान, सुव्यवस्थित सामाजिक एवं राजनीतिक संगठन आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। उस समय सिंधु घाटी तथा समीपवर्ती क्षेत्रों में अनेक छोटे–बड़े नगर स्थापित हो गए थे।



चित्र 1.1 सिंधु सभ्यता का क्षेत्र और प्रमुख केंद्र

अतः सिंधु सभ्यता काल में नगर अनेक सुविधाओं से संपन्न होते थे और व्यापारी, धनी तथा शासक वर्ग के लोग नगरों में निवास करते थे। हड़प्पा संस्कृति के लोगों की व्यापारिक संबंधित तत्कालीन सुमेर और फारस की खाड़ी के तटवर्ती नगरों के लोगों के साथ भी थे। आर्यों के आगमन से पहले(लगभग 1700 ईसा पूर्व) अज्ञात कारणों से हड़प्पा संस्कृति का पतन हो चुका था और इसी के साथ विकसित नगरीय सभ्यता का भी अवसान हो गया अर्थात हड़प्पा संस्कृति लगभग 1000 वर्षों तक जीवित रही।

(2) वैदिक युग–

प्राचीन भारतीय साहित्य में वेद महत्वपूर्ण एवं अमूल्य धरोहर है। वेदों की संख्या 4– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद हैं जिनकी एक–एक रचनाओं को ब्रह्म वाक्य कहां गया है। इनके एक –एक मंत्र एवं हम को सत्य, शाश्वत एवं अक्षुण्य माना गया है। सर्वप्रथम ऋग्वेद की रचना हुई थी और कुछ समय पर अन्य तीनों वेद लिखे गए थे। हड़प्पा सिंधु संस्कृति के अवसान के पश्चात आर्यों द्वारा संस्थापित वैदिक संस्कृति की स्थापना

हुई। अधिकतम विद्वानों का मत है कि आर्य भारत से अथवा मध्य एशिया से पहले पश्चिमोत्तर भारत आए और बाद में संपूर्ण उत्तरी भारत में बस गए। उन्होंने मूल निवासी को परास्त किया। इस सूची को और यहाँ के मूल निवासियों को निम्न मानते थे और उन्हें दास या दस्यू कहते थे। कालू की सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियों में पर्याप्त अंतर पाया गया है। अतः संपूर्ण वैदिक युग को दो उपविभागों में विभक्त किया जाता है–

(अ) पूर्व वैदिक (ऋग्वैदिक) काल

(ब) उत्तर– वैदिक काल

(अ) पूर्व वैदिक (ऋग्वैदिक) काल– ऋग्वेद आर्य सभ्यता का सबसे प्राचीन ग्रंथ है इस वेद से 1000 ई0 पूर्व कालीन समाज के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। ऋग्वैदिक काल का समय 1500 ईसा पूर्व तक माना जाता है। इस काल में आर्य छोटे–छोटे समूहों में रहते थे। तत्कालीन राजनीतिक सरल था राज्यों का उदय नहीं हुआ था। कबीले का मुखिया राजा कहलाता था उसके मुख्य सलाहकार और अधिकारी होते थे। आरंभ में पशुपालन भी करते थे और झुंडों में रहते थे वे कृषि भी करने लगे और स्थाई बस्तियां बसा कर रहने लगे। आर्य अनेक देवी देवताओं की पूजा करते थे जिनमें सूर्य, चंद्रमा इंद्र, वरुण आदि प्रमुख थे। वे यज्ञ के द्वारा देवताओं तथा प्राकृतिक शक्तियों को प्रसन्न करने का प्रयत्न करते थे।

ऋग्वैदिक काल के लोगों को पृथ्वी की चार दिशाओं उत्तर, दक्षिण, पूर्व तथा पश्चिम, ऋतुओं, पवन प्रवाह एवं गति, मेघ रचना, पर्वतों, नदियों, वर्षा के प्रकारों आदि का पर्याप्त ज्ञान था क्योंकि इनका विस्तृत विवरण ऋग्वेद में मिलता है। ऋग्वेद में लिखा है कि परमाणुओं से युक्त आकाश में गति उत्पन्न होने से नक्षत्रों, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी आदि की उत्पत्ति हुई। ऋग्वेद के वें मण्डल के "नदी सूक्त" के मंत्रों में भारत की नदियों के विवरण है और इसमें गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री (सतलज), चरुष्णी, पःषणी (रावी), विपाशा (व्यास), असिक्नी (चिनाब), बितस्ता (झेलम), गोमल (गोमती) आदि नदियों का वर्णन किया गया है।

(ब) उत्तर वैदिक काल– ऋग्वेद की रचना के पश्चात् का समय जिसमें यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के साथ ही ब्राह्मण, उपनिषद्, आरण्यक आदि ग्रंथों की रचना हुई, उसे उत्तर वैदिक काल के नाम से जाना जाता हे। इस युग में आर्य संस्कृति का प्रसार पूर्व में गंगा–यमुना के मैदान तक हो गया था। उस समय राजतंत्र के साथ–साथ गणतंत्र की भी स्थापना हुई। पांचाल, कुरु, काशी और कौशल तत्कालीन प्रमुख राज्य थे। तत्कालीन समाज में वर्ण व्यवस्था प्रचलित थी जो व्यवसाय (कार्य) पर आधारित होती थी। इस काल में रचित वेदों तथा अन्य ग्रंथों में विभिन्न स्थानों पर खगोल शास्त्र, विश्व की उत्पत्ति, वायुमंडल, प्राकृतिक वनस्पतियों आदि के साथ ही भौगोलिक तथ्यों के विवरण पाये जाते हैं।

वेदों में व्यवस्थित भौगोलिक ज्ञान का विवरण दिया गया है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में पृथ्वी के ग्रहीय सम्बन्धों, भूआकारिकी, भूआकृतियों, नदियों, पर्वतों, ऋतुओं, वनस्पतियों, जन्तुओं, खनन कार्यों, पशुपालन, कृषि, मार्गों, नगरों, राजनीतिक क्षेत्रों आदि के वर्णन मिलते हैं।

उपनिषदों तथा आरण्यक ग्रंथों में प्राकृतिक तथ्यों से सम्बन्धित पर्याप्त भौगोलिक जानकारी प्राप्त होती है। तैत्तिरीय उपनिषद् में लिखा है कि उससे आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी की रचना हुई जिस पर वनस्पति और अन्न की उत्पत्ति हुई।

(3) महाकाव्य एवं पुराण युग –रामायण और महाभारत दो प्राचीन और बृहदू महाकाव्य हैं जिनकी रचना वैदिक काल के पश्चात हुई। जिस युग में इन महाकाव्यों की रचना हुई उसे 'महाकाव्य काल' या रामायण –'महाभारत काल' के नाम से भी जाना जाता है। 'रामायण' के रचयिता महाकवि वाल्मीकि और 'महाभारत' के रचनाकार वेदव्यास थे। रामायण की रचना पहले और महाभारत की रचना बाद में हुई। इसका आधार यह है कि महाभारत में रामायण की कथा का विवरण मिलता है किन्तु रामायण में महाभारत की कथा का प्रसंग कहीं नहीं आया है। मूलतः इन दोनों ग्रंथों की रचना ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में हुई थी और इनका अंतिम स्वरूप क्रमशः दूसरी और चौथी शताब्दी ईस्वी में निर्मित हुआ था। पुराणों में वर्णित विषयों का मुख्य आधार वैदिक साहित्य ब्राह्मण, संहिता, उपनिषद्, आरण्यक आदि ग्रंथ हैं। महाकाव्य काल में आर्य अधिक तक बढ़ गये थे और उन्होंने मगध (बिहार) और बंग (बंगाल) जैसे विशाल राज्य स्थापित कर लिए थे। इस काल में सामाजिक जीवन वर्णव्यवस्था पर आधारित था।

रामायण में विभिन्न भौगोलिक पक्षों का सुन्दर वर्णन मिलता है। वनवास की अवधि में राम जिन–जिन आश्रमों और

स्थानों से होते हुए रामेश्वरम् (दक्षिण भारत) और लंका तक पहुँचे थे उसका क्रमिक भौगोलिक वर्णन रामायण में उपलब्ध है। आश्रमों, पर्वतों, झीलों, वनों आदि के प्राकृतिक सौंदर्य के वर्णन भी प्रसंगानुसार मिलते हैं। हनुमान द्वारा हिमालय से संजीवनी को लेकर लंका तक पहुँचने के मार्ग का उल्लेख भौगोलिक स्थिति से मेल खाता है। इसी प्रकार सीताजी की खोज के लिए सुग्रीव द्वारा चारों दिशाओं में जिन–जिन प्रदेशों के लिए अपने सैनिक भेजे गये थे उनका भौगोलिक विवरण रामायण में दिया गया है। महाभारत में वर्तमान दिल्ली और हरियाणा के आस–पास के क्षेत्र को कुरुक्षेत्र कहा गया है जिसकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली के निकट) थी। इन्द्रप्रस्थ का राजनैतिक और व्यापारिक सम्बन्ध पश्चिम में गांधार, पूर्व में विदेह और मगध तथा दक्षिण में कलिंग तक था। महाभारत के भीष्म पर्व में स्थानों, राज्यों और स्थलरूपों के भौगोलिक वर्णन मिलते हैं।

पुराणों की रचना संभवतः रामायण और महाभारत के पश्चात् हुई। विद्वानों का मत है कि कुल 18 पुराणों में से अधिकांश की रचना तीसरी–चौथी शताब्दी ईसा पूर्व तक सम्पन्न हुई थी यद्यपि इनकी रचना का आरंभ सातवीं–आठवीं शताब्दी ईसा पूर्व में हो गया था। समय–समय पर कई बार इनमें संशोधन भी किये गये। भारतीय ऐतिहासिक कथाओं का सर्वाधिक क्रमबद्ध विवरण हमें पुराणों में प्राप्त होता है। पुराणों के पाँच प्रमुख विषय हैं।

1. सर्ग (जगत् की सृष्टि),
2. प्रतिसर्ग (प्रलय के पश्चात् जगत् की पुनः सृष्टि),
3. वंश (ऋषिओं तथा देवताओं की वंशावली),
4. मन्वन्तर (महायुग), और
5. वंशानुचरित (प्राचीन राजकुलों का इतिहास)।

पुराणों में प्राचीन काल से लेकर गुप्तकाल (चौथी शताब्दी ईसवी) की ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण मिलता है। पौराणिक काल में ही स्मृतियों की भी रचना हुई। इनकी रचना सम्भवतः ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से लेकर ईसा की दूसरी शताब्दी के मध्य लगभग 400 वर्षों की अवधि में हुई थी। स्मृतियाँ मुख्यतः धर्म और नीतिशास्त्र से संबंधित हैं और इनमें भौगोलिक ज्ञान कम पाये जाते हैं।

अधिकांश पुराण भौगोलिक विवरणों से भरे पढ़े हैं। पुराणों में धर्म और दर्शन सम्बन्धी तथ्यों के साथ–साथ सृष्टि रचना, पृथ्वी की उत्पत्ति, पृथ्वी के विभिन्न भागों का प्राकृतिक आधारों पर विभाजन और उपविभाजन, पर्वतों, नदियों, जनपदों, राज्यों, बस्तियों, नगरों, प्रमुख मार्गों आदि का तथ्यपूर्ण वर्णन पुराणों में दिया गया है। इनमें पृथ्वी के सौर सम्बन्ध, सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण, मौसम, जलवायु आदि से सम्बन्धित दशाओं का विस्तृत विवेचन किया गया है। पुराणों में तत्कालीन मानवीय और सामाजिक दशाओं का भी वर्णन मिलता है। भौगोलिक ज्ञान की दृष्टि से वायु पुराण, मत्स्य पुराण, विष्णु पुराण, मारकण्डेय पुराण और भागवत् पुराण अधिक महत्वपूर्ण हैं।

(4) जैन एवं बौद्धकाल – छठीं शताब्दी ईसा पूर्व तक उत्तरी भारत में कई गणराज्य स्थापित हो चुके थे जिनमें तीन अधिक शक्तिशाली थे – कोशल (अवध), मगध और वत्स। दक्षिण में अवन्ति नामक शक्तिशाली राज्य था जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी। इस समय तक वैदिक धर्म अनेक कर्मकाण्डों और धार्मिक अनुष्ठान से युक्त हो गया था और जाति तथा व्यवसाय वंशानुगत हो गये थे। बहुत से लोग तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था से असंतुष्ट थे। उसी काल में दो प्रमुख धर्म प्रवर्तक महावीर और गौतम बुद्ध अवतरित हुए जिन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया और क्रमशः जैन धर्म और बौद्ध धर्म की स्थापना किया। जैन और बौद्ध ग्रन्थों की रचना ईसा के समय तक चलती रहीं। इन ग्रंथों में जैन आगम, जातक कथाएं, धर्मपद, बौद्ध त्रिपिटक, कग्यूर, तग्यूर आदि हैं। "लोक प्रज्ञापति" प्रमुख बौद्ध ग्रंथ है जिसमें भूगोल और समुद्र विज्ञान सम्बंधी विवरण पाया जाता है। जैन ग्रंथों में अपेक्षाकृत् अधिक भौगोलिक सामग्री प्राप्त होती है। अनेक भौगोलिक ग्रंथों में "सूर्य प्रजापति" विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

(5) मौर्य काल–भारत के राजनीतिक इतिहास में सम्पूर्ण भारत पर एक राजनीतिक सत्ता स्थापित करने का सर्वप्रमुख श्रेय चन्द्रगुप्त मौर्य (ई०पू० 322–298) को जाता है जिसने आचार्य चाणक्य की सहायता से और उनके ही निर्देशन में विस्तृत मगध साम्राज्य की स्थापना की। बाद में बिम्बसार और अशोक ने इस साम्राज्य का सर्वाधिक विस्तार किया। मौर्य काल में भारत में व्यापार, विज्ञान, कला, साहित्य आदि की प्रचुर प्रगति हुई। तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में कौटिल्य (चाणक्य) द्वारा लिखित "अर्थशास्त्र" में राजनीति, अर्थव्यवस्था और नीति–सम्बंधी विवेचन के

साथ ही कृषि व्यवस्था, औद्योगिक प्रगति, व्यापार, राज्य, समाज आदि से सम्बद्ध भौगोलिक विवरण भी प्राप्त होते हैं। इसमें पाटलिपुत्र, तक्षशिला, उज्जैन, नालन्दा आदि नगरों के महत्वपूर्ण भौगोलिक विवरण दिये गये हैं। इस प्रकार के भौगोलिक ज्ञान तत्कालीन स्थापित शिलालेखों और स्तम्भ लेखों से प्राप्त होते हैं।

(6) गुप्तकाल – भारत में लगभग 300 ई० से 500 ई० तक गुप्त साम्राज्य था जिसके संस्थापक श्रीगुप्त थे। गुप्त वंश के शासकों में चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त, कुमारगुप्त, स्कंदगुप्त आदि महान प्रतापी सम्राट हुए जिन्होंने उत्तर और दक्षिण भारत के बड़े भूभाग पर लगभग 200 वर्षों तक शासन किया। राजनीतिक व्यवस्था, सम्पन्नता, विज्ञान, कला एवं साहित्य के विकास की दृष्टि से गुप्त काल को भारत का स्वर्णिम युग माना जाता है। इस युग में विद्वानों, लेखकों तथा कवियों को प्रोत्साहित और सम्मानित किया जाता था जिसके परिणामस्वरूप अनेक उत्कृष्ट ग्रंथों की रचना हुई। महाकवि कालिदास, ज्योतिषाचार्य आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त और वाराहमिहिर गुप्त काल में ही हुए थे। अजंता तथा एलोरा के विश्व प्रसिद्ध भित्तिचित्र तथा दिल्ली के लौह स्तम्भ का निर्माण गुप्तकाल में ही हुआ था। आर्यभट्ट, ब्रहमगुप्त और वाराहमिहिर उच्चकोटि के ज्योतिष विज्ञानी थे जिन्होंने अनेक ज्योतिष और गणित के ग्रंथ लिखे जिनमें अत्यंत महत्वपूर्ण भौगोलिक सामग्री विद्यमान है। कालिदास के ग्रंथों में स्थलरूपों, सागरों, पर्वतों, नदियों, ऋतु परिवर्तन, कृषि, बस्तियों, राजपथों, प्रदेशों आदि के विस्तृत तथा सजीव वर्णन मिलते हैं।

1.7 प्राचीन काल में भारतीय विद्वान्

विश्व का प्राचीनतम ज्ञान भारतीय प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। रामायण और महाभारत काल से लेकर सातवी ईस्वी तक एक भारतीय विद्वानों ने विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों का वर्णन अपने– अपने ग्रंथों में किया है। प्राचीन काल में भूगोल नाम का कोई अलग विषय नहीं था किन्तु धरातलीय तथा आकाशीय पिण्डों का अध्ययन क्षेत्रशास्त्र के रूप में प्रचलित था। इसीलिए भूगोल और खगोल को एक–दसरे से सम्बद्ध माना जाता था। गणितीय भूगोल और खगोलीय भूगोल प्राचीन भूगोल के पक्ष थे। इसके साथ ही भौतिक तथा मानवीय तथ्यों के प्रादेशिक वर्णन भी इसके अन्तर्गत समाहित होते थे। प्राचीन भारत के प्रमुख विद्वान निम्नांकित हैं जिन्होंने अपने ग्रंथों में भूगोल के विभिन्न पक्षों की व्याख्या और वर्णन किये हैं।

(1) कौटिल्य (चाणक्य)– अमर कौटिल्य जिन्हें चाणक्य के नाम से भी जाना जाता है, चौथी शदी ईसा पूर्व में मौर्य साम्राज्य के संस्थापक चन्द्रगुप्त (322–298 ई०पू०) के गुरु और प्रधानमंत्री थे। कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ की रचना की थी जिसमें उत्तरी और दक्षिणी भारत के व्यापारिक तथा राजनीतिक सम्बंधों की भौगोलिक विवेचना की गई है। इस ग्रंथ में प्राचीन भारत की कृषि व्यवस्था, औद्योगिक प्रगति, व्यापार तथा व्यापारिक मार्गों आदि का वर्णन किया गया है। "अर्थशास्त्र में राजनीतिक भूगोल से सम्बद्ध महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। इसमें पाटलिपुत्र, उज्जैन, तक्षशिला आदि कई नगरों का भौगोलिक एवं राजनीतिक वर्णन किया गया है।

(2) आर्यभट्ट– प्राचीन भारत (चौथी शताब्दी) के प्रसिद्ध खगोल विज्ञानी आर्यभट्ट का जन्म पाटलिपुत्र में हुआ था आर्यभट्ट ने पृथ्वी की आकृति गोलाभीय (७0७८9) बताया और पृथ्वी के व्यास और परिधि का परिकलन किया। उन्होंने पृथ्वी की परिधि लगभग 24835 मील बताया था जो वर्तमान आकलन (2490 मील) के लगभग बराबर है। उन्होंने सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण का कारण सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी के बीच बदलती स्थितियों को बताया और प्रतिपादित किया कि पूर्णिमा की रात में चन्द्रमा पर पृथ्वी की छाया पड़ने पर चन्द्रग्रहण दिखायी पड़ता है। आर्यभट्ट की प्रमुख कृति "आर्यभट्टीयम्" है। सर्वप्रथम उन्होंने ही खोज की थी कि सूर्य स्थिर है और पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है।

(3) बाराहमिहिर –चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (शासन काल 375–45 ई०) के दूसरे प्रसिद्ध खगोल विज्ञानी थे। उन्होंने 'पंचसिद्धातिका' नामक ग्रंथ लिखा जिसमें पद्धतियों की व्याख्या की गयी है। "बृहज्ञातक, "बृहत्संहिता" और "लघुजातक" वाराहमिहिर के अन्य प्रमुख ग्रंथ हैं। वाराहमिहिर ने सिद्ध किया था कि चन्द्रमा पृथ्वी का चक्कर लगाता है और पृथ्वी सूर्य का चक्कर लगाती है। उन्होंने ग्रहों के संचालन तथा अन्य खगोलीय समस्याओं के अध्ययन के लिए अनेक यूनानी कृतियों का भी सहारा लिया था।

(4) ब्रह्मगुप्त –गुप्तकाल के तीसरे प्रमुख खगोलवेत्ता ब्रह्मगुप्त वाराहमिहिर के समकालीन थे। उन्होंने "ब्रह्म सिद्धांत और 'खण्डखाद्य' नामक ग्रंथ लिखे जिनमें खगोलिकीय भूगोल सम्बन्धी तथ्य और सिद्धान्त दिये गये हैं। उन्होंने तेल, जल और पारा से घूमने वाले कुछ यंत्रों का भी वर्णन किया है। ब्रह्मगुप्त ने पृथ्वी का व्यास 587

योजन (7905 मील) बताया था जो पृथ्वी के वास्तविक व्यास (7925 मील) के लगभग समान है।

(5) कालिदास – संस्कृत साहित्य के महाकवि कालिदास को चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (शासन काल 375 ई०–45 ई०) का समकालीन माना जाता है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के दरबार में नौ विद्वानों की एक मण्डली थी जिसे 'नवरत्न' कहा गया है। कालिदास उन नवरत्नों में अग्रगण्य थे। कालिदास ने 7 ग्रंथों की रचना की है जो इस प्रकार है– रघुवंश, कुमारसंभव, मेघदूत, ऋतुसंहार, मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम और अभिज्ञान शाकुंतलम। इनमें प्रकृति चित्रण के साथ ही साथ स्थानों और मार्गों का विवरण मिलता है। ऋतुसंहार में शड्ऋतु का वर्णन है। मेघदूत में मेघ पथ का भौगोलिक वर्णन मिलता है।

(6) धन्वंतरि – धन्वंतरि प्रमुख आयुर्वेदाचार्य और चिकित्सा विज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान थे। ये चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की राज्यसभा के नौ रत्नो में से एक थे। इन्होंने चिकित्सा के उद्देश्य से विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों की विशेषताओं और उनकी उपयोगिता का वर्णन किया है।

(7) भास्कराचार्य –बारहवीं शताब्दी (1114 ई०) में एक महान गणितज्ञ और खगोलवेत्ता हुए थे जिन्हें भास्कराचार्य के नाम से जाना जाता है। उन्होंने सिद्धांत शिरोमणि' और 'करणकुतूहल' नामक दो प्रसिद्ध ग्रंथ लिखे थे। प्रथम ग्रंथ में अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति और ज्योतिषशास्त्र सम्बन्धी जानकारी दी गयी है। दूसरे ग्रंथ में कुछ प्रमुख अन्वेषणों का विवरण दिया गया है। भास्कराचार्य ने बताया था कि पृथ्वी गोल है और उसमें गुरुत्वाकर्षण शक्ति विद्यमान है जिसके कारण वस्तुओं को अपनी ओर आकर्षित करती है। उन्होंने पृथ्वी को 360^0 में विभाजित किया और अक्षांश तथा देशांतर रेखाओं द्वारा नगरों की अवस्थिति निर्धारित करने में उनका उपयोग किया। भास्कराचार्य ने पृथ्वी को गोल मानकर ही सारी गणनायें की हैं।

1.8 प्राचीन काल में भारतीय भौगोलिक संकल्पना तथा सिद्धांत

प्रागेतिहासिक काल के ग्रंथों –वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण आदि से लेकर बारहवीं शताब्दी तक के ऐतिहासिक ग्रंथों में विविध प्रकार के खगोलीय, भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि दशाओं के पर्याप्त विवरण मिलते हैं। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में अनेक स्थलों पर स्थलरूपों (पर्वत, मैदान, घाटी आदि), जलाशयों (नदी, सरोवर, सागर आदि) मौसम, जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति आदि प्राकृतिक पक्षों और मानव समाज की सामाजिक एवं आर्थिक दशाओं, व्यवसायों, जीवन पद्धति, ग्राम, नगर, परिवहन के साधन आदि मानवीय पक्षों की भौगोलिक विवेचना की गयी है। इनके साथ ही पृथ्वी की आकृति, आयु तथा ग्रहीय सम्बंधों, पृथ्वी की दैनिक और वार्षिक गतियों के परिणामस्वरूप होने वाले परिवर्तनों–क्रमशः दिन–रात और ऋतु परिवर्तन आदि का भी तथ्यपूर्ण विश्लेषण किया गया है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में वर्णित इन्हीं प्रमुख पक्षों की यहाँ संक्षिप्त चर्चा की गयी है।

1.8.1 खगोलिकीय ज्ञान–

भारत के प्राचीनतम ग्रंथों– ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद के अनेक मंत्रों में सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी के पारस्परिक सम्बंधों, ऋतु परिवर्तनों, दिन–रात्रि की क्रमिक आवृत्ति आदि के विवरण मिलते हैं। इन ग्रंथों में 27 नक्षत्रों (मृगशिरा,कृत्तिका, चित्रा आदि), विषुव दिन आदि के उल्लेख भी अनेक मंत्रों में पाये जाते हैं। भारतीय प्राचीन ग्रंथों में ब्रह्मांड और पृथ्वी की उत्पत्ति, चन्द्रकलाओं, सूर्य एवं चन्द्रग्रहण, ऋतु परिवर्तन, सौर्यवर्ष, सौर्यभास, चन्द्रमास, चन्द्रवर्ष, दिन–रात की अवधि आदि की यथार्थ गणना और व्याख्या की गयी है।

(स) ब्रह्मांड की उत्पत्ति–

वेदों और उपनिषदों में ब्रह्मांड की उत्पत्ति का क्रमबद्ध वर्णन मिलता है। तैत्तरीय उपनिषद् में लिखा है, "उस परमेश्वर और प्रकृति से (कारण रूप तत्व) आत्मानू और उससे आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से वनस्पतियाँ और वनस्पतियों से अन्न की. उत्पत्ति हुई।"ऋग्वेद के एक मंत्र में कहा गया है कि, "परम तेजोमय परमेश्वर से ज्ञान और प्रकृति की उत्पत्ति हुई। उससे परमाणुओं से युक्त आकाश उत्पन्न हुआ और परमाणुओं से पूर्ण आकाश में क्षोभ (हलचल) उत्पन्न होने से नक्षत्रों, सूर्य चन्द्रमा, पृथ्वी आदि की उत्पत्ति हुई। "इस प्रकार भारतीय ग्रंथों में वर्णित सृष्टि का विकास–क्रम विज्ञान की आधुनिक खोजों से सत्य सिद्ध होता है। इन ग्रंथों में ब्रह्माण्ड उत्पत्ति के लिए चार विधियों को प्रस्तुत किया गया है

1. ब्रह्माण्ड की कलात्मक उत्पत्ति
2. यांत्रिक उत्पत्ति
3. दार्शनिक उत्पत्ति
4. उपकरण विधि

1. ब्रह्माण्ड की कलात्मक उत्पत्ति – ऋग्वेद में विश्व रचना के लिए देवी तथा देवताओं जैसी शक्तियों को उत्तरदायी बताया गया है। इन सभी को कलाकार के रूप में माना जाता है जिन्होंने ब्रह्माण्ड रचना में योगदान दिया। इन्होंने विभिन्न पदार्थों को एक ढाँचे में तैयार किया तथा प्रस्फोटन एवं प्रगलन प्रक्रिया के माध्यम से ब्रह्माण्ड को एक स्वरूप प्रदान किया। ऋग्वेद के अनुसार ब्रह्माण्ड एक भवन की भाँति होता है जिसके निर्माण में कई अवस्थायें होती हैं।

2. यांत्रिक उत्पत्ति –ऋग्वेद के अंतिम चरण में ब्रह्माण्ड उत्पत्ति के सम्बन्ध में यांत्रिक विधि विकसित हुई। इसमें आदि पुरुष के रूप में आदियुगीन पिण्ड के विखण्डन से ब्रह्माण्ड उत्पत्ति, की कल्पना की गई। इसी आदिं–पुरुष को सृष्टि का केन्द्र एवं तत्व माना गया और इसे ही परम सत्ता की आत्मा का अवतार (मूर्त रूप) कहां गया। आकाश, वायु, चन्द्र तथा सूर्य और अन्य पार्थिव तत्वों का निर्माण इसी आदि पुरुष से अलग होने के फलस्वरूप हआ है।

3. दार्शनिक उत्पत्ति –दार्शनिक उत्पत्ति संबंध में वेदो में परम ब्रह्म को आदिशक्ति माना गया है इसके पहले न तो आकाश था न सतं था न असत था। इसके साथ ही आकाश, वायुमंडल, प्रकाश तथा अंधकार भी नहीं था, जीव, अजीव या ऊर्जा का कोई रूप नहीं था। पर–ब्रह्म या प्रकृति ने अपनी इकाई में समाहित ऊर्जा से सृष्टि का सृजन किया इस ऊर्जा को विल्सन ने तप तथा संयम के रूप में व्याख्या किया जिसे ब्रह्माण्ड (सृष्टि) रचना कीप्रक्रिया में भौतिक क्रिया के रूप में समझा जा सकता है।

4. उपकरण विधि –ब्रह्माण्ड उत्पत्ति की यह विधि मूल पिण्डों की उपस्थिति पर आधारित हैं। सम्पूर्ण सृष्टि द्विजनक के रूप में पृथ्वी एवं स्वर्ग के रचयिता के साधन के रूप में अग्नि, इन्द्र एवं सोम, सूर्य, रुद्र तथा अन्य देवताओं को वर्णित किया गया है। पृथ्वी एवं स्वर्ग के मेल से सूर्य की उत्पत्ति माना जो सृष्टि की रचना के लिए उत्तरदायी था। सूर्य की चल एवं अचल, वायु, पृथ्वी एवं स्वर्ग की उत्पत्ति हेतु निमित्त था। इसे ही बाद में राजापति विश्वकर्मा कहा गया जिसे सुवर्ण अण्डा या अजन्मा भी कहा गया। ऋग्वेद के मण्डल के 10 सू0 121.1 के अनुसार "संसार के इस रूप में आने के पूर्व हिरण्य गर्भ के रूप में था। यह सुवर्णमय उपादान पंचभूत समूह का एकमात्र धारक था। उसने ही भूलोक तथा नक्षत्र लोक को धारण किया।" इस अजन्मा तृत्व को आत्मा कहा गया जिसके मध्य भाग के माध्यम से सष्टि की रचना हुई।

2. भारतीय काल गणना –प्राचीन भारतीय ज्योतिष सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक दिवस (24 घण्टे के दिन–रात) 60 घटी (घटिका) का होता है। एक घटी में 60 पल, एक पल में 60 विपल और एक विपल में 60 लीक्षक होते हैं। उल्लेखनीय है कि एक लीक्षक एक सेकेण्ड का 50वाँ भाग होता है। इस प्रकार हम पाते हैं कि समय (काल) के विभाजन की 60–60 की पद्धति मूलतः भारतीय है। संभवतः भारतीय ग्रंथों के आधार परयूनानी विद्वान टालमी ने सर्वप्रथम 1 अंश को 60 मिनट में और 1 मिनट को 60 सेकेण्ड में विभाजित करने की पद्धति बतलाया था।

3. पृथ्वी की आकृति एवं आकार –वेदों और परवर्ती अनेक ग्रंथों में पृथ्वी की आकृति गोलाभबतायी गयी है। यजुर्वेद में लिखा है कि "यह गोलाकार पृथ्वी अपने पालनकर्ता सूर्य के आगे–आगे अपने जलों सहित भली प्रकार चलती हुई आकाश में अपनी कक्षा पर चारों ओर घूमती है।" चौथी शताब्दी में ज्योतिषाचार्य ब्रह्मगुप्त ने पृथ्वी का व्यास 1581 योजन अर्थात् 7905 मील बताया था जो पृथ्वी के नवीनतम आकलन (7925 मील) के लगभग समान है। इसके पहले ही आर्यभट्ट ने पृथ्वी की परिधि लगभग 24,835 मील बताया था जो पृथ्वी के वर्तमान परिधि (2490। मील) के लगभग तुल्य है।

4. पृथ्वी का घूर्णन और परिक्रमण – वेद, उपनिषद्, आरण्यक आदि प्राचीन ग्रंथों में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि पृथ्वी अपने अक्ष (205) पर घूमती है जिससे दिन और रात बनते हैं। सूर्य के सम्मुख वाले पृथ्वी के आधे भाग पर दिन... और पीछे वाले आधे भाग पर रात (अंधेरा) होती है। यजुर्वेद में स्पष्ट उल्लेख है कि पृथ्वी

सूर्य के चारों... ओर अपनी निश्चित कक्षा पर परिक्रमण करती है। ईसा पूर्व सातवीं–आठवीं शताब्दी तक सूर्य की उत्तरायण और दक्षिणायन स्थितियों तथा उनसे उत्पन्न ऋतु परिवर्तन की गणना की जाने लगी थी। जिस तिथि को सम्पूर्ण पृथ्वी पर दिन और रात बराबर होते हैं उसे विषुव कहते हैं जो प्रतिवर्ष दो बार आता है– चैत्र मास (21 मार्च) को बसंत विषुव और आश्विन मास (23 सितम्बर) को शरद विषुव। पृथ्वी जितने समय में सूर्य की एक परिक्रमा पूरी कर लेती है उसे एक सौर्यवर्ष कहते हैं। इसकी अवधि 365 दिन, 5 घंटे, 48 मिनट, 46 सेकेण्ड होती है जिसे लगभग 365.25 दिन के बराबर माना जाता है।

5. चन्द्रमा की कलाएं – ऋग्वेद में स्पष्ट उल्लेख है कि चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है। भारत के प्राचीन ग्रंथों में चन्द्रमा की कलाओं का वर्णन किया गया है। लगभग 29.5 दिन में चन्द्रमा पृथ्वी का एक चक्कर पूरा कर लेता है। इस अवधि को एक चंद्रमासमाना जाता है। एक चन्द्रमास में 4 या 5 दिन के दो पक्ष होते हैं–– शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष। इनका विभाजन पूर्णिमाऔर अमावस्याके द्वारा होता है। अमावस्या को पृथ्वी की छाया से चन्द्रमा पूर्णतः ढक जाता है और अदृश्य रहता है। इसके दूसरे दिन से चन्द्रमा का प्रकाशित भाग क्रमशः बढ़ता है और 5 दिन बाद पूर्णतः प्रकाशित होता है जिसे पूर्णिमा कहते हैं। अमावस्या के पश्चात् पूर्णिमा तक के 5 दिन की समयावधि को शुक्ल पक्ष कहा जाता है। पूर्णिमा के दूसरे दिन से चन्द्रमा का प्रकाशित भाग क्रमशः घटने लगता है और 5 दिन बाद चन्द्रमा पूर्णतः अदृश्य हो जाता है जिसे अमावस्या कहते हैं। पूर्णिमा के पश्चात् अमावस्या तक के 5 दिन की समयावधि को कृष्ण पक्ष कहा जाता है। एक पूर्णिमा से दूसरी पूर्णिमा तक की समयावधि को एक चन्द्रमास कहते हैं। 12 क्रमिक चन्द्रमास (354 दिन) का एक चान्द्रवर्ष होता है जो एक सौर्यवर्ष से लगभग 11–14 दिन छोटा होता है।

6. चंद्रग्रहण और सूर्यग्रहण –ईसा की चौथी शताब्दी में आर्यभट्ट, बाराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त जैसे महान खगोलवेत्ता हुए जो नक्षत्रों, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी आदि पिण्डों की चालों का नियमित वेध करते थे। तब से चन्द्र ग्रहण और सूर्य ग्रहण के वेध, गणनायें तथा भविष्यवाणियां की जाने लगीं जो यथार्थ के निकट होती थीं। चन्द्रग्रहण पूर्णिमा को और सूर्यग्रहण अमावस्या को होता है किन्तु यह प्रत्येक पूर्णिमा या अमावस्या को नहीं बल्कि कभी–कभी होता है। प्राचीन भारतीय विद्वान जानते थे कि चन्द्रमा का क्रांतिवृत्त तल पृथ्वी के क्रांतिवृत्त तल से 5°झुका हुआ है जिसके कारण ही ऐसा होता है।

जिस पूर्णिमा को सूर्य और चन्द्रमा के बीच पृथ्वी भी चन्द्रमा के क्रांतिवृत्त तल में आ जाता है, पृथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पड़ने से चन्द्रमा का कुछ या पूर्ण भाग अंधकारमय (अदृश्य) हो जाता है जिसे चन्द्रयहण कहते हैं। इसके विपरीत जिस अमावस्या को सूर्य और पृथ्वी के बीच चन्द्रमा भी पृथ्वी के समान क्रांतिवृत्त तल पर आ जाता है, चन्द्रमा द्वारा सूर्य का जितना भाग ढक लिये जाने के कारण पृथ्वी से नहीं दिखायी देता उसे सूर्य ग्रहण कहते हैं। दोनों ग्रहण दो प्रकार के होते हैं– खण्ड ग्रहण और पूर्ण ग्रहण।

अक्षांश और देशान्तर–

पृथ्वी की सतह पर भूमध्य रखा के सम्बन्ध में अवस्थित किसी बिन्दु की कोणीय दूरी को अक्षांश और प्रधान या मध्य देशान्तर के संदर्भ में किसी बिन्दुमें मापित दूरी को देशान्तर कहा जाता है। प्राचीन भारतीय ज्योतिषविदों ने पृथ्वी की सतह पर किसी बिन्दु या स्थान के निर्धारण में किसी अक्षांश या देशान्तर के महत्व से परिचित थे। अक्षांश के आधार पर पृथ्वी को विभिन्न प्रदेशों में विभाजित किया जिसमें विषुवती पेटी को निरक्ष (नरक) देश कहा जबकि 90° उ0आक्षांश को मेरु (उ० ध्रुव) कहा। लंका का विषुवत रेखा पर और उत्तरी ध्रुव पर मेरु पर्वत को बताया हैं। इसके ठीक प्रतिध्रुवस्थ पर दक्षिणी ध्रुव को बड़वानल के रूप में कहा है। उज्जैन के पास से लंका तथा मेरु पर्वत से गुजरने वाले देशान्तर को प्रधान देशान्तर कहा है। भारतीय खगोलवेत्ता गोलाकार पृथ्वी को 360 अंशों में विभाजित करते थे। एक अंश में 60 कला और एक कला में 60 विकला मानकर गणना की जाती थी। इस प्रकार वर्तमान में प्रचलित मिनट और सेकेण्ड के बराबर क्रमशः कला और विकला होती थी। भूमण्डल पर स्थानों की स्थिति को प्रदर्शित करने के लिए, अक्षांश और तूलांश (दिशांतर) की प्रयोग प्राचीन भारत में किया जाता था। कुछ प्रमुख स्थानों ओर नगरों की अक्षांशीय और देशांतरीय स्थिति को ज्ञात करके खगोलवेत्ता अपनी पुस्तकों में लिख दिया करते थे। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में खगोलज्ञ किसी स्थान के अक्षांश और देशांतर की गणना विधि को जानते थे। इसके लिए वे कुछ वेध यंत्रों का प्रयोग करते थे।

दिक् बिन्दु – ऋगवेद में ऋषियों ने चार दिशाओं का निर्धारण किया था जिनके नाम पूरब, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण कहा। इसमें ऊर्ध्व या मेरु और बड़वानलको जोड़कर बताया। इसके बाद पुराणों में आठ और दस

दिशाओं को बताया गया है जिससे प्रत्येक दिशा के स्वामी को देवता के रूप में नियंत्रक बताया गया है जो इस प्रकार है–

प्राचीन भारतीय भूगोल भूगोलविदो को इस तथ्य का ज्ञान था कि किसी स्थान का निश्चित समय आकाश में सूर्य या चंद्रमा स्थिति के अनुसार उन स्थानों से भी भिन्न होता है, जो अन्य देशांतरों परस्थित होते हैं और समय के अंतर को जानने हेतु गणना करने की विधि का भी पता लगाया था। कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं जैसे– सूर्य ग्रहण को विभिन्न स्थानों से निरीक्षण करने की कला में भी पारंगत थे। ग्रहण और आंशिक ग्रहण के सही समय स्थानीय समय के अनुसार किए थे। इन अभिलेखों की तुलना करके स्थानीय समय और किसी विशिष्ट स्थान के बीच देशांतरीय दूरी को भी ज्ञात किया जाता था।

1.8.2 भौतिक भूगोल का वर्णन–

भारत के प्राचीन ग्रंथों– वेदों, उपनिषदों, पुराणों, रामायण, महाभारत आदि में अनेक स्थानों पर भौतिक कि सम्बंधित विविध तथ्यों का वर्णन मिलता है। प्राचीन ग्रंथों में पर्वतों, में दानों, उपत्यकाओं, नदियों, वनों, मरुस्थलों, झीलों, झरनों, हिमनदों, ऋतुओं आदि के भौगोलिक वर्णन किये गये हैं। इससे प्राचीन विद्वानों की प्राकृतिक तत्वों के विषय में ज्ञान, दक्षता और अभिरुचि का पता चलता है।

(1) पौराणिक सप्तद्वीप–

विभिन्न पुराणों में सप्तद्वीप (सात भूखण्डों) का वर्णन किया गया है। प्रत्येक द्वीप या भूखण्ड किसी महाद्वीप या महाद्वीप के बृहत् खण्ड को व्यक्त करता है। ये सातों भूखण्ड (द्वीप) मेरु पर्वत के चारों ओर कमल के फूल की पंखुड़ियों के समान फेले हुए हैं। ये सप्तद्वीप हैं–1. जम्बूद्वीप , 2. प्लक्ष द्वीप, 3. शाल्मली द्वीप, 4. कुश द्वीप, 5. क्रौच द्वीप, 6. शाक द्वीप, और 7. पुष्कर द्वीप। उल्लेखनीय है कि इन भूखण्डों के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रों के सम्बंध में विद्वानों में काफी मतभेद पाया जाता है। इन द्वीपों का नामकरण उनसे सम्बद्ध प्रधान वृक्षों (जम्बू, प्लक्ष और शाल्मली), घास (कुश) और पर्वतों (क्रौंच और पुष्कर) के आधार पर किया गया है।

द्वीप– ये सप्तद्वीप हैं–1. जम्बूद्वीप , 2. प्लक्ष द्वीप, 3. शाल्मली द्वीप, 4. कुश द्वीप, 5. क्रौच द्वीप, 6. शाक द्वीप, और 7. पुष्कर द्वीप। मानव सभ्यता के प्रारम्भिक काल में यातायात तथा संचार साधनों का अभाव होते हुए भी यात्राओं, तीर्थयात्राओं और सैनिक अभियानों के दौरान विश्व के अज्ञात स्थानों को खोजने का प्रयास किया गया। पुराणों के अनुसार पृथ्वी के भूभाग को कई दट्वीपों में विभाजित किया गया था। द्वीप का तात्पर्य किस प्रकार के स्थल खण्ड से रूप से विश्लेषित नहीं किया गया है। आरम्भ में द्वीप का अभिप्राय ऐसे स्थल से था जो किसी प्रकार के जलखण्ड (महासागर, सागर, नदी या झील) द्वारा घिरा हो। इस प्रकार द्वीप का अर्थ कहीं समूह से है जैसा कि शाक द्वीप से स्पष्ट होता है, तो कहीं इसका प्रयोग प्रायद्वीप के लिए किया गया है जैसा कि कुश द्वीप या शाक द्वीप (मलेशिया, इन्डोनेशिया, आदि) के लिए लिखा गया है। शाल्मलि द्वीप का प्रयोग तटीय प्रदेश के लिए किया गया है। जम्बू द्वीप के भारतवर्ष तथा उत्तर कुरु वर्ष इतने वृहद् हैं कि वे स्वयं में एक द्वीप सदृश हैं। पुराणों में द्वीप पद के अर्थ को विस्तृत करते हुए बताया गया है कि द्वीप का तात्पर्य ऐसे स्थल से है जो सामान्य रूप में अगम्य या विलग होकर जल, रेत, दलदल अथवा किसी ऊँचे पर्वत या घने वनों से घिरा हुआ हो। इस प्रकार पुराणों के अनुसार द्वीप, संयोगवश या प्रयोजनवश किसी प्राकृतिक या जलवायविकी को दिग्दर्शित करता है। पुराण काल में विश्व को सात द्वीपों– जम्बू, कुश, प्लक्ष, पुष्कर, शाल्मलि, क्रौच और शाक में विभाजित किया है जिनके विवरण तालिका 1.1 में दिये गये हैं।

हिन्दी नाम	अंग्रेजी नाम	नियंत्रक देवता	हिन्दी नाम	अंग्रेजी नाम	नियंत्रक देवता
1. पूरब	East	इन्द्र	6. वायव्य	North West	मारुत
2. आग्यनेय	South East	अग्नि	7. उत्तर	North	कुबेर
3. दक्षिण	south	यम	8. ईसान	North East	ईश
4. नैऋत्त्य	south West	नृति	9. ऊर्ध्व	Zenith	ब्रम्हा

5. पक्षिम	West	वरुण	10. अधः	Nadir	शेषनाग

तालिका 1.1

पुराणों में वर्णित जम्बू द्वीप को सबसे प्रमुख और बृहत् द्वीप बताया गया है जो यूरेशिया भूखण्ड को समाहित करता है। जम्बू द्वीप के 9 उपखण्ड (वर्ष) बताये गये हैं––इलाव्रत वर्ष, केतुमाल वर्ष, भद्राश्व वर्ष, भारत वर्ष, किम्पुरुष वर्ष, हरि वर्ष, रम्यक वर्ष, हिरण्मय वर्ष और उत्तर कुरु वर्ष। ये वर्ष पर्वतश्रेणियों द्वारा एक दूसरे से पृथक हैं। जम्बू द्वीप के मध्य में पर्वतों में श्रेष्ठ मेरु (सूमेरु) है जिसे वर्तमान में पामीर के नाम से जाना जाता है। यहाँ से बड़ी–बड़ी पर्वत श्रृंखलाएं विभिन्न दिशाओं की ओर फैली हुई हैं।

मेरु से संलग्न उच्चवर्ती प्रदेश इलाव्रत और मेरु के पश्चिम में स्थित भूखण्ड केतुमाल वर्ष कहलाता है। मेरु के दक्षिण में भारत वर्ष, पूर्व में किम्पुरुष वर्ष (तिब्बत) और भद्राश्व वर्ष (मंगोलिया और चीन) तथा उत्तर में रम्यक वर्ष (मध्य एशिया), हिरण्मय वर्ष (उत्तरी सिनक्यांग) और उत्तर कुरु वर्ष (साइबेरिया) स्थित हैं।

1. जम्बू द्वीप–

इस द्वीप का नामकरण जम्बू पेड़ से लिया गया है। कुछ भारतीय मनीषियों के अनुसार इसका विस्तार लवण सागर के उत्तर सम्पूर्ण उत्तरी गोलार्द्ध में था। यह सभी द्वीपों के मध्य लवण सागर से घिरा हुआ था। इस द्वीप को कई उपविभागों विभक्त किया गया है जिन्हें वर्ष कहा जाता है। मध्यवर्ती भाग में इलावृत (पामीर प्रदेश) व तथा मेरु था जिसके पश्चिम में केतुमाला वर्ष और पूरब में भद्राश्व वर्ष पड़ता था। इलावृत वर्ष के दक्षिण भद्रास्व वर्ष तथा किमपुरुषा (तिब्बत पठार) था। सामान्य रूप में जम्बू द्वीप के उत्तरी तथा दक्षिणी किनारे का भाग नीचा तथा मध्य भाग ऊँचा था। इसके हृदय प्रदेश में मेरु था जो सम्भवतया आज का पामीर है। मेरु (पामीर गाँठ) के पूरब सिता नदी प्रवाहित होती थी जो आज के यारकन्द नदी से मिलती है। वर्तमान में चीन वालों ने इसे सिता कहा है। पामीर के पश्चिम सुवमक्यु प्रवाहित है जिसे मंगोलिया में बकसु , चीन में फोत्सु और तिव्बत में पाक्सु कहते हैं। यह नदी अरल सागर में गिरती है। उत्तर की भद्रा नदी आज की सर दरिया है जो उत्तर की ओर प्रवाहित होते हुए अरल सागर में गिरती है। पामीर के दक्षिण किशन गंगा है जो गंगावल झील और हरमुख ग्लेशियर (श्रीनगर से 70 किमी. उत्तर) से प्रवाहित होती है। जम्बू द्वीप में नौ वर्ष (प्रदेश) हैं जिनके साथ–साथ आठ सीमावर्ती पर्वत एवं मेरु पर्वत की गणना की गई है। इन सभी का विवेचन निम्न प्रकार है–1. भारतवर्ष 2. किम पुःष वर्ष 3. हरि वर्ष 4. मेरु 5. ईलावृत वर्ष 6. केतुमाला वर्ष 7. भाद्र वर्ष 8. रमायका, हिरण्यमाया तथा उत्तरीकुः वर्ष पौराणिक का आरेखिय प्रदर्शन (एस०एम० अली के अनुसार)

2. कुश द्वीप–

कुश द्वीप का नामकरण कुश नामक घास के आधार पर किया गया है। इसका विस्तार इराक, ईरान तथा उष्ण मरुस्थल के सीमान्त प्रदेशों अथवा मेरु के चारों ओर द० प०सिरे पर फैले भू–भाग पर पाया जाता था। यहाँ की विशेषताओं में कम तथा आकस्मिक वर्षा, झाड़ियाँ, लतायें तथा कटीली झाड़ियाँ जैसी वनस्पति तथा जलाभाव था। इस प्रकार स्पष्ट कि यह भाग शुष्क तथा अर्धशुष्क जलवायु प्रदेश थे। सम्भवतया कुछ हजार वर्ष पूर्व इस क्षेत्र शुष्क एवं शीतल जलवायु रही. होगी। यहाँ पर सात शासक, सात नदियाँ, सात पर्वत और चार मानव जातियों का वर्णन किया गया है। यहाँ के पर्वतों तथा शैलों में खनिजों तथा बहुमूल्य पत्थरों के भण्डार पाये जाते थे। यहाँ के लोग अग्निपूजक थे जो अपने देवता अग्नि की पुजा करते थे।

3. प्लक्ष द्वीप–

इसं द्वीप का नामकरण जम्बू द्वीप के फल जामुन की भाँति पाकड़ या प्लक्ष नामक फलदार वृक्ष के आधार पर किया गया है। विल्फोर्ड ने इस वृक्ष को अंजीर के रूप में पहचान किया है तथा द0 इटली के प्रागैतिहासिक प्लेसिया नगर तथा वहाँ के मानव समूह एवं अंजीर वृक्ष मिलने का वर्णन किया था। हेरोडोटस ने भी भूमध्य सागरीय प्रदेशों में पिलगसीजाति के मानव समूह एवं अंजीर वृक्ष मिलने का वर्णन किया था। इस प्रकार प्लेसिया तथा पिलग्सी, दोनों का सम्बन्ध एक ही प्रदेश से हो सकता है। इनका प्लक्ष से भी सम्बन्ध हो सकता है। अय्यर ने प्लक्ष को ही अंजीर कहा है। पुराणों के अनुसार यहाँ के निवासी बुद्धिमान, स्वस्थ, दीर्घजीवी एवं आकर्षक थे। इस प्रदेश में अनुकूल तथा स्वास्थ्यवर्धक जलवायु थी तथा प्राकृतिक उपवन अर्थात् वनस्पति सदैव हरी–भरी रहने वाली थी। इन विवरणों से स्पष्ट है कि इसे भूमध्यसागरीय प्रदेश कहा जा सकता है। चूँकि यह सुदूर स्थित देश

था जिसके कारण इसके बारे में सीमित ज्ञान मिलता है।

4. क्रोंच द्वीप –

पुराणों में इस द्वीप के बारे में कम वर्णन मिलता हैं। महाभारत में इसकी अवस्थिति मेरु (पामीर) के उत्तर–पश्चिम बताई गई है। इसके भीतरी भाग की ओर घृतोद तथा बाह्य भाग की ओर क्षीरोद सागर और सीमा पर क्रोंच पर्वत बताया गया हैं। पुराणों में इसे कुश, शाल्मलि तथा प्लक्ष के बाद रखा गया है। इस भाग का वर्णन पुराणों में कम मिलता है। यहाँ के क्रिंच पर्वत को छोड़कर नदियों तथा धरातल उच्चावच तथा जलवायु का वर्णन कम किया गया है। इन विवरणों के आधार पर अनुमान किया जांता है कि यह दुर्गम प्रदेश जम्बू के पश्चिम यूराल पर्वत के उत्तर पश्चिम रहा होगा जिसका विस्तार उ0पू0 यूरोप तक था। विलफोर्ड ने इसे उत्तरी यूरोप, अय्यर ने काकेशस तथा तुर्की का कुछ भाग, एस0एम0 अली ने यूराल के पश्चिम का भाग और गैरिनी ने उ0चीन बताया है। यहाँ भी बिना नाम के वर्णित सात पर्वतों, सात नदियों तथा चार जातियों का वर्णन किया गंया है किन्तु उनके लक्षणों, विशेषताओं तथा धार्मिक भावनाओं का वर्णन नहीं किया गया है।

5. शाल्मलि द्वीप –

इस द्वीप का नामकरण शाल्मलि वृक्ष या सेमर (वर्तमान सीसल) के आधार पर किया गया है। कदाचित् इन वृक्षों की बहुतायत रही होगी। हर एस0 एम0 अली ने इसे वर्तमान सीसल बताया है जिसकी पत्तियाँ तलवार जैसी मुलायम होते हैं। मत्स्य पुराण के अनुसार यहाँ की जलवायु वर्षपर्यन्त समान रहती है और आकाश सदैव आच्छादित रहता है किन्तु वर्षा सामयिक होती है। यहाँ सामान्य वर्षा तथा सात नदियों का वर्णन किया गया है। पुराण के अनुसार यहाँ छः ऋतुयें तथा सट्रस मिलता था। यहाँ के लोग अन्नोत्पादक न होकर आहार–संचयक थे जिन्हें वहाँ की वनस्पतियों से पर्याप्त मात्रा में आहार प्राप्त हो जाता था। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर अनुमान लगाया जाता है कि यह प्रदेश भारत के निकट मानसूनी जलवायु की विशेषताओं वाले थे जिनकी स्थिति पूर्वी अफ्रीका के तट के पास मलागासी तथा तंजानिया के पास थी। यहाँ पर सीसल (सेमर) के वृक्ष भी पर्याप्त पाये जाते है।

6. शाक द्वीप –

पद्म, वायु एवं विष्णु पुराण तथा महाभारत के अनुसार सप्त द्वीप व्यवस्था में शाक द्वीप की अवस्थिति मेरु के पूरब बतायी गयी है। देवी भागवत के अनुसार यहाँ पर शाक वृक्ष (साल एवं सागौन) बहुतायत से मिलते थे जिसके आधार पर इसका नामकरण शाक द्वीप किया गया। यह वृक्ष मानसून जलवायु में होता है। इस प्रकार यह प्रदेश भी भारत के आस–पास रहे हैं। इसे आर्द्र उष्ण कटिबन्धीय कहा जा सकता है। इस प्रदेश के सात पर्वतों–इशान उरुश्रंग, बालभद्र, शतकेशर, सहखस्रोत, देवपाल तथा महासव और सात नदियां–अनबा, अयुर्दा, उभगस्पृष्टि, अपराजिता, पंचनदी, सहस्रश्नुति तथा निजपूर्ति का वर्णन है। इसी के साथ सत्य, अनु, ऋतु तथा दान वाले चार वर्ण के मानव समुदाय का विवरण दिया गया है जे सूर्यपूजक थी। इसके चारों ओर समुद्र मिलता था। इन सभी विशेषताओं के आधार पर इस प्रदेश की अवस्थिति का अनुमान वर्तमान में भारत के पूरब आर्द्र मानसूनी प्रदेश, मध्य एवं दक्षिणी म्यांमार, मलेशिया, थाइलैण्ड, कम्बोज, लांओस, वियतनाम और अन्य निकटवर्ती देश तथा द्वीप हो सकते हैं। कुछ विद्वानों जैसे अय्यर ने शाक द्वीप की स्थिति सीधिया प्रदेश के पास बताय जो वर्तमान द0 यूक्रेन है। कुछ लोग कहते हैं कि भारत पर आक्रमण करने वाले शकों का मूल निवास रहा होगा किन्तु भारत में शाक द्वीप का प्रयोग महाभारत काल से पूर्व से ही हो रहा था अतः इस प्रदेश का सम्बन्ध शकों से जोड़ना उपयुक्त प्रतीत नहीं हो रहा है। जम्बू द्वीप के पास की स्थिति ठीक प्रतीत होती है जिसके आधार पर प्रोफेसर अली की व्याख्या ही अधिक व्यवहारिक तथा स्पष्ट प्रतीत होती है।

7. पुष्कर द्वीप–

पुष्कर द्वीप का वर्णन पुराणों, महाभारत, उत्तर वैंदिककालीन ग्रंथों तथा जैन ग्रंथों में दिया गया है। इनके अनुसार इसकी अवस्थिति जम्बू द्वीप के पूरब है। कदाचित् इस द्वीप का नामकरण कमल की झीलों से घिरा होने के कारण हुआ है। इस प्रकार अपने चारों ओर गोलाकार रूप में झीलों से घिरा हुआ था जिनमें कमल के फूलों की बहुतायत थी। इस द्वीप को दो वर्षों (प्रदेशों) में विभक्त किया गया था जिनके बीच में मानसरोवर पर्वत था। यह उत्तर–दक्षिण दिशा में अर्धचन्द्राकार रूप में फैला हुआ था। मत्स्य पुराण के अनुसार इसका पूर्वी भाग देवरमण तुल्य तथा शुद्धोद या मीठे जल से युक्त था जहाँ वर्षपर्यन्त सम तथा सुहावनी जलवायु मिलती थी तथा कृषि योग्य

भूमि पायी जाती थी। इसके विपरीत दूसरा आन्तरिक भाग कठोर एवं मरुस्थली जलवायु का है। इस द्वीप के. अन्तर्गत वीभत्स, अपवित्र, निर्दयी तथा आत्मविहीन लोग मिलते थे। यहाँ के निवासी खानाबदोश, शिकारी तथा आदम जनजाति से थे। इस द्वीप में एक दिशा मे स्वर्ग जैसा दृश्य और दूसरी ओर विपरीत दिशा में वीरान भूभाग मिलता था। इन दोनों प्रदेशों के बीच तीक्ष्ण विषमतायें कोई असाधारण घटना नहीं है। इसके चारों ओर ताजे जल के महासागर मिलते थे। वर्तमान में इस प्रदेश को स्कैण्डिनेविया के नारें, स्वीडन, फिनलैण्ड, डेनमार्क तथा यूरोपीय रूस कहा जाता है जहाँ असंख्य झीलें तथा शिकार पर आधारित खानाबंदोश मिलते थे और इसके एक ओर ताजे जल वाला आर्कटिक महासागर और दूसरी ओर लवणयुक्त बोरिंग सागर था। प्राचीन ग्रंथों की उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर अनुमान लगाया जाता है कि इसका विस्तार उ0प0 चीन, मंचूरिया (कोरिया सहित) तथा द0 जापान हो सकता है। गैरिनी तथा अली ने इस द्वीप की स्थिति उ0 चीन तथा द0 जापान बताया है जबकि विल्फोर्ड ने उत्तरी आइसलैण्ड के निकट बताया है। प्रोफेसर अली के अनुसार दोनों भागों को अलग करने वाला मानसरोवर पर्वत को खिंगन तथा सिखोत एलिन पर्वत होना चाहिए। इस पर्वत क्रम के पूर्वी भाग क्यूरोसियो धारा के उष्ण प्रभाव से आकर्षण जलवायु के क्षेत्र होते हैं।

(2) पर्वत–

ऋग्वेद में वर्णित भूखण्ड का विस्तार पश्चिम में वर्तमान अफगानिस्तान से लेकर पूर्व में गंगा–यमुना तक और उत्तर में मेरु (पामीर) से लेकर दक्षिण में कच्छ तक था। इसमें शरण्यावत (कश्मीर), सुसोमा (झेलम नदी के पश्चिम), मुजवत (गांधार) तथा सुलेमान एवं लवणश्रेणी (अफगानिस्तान) पर्वत श्रेणियों का उल्लेख मिलता है। पुराणों में सम्पूर्ण जम्बू द्वीप के पर्वतों का विवरण दिया गया है और पर्वतों को कई वर्गों में विभाजित किया गया है जो इस प्रकार हैं––

1. विषकम्भ पर्वत– मेरु के चारों ओर स्थित पर्वत।
2. वर्ष पर्वत– अधिक विस्तार (परिमंडल) वाले पर्वत जैसे हिमालय, हेमकूट आदि।
3. केशराचल पर्वत– अंतमहाद्वीपीय पर्वत जैसे त्रिकूट।
4. कुल पर्वत– ये पर्वतसमूह के सोतक होते हैं।
5. मर्यादा पर्वत – देश की सीमा पर स्थित पर्वत जैसे कैलाश पर्वत।
6. षुद्र पर्वत– इसके अन्तर्गत लघु पहाड़ियाँ सम्मिलित हैं।

पुराणों में वर्णित प्रमुख पर्वतों का विवरण निम्नवत् हैं––

1. मेरु पर्वत– विष्णु पुराण में कहा गया है कि जम्बू द्वीप सभी द्वीपों के केन्द्र में स्थित है और उसके मध्य में स्वर्णिम आभायुक्त मेरु पर्वत स्थित है जिसकी आकृति कमल के समान है।
2. हिमवान –यह हिमालय का प्राचीन नाम है जिसे कालिदास ने हिमालय कहा है।
3. माल्यावन – मेरु पर्वत के पश्चिम में स्थित इस पर्वत को विष्णु पुराण में माल्यावन और वायु! पुराण में हंस पर्वत कहा गया है।
4. निषाद– हिन्दूकुश पर्वत का पौराणिक नाम निषाद है जिसके तीन प्रमुख शिखर थे और उन पर ..' ब्रह्मा, विष्णु और शिव निवास करते थे।
5. गंधमादन– यह मेरु पर्वत की एक श्रेणी है जिसे भागवत् पुराण में "मेरुमदार कहा गया है। 6. हेमकूट––वर्तमान कैलाश पर्वत का पौराणिक नाम हेमकूट है।
6. नील पर्वत– दक्षिण भारत में स्थित इस पर्वत है नामों से इस पर्वत को नीलगिरि, मलयागिरि, मलयाचल आदि नामो से जाना जाता है।

(3.) नदियाँ–

ऋग्वेद के 10वें मंडल के 75वें सुक्त को "नदी सूक्त" कहते हैं जिसके सभी मंत्रों में नदियों के वर्णन किये गये हैं। अन्य वेदों, उपनिषदों तथा आरण्यक ग्रंथों में भी अनेक नदियों का वर्णन मिलते हैंऋग्वेद के नदी सूक्त के पांचवें मंत्र का अर्थ है––"गंगा, यमुना, सरस्वती, सतलज, पुरुष्णी, (रावी), अस्किन (चिनाब), मरुदुवृधा, वितस्ता

(झेलम), आर्जीकीया (व्यास) आदि नदियाँ उत्तम सोम से सम्बद्ध हैं। वेदों में आर्य लोगों के निवास प्रदेश को सप्त सैन्थव (सात नदियों का देश) कहा गया है। इसके अन्तर्गत सिन्धु और उसकी 7 सहायक नदियाँ सम्मिलित हैं। उस समय सिन्धु की सहायक नदियाँ थीं––सतलज, व्यास, रावी, चिनाब, झेलम, दृशद्वती (घग्धर), सरस्वती। अंतिम दोनों नदियाँ बाद के युगों में सूख गयीं और अदृश्य हो गयीं। वेदों के पश्चात् लिखे गये उपनिषदों और पुराणों में सम्पूर्ण भारत की नदियों के वर्णन मिलते हैं। इन ग्रंथों में उत्तरी भारत की सिन्धु, सतलज, रावी, चिनाब, व्यास, झेलम, गंगा, यमुना, सरयू, गंडक, कोसी, लोहित (ब्रहमपुत्र), सोन, चम्बल आदि और दक्षिणी भारत की महानदी, नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी कृष्णा, तुंगभद्रा, कावेरी आदि नदियों की विशेषताओं तथा उनके जलपग्रहण क्षेत्रों के वर्णन किये गये हैं।

(4.) ऋतु और जलवायु–

ऋग्वेद में पाँच ऋतुओं का ही उल्लेख है किन्तु अन्य वेदों, उपनिषदों , रामायण, महाभारत, पुराणों तथा अन्य प्राचीन ग्रंथों में 6 ऋतुओं के वर्णन मिलते हैं। ये 6 ऋतुएं हैं—ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर और बसन्त। इन ग्रंथों में प्रत्येक ऋतु की वायुमंडलीय दशाओं तथा वनस्पतियों, कृषि तथा मानव जीवन पर पड़ने वाले उनके प्रभावों का विस्तार से वर्णन किया गया है। पुराणों विशेषतः वायु पुराण, शिव पुराण, स्कंद पुराण और भागवत् पुराण में धूप और वर्षा की मात्रा, मेघों के प्रकार, ग्रीष्पकालीन शुष्कता, वर्षा कालीन वर्षा और तूफान, शीतकालीन हिमपात एवं तुषारपात और शरद तथा बसन्त ऋतु के सुहावने मौसमों का विस्तृत वर्णन किया गया है। बसंत ऋतु को ऋतुराज कहा गया है।

महाकवि कालिदास ने अपनी प्रसिद्ध रचना "मेघदूत में वर्षा ऋतु के आगमन के कारण, मेघों के दस प्रकारों एवं उनकी विशेषताओं तथा वर्षा की मात्रा आदि का वर्णन किया है। उन्होंने "खुबंश नामक ग्रंथ में भी अनेक स्थानों पर ऋतुओं का मनोहारी वर्णन किया है। बारहवीं शताब्दी में भाष्कराचार्य ने अपने ज्योतिष ग्रंथ "सिद्धान्त शिरोमणि" में वायुमंडल की परतों की गणितीय माप दी थी।

1.8.3 मानव भूगोल के वर्णन–वेद, रामायण, महाभारत, उपनिषद्, पुराण आदि प्राचीन ग्रंथों में मानव भूगोल के विभिन्न तथ्यों जैसे जनसंख्या का वितरण, मानव–पर्यावरण सम्बंध, कृषि, उद्योग, व्यापार एवं वाणिज्य, अधिवास (ग्राम, राजनीतिक प्रदेशों आदि से सम्बंधित भौगोलिक वर्णन मिलते हैं। इनका संक्षिप्त विवरण निम्नांकित है।

ग्रामीण एवं नगरीय अधिवासईसा से लगभग 3000 वर्ष पूर्व पश्चिमोत्तर भारत में स्थित सिन्यु घाटी में विश्व की एवं की प्रांचीनतम सभ्यता का विकास हुआ था। सिन्धु घाटी और समीपवर्ती क्षेत्रों में स्थित मोहनजोदड़ो , हड़प्पा , उमरी, कालीबंगा, नाल, लोथल आंदि अनेक स्थानों पर खुदाई करने से सैन्थव सभ्यता के प्राचीन अवशेष प्राप्त हुए हैं। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में सुनियोजित ढंग से बसाये गये नगर के भग्नावशेष मिले हैं जिसके आधार पर तत्कालीन सभ्यता को नगरीय सभ्यता कहा जाता हैं। मोहनजोदड़ो की मुख्य सड़क 10 मी. चौड़ी थी जबकि अन्य सड़कों की चौडाई 2.5 से 3 मीटर और गलियों की चौड़ाई 1–.5 मीटर होती थी। सड़कें सीधी दिशा में एक दूसरे को समकोण पर काटती हुई नगर को अनेक वर्गाकार या आयताकार खण्डों में विभाजित करती थीं। गंदे जल के निकास के लिए सड़क तथा गलियों के दोनों ओर पक्की नालियां बनायी गयी थीं। कि हड़प्पा नगर मोहनजोदड़ो से अधिक विस्तृत था। यह लगभग 4.5 किमी० की परिधि में स्थित थां। नगर की सड़कों का विन्यास मोहनजोदड़ो के ही समान था। नगर के भवन पक्की ईटों से बनाये जाते थे। प्रत्येक भवन में स्नानागार तथा कुआँ होने के प्रमाण मिले हैं। नगर के भवन, नालियाँ तथा स्नानागार भली प्रकार पकायी गयी ईटों से बनाये जाते थे। इस प्रकार स्पष्ट है कि नगर नियोजन की विकसित कला सैन्धव सभ्यता की एक उत्कृष्ट विशेषता थी। मोहनजोदड़ो में एक विशाल स्नानागार मिला है जिसकी दीवाल और फर्श पक्की ईंटों से निर्मित है जिसकी लम्बाई लगभग 12 मीटर, चौड़ाई 7 मीटर और गहराई 2.5 मीटर है।

रामायण, महाभारत, बौद्ध ग्रंथों, जैन ग्रंथों, पाणिनि के 'अष्टाध्यायी', कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' और पंतजलि के 'महाभाष्य' में प्राचीन भारत के ग्रामों और नगरों के वर्णन मिलते हैं। कृषि की प्रधानता के कारण प्राचीन भारत में ग्रामों की ही प्रधानता थी। पतंजलि के महाभाष्य में आकार के आधार पर ग्रामीण बस्तियों को कई क्रमिक वर्गों में विभक्त किया गया है–

1. पल्लि (पुरवा), 2. घोष (लघु ग्राम), 3. ग्राम, 4. वाहीक या उदीच्य ग्राम (बृहत् ग्राम), 5. पुरी (लघुनगर), और 6. नगर। महाभाष्य में मथुरा, तक्षशिला, हस्तिनापुर, शाकाय, कौसाम्बी, साकेत, पाटलिपुत्र, अहिछत्र आदि नगरों का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार बौद्ध ग्रंथों में तक्षशिला, पाटलिपुत्र, पुरुषपुर, उज्जैयिनी, काशी, कन्नौज, नालन्दा,

मैसूर आदि नगरों के विषय में विस्तृत विवेचन किया गया है। प्राचीन भारत के प्रमुख नगर निम्नांकित हैं–

1. तक्षशिला––चौथी शताब्दी ई० पू० में पश्चिमोत्तर भारत में (पाकिस्तान में रावलपिण्डी के समीप) स्थित यह नगर शिक्षा का बड़ा केन्द्र (विश्वविद्यालय नगर) था। यह गांधार महाजनपद की राजधानी भी था।
2. हस्तिनापुर––पश्चिमी उत्तर प्रदेश में स्थित यह पौराणिक नगर कौरवों की राजधानी था।
3. इन्द्रप्रस्थ––वर्तमान दिल्ली के दक्षिण स्थित खाण्डवप्रस्थ के स्थान पर पांडवों द्वारा बसाया गया यह नगर पांडवों की राजधानी था।
4. पुरुषपुर (पेशावर)––ईसा पश्चात् दूसरी शताब्दी में यह कनिष्क की राजधानी था।
5. कपिलवस्तु––उत्तर प्रदेश के सिद्धार्थनगर जनपद में स्थित इस नगर के निकट लुम्बिनी नामक स्थान पर छठीं शताब्दी ई०–पू० में गौतम बुद्ध का जन्म हुआ था। कपिलवस्तु शाक्यों की राजधानी थी।
6. श्रावस्ती––छठीं शताब्दी ई० पू० में उत्तर प्रदेश के गोंडा जनपद में स्थित यह नगर एक प्रमुख व्यापारिक केन्द्र था। महाजनपद युग में यह कोशल की राजधानी था।
7. अयोध्या ––रामायण कालीन यह नगर भगवान श्रीराम का जन्म स्थान और रघुवंशीय राजाओं की राजधानी था।
8. कौशाम्बी––छठीं शताब्दी के 6 प्रमुख नगरों में से एक यह नगर प्रयाग के समीप और यमुना नदी के बायें किनारें पर स्थित एक बड़ा नगर था।
9. पाटलिपुत्र–वर्तमान बिहार में गंगा नदी के बायें किनारे पर स्थित यह नगर मगध साम्राज्य के शासकों (नन्द वंश और मीर्य वंश के शासकों) की राजधानी था।
10. काशी–उयह छठीं शताब्दी में 6 महाजनपदों में से एक था। यह वाराणसी के निकट गंगा नदी के दायें तट पर बसा था।
11. नालंदा –मंगध साम्राज्य में स्थित यह नगर एक प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र था जहाँ नालन्दाविश्वविद्यालय और एक बौद्ध बिहार था।
12. कान्यकुब्ज(कन्नौज)–उत्तर प्रदेश में फतेहगढ़ और कानपुर नगरों के मध्य स्थित कन्नौज का प्राचीन नाम कान्यकुब्ज था। सातवीं शताब्दी में यह हर्षवर्धन की राजधानी था।
13. कांचीपुरम (कांजीवरम)––यह तमिलनाडु के चिंगलेपुट जनपद में पालार नदी तट पर स्थित है। आदि शंकराचार्य ने एक पीठ की स्थापना की थीं। यह हिन्दुओं के सात पवित्रतम स्थलों में से एक है।
14. उजैयिनी (उज्जैन) ––मंध्य प्रदेश में क्षिप्रा नदी के तट पर स्थित यह एक जनपदीय नगर है। मौर्यकाल में यह अंवन्ति प्रान्त की राजधानी था। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने भी इसे अपनी राजधानी होने को गौरव प्रदान किया था।
15. गया––यह नगर बिहार में गंगा की सहायक फल्गु या निरनजना नदी के तट पर स्थित है जहाँ विष्णुपद मंदिर है। यहाँ हिन्दू पितरों को पिण्डदान करने जाते हैं।
16. प्रयाग––उत्तर प्रदेश में गंगा और यमुना नदियों के संगम पर स्थित प्रसिद्ध धार्मिक–सांस्कृतिक नगर था। अकबर ने यहाँ एक किले का निर्माण कराया और इसका नामकरण 'इलाहाबाद' के रूप में किया।
17. मथुरा––पश्चिमी उत्तर प्रदेश में यमुना नदी के किनारे स्थित यह एक प्रसिद्ध धार्मिक स्थल है जहाँ भगवान श्री कृष्ण का जन्म हुआ था।
18. मदुरा––तमिलनाडु में स्थित यह प्राचीन नगर पांड्य शासकों की राजधानी था। यहाँ प्रसिद्ध मीनाक्षी मंदिर है।
19. सांची––मध्य प्रदेश में स्थित यह प्राचीन नगर अशोक के समय बौद्ध धर्म का प्रमुख केन्द्र था। यह बौद्ध स्तूपों के लिए प्रसिद्ध है।
20. मोहनजोदड़ो––यह सैन्धव सभ्यता का सबसे विशाल और प्रमुख नगर था। यह पाकिस्तान के सिन्ध प्रांत में

सिन्धु नदी के तट पर स्थित था। खुदाई से यहाँ सिन्धु सभ्यता कालीन एक नियोजित नगर का भग्नावशेष प्राप्त हुआ है।

21. हड़प्पा––पाकिस्तान के पंजाब प्रान्त में रावी नदी के तट पर स्थित यह नगर सैन्धव सभ्यता का एक विकसित नगर था।

22. लोथल––गुजरात में खम्भात की खाड़ी के ऊपर स्थित यह प्रागैतिहासिक नगर सैन्धव सभ्यता के विकसित अवस्था का एक व्यापारिक नगर था।

23. कुशीनगर––उत्तर प्रदेश के देवरिया जनपद में स्थित बौद्ध कालीन इस स्थल पर गौतम बुद्ध का जन्म हुआ था। यहाँ मौर्य काल और गुप्त काल में अनेक स्तूपों और विहारों का निर्माण हुआ था।

24. थानेश्वर––हरियाणा के करनाल जनपद में स्थित यह नगर गुप्तकाल में एक सम्पन्न नगर था।

25. खण्डगिरि––उड़ीसा में भुवनेश्वर के समीप ऊँची पहाड़ियों पर स्थित एक प्राचीन नगर हैं जहाँ प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में निर्मित अनेक गुफाएं. हैं जो जैन धर्म से सम्बंधित हैं।

(2) कृषि–

वैदिक काल से लेकर आज तक कृषि भारतवासियों का प्रमुख व्यवसाय रहा है। यहाँ कृषि के साथ–साथ पशुपालन भी किया जाता रहा है। वन वृक्षों को काटकर और भूमि को साफ करके कृषि भूमि प्राप्त की जाती थी। पाणिनि (अष्टाध्यायी) और पतंजलि (महाभाष्य) के ग्रंथों में भूमि उपयोग का वर्गीकरण किया गया है जो इस प्रकार है––. केदार (जलमग्न भूमि), 2. ऊसर (कृषि के लिए अनुपयुक्त भूमि), 3. गोचर (पशुचारण भूमि), 4. शीत्य (जोती गयी भूमि)। उस काल में उत्पादित फसलों के नाम पर ही भूमि का नामकरण किया जाता था, यथा . यव्यम् (जौ की भूमि), 2. माध्यम् (दालों की भूमि), 3. तिल्वम् (तिलहन की भूमि)। फसलों की सिंचाई नदियों से छोटी–छोटी नहरें निकालकर, कुओं से जल निकालकर अथवा तालाबों के जल से की जाती थी। अधर्ववेद के अनुसार खेतों में फसलों के रद्लार्थ अपनृर्णों (खरपतवारों) की निराई , खेटों की गुड़ाड़ और हानिकारक कीट–पतंगों से वचाव के उपाय किये जाते थे। पतंजलि के मदाधाप्य के अनुसार वन्या जन्तुओं, पक्षियों, टिड्डियों आदि से फसलों की रक्षा की जाती श्री और फसलों की मडाई के पश्चात् अन्न को सुरक्षित अन्नागारों में रखा जाता श्रा। भारत में उत्पादित फसलों में ज्ञालि (धान), गेंद, जौ, तिल, राई (सरसों), चना, मटर, उडद, इस (ईख), कपास, सन आदि प्रमुख थीं।

(3) पशुपालन–

भारत में प्राचीन काल विशेषतः वैदिक काल में पशुपालन एक प्रमुख व्यवसाय के में विकसित घा। दूघ देने वाले पशुओं में गायें और भैंसें प्रमुख थीं। गाय को पवित्र पशु माना जाता था। घोड़ा, ऊँट और हाथी का प्रयोग सवारी करने और भार (सामान) ढोने में किया जाता था। वैलों और भैसों क्या उपयोग कृषि कार्यों में किया जाता था। प्राचीन काल में पशुओं की नस्लों के सुधार के लिए उपाय किंचित जाते थे। प्राचीन काल में भारतवासी पशुपालन को महत्वपूर्ण मानते थे।

(4) उद्योग–घन्धे–

प्राचीन काल में भारत में अनेक प्रकार के उद्योग–धन्धे विकसित थे। उद्योग धन्धे प्रायः कुटीर (घरेलू) प्रकार के होते थे किन्तु उनकी गुणवत्ता पर विशेष ध्यान दिया जाता था। प्राचीन भारत यें धातुओ द्वारा औजार, यंत्र, वर्तन, आभूषण वनाये जाते थे और कई प्रकार के शिल्प उद्योग विकसित थे जिनयें काष्ठ शिल्प, धातुओ मृत्तिका शिल्प, वस्त्र शिल्प आदिं प्रमुख थे। ऋग्वेद में रथ वनाने वाले काष्ठ शिल्प (बढ़ई), लोहे के उपकरण वनाने वाले लौहकारों (लोहारों), वुनकरों आदि के प्रसंग कई स्थानों पर आये हैं। उस समय कई प्रकार के परिधान (वस्त्र) बनाये जाते थे जिनमें सूती वस्त्र, रेशमी वस्त्र और ऊनी वस्त्र प्रमुख थे। वैदिक काल से लेकर पौराणिक काल तक के विभिन्न ग्रंथों में धातुओं को गलाकर उनसे औजार, रथ की धुरी, बर्तन, आभूषण, सिक्के आदि बनाने के उद्योगों के वर्णन मिलते हैं।

बौद्ध काल से लेकर गुप्तकाल तक भारत में धातुउद्योग ने पर्याप्त प्रगति कर ली थी। धातु उद्योग में भारतीय कारीगर अत्यंत दक्ष थे। दिल्ली में कुतुवमीनार के प्रांगण में स्थित लौह स्तम्भ गुप्तकाल में स्थापित किया

गया था। लगभग 1600 वर्ष पुराने इस लौह स्तंभ में अभी तक जंग नहीं लगा है। यह तत्कालीन लौहकारों की उत्कृष्ट दक्षता का प्रतीक है। इस लौह स्तंभ का आकार भी इतना बडा है कि ऐसे स्तंभ वर्तमान लौह कारखानों में भी सुगमतापूर्वक नहीं बनाये जा सकते।

5. व्यापार और वाणिज्य–

ऋग्वेद और अथर्ववेद में पशु, वस्त्र, मोती आदि वस्तुओं के व्यापार के वर्णन मिलते हैं। उत्तरवैदिककाल में विनिमय के लिए सिक्कों (निष्क) का प्रयोग होता था। जातक ग्रंथों में बौद्धकालीन भौगोलिक वर्णन मिलते हैं। उस समय भारत के व्यापारी एक प्रदेश से अन्य प्रदेश को व्यापार करते थे व्यापारियोंका समूह काशी से रेशमी वस्त्र लेकर गुजरात (भड़ौच) और महाराष्ट्र (सूरत) के समुद्र तट तक जाते थे। वे वहाँ से बावेः (बेबीलोन) तक व्यापार करते थे। पतंजलि के महाभाष्य में व्यापारिक वस्तुओं के विषय में वर्णन मिलता है। व्यापारिक वस्तुओं में भोज्य पदार्थ (अन्न आदि), रेशम, ऊन, कपास, सूती, ऊनी एवं रेशमी वस्त्र, सन, भांग, मृगचर्म, कृषि उपकरण आदि मुख्य रूप से सम्मिलित होते थे। गायों –बैलों, घोड़ों, बैल गाड़ियों, रथों, नावों आदि का भी क्रय–विक्रय किया जाता था। कौटिल्य के "अर्थशास्त्र से विदित होता है कि ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में भारत में समुद्री व्यापार भी प्रचलित था। मौर्यकाल से लेकर गुप्ततात तक भारतीय व्यापारी भारत के पश्चिमी समुद्रपत्तनों भड़ौच, सोपारा, कल्याण, कालीकट, कोचीन – आदि से बड़ी –बड़ी नावों द्वारा पश्चिम के देशों मिश्र, यूनान, रोम आदि से व्यापारिक वस्तुओं का आदान–प्रदान करते थे।

कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' में चौथी शताब्दी ईसा पूर्व (मौर्य कालीन) भारत की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक दशाओं का वर्णन किया है। इस समय उत्तरी भारत से रेशमी वस्त्र, ऊनी कम्बल, चमड़ा आदि वस्तुएं दक्षिण भारत को जाती थीं और वहाँ से सोना, मोती, शंख, माणिक आदि कीमती वस्तुएं प्राप्त होती थी। अनेक स्थान और प्रदेश विशिष्ट वस्तुओं के लिए प्रसिद्ध थे जैसे हीरा के लिए कलिंग विदर्भ, कोशल, कश्मीर आदि मोतीके लिए श्रीलंका, केरल आदिय सूती वस्त्र के लिए काशी, मथुरा, कोंकण आदि, मलमल के लिए बंग (बंगाल) और रेशमी वस्त्र के लिए चीन प्राचीन भ्रारत में विनिमय के लिए सोने, चाँदी और ताँबे के सिक्कों का प्रयोग होता था। सोने के सके वयो युवर्ण और 'निष्क' तथा ताँबे के सिक्के को 'कट्टापण' या 'कार्षापण' कहा जाता था, इसके अतिरिक्त कंस, पाद, माष, काकणि नामक लघु सिक्के भी प्रचलन में थे।

(6) भारत के विदेशी सम्बंध –

प्राचीन भारत का व्यापारिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक सम्बंध मेसोपोटामिया , मिस्र, युनान, रोम, हिंन्दचीन, पूर्वी द्वीप समूह, स्याम (वर्मा), श्रीलंका, मध्य एशिया, चीन आदि अनेक प्रदेश से था। मत्स्य पुराण में भारत के नौ भेदों (उपनिवेशों) का उल्लेख है जो समुद्र द्वारा एक–दूसरे से अलग थे और भारत उनका केन्द्र था। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी से लेकर ईसा पश्चात् पाँचवी शताब्दी तक श्मार्त का विदेशी व्यापार मिस्र, यूनान और रोम से होने की चर्चा जैन और बौद्ध ग्रंथों में मिलती है। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में बौद्ध धर्म का प्रचार मध्य एशिया में हो गया था जहाँ से वह चीन पहुँच गया। धर्म–शिक्षा के लिए कई चीनी यात्री भारत आये जो कई वर्षों तक यहाँ रहकर विद्याध्ययन किया। उनमें फाहयान (399 ई०) , सुंगयुन (518 ई०) और हवेनसांग (629 ई०) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

मौर्यकाल से लेकर हर्षवर्द्धन काल (ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी से ईसा पश्चात् सातवीं शताव्दी) तक तिव्वत, मंगोलिया, चीन, जापान, कोरिया, हिन्देशिया, हिन्दचीन, ब्रहमा (बर्मा), श्रीलंका आदि देशो से भारत के व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्बंध स्थापित थे। इन प्रदेशों में अनेक स्थानों पर भारतीयों ने अपने उपनिवेश भी स्थापित कर लिये थे। इस प्रकार विदित होता है कि प्राचीन भारत का अन्तर्राष्ट्रीरय सम्बंध काफी व्यापक था।

(7) राजनीतिक प्रदेश –

भारतीय प्राचीन ग्रंथों रामायण, महाभारत, उपनिषदों , महाभाष्य, अर्थशास्त्र आदि में भारत विभिन्न जनपदों के वर्णन मिलते हैं जनपद एक राजनीतिक प्रदेश होता था जिसमें किसी राजा की सत्ता होती थी अथवाकोई जनतंत्र राज्य होता था। कहीं–कहीं किसी नगर और उसके समीपवर्ती भू–क्षेत्र कोमिलाकर एक जनपद होता था। विस्तृत

भूक्षेत्र वाले जनपद को महाजनपद कहा जाता था।उपनिषदों में उत्तरी भारत के दस राजनीतिक प्रदेशों या जनपदों के विवरण मिलते हैं जो इस प्रकार हैं–

1. गांधार– सिन्धु नदी के दोनों ओर स्थित भूभाग।
2. केकय – गांधार के दक्षिण–पूर्व में स्थित भूभाग जिसका विस्तार व्यास नदी तक था।
3. मद्र – रावी नदी के उत्तर और पश्चिम का भूभाग।
4. कुशीनर – हरिद्वार (उत्तरांचल) का समीपवर्ती क्षेत्र।
5. मत्स्थ – उत्तरी पूर्वी राजस्थान।
6. कुरु– वर्तमान दिल्ली का समीपवर्ती क्षेत्र।
7. पांचाल – पश्चिमी उत्तर प्रदेश का :हेलखण्ड क्षेत्र।
8. काशी – वर्तमान वाराणसी का समीपवर्ती क्षेत्र।
9. कोशल – वर्तमान अवध जिसकी प्राचीन राजधानी अयोध्या थी।
10. विदेह – कोशल के पूर्व का भूक्षेत्र जिसकी राजधानी जनकपुर थी।

छठीं शताब्दी ईसा पूर्व के आरंभ में सम्पूर्ण उत्तरी भारत अनेक स्वतंत्र राज्यों में विभक्त था। इस काल की राजनीतिक स्थिति का प्रामाणिक विवरण किसी भी साहित्यिक साक्ष्य से प्राप्त नहीं होता है किन्तु बौद्ध ग्रंथ "अंगुत्तर निकाय से विदित होता है कि बौद्ध काल में समस्त उत्तरी भारत 16 बड़े–बड़े राज्यों में विभाजित था जिन्हें सोलह महाजनपद (षोड्श महाजनपद) कहा गया है। छठीं शताब्दी ईसा पूर्व के 16 महाजनपद और उनकी राजधानियों का विवरण निम्नांकित है –

क्रम.सं.	**महाजनपद**	**राजधानी**
1.	अंग	चम्पा
2	.मगध	राजगृह (गिरिव्रज)
3.	काशी	वाराणसी
4.	कोशल	श्रावस्ती
5.	वज्जि	वैशाली
6.	मल्ल	कुशीनगर
7.	चेदि	शक्तिमती
8.	वत्स	कौशांबी
9.	कुरु	इंद्रप्रस्थ
10.	पांचाल (1) अहिच्त्र	(उत्तरी पांचाल)
	(2) कपिल्य	(दक्षिणी पांचाल)
11.	मत्स्य वैराट	
12.	शूरसेन मथुरा	
13.	अश्मक प्रतिष्ठान (पैठन)	
14.	अवन्ति	
	(1) उज्जयिनी	(उत्तरी अवन्ति)
	(2) महिष्मती	(दक्षिणी अवन्ति)

15.	गांधार	तक्षशिला
16.	कम्बोज	राजपुर (हाटक)

छठीं शताब्दी के उत्तरारद्ध तक पारस्परिक प्रतिद्वंदिता और संघर्ष के जनपरों शज्दों मे परिणामस्वरूप छोटे जनपदों का विलय बडे राज्यों में हो गया और इस. प्रकार चार बडे राजतंत्र अधिक शक्तिशाली राज्य थे – (1) कोशल, (2) वत्स, (3) अवन्ति, और (4) मगध।

1.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन में प्राचीन काल में भारत में भूगोल ,प्रभाव एवं अवधारणाओं की विस्तृत व्याख्या की गई है जिसमें पृथ्वी और विश्व के संबंध में मानव जिज्ञासा, प्राचीन काल में भौगोलिक ज्ञान के मुख्य प्रदेश, प्राचीन भारत में भौगोलिक ज्ञान, प्राचीन काल में के मुख्य पक्ष, प्राचीन काल में भारत के विद्वान, प्राचीन काल में भारतीय भौगोलिक संकल्पना तथा सिद्धांत, खगोलीय ज्ञान एवं भौतिक भूगोल का वर्णन, मानव भूगोल के वर्णन की व्याख्या की गई है' अध्याय का उपसंक्षेप––वेदों, वेदांगों, उपनिष्दों, पुराणों, और सिद्धान्त ग्रन्थों से आर्यभट्ट, भास्क राचायें, आदि के सूक्त ग्रन्थों से, बौद्ध ग्रन्थों, जैन ग्रन्थों से, कौटिल्य के शास्त्र, पंतजलि के महाकाव्य आदि शास्त्रों से, शिलालेखों, –ताम्रपत्र लेखों, लौह– स्तम्भों से व नालन्दा जैसे प्राचीन विश्वविद्यालयों के भग्नावशेषों से प्रकट होता है, कि भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही भूगोल के विभिन्न पक्षों के ज्ञान में गहरी, रुचि रही है। भौतिक भूगोल, आधिक भूगोल, नगरीय भूगोल, राजनैतिक भूगोल सामाजिक–सांस्कृतिक भूगोल, आदि पक्षों के क्रमबद्ध वर्णन प्राचीन काल से ही होते हैं। प्राचीन भारतीय विद्वानों व्यापारियों और शासकों के बहुत उत्तम सम्बन्ध विदेशों से, जैसे युनान, रोम, मिश्र, चीन तिब्बत, मंगोलिया, मध्य एशिया, सोवियत. संघ, कम्पूचिया, जापान, हिन्देशिया अफगानिस्तान।

1.10 स्वमूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

प्रश्न 1 सिंधु सभ्यता के निवासी किस धातु से अपरिचित थे–

(अ) लोहा(ब)अभ्रक

(स) तांबा(द)एल्युमिनियम

प्रश्न 2 सिंधु सभ्यता की लिपि किस प्रकार की थी–

(अ) ब्राह्मी लिपि (ब)देवनागरी लिपि

(स) सिंधु लिपि(द)गुजराती लिपि

प्रश्न 3 हड़प्पा किस नदी के तट पर स्थित है–

(अ)रावीनदी (ब) ताप्ती नदी

(स) सतलज नदी (द) ब्रह्मपुत्र नदी

प्रश्न 4 वेदों की संख्या कितनी है –

(अ) 3 (ब) 4

(स) 5 (द) 6

प्रश्न 5 पुराण के अनुसार दुनिया में कितने द्वीप हैं–

(अ) 5 (ब) 10

(स) 9 (द) 7

प्रश्न 6 भारतीय भूगोलवेत्ता हैं जिन्होंने भौगोलिक विचार के विकास में योगदान दिया–

(अ) आर्यभट्ट 500 ई(ब) वाराह्मीहिर 587 ई

(स) बाल्मीकि (द) उपरोक्यत सभी

उत्तरमाला 1.(अ) 2.(स)3. (अ)4.(ब)5. (द)6.(द)

1.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

- Mookerji, Radhakumud (1912). Indian Shipping%A history of the sea-borne trade and maritime activity of the Indians from the earliest times. Longmans, Green and Co., Bombay.
- F. E. Pargiter (1922). Ancient Indian Historical Tradition. Oxford University Press, H. Milford.
- Bannerjee, Dr. Gauranganath (1921). India as Known to theAncient World. Humphrey Milford, Oxford University Press, London.
- Balagangadhara, S. N. 2012. Reconceptualizing India Studies. New Delhi% Oxford University Press.
    - Bryant, Edwin. 2001. The Quest for the Origins of Vedic Culture. Oxford University Press
    - Chakrabarti, Dilip K.1997. Colonial Indology. New Delhi%Munshiram Manoharlal.
    - Durant, W. 2011. The Case for India. Mumbai% Strand Book Stall.
    - Inden, R. B. 2010. Imagining India. Bloomington, IN% Indiana University Press.
    - Karkare, Neelesh Ishwarchandra. 2014. Shreenath Madhavji% Mahayoddha Mahadji Ki Shourya Gatha.
    - Lal, B. B. 1997. The earliest civilizat*ion of SouthAsia% Rise, maturity, and decline*. New Delhi%Aryan Books International.
- 1998. *India 1947-1997% New light on the Indus civilization*. New Delhi%Aryan Books International.
- Lal, K. S. 19fbdfb80. *History of the Khaljis%A.D. 1290-1320*. New Delhi% Munshiram Manoharlal.
- Adluri, Vishwa, and Joydeep Bagchee. 2014. *The Nay Science%A History of German Indology*. New York% Oxford University Press. Richards, John F.(1995). *The Mughal Empire*.
- Dharampal. [1983] 1995. *The beautiful tree% Indigenous Indian education in the eighteenth century*. New Delhi% Biblia Impex Private Limited.

1.12 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

प्रश्न 1 भारत में राजनीतिक चिंतन की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए?

प्रश्न 2 प्राचीन भारत के भूगोलवेदताओं का विस्तृत वर्णन कीजिए?

प्रश्न 3 प्राचीन काल में भारत के भौगोलिक ज्ञान के अंतर्गत खगोलीय पक्षों की विस्तृत व्याख्या कीजिए?

प्रश्न 4 प्राचीन काल में भौगोलिक ज्ञान के विकास में वैदिक काल की व्याख्या कीजिए?

प्रश्न 5 प्राचीन काल में रंगोली की संकल्पना तथा सिद्धांत की व्याख्या कीजिए?

प्रश्न 6 'प्राचीन काल में भारत में भूगोल' की विस्तृत व्याख्या कीजिए?

इकाई – 2 प्रादेशिक भूगोल, यूनान एवं रोम साम्राज्य में भूगोल इकाई की रूपरेखा

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 प्रादेशिक भूगोल

2.4 प्रदेश एवं प्रादेशीकरण संकल्पनाए

2.5 प्रदेशों का वर्गीकरण

2.6 प्रदेश संकल्पना की प्रकृति

2.7 प्रादेशीकरण

2.8 यूनान एवं रोम साम्राज्य में भूगोल

2.9 प्राचीनयुनान भूगोल

(अ) प्राचीन शास्त्रीय काल

(ब) यूनानी भूगोलवेत्ता उनके योगदान

1. होमर
2. थेलस या थालेस
3. अनेग्जीमेण्डर
4. हिकैटियस
5. हेरोडेट्स
6. प्लेटो
7. अरस्तु
8. सिकंदर
9. थिओफ्रेस्टस
10. पोलिबियस
11. इरेस्टोस्थनीज
12. हिप्पार्कस
13. पोसिडेनियस

2.10 रोमन साम्राज्य के भूगोलवेत्ता

1. पोलिवियस
2. स्ट्रैबो
3. पोम्पोनियस मेला
4. प्लिनी
5. टॉलमी

2.11 सारांश

2.12 स्व मूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

2.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.14 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

2.1 प्रस्तावना

यूनानी–रोमन इतिहास की अवधारणा प्राचीन संस्कृतियों में यह अवधारणा पायी जाती है कि मानव–इतिहास एक पूर्वांकित योजना के अनुसार अग्रसर होता जा रहा है। इसका लक्ष्य निश्चित है, लक्ष्य प्राप्ति एक विकास–प्रक्रिया में आने वाली अवस्थाएं भी पूर्वांकित हैं। इस अवधारणा से स्पष्टत मानव–इतिहास के विगत अतीत तथा अनागत भविष्य के विषय में एक परिकल्पनात्मक चित्र के निर्माण में अधिकांश लोगों की रुचि दिखाई देती है। इस प्रकार की अवधारणा के दो प्रमुख तत्व हैं–

मानव– समाज निरन्तर पतन का इतिहास है। मानव–समाज अधिकाधिक दुःख तथा नैराश्य की ओर बढ़ रहा है। अंत में इसका विनष्ट होना प्रायः निश्चित है।

मानव–इतिहास अकुशल से कुशल की ओर प्रवर्तमान है। सही अर्थ में यह विकासशील है। यह निरन्तर अत्यधिक न्याय, सुविधा तथा सुख की ओर बढ़ रहा है। यूनानी–रोमन इतिहास अवधारणा में हेसियड का युग–चक्र सिद्धांत सर्वथा महत्वपूर्ण है। उसने चार युगों की कल्पना की है और नामकरण चार धातुओं के नाम पर रखा है–

1. स्वर्ण युग– इस युग में क्रोनोस का स्वर्ग में शासन था। मनुष्य स्वयं देवताओं के साथ कार्य करता था। पृथ्वी स्वतः उन्हें सभी श्रेयस्कर वस्तुएँ प्रदान करती थीं।

2. रजत युग–युग चक्र इतिहास का यह दूसरा चरण है। पूर्ववर्ती युग की अपेक्षा मनुष्य हीनतर अवस्था में पहुँच गया। धीरे–धीरे वह विनाश की ओर अग्रसर होता जा रहा है। पारस्परिक संघर्ष में व्यस्त रहने के कारण देवताओं की आराधना के प्रति उदासीन होने लगा।

3. कांस्य युग–युग चक्रवादी अवधारणा का यह तृतीय चरण है। मानवीय गुणों में उत्तरोत्तर हास इस युग की विशेषता है। मनुष्य शक्तिशाली था, परन्तु भाव से सर्वथा शून्य था। उसका भवन तथा अस्त्र–शस्त्र कांस्यनिर्मित होते थे। पारस्परिक मारकाट, कलह तथा संघर्ष इस युग की विशेषता रही है।

4. लौह युग–यह युग–चक्र सिद्धांत का अंतिम चरण है। इस युग के वीर पुरुष अपने पूर्वजों की तुलना में अधिक वीर और न्यायप्रिय थे। इस युग में ट्राय तथा थेवीज के युद्धों में वीर पुरुषों ने भाग लिया। वर्तमानकालिक लौह युग में श्रम तथा दुःख से मानव समाज मुक्त नहीं है।

उन्नीसवीं शताब्दी में विकसित हुए इस शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक भूगोल में वर्णनात्मक लेखों को कम. करके, उनके बजाय भौतिक विज्ञानों और सामाजिक विज्ञानों से प्राप्त तथ्यों के आधार पर भौगोलिक सूचनाओं और भौगोलिक ज्ञान को संगठित करने पर बल दिया, तथा 'मानव' और उसके वातावरण के बीच पारस्परिक सम्बन्धों के अन्वेषण पर बल दिया था। बाद में इस विचारधारा का पतन दो कारणों से हो गया–(1.) एक कारण तो यह था कि इस विचारधारा के समर्थकों ने वातावरण–निश्चयवादको इतनी दृढ़ता से अपना लिया था, कि उसकी कटू–आलोचना होने लगी थी तथा (2.) दूसरा कारण यह था, कि इस "चिरसम्मत" या शास्त्रीय भूगोल का विकास हो चुकने के बाद, धीरे–धीरे प्रादेशिक भूगोल तथा क्रमबद्ध भूगोल का विकास हो गया, और उससे 'चिरसम्मत' भूगोल की विचारधारा का पतन हो गया।

2.2 उद्देश्य

भूगोल का मुख्य उद्देश्य विश्व के विभिन्न भागों की भौतिक आकृतियों और दशाओं का वर्णन करना है। भूगोल में प्रादेशिक उपागम का उद्‌भव भी भूगोल की वर्णनात्मक प्रकृति पर बल देता है। हम्बोल्ट के अनुसार, भूगोल प्रकृति से सम्बंधित विज्ञान है और यह पृथ्वी पर पाये जाने वाले सभी साधनों का अध्ययन व वर्णन करता है। यूनानी – रोमन इतिहास की अवधारणा का मुख्य आधार 'मानववाद' था और इतिहास में मानव के कार्य–कलापों, उसकी उपलब्धियों व उत्थान – पतन का वर्णन स्पष्ट रूप से वर्णित किया जाता था।

रोमन साम्राज्य के इस दौर को रोमन काल कहते हैं और इस दौरान जिन भूगोलवेत्ताओं और विद्वानों ने

भूगोल के क्षेत्र में कार्य किया उन्हें रोमन भूगोलवेत्ता कहा जाता है उदाहरण के लिए प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता स्ट्रेबो यूनान में जन्मा और लगभग सारा जीवन यूनान में रहा फिर भी उसे इस कालखंड के कारण रोमन भूगोलवेत्ताओं में गिना जाता है।

रोमन साम्राज्य की अनुशासित सेनाओं ने विजय अभियानों द्वारा उस समय के विश्व के बारे में रोमवासियों के ज्ञान में अभूतपूर्व विस्तार किया। एक ओर पोम्पेइ ने पूर्व की ओर अल्बानिया और एशिया माइनर पर विजय प्राप्त की तो दूसरी तरफ सीजर पश्चिम में गॉल (फ्रांस) और इंग्लैंड तक अपने साम्राज्य का विस्तार करने में सफल रहा। ऑगस्टस का समय इस प्रकार के ज्ञान विज्ञान का चरम युग था। रोमन काल के भूगोलवेत्ताओं के योगदान भौतिक एवं प्रादेशिक भूगोल के क्षेत्र में रहे यह एक ओर जहाँ पोलिबियस और पोसीडोनियस ने भौतिक भूगोल के क्षेत्र में योगदान किया वहीं स्ट्रेबो ने ऐतहासिक एवं प्रादेशिक भूगोल के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान किये। भूगोल का नामकरण से लेकर उसको प्रारम्भिक व्यवस्थित रूप देने का काम यूनानी विद्वानो ने ही किया। यूनानियों ने खगोल विद्या, गणितीय भूगोल, भू–विज्ञान, जलवायु विज्ञान एवं समुन्द्र विज्ञान के विकास में काफी योगदान दिया। सर्वप्रथम यूनानियों ने ही रेखा जाल आधार पर विश्व मानचित्र बनाया। यूनानी विद्वानों ने मुख्य रूप से गणितीय भूगोल एवं भौतिक भूगोल में विशेष योगदान दिया है। जब कि रोमन विद्वानों ने भौगोलिक अध्ययन में ऐतिहासिक भूगोल, भारतीय भूगोल, मानचित्र कला व खगोलीय भूगोल में विशेष योगदान दिया है।

2.3 प्रादेशिक भूगोल

प्रादेशिक भूगोल मानव भूगोल की एक प्रमुख शाखा है। इसके अन्तर्गत भौतिक एवं मानवीय समानताओं के आधार पर सम्पूर्ण धरातल का वर्गीकरण करके उनका अध्ययन किया जाता है। प्रदेश से आशय एक ऐसे क्षेत्र से है जो किसी न किसी आधार पर अपने समीपवर्ती क्षेत्रों से अलग हो और विभेदित किया जा सके। प्रादेशिक भूगोल पृथ्वी को या इसके किसी हिस्से को किसी आधार पर प्रदेशों में विभाजित करने और उनका वर्णन करने वाला विज्ञान है।

भूगोल के अंतर्गत प्रदेशवादी या प्रादेशिक चिंतनफलक का प्रभुत्व 1930 ई० से 1940 ई० तक रहा। रिचर्ड हार्टशोर्न इसके प्रमुख समर्थक थे और उनकी पुस्तक द नेचर ऑफ ज्याग्रफी इस प्रदेशवादी चिंतन की अभूतपूर्व कृ ति है।

शेफर नामक भूगोलवेत्ता ने जब इस विचारधारा की आलोचना इसे भूगोल में एवसेप्शनलिज्म कह कर की और भूगोल को सिद्धांत या थिअरी खोजने वाला विज्ञान बनाने की वकालत की तबसे इस विचारधारा का प्रभाव कम हो गया।

यह भौगोलिक अध्ययन की एक महत्वपूर्ण विधि हैं जिसके अन्तर्गत किसी सम्पूर्ण क्षेत्रीय इकाई विभिन्न प्रदेशों का भौगोलिक अध्ययन पृथक–पृथक किया जाता है। प्रादेशिक विधि के द्वारा सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्र को लगभग समान प्रकृति वाले क्षेत्रों के अनुसार कुछ खण्डों (प्रदेशों) में विभक्त कर लिया जात और तदुपरान्त प्रत्येक प्रदेश (क्षेत्रीय इकाई) का अलग–अलग क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है। इस प्रादेशिक भूगोल प्रदेशों का भूगोल कहलाता है।

2.4 प्रदेश एवं प्रदेशीकरण संकल्पनाए

भूगोल में प्रदेश शब्द का प्रयोग प्रमाण से किया जा रहा है। वास्तव में प्रदेश संकल्पना को भूगोल का मूलाधार भी कहा जा सकता है किन्त साथ ही साथ भौगोलिक चिन्तन में विवादग्रस्त भी है। यह विवाद मुख्यतया प्रदेशीकण के विधितत्र से सम्बंधित है। प्रदेश की संकल्पना का विकास धीरे–धीरे हुआ है। इसका अभिनव अर्थो में प्रयोग करने का श्रेय ब्लॉश, हेटनर, पैसे, हरबर्टसन, आदि विद्वानों को है जिन्होंने 20वीं सदी में इसके प्रयोग की व्याख्या, विश्लेषण एवं मीमांसा करके इसके संकल्पनात्मक स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया। वर्तमान में भूगोल के अन्तर्गत अध्ययन हेतु प्रदेश शब्द एक तथ्यात्मक इकाई है। इसमें विशेषताओं, विविधताओं एवं वैभिन्नताओं का समावेश मिलता हैं जिनके बीच अन्तः सम्बन्ध, अन्तःग्रंथन तथा पदानुक्रम सम्बन्ध मिलते है।

प्रदेश भूगोल की मौलिक संकल्पनाओं में से एक है। भौगोलिक चिन्तन के इतिहास में भौगोलिक अध्ययन के केन्द्रीय तत्व के रूप में यह दीर्घ काल तक मान्य रहा है। अत्यधिक व्यवहत तथा सुपरिचित होते हुए भी प्रदेश को सही–सही शब्दों में परिभाषित करना कठिन है। भौगोलिक चिन्तन की आधारभूत तथा केन्द्रीय संकल्पना होने के

कारण प्रदेश को परिभाषित करने के प्रयास निरन्तर किये जाते रहे हैं। विभिन्न दिद्वानों ने भिन्न–भिन्न संदर्भों में प्रदेश की अलग–अलग परिभाषाएं की हैं। प्रदेश का अर्थ अध्ययन विषय के स्वरूप तथा अध्येता की व्यक्तिगत मान्यताओं के अनुसार परिवर्तनशील रहा है।

भौगोलिक चिंतनके क्रमबद्ध विकास में प्रदेश शब्द का प्रयोग विभिन्न समय में विभिन्न रूप में हुआ है किन्तु यह निर्विवाद तथ्य है कि प्रदेश ही विश्लेषण की आधारभूत इकाई है। प्रदेश के आधार पर कोई विवरण या विश्लेषण सार्थक सिद्ध होता है।

एक तत्व की समानता के आधार पर सीमांकित प्रदेश को एकल विषय प्रदेश कहते हैं जैसे मृदा प्रदेश वनस्पति प्रदेश, भाषा प्रदेश आदि कई तत्वों की समानता के अनुसार निर्धारित प्रदेश बहुल विषय प्रदेश कहलाते हैं जैसे प्राकृतिक प्रदेश, आर्थिक प्रदेश, जलवायु प्रदेश आदि। यदि किसी भूभाग में समस्त 16 तत्व किसी दूसरे भूभाग के उन्हीं तत्वों से क्रमशः मिलते हैं तो ऐसे प्रदेश को सम्पूर्ण विषय प्रदेश कहते हैं। हुवीटलसी ने कई तत्वों की समानता पर आधारित प्रदेश को कम्पेज कहा है जिसमें तत्वों का क्रम और सर्या परिवर्तनीय होती है। इसमें सभी तत्वों या विषयों का महत्व समान नहीं होता है और इसके निर्धारण में व्यक्तिषठता सर्वाधिक पायी जाती है। कम्पेज बहुल विषय प्रदेश और सम्पूर्ण विषय प्रदेश के मध्य की स्थिति है जिसमें तत्वों की संख्या घटती–बढ़ती रहती है।

प्रदेश–अवधारणा की अनिवार्यता के बावजूद भूगोलविदों में प्रदेश का तात्पर्य सदैव भ्रामक रहा। इसके लिये समय–समय पर "क्षेत्र, "भूदृश्य", "पेटी" जैसे शब्दों का समानार्थक रूप में प्रयोग होता रहा है। ऊपर वर्णित विवेचन से यह स्पष्ट है कि "भूगोलविदों" ने समय–समय पर प्रदेश संकल्पना के तात्पर्य को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इन सभी प्रयासों के उपरान्त प्रदेश के सम्बन्ध में यह माना जाने लगा है कि प्रदेश कोई निश्चित भूखण्ड (क्षेत्र) मात्र ही नहीं है अथवा भूदृश्य का समानार्थक नहीं है वरन यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें कुछ समरूप तत्वों से युक्त पदानुक्रमिक व्यवस्था। आबद्ध गुणात्मंक स्तर पर विशिष्टता से परिपूर्ण क्षेत्रीय सामन्जस्य पाया जाता है। यह स्पष्ट हो गया है कि प्रदेश ऐसा क्षेत्र होता है जिसमें कुछ विशिष्ट विशेषतायें मिलती हैं। विवाद मात्र विशेषताओं की प्रकृ ति के ऊपर है जिनके समरूप होने की. अवस्था में ही किसी क्षेत्र को प्रदेश की संज्ञा से विभूषित किया जा सकता है। कुछ विद्वानों की परिभाषायें निम्नवत हैं––

1. हरबर्टसन के अनुसार, "प्रदेश एक ऐसा क्षेत्र है जो थल, जल, वायु, जन्तु एवं मानव का एक समिश्र है, यह इन तत्वों के एक विशिष्ट प्रकार के सम्बन्धों के कारण भूतल का एक निश्चित एवं विशिष्ट भाग बन जाता है।"
2. ब्लाश के अनुसार, "प्रदेशः वह क्षेत्र है जिसके अन्तर्गत अनेक असमान प्राणी आकस्मिक या कृत्रिम संयोग से एक साथ हो जाने पर कालान्तर में एक सहअस्तित्व के साँचे में ढल गये हों।
3. ट्विटलसी के अनुसार, "प्रदेश एक ऐसा क्षेत्र है जो किसी आकार–विस्तार का हो किन्तु उसमें क्षेत्रीय अन्तर्सम्बन्धित तलगत सामन्जस्य मिलता हो।"
4. डिकेन्स के अनुसार, "प्रदेश के अन्तर्गत उसके सम्पूर्ण भाग में एक विशेष प्रकार की प्राकृतिक दशाओं से एक विशेष प्रकार का आर्थिक जीवन विकसित हुआ हो।
5. यंग के अनुसार, "प्रदेश एक ऐसा क्षेत्र है जो एक सांस्कृतिक सूत्र में आवद्ध हो। सूत्रबद्ध की प्रक्रिया आर्थिक तत्वों से प्रारम्भ होकर क्रमशः वैचारिक, शैक्षणिक तथा मनोरंजनपरक विचारों की साम्यता तक पहुँचती है जिसके फलस्वरूप यह क्षेत्र अन्य की तुलना में एक अलग विशिष्ट एवं विलग हो जाता है।
6. प्लाट के अनुसार, "प्रदेश वह विशिष्ट क्षेत्र होता है जो भूस्वरूप तथा भू–आधिपत्य में समान समरूपता के आधार पर निरुपित किया गया हो।"

यह भौगोलिक अध्ययन की एक महत्वपूर्ण विधि है जिसके अन्तर्गत किसी सम्पूर्ण क्षेत्रीय इकाई केद्वैतवाद अथवा प्रादेशिक विकसित फ्रांस अर्थतंत्र पारस्परिक गुथे अंतर्प्रक्रिया समिश्रविभिन्न प्रदेशों का भौगोलिक अध्ययन पृथक–पृथकू किया जाता है। प्रादेशिक विधि के द्वारा सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्र को लगभग समान प्रकृति वाले क्षेत्रों के अनुसार कुछ खण्डों (प्रदेशों) में विभक्त कर लिया जाता है और तदुपरान्त प्रत्येक प्रदेश (क्षेत्रीय इकाई) का अलग–अलग क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार प्रादेशिक भूगोल प्रदेशों का भूगोल कहलाता है। किसी सम्पूर्ण क्षेत्र या भूखण्ड को चयनित आधारों पर अनेक उपविभागों या प्रदेशों में विभाजन की प्रक्रिया को

प्रादेशीकरण कहते हैं।

जब विश्व के भूगोल का अध्ययन उसके विभिन्न प्रदेशों के अनुसार किया जाता है तब इसे "विश्व का प्रादेशिक भूगोल कहा जाता है। विश्व के संदर्भ में यूरोप, एशिया, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, उत्तरी अमेरिका तथा दक्षिणी अमेरिका के अलग–अलग अध्ययन को विश्व का प्रादेशिक भूगोल कहां जायेगा। इसी प्रकार विभिन्न प्राकृतिक प्रदेशों (जैसे भूमध्यरेखीय, सवाना, मानसूनी, उष्ण मरुस्थलीय, भूमध्यरेखीय, चीन तुल्य, पश्चिमी यूरोपीय, टैगा,, टुण्ड्रा आदि) अथवा राजनीतिक प्रदेशों (जैसे ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, रूस, यूक्रेन, चीन, जापान, भारत आदि) के अनुसार भी विश्व के प्रादेशिक भूगोल का अध्ययन किया जा सकता है। इसी प्रकार यदि हम भारत का भौगोलिक अध्ययन उसके विभिन्न प्राकृतिक प्रदेशों अथवा राज्यों के अनुसार करते हैं तो उसे भारत का प्रादेशिक भूगोल कहा जायेगा। प्रादेशिक भूगोल वस्तुतः क्रमबद्ध भूगोल ही है जो किसी लूप क्षेत्र या प्रदेश के संदर्भ में किया जाता है। केरल, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, उत्तर प्रदेश आदि राज्यों का भौगोलिक अध्ययन प्रादेशिक भूगोल का उदाहरण है।

19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में रिटर ने प्रादेशिक आधार पर विश्व का भौगोलिक विवरण प्रस्तुत किया किन्तु प्रदेश संकल्पना पर विशेष ध्यान नहीं दिया। इसके बाद द्वैतवाद के युग में अध्ययन उपागम के सम्बन्ध में विचार होता रहा कि अध्ययन का स्वरूप क्रमबद्ध होना चाहिए अथवा प्रादेशिक। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में हेटनर, ब्लॉश तथा हरबर्टसन में भूगोल को प्रादेशिक समाकलन के विज्ञान के रूप में विश्लेषित करने का प्रयास किया तो प्रदेश संकल्पना की व्याख्या तीन रूपों में विकसित हुई। प्रथम, ब्लाश के नेतृत्व में फ्रांसके भूगोलविदों ने विभिन्न क्षेत्रों की विशिष्ट जीवन पद्धति के आधार पर प्रदेशों का विवेचन प्रस्तुत किया। उन लोगों ने विशिष्ट जीवन पद्धति वाले क्षेत्रों को संज्ञा प्रदान किया जिसकी प्रमुख विशेषता ग्रामीणस्वरूप था। इसके ग्रामीण स्वरूप के विशिष्ट अर्थतंत्र में कृषि एवं अधिवास प्रतिरूप और मौलिक गृह विन्यास की प्रधानता थी। ब्लाश के शब्दों में–"प्रत्येक समुदाय विशेष के स्थानीय प्राकृतिक वातावरण से सदियों की समायोजन प्रक्रिया के परिणामस्वरूप अपनी स्थानीय विशेषतायें उभरी है जो अन्यत्र नहीं मिलती हैं।" वास्तव में प्रकृति तथा मानव के पारस्परिक–साहचर्य इस प्रकार गुथे रहते हैं कि उनको विलग करना सम्भव नहीं होता है। दोनों ही एक जटिल समिश्र हैं।

इस प्रकार प्रकृति तथा मानव के पारस्परिक अंतर्प्रक्रिया के फलस्वरूप विशिष्ट जीवन पद्धति के आधार पर निर्माण हुआ। द्वितीय, इंग्लैण्ड में हरबर्टसन ने प्राकृतिक स्वरूप के आधार पर विश्व को प्रदेशों में विभक्त किया। प्राकृतिक तत्व कई प्रकार के होते हैं जिनके आधार पर अनेक प्रकार के विभाजन किये जा सकते हैं, जैसे जलवायु, वनस्पति जैसे तत्वों के आधार जलवायु प्रदेश, वनस्पति प्रदेश, आदि में वर्गीकरण किया जाता हैं। चूँकि जलवायु तथा वनस्पति का एक–दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है जिसमें भूआकृतिक विशेषताओं की भूमिका नगण्य होती है। इस प्रकार उसका प्राकृतिक प्रदेश वस्तुतः जलवायु प्रदेश के पर्याय होते हैं। वास्तव में हरबर्टसन ने प्राकृतिक प्रदेश को भौतिक प्रदेश के अतिरिक्त नैसर्गिक प्रदेशके रूप में मान्यता दिया जिसमें प्राकृतिक तत्वों के साथ–साथ मानवीय तत्वों का संयोग मिलता हैं और तृतीय, जर्मनी में हेटनर ने क्षेत्रीय विशिष्ट पद्धति के आधार पर प्रदेश के सीमांकन का आधार बनाया जिसमें आनुवंशिक अर्थात कार्य–कारण में सम्बन्ध–आवद्ध तत्वों के सापेक्षिक महत्व के आधार पर निरूपण किया जाता है। इस प्रकार प्रादेशिक आधार के निरूपण हेतु प्रदेशों को विभिन्न स्तरों (बृहद्, मध्यम तथा लघु) में विभाजित करके अध्ययन करने की प्रवृत्ति बढ़ी।

इस प्रकार विशिष्ट जीवन पद्धति–युक्त प्रदेश, प्राकृतिक तत्वों से युक्त प्रदेश और क्षेत्रीय विशिष्ट निरूपण पद्धति के आधार पर प्रदेशों के विभाजन में एक तथ्य निहित है कि कई तत्वों के समुच्चयिक आधार पर प्रदेशों के निरूपण पर बल दिया गया। कुछ समय के उपरान्त प्रदेश–अवधारणा एवं प्रादेशीकरण की वस्तुनिष्ठ पद्धति की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ। इस अवधारणा का विकास मुख्यतः मानव पारिस्थितिकी के अध्ययन के आधार पर हुआ क्योंकि मानव का अपने पर्यावरण से समायोजन एवं उसके प्रभाव का अध्ययन प्राकृतिक प्रदेशों के संदर्भ में सार्थक समझा जाने लगा। 1930 के पश्चात संसाधन समाकलन, भूमि उपयोग एवं प्रादेशिक आर्थिक विकास की आवश्यकता को देखते हुए, विद्वानों ने आर्थिक तत्वों के आधार पर प्रादेशीकरण को निरुपित करने का प्रयास किया। इसके फलस्वरूप अमेरिका में 'प्रदेश एवं प्रादेशीकरण' संकल्पना का सूक्ष्म विवेचन करते हुए इसके विविध पक्षों पर विचार–विमर्श प्रारम्भ हुआ। ब्रिटेन में अनस्टीड ने जननिक प्रदेश तथा विशिष्ट प्रदेश में विभाजन करके अन्तर स्पष्ट किया। जननिक प्रदेश में प्रकारात्मक स्वरूप की अभिव्यक्ति होती है तो विशिष्ट प्रदेश में किसी एक क्षेत्र की भौगोलिक विशिष्टता को प्रदर्शित किया जाता है। प्रथम वर्ग में बगानी कृषि को सम्मिलित किया जा सकता है जिसमें कुछ विशेष कृषिगत विशेषतायें मिलती हैं जिसके उदाहरण विश्व के अनेक क्षेत्रों में पाये जाते हैं

जबकि द्वितीय वर्ग में किसी क्षेत्र विशेष की विशिष्टता अन्य क्षेत्रों के सम्बन्ध में अवस्थितिगत अन्तर्जात विशेषताओं से उत्पन्न होती है।

आधुनिक प्रादेशिक भूगोल के विकास में कार्ल रिटर का योगदान केन्द्रीय महत्व का है। प्रादेशिक विधि के विकास में रिटर ने एक मार्ग दर्शक की भूमिका निभायी थी। आर० डी० दीक्षित (2000) के शब्दों में, "रिटर के प्रादेशिक भूगोल की केन्द्रीय मान्यता थी कि पृथ्वी की विभिन्न क्षेत्रीय इकाइयाँ उनमें विद्यमान विविध तत्वों की पारस्परिकता पर आधारित संघटित इकाइयां हैं। अतः इन इकाइयों के अध्ययन में विद्यार्थी का ध्यान निरन्तर क्षेत्र विशेष में विद्यमान स्थानीय तत्वों की पारस्परिकता से उद्भूत समग्रता के उद्घाटन पर केन्द्रित होना चाहिए जिससे कि हर क्षेत्र की अलग पहचान, उसका विशिष्ट व्यक्तित्व उजागर हो सके।"इस प्रकार प्रादेशिक भूगोल पृथ्वी के अलग–अलग भागों (भूखण्डों) तथा उसके क्षेत्रीय उपांगों का समग्र अध्ययन करता है। इसीलिए रिटर क्रमबद्ध भूगोल और प्रादेशिक भूगोल को एक ही सिक्के के दो पहलू मानते थे।

प्रादेशिक भूगोल के विकास में बीसवीं शताब्दी के फ्रांसीसी भूगोलवेत्ताओं का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान रहा है। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में फ्रांस में प्रादेशिक भूगोल पर काफी अधिक संख्या में शोध ग्रंथ तथा शोध प्रबंध लिखे गये। प्रादेशिक भूगोल के विकास में वाइडल डी ला ब्लाश तथा उनके शिष्यों गालो, ब्रूंश, ब्लांशार, डि मार्तोन आदि ने उल्लेखनीय कार्य किये।

2.5 प्रदेशों का वर्गीकरण

प्रदेशों का वर्गीकरण– प्रदेशों का वर्गीकरण तीन उपागगमों के आधार पर किया जाता है। प्रथम उपागम में समान विशेषताओं को ध्यान में रखकर स्थानिक तथा आर्थिक तत्वों के समन्वयन का आधार लिया जाता है, द्वितीय उपागम में प्रदेश में स्थित नगरीय या ग्रामीण केन्द्रस्थलों के चतुर्दिक ध्रुवीकरण का आधार होता है और तृतीय उपागम में वर्तमान प्रशासनिक एवं राजनैतिक प्रारूप एवं नीतियों के सम्बद्ध स्वरूप को स्पष्ट करता है। इनके उपागमों के आधार पर तीन प्रकार के प्रदेशों का निर्माण होता है– समरूप प्रदेश, संकेन्द्रीय प्रदेश, एडहाक या कार्यक्रम प्रदेश

1. समरूप प्रदेश– जिस प्रदेश में किसी तत्व की विशेषता समान रूप से पायी जाती है, उसे समरूप प्रदेश कहते हैं। समरूप प्रदेशों की विशेषतायें इस प्रकार होती हैं––

   (1) भूमि उपयोग विशेषतायें––(1) भूमि उपयोग के प्रकार जैसे कृषि, वन आदि, (2) शस्य संयोजन, (3) कृषि क्षेत्र के आकार, (4) प्रौद्योगिकी स्तर, (5) भूमि स्थायित्व,

   (2) जनांकिकीय विशेषतायें–– (1) जनसंख्या वितरण, (2) जन्म एवं मृत्यु दर, (3) जनसंख्या वृद्धि, (4) स्थानान्तरण प्रतिरूप,

   (3) यातायात विशेषतायें–– (1) लम्बाई, (2) गहनता,

   (4) सामाजिक सेवायें एवं सार्वजनिक उपयोगिता–– (1) जलापूर्ति, (2) स्वास्थ्य दशायें एवं सुविधायें, (3) शिक्षा सुविधायें एवं शिक्षा स्तर, (4) विद्युत आपूर्ति,

   (5) सामाजिक एवं आर्थिक संरचना–– (1) सामाजिक वर्ग, (2) आय–वितरण प्रतिरूप, (3) रोजगार,

   (6) संसाधन–– (1) मिट्टी, (2) जल, (3) वन, (4) खनिज, (5) पशु।

इन विशेषताओं के आधार पर समरूप प्रदेश को पुनः तीन प्रदेशों–एक लक्षणी तत्व प्रदेश, बहुलक्षणी तत्व प्रदेश और सर्वाग पूर्ण प्रदेश में विभक्त किया जाता है। एक लक्षणी प्रदेश को पुनः प्राकृतिक प्रदेश, आर्थिक प्रदेश और सांस्कृतिक प्रदेश में विभाजित किया जाता है। बहुलक्षणी प्रदेश को कई तत्वों को लेकर अध्यारोपण विधि या सांख्यिंकीय विधियों द्वारा विभाजित किया जाता है। जब किसी प्रदेश की सम्पूर्ण संरचना अन्य प्रदेश से भिन्न होती है तो उसे सर्वांगपूर्ण प्रदेश कहते हैं। इसके लिये प्रदेश के समान प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक लक्षणों का एक साथ ध्यान रखा जाता है।

2. संकेन्द्रीय प्रदेश–इसका वर्गीकरण किसी केन्द्र के चतुर्दिक सम्बन्धित क्षेत्र के आधार पर किया जाता है जिसके लिये तत्वों या स्थानों के अन्तर्सम्बन्धों का आधार लिया जाता है अर्थात् तत्वों की समरूपता न होकर कार्यात्मक तथ्यों की समरूपता के आधार पर लिया जाता है। इसलिये इसे कार्यात्मक प्रदेश कहते हैं।

3. एडहाक या कार्यक्रम प्रदेश–ऐसे प्रदेशों का निर्धारण किसी विशेष उद्देश्य के दृदृष्टिकोण से किया जाता है। कार्यक्रम प्रदेशों का मेल संकेन्द्रीय प्रदेशों से नहीं होता है किन्तु नूतन संकेन्द्रीय प्रदेशों को स्थापित करने हेतु कार्यक्रम प्रदेशों की रचना की जा सकती है। इनमें कुछ इस प्रकार हैं––(1) संक्रमण प्रदेश, (2) नदी–घाटी प्रदेश, (3) पीड़ित प्रदेश, (4) पिछड़े प्रदेश, (5) जनजातीय प्रदेश, (6) जनसंख्या–संसाधन प्रदेश, (7) विकसित, विकासशील एवं अविकसित प्रदेश और (8) संसाधन प्रदेश।

2.6 प्रदेश संकल्पना की प्रकृति

इस संकल्पना की प्रकृति के सम्बन्ध में कई विषयों के विद्वानों ने अपने–अपने विचार व्यक्त किये हैं जिसमें भूगोलविदों, समाजशास्त्रियों और पारिस्थितिकीविदों ने पर्याप्त चिन्तन किया है। इस चिन्तन के फलस्वरूप प्रदेश के सम्बन्ध में यह विचार करना आवश्यक हो जाता है कि प्रदेश वास्तव में एक ठोस इकाई है अथवा भूतल के वैभिन्नता के अध्ययन का एक संकल्पनात्मक पहलू है। अनेक भूगोलविदों तथा वैज्ञानिकों ने प्रदेश को एक वास्तविक ठोस इकाई के रूप में माना है। पृथ्वी तल पर ऐसी अनेक प्रादेशिक इकाइयाँ पाई जाती हैं जिनकी पहचान करके ठोस इकाइयों के रूप में प्रदेश का शुद्ध रूप में सीमांकन किया जाता है।

प्रदेश की इस अवधारणा का प्रारम्भ हरबर्टसन द्वारा विश्व के प्राकृतिक प्रदेशों के सीमांकन के साथ हुआ। इनके अनुसार 'प्रदेश की एक जैविक इकाई है।' इस तथ्य की पुष्टि उच्चावच, जलवायु वनस्पति एवं मिट्टी के पारस्परिक क्षेत्रीय सामंजस्य और सभी के स्वरूप में विभिन्नता के समान क्षेत्रीय प्रतिरूप से होती है। फ्रांसीसी भूगोलविदों द्वारा प्रतिपादित विलेग क्षेत्रों में 'विशिष्ट जीवन पद्धति' के विकास से इसी अवधारणा का बोध होता है कि प्राकृतिक इकाइयों का अस्तित्व वस्तुतः पाया जाता है। सोवियत रूस के भूगोलविदों ने इसी अवधारणा का समथन करत हुए बताया हैं कि आर्थिक प्रदेशों का स्वयं का अस्तित्व मिलता है। अल्केजेन्डूव ने भीबताया है कि भूतल के सभी तत्वों के आधार पर प्रदेश की वास्तविकता प्रकट होती है। अमेरिका के रेनर ने भी प्रदेश को परिभाषित करते हुए बताया है कि, प्रदेश वास्तविक इकाइयों है। इनमे से एक प्रत्येक अपने पड़ोसी से प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक विभेद प्रदर्शित करता है। बोग ने 1951 में सयुक्त राज्य के आर्थिक क्षेत्रों का सीमांकन करते समय इन्हें विशिष्ट समुदाय के रूप में चित्रित करते हुए बताया कि किसी क्षेत्र विशेष में वहाँ के निवासियों ने वहाँ के पर्यावरण के साथ स्वयं का पूर्णरूपेण समायोजित कर लिया है। इस प्रकार पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण से प्रदेश के इस विशिष्ट स्वरूप को जैविकइकाई के रूप में माना जाता है। इसके अतिरिक्त दार्शनिक दृष्टिकोण से भी जैविक इकाई को समग्रता का सूचक कहा जाता हैं जिसकी स्वयं की विशेषतायें होती हैं। सम्भवतः इसी अर्थ में विज्ञानसम्मत भूगोल के समर्थक बुंगी भी प्रदेश को एक ठोस इकाई मानते है। इसी के साथकुछ अन्य लोग प्रदेश को 'वास्तविक ठोस इकाई' की अवधारणा का समर्थन नहीं करते हैं जिसके विरोध में निम्न तर्क प्रस्तुतकरते हैं– (1) सम्पूर्ण पर्यावरण में मिलने वाले असंख्य तत्त्वों की समान क्षेत्रीय विभिन्नता को स्वीकार करना सम्भव नहीं हैं। यद्यपि कुछ ऐसे क्षेत्र पाये जाते हैं जिन्हें भौगोलिक प्रदेश अवश्य कहा जा सकता तथापि ऐसे भी प्रदेश हैं जिनका कोई विशिष्ट स्वरूप नहीं होता है। इस प्रकार इन्हें किसी प्रदेश विशेष का अंग नहीं कहा जा सकता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रदेश के बाद सीमा की ओर संक्रमण क्षेत्रों की अधिकता है अथवा किसी प्रदेश को शुद्ध रूप से सीमांकित नहीं किया जा सकता। अतएव इन दोनों अवस्थाओं में प्रदेश को ठोस वास्तविक इकाई की संज्ञा प्रदान करना उचित नहीं है, (2) पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण से मानव समुदाय का अध्ययन महत्वपूर्ण है किन्तु इस के संता तथ्य वस्तुतः ठीक नहीं है कि मानवीय क्रियाकलाप लो केवल पर्यावरण कारकों के साथ अन्तर्क्रिया का प्रतिफल ही नहीं कहा जा सकता है वरन इसी के साथ अन्य कारकों का भी योगदान होता है। इस प्रकार प्रदेश को ठोस वास्तविक इकाई के रूप में स्वीकार करना एक प्रकार से पूर्णरूपेण नियतिवादी विचारधारा को स्वीकार करना है, (3) देश को वास्तविक ठोस इकाई के रूप में स्वीकार करने का अर्थ मानव जीवन के स्थैतिक स्वरूप करो प्रकार करना है क्योंकि प्रदेश तंत्र माप्र विद्यमान स्थिति को प्रदर्शित करता है तथा कालकम में होने वाले परिवर्तन सम्मिलित नहीं होते हैं। इसके अतिरिक्त प्रदेश का स्वायत्त स्वरूप प्रदर्शित किया जाता है। वास्तव में प्रदेश को ठोस वास्तविक इकाई तभी कहा जा सकता है जब वह विश्व के किसी अन्य क्षेत्र से विलग हो। इस प्रकार प्रदेश न तो जैविक इकाई हो सकता है न विश्व के अनेक प्रदेशों का योगमात्र ही, अस्तु भूगोलविदों की दृ ष्टि में भूतल की जटिल वैभिन्ननाओं के अध्ययन हेतु एक सशक्त माध्यम है अर्थात् प्रदेश को एक मॉडल मानकर उसके द्वारा विश्व के महत्वपूर्ण तत्वों के सामान्यीकृत प्रतिरूप का निरूपण किया जाता है।

प्रादेशिक संकल्पना का विकास–

प्राचीन यूनानी सभ्यता के समय से ही क्षेत्रीय वर्णन भौगोलिक अध्ययन का महत्वपूर्ण विषय रहा है किन्तु आधुनिक भौगोलिक अध्ययन में प्रादेशिक पद्धति का आरंभ उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशक से हुआ। अठारहवीं शताब्दी के अंत तक भौगोलिक अध्ययन मुख्य रूप से पृथ्वी के विभिन्न स्थानों की स्थिति निर्धारण तथा मानचित्रण विधियों के विकास पर केन्द्रित था। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में आधुनिक भूगोल के संस्थापक दो जर्मन भूगोलवेत्ताओं अलेक्जेण्डर वान हम्बोल्ट तथा कार्ल रिटर के साथ ही अनेक जर्मन भूगोलवेत्ताओं ने भूतल पर स्थित भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में स्थित विभिन्न प्रकार के तत्वों के पारस्परिक सह–अस्तित्व जनित भूदृश्य तथा क्षेत्रीय समग्रता के विश्लेषण हेतु सैद्धान्तिक आधार विकसित करने का महत्वपूर्ण प्रयास किया। हम्बोल्ट और रिटर के परवर्ती विद्वानों में जर्मन भूगोलवेत्ता रिचथोफेन का योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। आधुनिक भूगोल में प्रादेशिक तथा क्षेत्रीय स्तर पर पृथ्वी के परिवर्तनशील स्वरूप के अध्ययन के लिए उसे लघु क्षेत्रीय इकाइयों में विभाजन की पद्धति सर्वप्रथम जर्मन भूगोलवेत्ता फर्डीनण्ड वान रिचथोफेन (1833–1905) ने 1883 में प्रतिपादित की थी। बाद में अमेरिकी विद्वान रिचर्ड हार्टशोर्न ने अपनी पुस्तक नेचर आफ ज्योग्राफी (1939) के द्वारा अंग्रेजी भाषी देशों में इस पद्धति का व्यापक प्रचार किया। इस पुस्तक के प्रभाव से प्रादेशिक पद्धति शीघ्र ही भौगोलिक अध्ययन की सर्वमान्य पद्धति के रूप में स्थापित हो गयी। भौगोलिक अध्ययन में प्रादेशिक पद्धतिं के विकास में अल्फ्रेड हेटनर का महत्वपूर्ण योगदान है। हेटनर रिचथोफेन के सहयोगी और शिष्य थे।

भौगोलिक अध्ययन में क्षेत्रीय परिदृष्टि की प्रेरणा उन्हें रिचथोफेन से ही प्राप्त हुई थी भौगोलिक चिन्तन की समीक्षा करते हुए हेटनर ने जोर देकर कहा कि भूगोल मूलतः पृथ्वी का क्षेत्रीय विज्ञान है। उन्होंने स्पष्ट किया कि भूगोल भूतल की क्षेत्रीयपरिवर्तनशीलतापर केन्द्रित अध्ययन है। भूगोल यह जानने का प्रयास करता है कि पृथ्वी की भिन्न– भिन्न इकाइयाँ एक दूसरे से किस प्रकार भिन्न हैं? "भूगोल प्रत्येक क्षेत्रीय इकाई के सविस्तार अध्ययन के आधार पर विश्व स्तर पर पृथ्वी के तुलनात्मक अध्ययन का प्रयास करता है। अतः भूगोल एक साथ ही पृथ्वी का प्रादेशिक वर्णन भी है और उसका सामान्य (क्रमबद्ध) विज्ञान भी। परन्तु अध्ययन का उद्देश्य चाहे जो भी हो पृथ्वी के अलग–अलग क्षेत्रीय उपांगों के सविस्तार अध्ययन के आधार पर सम्पूर्ण पृथ्वी तल का वर्णन अथवा पृथ्वी की सतह पर पाये जाने वाले भिन्न–भिन्न प्रकार के तत्वों के विश्व वितरण के प्रारूपों की तुलनात्मक व्याख्या के आधार पर पृथ्वी की सम्पूर्ण सतह का क्रमबद्ध अध्ययन–दोनों ही स्थितियों में भौगोलिक अध्ययन का केन्द्र बिन्दु पृथ्वी की सतह पर पाये जाने वाले भिन्न–भिन्न प्रकार के तत्वों की परिवर्तनशील पारस्परिकता है। एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में भूगोल की यही मूल पहचान है।

हेटनर के अनुसार भूगोल अलग–अलग तत्वों का सविस्तार अध्ययन न होकर उनके सह–अस्तित्व तथा उनकी पारस्परिकता पर आधारित क्षेत्रीय इकाइयों का अध्ययन है। भूगोल के अध्ययन का उद्देश्य प्रत्येक क्षेत्रीय इकाई के भौगोलिक स्वरूप की मौलिक विशिष्टता का उद्घाटन करना है। हेटनर का मत था कि वैज्ञानिक अध्ययन की अन्य शाखाओं की भांति भौगोलिक अध्ययन में विशिष्ट और सामान्य दोनों ही अध्ययन के अनिवार्य पक्ष हैं। प्रथम प्रकार का अध्ययन दूसरे प्रकार के अध्ययन के लिए आवश्यक आधार प्रस्तुत करता है। हेटनर की अधिकांश रचनायें प्रादेशिक अध्ययन से सम्बंधित थीं किन्तु सैद्धान्तिक लेखों में उन्होंने दोनों ही पक्षों को समान महत्व प्रदान किया। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध विशेषतया प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् जर्मनी तथा अन्य कई यूरोपीय देशों में गहन प्रादेशिक अध्ययन को विशेष प्रोत्साहन मिला। हेटनर ने 1933 में प्रकाशित एक लेख में प्रादेशिक अध्ययन पद्धति पर विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया जो बाद में प्रादेशिक अध्ययन का आदर्श प्रारूप बन गया। इस प्रादेशिक अध्ययन पद्धति के अन्तर्गत अध्ययन क्षेत्र (इकाई) के प्रमुख भौगोलिक तत्वों जैसे स्थिति, भूगर्भिक संरचना, स्थलाकृति (उच्चावच), जलवायु, प्राकृतिक संसाधनों का वितरण, जनसंख्या की वृद्धि, वितरण तथा घनत्व, अधिवासों का स्वरूप एवं वितरण, अर्थव्यवस्था (प्रमुख मानव व्यवसाय) और राजनीतिक–प्रशासनिक विभाजन आदि का क्रमशः वर्णन किया जाता थाद्य यह अध्ययन पद्धति रिचथोफेन के समय से ही जर्मनी में भूगोल में आदर्श पद्धति के रूप में प्रयोग की जाने लगी थी।

फ्रांसीसी भूगोल के संस्थापक तथा पथ प्रदर्शक वाइडल डी ला ब्लाश ने प्रादेशिक अध्ययन को प्रभावशाली ढंग से प्रेरित किया। ब्लाश का मानना था कि विद्यार्धियों को भूगोल की समस्त शिक्षा प्रदान करने की सर्वाधिक प्रभावशाली विधि है क्षेत्र अध्ययन के आधार पर उन्हें छोटी–छोटी स्थानीय इकाइयों के अध्ययन में प्रशिक्षित करना। भोगोलिक शिक्षण की इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए ब्लाश ने सम्पूर्ण यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों के प्रादेशिक भूगोल पर एक सम्पूर्ण ग्रंथमाला को प्रकाशित करने की योजनाबनायी थी किन्तु उनके जीवन काल में

यह योजना पूरी नहीं हो पायी थी उनकी मृत्यु (1920) के पश्चात उनके निकट सहयोगी एवं शिष्य लुसियन गेलाय (1857–1941) ने विश्व भूगोलनामक इस श्रृंखला के संम्पादन का कार्यकाल संभाला और इस ग्रंथमाला का प्रथम ग्रंथों 1927 में प्रकाशित किया। 1940 के पहले फ्रांस सहित सम्पूर्ण यूरोप पर अलग–अलग ग्रंथों का प्रकाशन पुरा हो चुका था। यह ग्रंथमाला प्रादेशिक अध्ययन के क्षेत्र में मील के पत्थर के रूप में प्रतिष्ठितहैं।

फ्रांस में बीसवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में अधिक संख्या में प्रादेशिक भूगोल से सम्बंधित शोध प्रबन्ध लिखे गये। इसकी रचना में ब्लाश के अतिरिक्त उनके शिष्यों तथा सहयोगियों जैसे गालो, के डी मारतोन, ब्रुंश, डिमांजियां, ब्लांशार आदि ने सर्वाधिक प्रेरणा दी थी। फ्रांसीसी भूगोलवेत्ताओं ने जो प्रादेशिक वर्णन एवं संश्लेषण प्रस्तुत किया वह अन्य देशों में लिखे गये प्रादेशिक भूगोल की तुलना में अधिक ऊँचे स्तर के थे। फ्रांस के विश्वविद्यालयों में भूगोल विषय में जो पाठ्य सामग्री निर्धारित की गयी उसमें विद्यार्थियों के द्वारा छोटे–छोटे क्षेत्रों पर व्यक्तिगत पर्यवेक्षण पर आधारित मौलिक अध्ययन कराया जाता था। फ्रांस में विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त कई प्रमुख नगरों में भी भौगोलिक परिषदें स्थापित है जिनके द्वारा स्थानीय क्षेत्रों के भौगोलिक अध्ययनों को काफी प्रोत्साहन तथा सहयोग प्राप्त होता रहा। फ्रांसीसी भूगोलवेत्ता प्रादेशिक इकाइयों की परिभाषा विशिष्ट जीवन पद्धति (जेनरे द वी) के आधार पर करते थे न कि भिन्न–भिन्न प्रकार के प्राकृतिक और सांस्कृतिक तत्वों के आधार पर।

1950 के दशक के पूर्वाद्ध तक प्रादेशिक भूगोल 'भौगोलिक अध्ययन की मुख्य धारा के रूप में प्रचलित रहा। इस दशक का अंत होते –होते प्रादेशिक पद्धति के प्रति असंतोष की लहर फैलने लगी। शेफर (1953) ने प्रादेशिक भूगोल के अन्तर्गत किये जाने वाले अध्ययन को विज्ञान की मूल आत्मा के विपरीत तथा अपवादों के अध्ययन पर केन्द्रित बताया। प्रादेशिक अध्ययन के प्रति बढ़ते असंतोष तथा तिरस्कारपूर्ण भाव के कारणों को उद्घाटित करते हुए ब्रिटिश भूगोलवेत्ता पैटर्सन (1974) ने बताया कि इस प्रकार के अध्ययन का उद्देश्य किसी स्थान विशेष में विद्यमान भूदृश्य (भौगोलिक स्थिति) की यथार्थ तथा विस्तृत व्याख्या करना है। अतः प्रादेशिक भूगोल के अध्ययन में अध्येता का ध्यान सम्बंधित स्थान या प्रदेश तथा उसके निवासियों के समग्र अध्ययन पर केन्द्रित होता है, सामान्य सिद्धान्तों की खोज पर नहीं। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात संयुक्त राज्य अमेरिका में क्षेत्रीय अध्ययन का खूब प्रचार–प्रसार हुआ। ये अध्ययन बहुधा अन्तरानुशासनिक प्रकृति के होते थे। क्षेत्रीय अध्ययन में भूगोलवेत्ता के साथ अन्य विज्ञानियों के सहयोगी समूह भी योगदान करने लगे। अब भूगोल में शोधार्थी अपने अध्ययन क्षेत्र के भिन्न–भिन्न पक्षों से सम्बंधित सूचनाएं तथा आंकड़े सम्बंधित क्रमबद्ध विज्ञानों से प्राप्त करने लगे और उनके आधार पर क्षेत्रीय विश्लेषण तथा व्याख्या पर ध्यान केन्द्रित करने लगे। इस प्रकार के भौगोलिक शोध के परिणाम अपेक्षाकृत अधिक विशिष्टीकृत तथा उपयोगी सिद्ध हुए। 1960 तथा 1970 के दशक में पर्यावरण बोधपर आधारित प्रादेशिक विश्लेषण की परम्परा तीव्र हो गयी। इस प्रकार प्रादेशिक अध्ययन क्रमशः अधिक व्यापक तथा महत्वपूर्ण होता गया। आचारपरक तथा मानववादी उपागमों के प्रचलन से प्रादेशिक भूगोल को नयी दिशा प्राप्त हुई है।

2.7 प्रादेशीकरण

जिस प्रकार प्रदेश संकल्पना में अस्पष्टता तथा वैभिन्नता मिलती है, उसी के अनुरूप प्रदेशीकरण की संकल्पना में समस्यायें हैं। प्रदेश संकल्पना में स्पष्टता आने क साथ– साथ प्रादेशीकरण अवधारणा में भी निखार आया हैं। वास्तव में प्रादेशीकरण एक प्रक्रिया जिसमें चयनित तत्वों की समरूपता के अनुसार उच्च स्तर की क्षेत्रीय इकाइयों को तथा मध्यम स्तर तथा लघु स्तर की इकाइयों में विभाजित करके एकीकृत किया जाता है। प्रारम्भ में हरबर्टसन के अनुसार प्रदेश का निरूपण और सीमांकन उसके आन्तरिक तत्वों के आधार पर सीमांकन न करके वाँछित या नियामक तत्व के आधार पर सीमांकन किया गया था। स्वयं हरबर्टसन ने प्राकृतिक प्रदेशों का सीमांकन जलवायु तत्वों के आधार पर किया है। कोपेन ने जलवायु प्रदेशों का सीमांकन वनस्पति को आधार बनाकर किया क्योंकि उनके अनुसार जलवायु– प्रकार के लिये वनस्पति ही नियामक तत्व होता है। इसी प्रकार एक तात्विक प्रदेशों का सीमांकन बहुतात्विक प्रदेशों की तुलना में सरल होता है' क्योंकि बहुतात्विक प्रदेशों में अनेक आधार तत्वों का उपयोग किया जाता है जिनकी क्रान्तिक रेखायें सदैव एक रेखा का अनुसरण न करके अनेक रेखाओं को प्रदर्शित करती हैं जिनके अध्यारोपण में कठिनाई आती है। अतएव वास्तविक ठोस इकाई के निर्माण हेतु किसी सुनिश्चित आधारतत्व का निर्धारण कठिन हो जाता हैं। इसके कारण अधिकांश लोग मालारेखन विधि को अपनाये थे। इस प्रकार प्रदेश का सीमा–निर्धारण में मात्रात्तक आधार पर कोई क्रान्तिक मान लिया जाता है जबकि गुणात्मक आधार पर अन्तर स्थापित करके सीमाओं का निर्धारण किया जाता है।

ऐसे प्रादेशीकरण में व्यक्तिपरक जैसे अनेक विसंगतियों के कारण किम्बल ने प्रदेश संकल्पना की

कटुआलोचना करते हुए कई कमियों को बताया जो इसप्रकार हैं–– (1) इस अवधारणा का उपयोग विगतकालीन भूगोल हेतु ही सार्थक होता है, (2)प्रादेशिक सीमाओं का निरूपण व्यक्तिपरक एवं अनिश्चित है, (3) इसका सार्थक उपयोग हीं सम्भव होता है जहाँ स्थैतिक एवं समरूप क्षेत्र मिलता है और, (4) यह संकल्पना केवल यूरोप के लिए उपयोगी है। इन्हीं कमजोरियों को ध्यान में रखकर किम्बल का कहना था कि प्राकृतिक प्रदेश महत्वहीन होते हैं जबकि कार्यात्मक सामंजस्य तथा गत्यात्मक समरूपता वाले प्रदेश अर्थहीन होते हैं। 1954 में ह्वीटलसी ने प्रदेश संकल्पना का भौगोलिक विश्लेषण करके इसकी सर्तकता की उपयोगिता सिद्ध करने कां प्रयास किया किन्तु दुर्बलताओं के होते हुए भी कहा जा सकता है कि भौगोलिक आकड़ों को व्यवस्थित करने हेतु प्रादेशीकरण एक तर्कसंग माध्यम है। 1960 के दशक में प्रादेशीकरण के वर्गीकरण में सांख्यिकीय एवं ज्यामितीय विधियों का उपयोग होने लगा। ज्यामितिक विधियों में थिसियन पालीगन, न्यूनतम दूरी विधि, विभेदीकरण संश्लेषण विधि और ग्राफ सिद्धान्त विधि प्रमुख हैं। सांख्यिकीय विधियों में विचरण विश्लेषण विधि तथा।हसम्बन्ध गुणांक पर आधारित विधियों का उपयोग हुआ। इसके अतिरिक्त मानचित्रण विधियों को परिमार्जित करते हुए फिल्टर मेचिंग, लीनियर ट्रेण्ड सरफेस विधि तथा क्वाड्रेटिक विधि प्रयोग में लाई गई।

जब विश्व के भूगोल का अध्ययन उसके विभिन्न प्रदेशों के अनुसार किया जाता है तब इसे 'विश्व का प्रादेशिक भूगोल' कहा जाता है। विश्व के संदर्भ में यूरोप, एशिया, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, उत्तरी अमेरिका तथा दक्षिणी अमेरिका के अलग–अलग अध्ययन को विश्व का प्रादेशिक भूगोल कहां जायेगा। इसी प्रकार विभिन्न प्राकृतिक प्रदेशों (जैसे भूमध्यरेखीय, सवाना, मानसूनी, उष्ण मरुस्थलीय, भूमध्यरेखीय, चीन तुल्य, पश्चिमी यूरोपीय, टैगा, टुण्ड्रा आदि) अथवा राजनीतिक प्रदेशों (जैसे ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, रूस, यूक्रेन, चीन, जापान, भारत आदि) के अनुसार भी विश्व के प्रादेशिक भूगोल का अध्ययन किया जा सकता है। इसी प्रकार यदि हम भारत का भौगोलिक अध्ययन उसके विभिन्न प्राकृतिक प्रदेशों अथवा राज्यों के अनुसार करते हैं तो उसे भारत का प्रादेशिक भूगोल कहा जायेगा। प्रादेशिक भूगोल वस्तुतः क्रमबद्ध भूगोल ही है जो किसी लघु क्षेत्र या प्रदेश के संदर्भ में किया जाता है। केरल, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, उत्तर प्रदेश आदि राज्यों का भौगोलिक अध्ययन प्रादेशिक भूगोल का उदाहरण है।

2.8 यूनान एवं रोम साम्राज्य में भूगोल

आज विश्वभर में जिस भूगोल का अध्ययन–अध्यापन किया जाता हे वह मुख्य रूप से यूरोपीय चिन्तन का ही प्रतिफल है। वास्तव में आधुनिक भौगोलिक चिन्तन का इतिहास भूगोल पर यूरोपीय चिन्तन के प्रभाव की कहानी है। शास्त्रीय स्तर पर एक क्रमबद्ध विषय के रूप में भूगोल का विकास मुख्यतः दो कालों में हुआ है जिन्हें शास्त्रीय या चिरसम्मत कालकहा जाता है। ये हैं––(1) प्राचीन शास्त्रीय काल, और (2) आधुनिक शास्त्रीय काल। भौगोलिक चिन्तन के इतिहास में ईसा पूर्व छठीं शताब्दी से लेकर 300 ई० तक की अवधि को प्राचीन शास्त्रीय काल माना जाता है। इसमें यूनानी तथा रोमन विद्वानों द्वारा उच्चकोटि के भौगोलिक ग्रंथों की रचना की गयी। उस समय उत्तरी–पश्चिमी यूरोप (ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, पुर्तगाल, स्पेन, हालैण्ड आदि) आदिम और पिछड़ी अवस्था में था और वहाँ के लोग यूनानी तथा रोमन सभ्यता एवं ज्ञान से अनभिज्ञ थे। उस समय भारत और चीन में भौगोलिक ज्ञान का उल्लेखनीय विकास हो चुका था किन्तु अधिक दूरी तथा प्राकृतिक अवरोधों के कारण सम्पर्क के अभाव में पूर्व और पश्चिम में अलग–अलग सभ्यताओं का विकास हुआ। यूरोपीय विद्वानों के अनुसार आरंभिक भूगोल के विकास में यूनानी तथा रोमन विद्वानों का उल्लेखनीय योगदान रहा है। अतः प्राचीन काल में यूनानी तथा रोमन विद्वानों द्वारा भौगोलिक ज्ञान के विकास की अवधि को "प्राचीन शास्त्रीय काल" माना जाता है। थेल्स, अनेग्जीमैंण्डर, हिकेटियस, हैरोडोटस, अरस्तू, इरेटोस्थनीज, हिप्पार्कस, पोसिडोनियस, स्ट्रैबो, टालमी, प्लिनी आदि प्राचीन शास्त्रीय काल के प्रमुख भूगोलवेत्ता थे।

18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध (1760–1860 ई०) तक की समयाविधि को आधुनिक शास्त्रीय काल माना जाता है। इसमें भौगोलिक ज्ञान को संगठित करके जर्मन भूगोलवेत्ताओं ने भूगोल का विकास एक क्रमबद्ध विज्ञान के रूप में किया। अलेक्जेण्डर वान हम्बोल्ट ओर कार्ल रिटर इस काल के प्रमुख भूगोलवेत्ता थे।

2.9 यूनानी (ग्रीक) भूगोलवेत्ता

अपने समय में ग्रीक विद्वान ज्ञान की कई शाखाओं में अग्रणी थे जो खगोल विज्ञान ज्यामिति तथा गणित

की अवधारणाओं को मिस्रवासियों, लोगों से प्राप्त किया। प्रारम्भिक काल में भौगोलिक ज्ञान का प्रसार ग्रीक के आस–पास तथा एजियन सागर के पास के देशों तथा द्वीपों तक केन्द्रित था। ग्रीक लोगों में तार्किक एवं वैज्ञानिक अभिरुचि, बहुमुखीप्रतिभा, जिज्ञासु प्रवृत्ति, कुशाग्र मस्तिष्क पाये जाते थे। इन्हीं गुणोंके कारण ग्रीक लोगों ने अपने देश तथा भ्रमणितदेशों की विशेषताओं का विवरण रेखाकित किया क्योंकि फोनेसिया के लोगों की भाँति इनकी छिपाऊ प्रवृत्ति नहीं थी। एजियन सागर के दोनों आर अवस्थित होने के कारण भौगोलिक अध्ययन के लिए अनुकूल दशायें थीं। यहाँ की भौम्याकृति तथा प्राकृतिक लक्षणों में वैभिन्नता के कारण भूगोल की वृद्धि एवं विकास पर व्यापक प्रभाव पड़ा। वास्तव में ग्रीक एक पहाड़ी एवं ऊबड़–खाबड़ देश है। शीतकाल में इसकी अधिकांश चोटियाँ हिमाच्छादित रहती हैं। अधिकांश नदियाँ पर्वतीय क्षेत्रों से निकलकर मैदानी क्षेत्रों में प्रवाहित होती हैं। यहाँ उनेक जल–संयोजक हैं जो उच्च, टेढ़ी–मेढ़ी तटरेखाओं के साथ घुसी हुई हैं। ऐसे प्राकृतिक परिवेश में रहते हुए ग्रीक लोगों ने भूआकृति विज्ञान, जलवायु विज्ञान तथा सागर विज्ञान के ज्ञान का व्यापक विकास किया। इसके होते हुए यहाँ के लाइमस्टोन भौम्याकृति में अनेक नदियाँ लुप्त हो जाती हैं जो आंतारिक मार्ग से प्रवाहित होती हुई पुनः धरातल पर आजाती हैं। निर्बल क्षेत्र में अवस्थित होने के कारण ग्रीक में भूकम्प कम्पन भी कभी–कभी महसूस किए जाते हैं।

500 से 300 इ0 पु0 के बीच ग्रीक साम्राज्य का विस्तार भूमध्य सागर तथा युक्साइन (काला सागर) के पश्चिम भागों में हुआ। 500. ई0 पूं0 में युक्साइन पर अपनी अवस्थिति तथा अधिवासों के कारण मिलेटस भौगोलिक अध्ययन के लिए प्रमुख केन्द्र था। पृथ्वी के विभिन्न भागों के पर्यावरण और उनके निवासियों की जीवन पद्धति पर वर्णनात्मक लेखन का आरंभ यूनान में नौवीं शताब्दी ईसा पूर्व में हो गया था। तत्कालीन महाकवि होमर की दो काव्य रचनाओं में महत्वपूर्ण भौगोलिक वर्णन मिलंते हैं। इसके पश्चात के वर्षों में थेल्स, अनेग्जीमेण्डर, हेकैटियस, हेरोडोट्स, अरस्तू, थियोफ्रेस्टस, इरेटोस्थनीज, पोलीबियस, हिप्पारचुस, पोसिडोनियस आदि प्रमुख यूनानी विद्वानों ने भौगोलिक ज्ञान को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अग्रांकित पंक्तियों में इन यूनानी विद्वानों के योगदानों की संक्षिप्त चर्चा की गयी है।

2.9.1 होमर–

प्राचीन काल में भूगोल सम्बन्धी विचारधाराओं को प्रस्तुत करन का श्रेय महाकवि होमर को है, जिन्होंने ईसा पूर्व नवीं शताब्दी में इलियड तथा ओडेसे उत्कृष्ट महाकाव्यों में उस समय के ज्ञात सागर के ऐतिहासिक भूगोल से सम्बन्धित ज्ञान को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। होमर का विश्वास था कि पृथ्वी की आकृति गोलाकार सागर–सरिता से आवृत्त है। आकाश, जिसका विस्तार पृथ्वी के बराबर है, एक ठोस नतोदर धरातलीय आकार का है और वह लम्बे–लम्बे खम्भों पर टिका हुआ है। सूर्य, पृथ्वी को आवृत्त किए हुए सागर–सरिता से उदय होता है और अस्त होते समय उसी में डूब जाता है तथा तारे भी उसी प्रकार से अनुसरण करते हैं।

होमर ने विभिन्न दिशाओं से प्रवाहित होने वाली पवनों का नामकरण भी किया है। पूरब से प्रवाहित होने वाली उष्ण एवं मन्द पवन को यूरस, पश्चिम से प्रवाहित होने वाली भयानक, सुगन्धित एवं प्रचण्ड पवन को जीफरस, उत्तर से आने वाली तेज एवं ठण्डी पवन को बोरेस तथा दक्षिण से प्रवाहित होने वाली पवन, जो प्रगामी झंझावात पवन होती है, नोट्सनाम दिया है, जो कभी आर्द्र तथा कभी प्रचण्ड होती है। कुछ सागरों एवं स्थलखण्डों के नाम भी उसकी कविताओं में मिलते हैं। परन्तु होमर द्वारा एशिया अफ्रीका तथा यूरोप आदि महाद्वीपों के नाम नहीं दिये गये हैं।

2.9.2. थेल्स–

थेल्स, एजियन सागर के पूर्वी तट पर मेंडेयर्स नदी के मुहाने पर स्थित मिलेट्स नगर का निवासी था। थेल्स का समय सातवीं एवं छठी शताब्दी ई0 पू0 था। वह पहला ऐसा यूनानी विद्वान माना जाता है जिसने पृथ्वी को नापने और पृथ्वी की सतह पर स्थानों की स्थिति निर्धारित करने का प्रयास किया था। थेल्स स्वयं एक सफल व्यापारी था। व्यापार के सिलसिले में उसने मिस्र, यूनान तथा निकटवर्ती भूमध्यसागरीय प्रदेशों की यात्रायें की थीं तथा वहाँ के लोगों से मिलकर कोण–मापन, गणित, ज्यामिति एवं खगोलशास्त्र का अध्ययन किया था। थेल्स को यूनान के प्राकृतिक विज्ञान तथा दर्शनशाख का जनक माना जाता है। वह प्रथम विद्वान था जिसने भूगोल शब्द का प्रयोग न करते हुए इसके सम्बन्ध में व्यवस्थित विचार प्रकट किये थे। वर्तमान समय में उसकी रचनाओं की अनुपलब्धता के कारण उसके भौगोलिक कार्यों एवं चिन्तन का स्पष्ट अनुमान सम्भव नहीं है। किन्तु तात्कालिक विवरणों से पृथ्वी, उसकी आकृति, गति, जल–थल वितरण, नील नदी का उद्भव क्षेत्र, डेल्टा प्रदेश, उसकी बाढ़

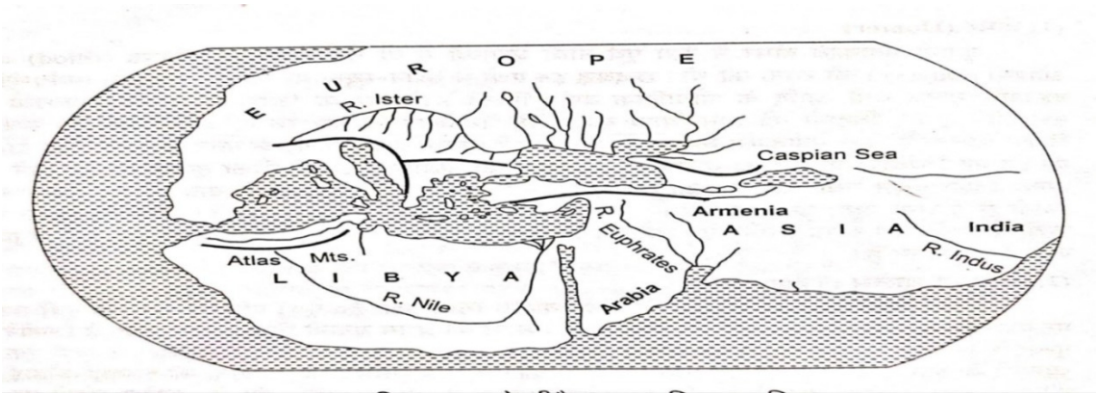
तथा प्रभाव आदि महत्वपूर्ण प्रकरणों पर उसके विचारों का पता चलता है। थेल्स ने पृथ्वी की कल्पना पानी में तैरती एक तश्तरी के रुप में की थी। थेल्स का मानना था कि विश्व का मूल आधार जल है और जल–गति के कारण ही भूकम्प आते हैं। थेल्स को ग्रहण–क्रिया का भी ज्ञान था। उसने 28 मई 585 ई0पू0 के सूर्यग्रहण की चमत्कारिक भविष्यवाणी किया था तथा सूर्य, चन्द्रमा एवं पृथ्वी की गतियों को स्वीकार करते हुए सूर्य एवं चन्द्रमा के प्रकाश के सम्बन्ध में भी विचार व्यक्त किया था। वे पृथ्वी को ब्रहमाण्ड के मध्य स्थित मानते थे। उन्होंने विश्व की उत्पत्ति और नक्षत्रों के सम्बन्ध में एक पुस्तक भी लिखा था और समस्त भूमण्डल को पाँच जलवायु प्रदेशों में विभक्त करने का अग्रणीय कार्य किया था।

2.9.3 अनेग्जीमेण्डर–

अनेग्जीमेण्डर (610–547 ई० पू०) प्रसिद्ध दार्शनिक थेल्स के शिष्य थे और इनका भी जन्म टर्की के तटवर्ती नगर मिलेट्स में हुआ था। वे ब्रहमांड विद्याके अच्छे ज्ञाता थे और उन्होंने अनेक खगोलीय अन्वेषण भी किया था। उन्होंने पृथ्वी की उत्पत्ति, आकृति तथा क्षेत्रफल आदि के विषय में विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया था। उन्होंने बताया था कि पृथ्वी एक ठोस पिण्ड है। इसकी आकृति गोलाकार है और यह ब्रह्मांड के मध्य में स्थित है। उन्होंने एक विश्व का मानचित्र भी बनाया था।

इसने पृथ्वी की उत्पत्ति, आकृति एवं आकार के बारे में अपने विचार प्रस्तुत किये थे। एनेक्सी मेण्डर के अनुसार पृथ्वी की उत्पत्ति एक अदृश्य पदार्थ से हुई है, जिसमें शीत व उष्ण दोनों गुण विद्यमान थे। यह अदृश्य पदार्थ कालान्तर में गोलाकार रुप में संघनित हुआ, जिसका केन्द्रीय भाग ठण्डा और बाह्म भाग उष्ण था। इस केन्द्रीय भाग से पृथ्वी एवं बाह्य भाग से वायुमण्डल की रचना हुई। इसी प्रकार एक अन्य उष्ण पिण्ड से सूर्य–चन्द्र व अन्य नक्षत्रों की रचना हुई। उन्होंने यह भी कहा कि पृथ्वी की परिधि से 27 गुनी दूरी पर सूर्य तथा 18 गुनी दूरी पर चन्द्रमा स्थित है, लेकिन उसके द्वारा बतलायी गयी यह दूरियां गलत हैं, फिर भी हम कह सकते हैं कि उसने गणितीय भूगोल के विकास में अपना योगदान दिया।

एनेक्सीमेण्डर को सूर्य–घड़ी जैसे एक बेबीलोनियन यन्त्र नोमोन से यूनानवासियों को परिचित कराने का श्रेय है। इस यन्त्र में लम्बवत् एक दण्ड समतल धरातल पर सीधा खड़ा करने से उसकी छाया के दिशा परिवर्तन तथा उस छाया की परिवर्तनशील लम्बाई के माप के आधार पर सूर्य की विभिन्न स्थितियों का तथा उस स्थान की उत्तर–दक्षिण दिशा का सही– सही निर्धारण किया जाता है। दण्ड की परछाईं की लम्बाई दोपहर में (ठीक बारह बजे) न्यूनतम होती है अर्थात उस समय सूर्य वहां सबसे समीप होता है। अतः यह छाया रेखां ही उस स्थान की शुद्ध देशान्तर हुई।



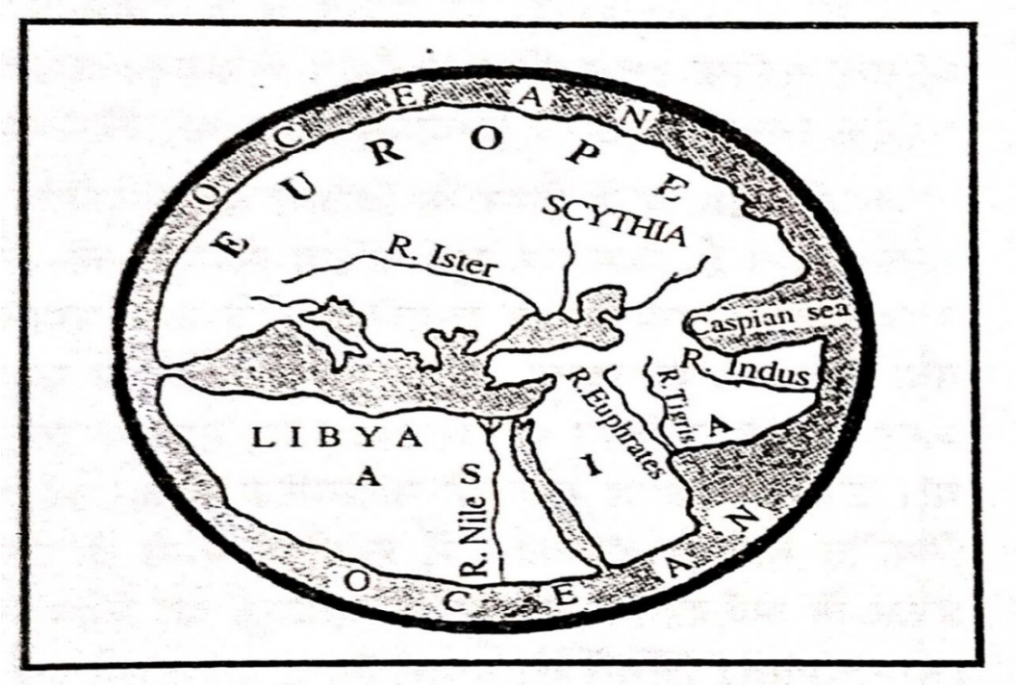
चित्र 1.1 अनेग्जीमेण्डर का विश्व मानचित्र

अनेग्जीमेण्डर अग्रगामी मानचित्रकार थे। उन्होंने विश्व का मानचित्र तैयार करने में मापक का प्रयोग किया था। उन्होंने अपने विश्व मानचित्र में यूनान को मध्य में रखा था। यह मानचित्र गोलाकार था जिसके चारों ओर सागर सरिता प्रदर्शित की गयी थी। अनेग्जीमैण्डर को गणितीय भूगोल का संस्थापक माना जाता है। उन्होंने भूमध्य सागर के तटीय देशों का भी मानचित्र बनाया था।

2.9.4 हिकेटियस–

हिकेटियस मिलेट्स का निवासी था। इसके प्रारम्भिक जीवन के बारे में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है।

इसकी शिक्षा–दीक्षा मिलेट्स के आयोनियन संस्थान से हुई थी। भूगोल के विषय में सुस्पष्ट विवरण एवं विश्लेषण प्रस्तुत करने में प्रथम भूगोलविद् के साथ–साथ वह एक चतुर कूटनीतिज्ञ व राजनेता था। उसे यूनानी गद्य का प्रथम लेखक माना जाता है। हिकेटियस में वातावरण के तथ्यों के प्रत्यक्ष अवलोकन की लालसा थी, इसीलिए उसने यूनानी साम्राज्य के अधिकांश भागों की यात्रा की थी। उसने यूनानी साम्राज्य तथा दुरस्थ क्षेत्रों की सूचनाओं को एकत्र करके उन्हें वर्गीकृत करने का प्रयास किया था। ईसा पूर्व 520 में उसकी प्रसिद्ध पुस्तक जस–पीरियड्सअर्थात पृथ्वी का वर्णन दो खण्डों में प्रकाशित हुई थी, जो उस समय की प्रथम संश्लेषित ज्ञान की क्रमबद्ध प्रस्तुति मानी जाती है तथा इसीलिए हिकेटियस को भूगोल का पिता कहा जाता है। इस ग्रन्थ में उसने निवास्य विश्व जिसमें भूमध्यसागर, विशेषकर एजियन सागर के निकट र्ती क्षेत्रों का प्रादेशिक विवरण सामान्य सर्वेक्षण के आधार पर किया है। इस प्रकार प्रादेशिक भूगोल की नींव उसी के द्वारा रखी गयी। हिकेटियस के इस ग्रन्थ में समुद्र तट के आन्तरिक क्षेत्रों में निवास वाली जातियों का भी वर्णन मिलता है। दुर्भाग्य यह है कि इस पुस्तक के अधिकांश भाग सुरक्षित नहीं हैं।



चित्र 1.2 हिकेटियस का संसार– मानचित्र

पीरियड्स के प्रथम खंड यूरोप का और दूसरे खण्ड मे अफ्रीकाएशिया का वर्णनकिया गया था। हिकेटियस ने अपनी पुस्तकों में सात विश्व का सामान्य सर्वेक्षण प्रस्तुत किया था और भूमध्य सागर विशेषरूप से एजियन सागर के समीपवर्तीस्थानों और प्रदेशों का तथ्यपूर्ण वर्णन किया था। हिकेटियस ने अपने नगर मिलेटस का मानचित्र भी बनाया था किन्तु पृथ्वी की आकृति के विषय –उनकी धारणा आयोनियन दार्शनिकों की परम्परागत विचारधारा से प्रभावित थी। वे पृथ्वी को गोलाकार और सागर सरिता से घिरा हुआ मानते थे जिसके मध्य में यूनान की स्थिति है। उन्होंने पृथ्वी को दो भागों विभक्त किया था उत्तर की ओर यूरोप महाद्वीप और दक्षिण की ओर अफ्रीका एवं एशिया महाद्वीप।

2.9.5 हेरोडोटस (485–425 ई० पू०)–

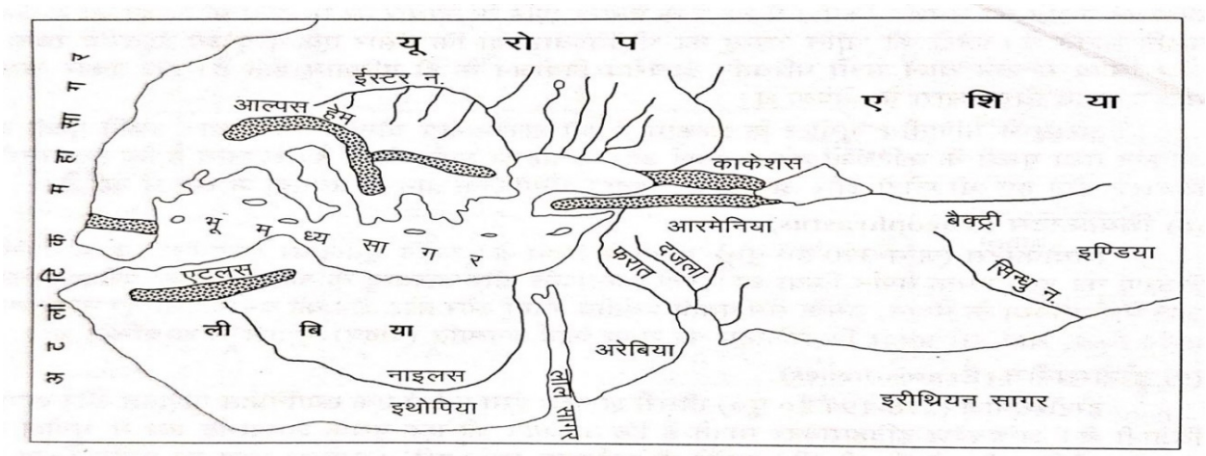
हेरोडोटस एक प्रसिद्ध यूनानी भूगोलवेत्ता थे जिन्होंने भूमध्य सागर और काला सागर के समीपवर्ती देशों की यात्राएं किया था और उनका भौगोलिक वर्णन किया था। हेरोडोटस प्रथम व्यक्ति थें जिन्होंने अफ्रीका और एशिया महाद्वीपों को लाल सागर द्वारा विभाजित बताया था। हेरोडोटस की प्रसिद्धि एक इतिहासकार के रूप में है। उन्होंने फारसी साम्राज्य का इतिहास लिखा है जिसमें इतिहास पर भूगोल के प्रभाव को दर्शाया गया है। यात्रा करते समय हेरोडोट्स का ध्यान प्राकृतिक दृश्यों पर केन्द्रित रहता था और वे उन दृश्यों से इतने प्रभावित होते थे कि उन्होंने भौगोलिक दृश्य सत्ता का विस्तारपूर्वक वर्णन किया हैउसकी रचनायें ऐतिहासिक भूगोल की उत्कृष्ट उदाहरण हैं। उसने पृथ्वी तल का वर्णन करते समय उस क्षेत्र की जनजातियों, उनके रहन–सहन तथा जीवनचर्या

का रोचक वर्णन किया है, जिस कारण मानव विज्ञानी उसे अग्रणी प्रजाति–विज्ञानी मानते हैं।

हेरोडोट्स एक महान यात्री था, उसने ई0 पू0 464 से 447 तक ज्ञात विश्व के अधिकांश भागों का भ्रमण किया था। पश्चिम में उसने इटली तक की यात्रा की थी और मारमारा तथा बासफोरसजलसंयोजकों से होते हुए युगजियन सागर पहुँचा था। युगजियन सागर को पार करके परशियन साम्राज्य पहुँचा तथा कुछ समय सूसातथा. बेबीलोन में निवास किया तथा उस समय से सूसा से सार्डिल तक के राजमार्ग का भी अवलोकन किया। वह एशिया माइनर के त्रवॉंती क्षेत्रों, एजियन सागर के द्वीपों , यूनान के प्रमुख प्रदेशों तथा बैंजाटियन व श्रास के समीपवर्ती तटों से भलीभांति परिचित था। उसने टायरतथाकाल्विसकी भी यात्राएं की थीं। दक्षिण की ओर उसने मिस्र की कई बार यात्राएं की थीं तथा एलीफन्टाइन झील (वर्तमान आस्वान) तक पहुँचा था। लीबिया में सिरीन (एजलाहो के धार्मिक स्थलों का उसने दिग्दर्शन किया था, जिसका उसने वर्णन किया है।

हेरोडोटस ने होमर के विचारों का अनुसरण करते हुए पृथ्वी को एक चपटी तश्तरी के समान माना है जिस पर सूर्य पश्चिम से पूर्व की ओर एके चाप में यात्रा करता है। दर्शन के पाइथोगेरियन सम्प्रदाय से सम्बन्धित होने के कारण उसने स्थल के वितरण, ईस्टरतथा नील नदी के उदगम, प्रवाह दिशा एवं प्रवाह मार्ग में सममितीय साम्यता (सादृश्यता) स्थापित करने का प्रयास किया है। हेरोडोटस का नील के उद्गम तथा उसके ऊपरी मार्ग का ज्ञान दोषपूर्ण थास उसका ब्रह्माण्ड सम्बन्धी पारस्परिक विचार भी गलत था। उसका विचार था कि सूर्य अपने नियमित मार्ग से शीतकाल में प्रवाहित पवनों के दबाव में दक्षिण की ओर चला जाता है। इसप्रकार के अवैज्ञानिक विश्वासों के बावजूद वह प्रथम विद्वान था जिसने विश्व मानचित्र पर याम्योत्तर खींचने का प्रयास किया था। उसने इस याम्योत्तर को नील नदी के मुहाने (मिस्र) से सिलिशिया (टर्की का दक्षिणी तट), सिनोप प्रायद्वीप तथा ईस्टर के मुहाने से होते हुए खींचा था। उसका विचार था कि ये सभी क्षेत्र उत्तर–दक्षिण सीधी रेखा में स्थित हैं जिसे यामोत्तर माना जा. सकता है, लेकिन इस तथ्य को उसने आगे नहीं बढ़ाया।

चित्र 1.3 हेरोडोट्स के अनुसार विश्व



भारत तथा यहाँ के निवासियों के बारे में हेरोडोट्स का वर्णन बहुत रोचक है। उसने बताया कि भारतवासी बहुत धनी हैं। यहाँ सोना नदी की रेत से एवं खानों से निकाला जाता है। भारत में एक ऐसा पौधा पैदा किया जाता है जिस पर ऊन जैसा फूल आता है, इससे बुने हुए वस्त्रभारतवासी पहनते हैं। यहाँ के लोग लम्बे प्रकार का सरकण्डा (बांस) उत्पन्न करते हैं जिससे ये लोग धनुष बनाते हैं। सिन्धु के पूर्व का भाग शुष्क है। उसे भारत के केवल केस्पाटीरस नगर की जानकारी थी। एशिया महाद्वीप की पूर्वी सीमा तथा पूर्व में सागर के अस्तित्व की जानकारी उसे नहीं थी।

अफ्रीका महाद्वीप (लीबिया) के बारे में भी हेरोडोट्स को पर्याप्त जानकारी थी। उसने सर्वप्रथम अरब की खाड़ी (लाल सागर) को एशिया और अफ्रीका महाद्वीप की सीमा बताया जबकि इसके पूर्व तक नील नदी को सीमा कहा जाता था। हेरोडोट्स का भूमध्यसागर के दक्षिणी तट का ज्ञान भी उतना ही स्पष्ट था जितना कि उसके उत्तरी तट के बारे में था।

2.9.6 प्लेटो –

प्लेटो (428–348 ई० पू०) यूनान के शीर्षर्थ दार्शनिकों में से एक थे। भौगोलिक विचारों के इतिहास में इनका

महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वे निगमनात्मक वैचारिक पद्धति के समर्थक थे। उन्होंने पृथ्वी को ईश्वरीय रचना माना और बताया कि पृथ्वी का आकार एक सम्पूर्ण पिण्ड होना स्वाभाविक है। प्लेटो के विचार से ईश्वर ने विश्व की रचना मनुष्य के उपयोग के उद्देश्य से की है और पृथ्वी का निर्माण मनुष्य के कार्य स्थल और उसके गृह प्रदेश के रूप में हुआ है। उनके अनुसार पृथ्वी ईश्वरी योजना का केन्द्र है जिसके चारों ओर आकाशीय पिण्ड चक्कर लगाते हैं। पृथ्वी की गोलाकार आकृति के विषय में प्लेटो का ज्ञान पूर्ववर्ती प्रचलित धारणाओं पर आधारित था और इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हेतु उन्होंने कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया था।

प्लेटो के मूल सिद्धान्त यह थे कि विश्व में हर वस्तु मुलतः सर्व प्रकार पूर्ण एवं आदर्श स्थिति में होती है। किसी तत्त्व का वास्तविक स्वरूप निगमनात्मक तक समझा जा सकता है। इन्हीं सिद्धान्तों के आलोक में प्लेटो,पाइथागोरस द्वारा सर्वप्रथम छठी शताब्दी इ० पू० में प्रस्तुत इस परिकल्पना के समर्थक थे कि पृथ्वी चपटी नहीं वरन गोलाकार या अंडाकार है। क्योंकि यही ज्यामितिक स्वरूप पूर्णता कथोतक है। पृथ्वी ईश्वर द्वारा मानव निवास स्थान के रूप में के स्थान के रूप में सर्व रूपेण पूर्ण बनाई गई है। यह ब्रह्मांड के मध्य में स्थित है तथा अन्य ग्रह इसके चतुर्दिक चक्कर लगाते हैं। मनुष्य इस पूर्णता को बिगाड़ने में सक्रिय हैं। प्लेटो ने इसके उदाहरण स्वरूप, यूनान में एंथेस के चतुर्दिक विस्तृत एटिका क्षेत्र की ओर इंगित किया जो पहले उर्वरक मिट्टी से परिपूर्ण था। उसके पर्वत वनाच्छादित थे।

2.9.7 अरस्तू –

प्रख्यात यूनानी विद्वान अरस्तू (384–322 ई० पू०) एक महान दार्शनिक होने के साथ ही एक राजनीतिशास्त्री, जीवविज्ञानी और भूगोलवेत्ता भी थे। प्लेटो के शिष्य अरस्तू ने प्लेटो से भिन्न आगमनात्मक अध्ययन पद्धति का समर्थन किया। वे तथ्यों के प्रत्यक्ष दर्शन के आधार पर सिद्धान्त प्रतिपादन को सर्वोत्तम पद्धति मानते थे। प्लेटो की भांति अरस्तू का भी विश्वास था कि संसार एक सोदुदेश्य ईश्वरीय रचना है नियोजन के ही परिणाम होते हैं। इस प्रकार अरस्तू और विश्व में होने वाले सभी परिवर्तन ईश्वरीय सोददेश्यवाद विचारधारा के पोषक थे। वह एक महान यात्री था उसने 38 वर्ष से 50 वर्ष की आयु के बीच एजियन सागर, काला सागर व कैस्पियन सागर के तटवर्ती भागों, इटली, आयोनिया एवं उत्तरी अफ्रीका के तटवर्ती भागों की यात्रा किया। ई0 पू0 334 में लिसियम में एक दार्शनिक संस्था की स्थापना किया। वह सिकन्दर महान का शिक्षक रहा। उसने अपने विद्वातपूण विचारों से सिसली के शासक एवं सिकन्दर व उसके पिता को प्रभावित किया। अरस्तू ने उस समय तक विकसित ज्ञान की सभी शाखाओं पर अपने तर्कसंगत विचार प्रस्तुत किये। उसके विचार समालोचनात्मक एवं इतने विद्वतापूर्ण माने कि उसे विज्ञान का पिता कहा जाता है। उसने अपने विशाल ज्ञान के आधार पर 40 ग्रन्थों की रचना की थी जिसमें इतिहास, भूगोल, राजनीति, दर्शन, नीतिशास्त्र, आध्यात्म विज्ञान, भौतिकी, रसायन, जीवविज्ञान, जलवायु विज्ञान आदि विषयों की सामग्री प्राप्त है।

अरस्तू ने भूगोल विषय पर अलग से कोई ग्रन्थ नहीं लिखा है किन्तु भूगोल सम्बन्धी विवरण उसके दो ग्रन्थों–ब्रह्माण्ड वर्णनतथा मौसम में मिलते हैं। प्रथम ग्रन्थ में ब्रह्माण्ड, ग्रह, नक्षत्र, उनकी गतियों एवं आकृतियों के साथ प्राकृतिक भूगोल का वर्णन किया गया है, द्वित्तीय ग्रन्थ में जलवायु तथा मौसम विज्ञान के बारे में महत्वपूर्ण तथ्यों का विवेचन है। अरस्तू ने पृथ्वी की आकृति को गोलाकार बताया तथा उसके गोलीय स्वरुप के बारे में अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये जो इस प्रकार हैं–चन्द्रमा की कलाओं तथा चन्द्रग्रहण के समय चन्द्रमा पर पड़ती हुई पृथ्वी की छाया गोलाकार दिखाई देती है। उत्तर से दक्षिण की ओर जाने पर नक्षत्र परिवर्तित होते जाते हैं। सभी आकाशीय पिण्ड एक–दूसरे के आकर्षण बल पर टिके हुए हैं, जिनके अन्तर्सम्बन्धित आकर्षण तप के कारण भी पृथ्वी का स्वरुप भी गोलाकार होना चाहिए। चूंकि सभी आकाशीय पिण्डों में सभी ग्रहों एवं नक्षत्रों की आकृति गोलाकार है, अतएव पृथ्वी का स्वरुप भी गोलाकार होना चाहिए।

अरस्तू ने यह भी बताया कि पृथ्वी का आकार अन्य ग्रहों से छोटा है। यह ग्रह पृथ्वी से बहुत अधिक दूरी पर स्थित है तथा पृथ्वी का चक्कर लगाते हैं। अरस्तू ने स्वयं पृथ्वी की परिधि का कोई परिकलन नहीं किया था, फिर भी उसने पृथ्वी की परिधि 4 लाख स्टेडिया बताया। की गणना उस काल में ई0 पू0 370 में यूडोक्सस ने संकेन्द्रीय वृत्त खींच कर की थी।

अरस्तू ने पवन की दिशाओं तथा काल के सम्बन्ध में वर्णन किया है जिसमें पवनों की चार दिशाओं के स्थान पर आठ दिशाओं के आधार पर हवाओं के नामकरण का उल्लेख है। इसी वायु–क्रम के आधार पर एथेन्स में पाएऐसी का निर्माण किया गया था जो आठ भुजा वाला विशाल स्तम्भ जैसा है। प्रत्येक भुजा पर चित्र द्वारा

दिशा और विशिष्ट मौसम के लक्षण बताये गये हैं। अरस्तू ने भूकम्प तथा ज्वालामुखी के कारणों पर भी प्रकाश डाला है। इन दोनों प्रक्रमों के लिए भूगर्भ से निरूसृतहोने बाली गैसों के प्रभाव को प्रमुख कारण माना है। अरस्तू के विचारों में नियतवाद झलकता है। उसने प्राकृतिक कारकों के मानव के क्रियाकलापों पर प्रभाव का भी वर्णन किया हैं।

2.9.8 सिकन्दर महान (356–323 ई0 पू०)

सिकन्दर एक महान अन्वेषक के रुप में जाना जाता है। उसके द्वारा की गयी विजय यात्रायें भौगोलिक दृ दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण थीं। सिकन्दर का जन्म 356 ई0पू0 में हुआ था। तीन वर्ष (343–340 ई0 पू०) तक उसने अरस्तू से शिक्षा ग्रहण की थी। बीस वर्ष की आयु में वह मकदूनिया का शासक बना। उसकी विजय यात्रा का प्रथम चरण 335 ई0 पू0 में प्रारम्भ हुआ, लेकिन वास्तविक विजय यात्रा 334 ई0 पू0 के बसन्त काल में शुरू हुई, जब उसने हेलिसपोण्ट पार कर एशिया में प्रवेश किया तथा मध्यवर्ती टर्की एवं परशियन साम्राज्य के कुछ भागों पर आक्रमण व अधिकार कर के दक्षिण की ओर भूमध्य सागर के सहारे बढ़ता रहा और मिस्रपहुँचा। उसने 332 ई0 पू0 में नील नदी के मुहाने पर सिकन्दरिया बन्दरगाह की स्थापना की जो बाद में चिरसम्मत काल का एक महत्वपूर्ण बौद्धिक एवं व्यापारिक नगर बना रहा। यहीं से सिनाई होते हुए पुनः एशिया में प्रवेश किया। ,अरबेला (मेसोपोटामिया) के युद्ध में फारस के सम्राट दारा को पराजित किया तथा उसका पीछा करता हुआ एलबुर्ज और कैस्पीयन सागर के तट तक पहुँचा। तत्पश्चात पूर्व की ओर आगे बढ़ते हुए 327 इ0 पू0 बसन्त ऋतु में हिन्दुकुश व खैबर दर्रा पार किया। सिन्धु नदी को पार कर उससे पंजाब अर्थात पांच नदियों–– सतलज, व्यास, रावी, चिनाब वझेलम के मैदान में प्रवेश किया। यह विश्वास कर कि वह बसे हुए विश्व की पूर्वी सीमा से कुछ दूरी पर है, वह आगे बढ़ना चाहता था, किन्तु उसकी सेना ने विद्रोह कर दिया और युनान वापस लौटने के लिए आग्रह किया। सिकन्दर ने अपने लौटने के लिए स्थलीय और समुद्री दोनों मार्गों को अपनाया तथा अपने सैनिक दल को तीन भागों में विभाजित किया। एक भाग का पका उसने संभाला तथा शुष्क मरुस्थल व मकरान तट से होता हुआ अनखोजे मार्ग से पूर्व निश्चित स्थल कार्मेनिया पहुंचा। दूसरा भाग कराटटेरस नामक सेनापति के नियंत्रण में मार्ग से पूर्व– निर्धारित कार्मेनिया नामक सैनिक छावनी पहुँचा। तीसरा भाग नियरकसके नेतृत्व में समुद्र मार्ग से रवाना हुआ। इनके पास एक दृढ़ नौसैनिक दस्ता था जो कि तट का सामान्य सर्वेक्षण करता हुआ तट से निकट रहते हुए मेसोपोटामिया के तट पर सिकन्दर द्वारा स्थापित चेरेकस बन्दरगाह से कार्मेनिया पहुंचा। सिकन्दर सूसा एवं इकबताना में एक वर्ष तक रहा। सूसा को उसने बेबीलोन साम्राज्य की राजधानी बनाने का निर्णय लिया। सिकन्दर की एक योजना नियरकस के नेतृत्व में समुद्री मार्ग से फारस की खाड़ी की खोज के बाद अरब प्रायद्वीप का चक्कर लगाते हुए अरब की खाड़ी (लाल सागर) के उत्तरी तट तक पहुँचने तक की थी। इस खोज का उसका उद्देश्य पूर्वी भूमध्य सागर का नील नदी से होकर सागर मार्ग द्वारा भारत एवं पूर्वी देशों से सीधा सम्बन्ध स्थापित करना था। लेकिन 323 ई0 पू0 में 32 वर्ष की अवस्था में बेबीलोन में उसकी मृत्यु हो गयी, जिससे उसकी सारी योजनायें अधूरी रह गयीं।

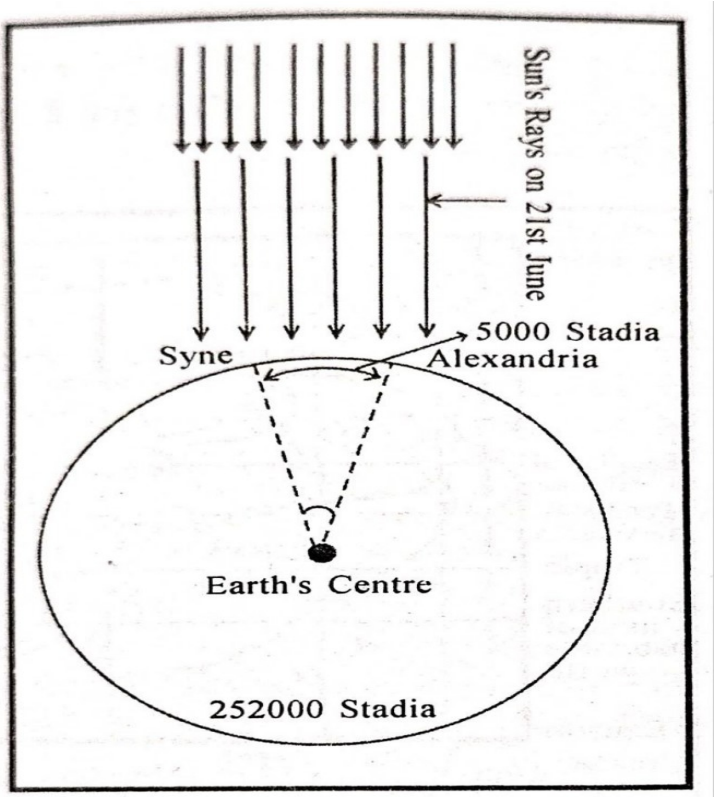
उसकी यात्रा से ही बेबीलोनिया, भारत व अलेक्जेण्डरिया आपस में सन्निकट होकर एक–दूसरे की सभ्यता से परिचित हुए। भारतीय खगोलशाखियों का यूनानी विद्वानों से सम्पर्क बढ़ा तथा दोनों देशों के दिद्वानों में विचारों का आदान–प्रदान हुआ। सुरक्षित पाये गये अभिलेखों एवं उसके यात्रा विवरणों से ज्ञात होता है कि सिकन्दर ने ऐतिहासिक, प्रादेशिक एवं सामान्य भूगोल के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

2.9.9 थियोफ्रेस्ट्स –

थियोफरेस्ट्स महान दार्शनिक अरस्तू का का था जिसका समय 372 ई0 पू0 माना जाता है। उसने अरस्तू के द्वारा किये गये भौगोलिक कार्यो को आगे बढ़ाने का सतत प्रयास किया तथा जलवायु विज्ञान के सम्बन्ध में अपने स्वतन्त्र विचार प्रस्तुत करते हुए जलवायु तथा वनस्पति के सम्बन्धों का विश्लेषण किया। इतना ही नहीं, शैलों एवं मिट्टियों का अध्ययन भी उसके द्वारा सतत किया गया। थियोफ्रेटस ने पौधों का इतिहास नामक ग्रन्थ की रचना की और मैसीडोनिया के मैदानी क्षेत्र, सीमावत्ती पर्वतीय प्रदेश तथा क्रीट की वनस्पति का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत किया। वितरण का तुलनात्मक वर्णन किया था। उन्होंने वनस्पति और जलवायु के अंतर्सबंधों का परीक्षण किया और मेसीडोनिया के मैदान, उसके समीपवर्ती पर्वतीय भागों और क्रीट द्वीप की वनस्पतियों का तुलनात्मक वर्णन किया था। इस प्रकार थियोफ्रेस्टस का मुख्य कार्य वनस्पति (पादप) भूगोल से सम्बन्धित था।

2.9.10 इरेटोस्थनीज (276–94 ई० पू०)

इरेटोस्थनीज तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में एक ख्यातिप्राप्त गणितज्ञ और खगोल विज्ञानी थे। अधिकांश इतिहासकार मानते हैं कि अध्ययन की एक पृथक शाखा के रूप में भूगोल की स्थापना इरेटोस्थनीज ने ही की थी। उन्होंने ही सर्वप्रथम "ज्योग्राफी" (भूगोल) शब्द का प्रयोग किया था जिसका अर्थ है पृथ्वी का वर्णनात्मक अध्ययन। उन्होंने "ज्योग्राफिका" नामक पुस्तक लिखी थी जो प्रथम शास्त्रीय पुस्तक मानी जाती है। इरेटोस्थनीज मिस्र के अलेक्जण्डरिया (सिकन्दरिया) स्थित विश्व के बृहत्तम संग्रहालय के पुस्तकालयाध्यक्ष थे जिन्होंने उस पद पर निरन्तर चालीस वर्षों तक कार्य किया। उनके कुशल नेतृत्व में यह संग्रहालय खगोलीय अध्ययन का एक प्रतिष्ठित केन्द्र बन गया था। उस समय भूगोल और खगोल विज्ञान प्रसस्पर सम्बद्ध थे और संयुक्त अध्ययन माने जाते थे। इरेटोस्थनीज ने अपनी पुस्तक में पृथ्वी को पाँच जलवायविक कटिबंधों में विभक्त किया है––(1) उष्ण कटिबंध, (2) उत्तरी शीत कटिबंध, (3) दक्षिणी शीत कटिबंध, (4) उत्तरी शीतोष्ण कटिबंध, और (5) दक्षिणी शीतोष्ण कटिबंध।



चित्र 1.4 इरेटोस्थनीज द्वारा पृथ्वी की परिधि का मापन

इरेटोस्थनीज ने बताया था कि विश्व का विस्तार उत्तर–दक्षिण की तुलना में पश्चिम– पूर्व अधिक है। उसकी गणना के अनुसार अटलांटिक महासागर से पूर्वी सागर के बीच की दूरी 78000 स्टेडिया (7800 मील) तथा सिनोमोनक्षेत्र से थ्यूल के बीच की अधिकतम दूरी 38000 स्टेडिया (3800 मील) है। उसने निवास्य योग्य विश्व को थ्यूल से ताप्राबोन (श्रीलंका) और अटलांटिक महासागर से बंगाल की खाड़ी तक माना था। उसे भूमध्यसागर की सीमा पर स्थित स्पेन के तट तथा गाल प्रदेश की काफी सही जानकारी थी किन्तु यूरोप के शेष भाग के बारे में उसे अल्प ज्ञान था। एशिया के सम्बन्ध में उसका ज्ञान सिकन्दर महान के यात्रा–वृतान्त तथा अभिलेखकर्त्ताओं के ऊपर निर्भर था। वह इस तथ्य से परिचित था कि टारस पर्वत आरमीनिया एवं कर्दिस्तान से तथा एल्बर्ज इरेटोस्थनीज ने अपनी पुस्तक में निवास्य पृथ्वीका वर्णन किया है जिसमें उसने विश्व को एशिया, यूरोप तथा लीबिया (अफ्रीका) उसने उष्ण कटिंबन्ध 24° उत्तरी अक्षांश से 24° दक्षिणी अक्षांश के बीच प्रसरित माना है। शीत कटिबन्ध को ध्रुवों से 24° अक्षांश (उत्तर व दक्षिण) तक विस्तृत बताया है। उष्ण तथा शीत कटिबन्धों के बीच शीतोष्ण कटिबन्ध स्थित बताया है।

2.9.11 हिप्पार्कस (162–125 ई0 पू0.)

हिप्पार्कस आयोनिया प्रदेश का निवासी था। वह गणित, खगोल एवं भूगोल विद्या का विद्वान था। इरेटोस्थनीज की मृत्यु के पश्चात हिप्पार्कस को सिकन्दरिया के पुस्तकालयाध्यक्ष के पद पर नियुक्त किया गया था। यद्यपि उसके जन्म तथा मृत्यु के समय के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद किन्तु यह निश्चित है कि 140 ई0 पू0 में वह इस पुस्तकालय में कार्यरत था।

हिप्पार्कस ने विषुव की खोज की थी। अक्षांश–देशान्तर के आधार पर किसी भी स्थान का निर्धारण करने वाला वहें प्रथम विद्वान था। उसने 129 ई0 पू० में तारों की एक सूची तैयार की थी जो उस समय की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। वह पहला विद्वान था जिसने असीरियन गणित के आधार पर वृत्त को 360 अंश में विभाजित किया था। उसने अक्षांश तथा देशान्तर रेखाओं का जाल भी खींचा था तथा विषुवत रेखा को पृथ्वी पर एक दीर्घवृत्त के रुप में परिकल्पित किया जो पृथ्वी को दो समान भागों में विभक्त करती है। याम्योत्तर रेखायें भी ध्रुवों पर एक साथ मिलकर दीर्घवृत्त का निर्माण करती हैं। ध्रुवों की ओर अक्षांश रेखायें छोटी होती जाती हैं। हिप्पार्कस के अनुसार पृथ्वी अपना एक चक्कर 24 घण्टे में पूरा करती है।

2.9.12 पोसीडोनियस (135–150 ई0 पू0.)

पोसीडोनियस मुख्यतः एक भौतिक भूगोलवेत्ता थे जिन्होंने स्पेन के बंदरगाह गेडीज के तट पर ज्वार–भाटा की खोज की थी और सारडीनिया द्वीप से दूर समुद्र की गहराई नापने का कार्य किया था। उन्होंने मैदानों के निर्माण और क्राउन क्षेत्र (दक्षिणी फ्रांस) में बजरियों के निर्माण प्रक्रिया का भी अन्वेषण किया था। उन्होंने ज्वार–भाटा का प्रेक्षण बड़ी सावधानी से किया था और निष्कर्ष निकाला था कि ज्वार की सर्वोच्च ऊंचाई पूर्णिमा और अमावश्या के आस–पास पायी जाती है। उन्होंने समुद्र विज्ञान की एक पुस्तक भी लिखा था। पोसीडोनियस ने पृथ्वी की परिधि का परिकलन किया था। उन्होंने रोड्स और अलेक्जण्डरिया स्थानों पर कोनोपस नामक तारे की क्षितिज पर ऊँचाई का प्रेक्षण किया था। उनके अनुसार ये दोनों स्थान एक ही याम्योत्तरपर स्थित थे। जलयान की यात्रा में लगने वाले समय के आधार पर उन्होंने दोनों स्थानों के बीच की दूरी का अनुमान लगाया था। उनके परिकलन के अनुसार पृथ्वी की परिधि 18000 मील थी जो वास्तविक परिधि की मात्रा 23 थी। अपने आकलन द्वारा उन्होंने यह भी अनुमान लगाया था कि यूरोप के पश्चिमी तट से पश्चिम की ओर जलयान द्वारा यात्रा करने पर भारत के पूर्वी तट पर पहुँचा जा सकता है। इसी आकलन के आधार पर कोलम्बस ने भारत की खोज में पश्चिम की ओर यात्रा की थी किन्तु पाया उसने अमेरिका। पोसीडोनियस की माप के आधार पर ही टालमी ने विश्व का मानचित्र बनाया था जिसमें पृथ्वी का आकार वास्तविक से छोटा दिखाया गया था।

2.10 रोमन साम्राज्य के भूगोलवेत्ता

1. स्ट्रेबो (64 ई0 पू0 .–20 ईस्वी .)

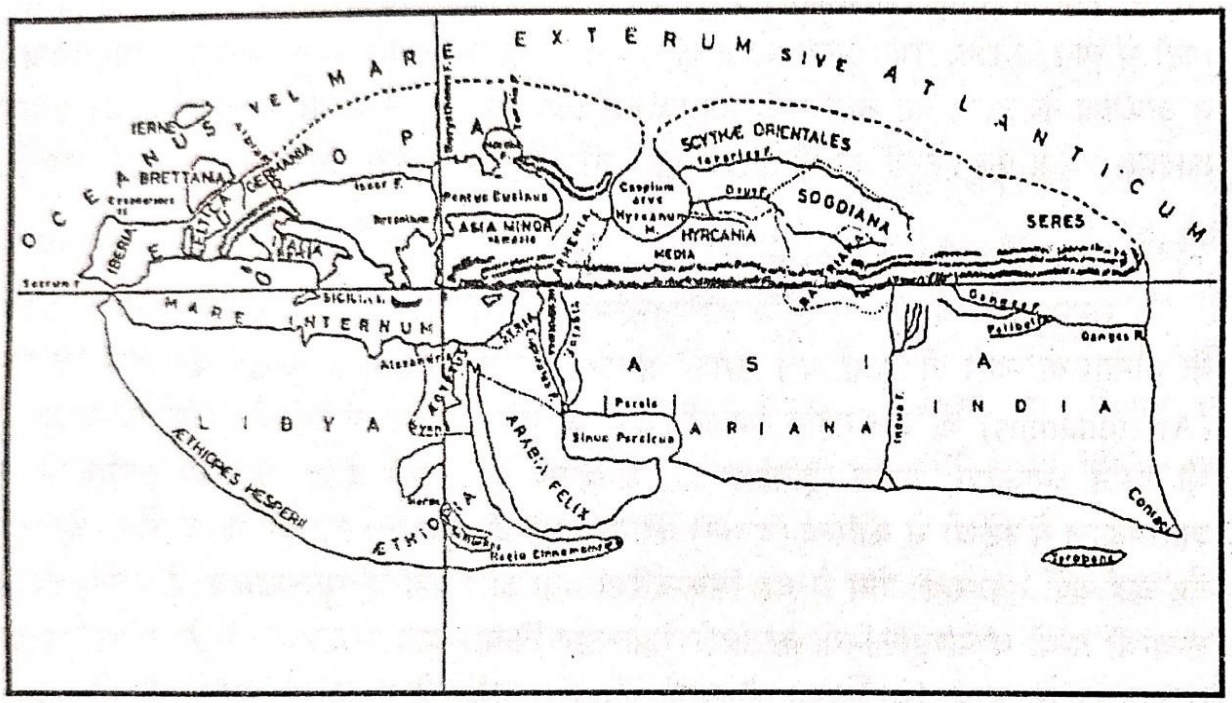
स्ट्रेबो का जन्म टर्की के पोण्टस प्रदेश के अमासिया नगर में हुआ था। उसकी प्रारम्भिक शिक्षा न्यासामें आरिस्टोडामस जो एक महान व्याकरणाचार्य थे, की देख–रेख में हुई थी। रोम एवं जेनेवा में भी उसने व्याकरण, दर्शन, इतिहास एवं धर्मशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की थी। आगस्ट्स के शासनकाल में स्ट्रेबो ने कोरिन्थ (यूनान) की यात्रा की थी तथा 29 ई0पू0 में वह रोम गया जहां वह कई वर्षों तक रहा। रोम से वह सिकन्दरिया गया और वहाँ के पुस्तकालय में भूगोल विषय सम्बन्धी ग्रंथोव पाण्डुलिपियों का विशेष अध्ययन किया। यहीं से उसने रोम के गर्वनर गालुसके साथ 24 ई0पू0 में सीन तक नील नदी में यात्रा की थी। उसने आर्मीनिया की सीमा से टिरहनियन (पाला) सागर के तट तक तथा युगजाइन सागर (काला सागर) से इथोपिया की सीमा तक यात्रायें की थीं। विभिन्न क्षेत्रों की यात्राओं एवं प्राकृतिक दृश्यों के प्रेक्षण से उसकी रुचि लेखन में बढ़ी। अपने गहनगर (अमासिया) में लौटने के पश्चात उसने अपने अधिकांश ग्रन्थों की रचना की थी। रोमन होते हुए भी स्टेबो ने अपने अन्थों को यूनानी भाषा में लिखा था।

स्ट्रैबो ने ऐतिहासिक इतिवृत्त के रूप में लगभग 43 पुस्तकों को लिखा था। उन्होंने ज्ञात संसार के वर्णन को 7 खण्डों वाले भौगोलिक विश्वकोष में संकलित किया था। जिसका नाम ज्योग्राफिया रखा स्ट्रैबो प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने भूगोल की चारों प्रमुख शाखाओं गणितीय, भौतिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक को एक साथ समाहित करके एक सम्पूर्ण भौगोलिक ग्रंथ की कल्पना की थी। स्ट्रैबो के ग्रंथों का महत्व इसलिए भी अधिक है कि उन्होंने अपने ग्रंथों में उन विद्वानों के विचारों और कार्यों को भी उद्धृत किया है जिनकी रचनाएं नष्ट हो गयी हैं और

उपलब्ध नहीं हैं। स्ट्रैबो ने ज्योग्राफिया नामक पुस्तक भूगोलवेत्ताओं केलिए नहीं बल्कि राजनीतिज्ञों, राजनेताओं और सामान्य पाठकों के लिए लिखा था। यही कारण है कि इस ग्रंथ में प्रत्येक देश की सामान्य भौगोलिक विशेषताओं, भौतिक आकार एवं धरातलीय बनावट, प्राकृतिक उत्पादनों आदि के साध ही वहाँ की सांस्कृतिक भिन्नताओं, शासन प्रणालियों तथा रीति–रिवाजों का भी वर्णन किया गया है। स्ट्रैबो के ज्योग्राफिया नामक विश्वकोश की 17 खण्डों (पुस्तकों) कीं विषय सामग्री इस प्रकार हैं––

प्रथम दो खण्डों में विषय की प्रस्तावना दी गयी है जिसमें पुस्तक के लक्ष्य, उद्देश्य तथा मौलिक सिद्धानतों की चर्चा की गयी है। इसमें लेखक ने इरेटोस्थनीज तथा अन्य पूर्ववर्ती विद्वानों के कार्यों की आलोचनात्मक समीक्षा किया है। तीसरे खण्ड में पश्चिम यूरोप, स्पेन , गाल (फ्रांस), और ब्रिटेन का भौगोलिक वर्णन है। चौथे खण्ड में गाल (फ्रांस), ब्रिटेन और आल्पस का वर्णन है। पाँचवें और छठें खण्डों में इहली और सिसली का वर्णन है। सातवें खण्ड में स्ट्रेबो ने राइन के पूर्व और डेन्यूब के उत्तर में स्थित देशों का संक्षिप्त वर्णन किया है। आठवें, नौवें और दसवें खण्डों में यूनान तथा।मीपवर्ती द्वीपों का भौगोलिक वर्णन है स्ट्रैबो की ग्यारहबीं से लेकर सोलहबवीं पुस्तकों में एशिया के देशों का वर्णन है। अंतिम अर्थात सत्रहवें खण्ड में अफ्रीका का वर्णन है और इसके लगभग दो–तिहाई भाग में मिस्र के भूगोल का वर्णन किया गया है।

इन्होने भूगोल की कई शाखाओं – ऐतिहासिक, भौतिक, राजनीतिक, प्रादेशिक आदि का सार्थकवर्णन किया था। उन्होंने रोमन साम्राज्य के उत्थान और शक्ति पर इटली की आकृति, उच्चावच, जलवायु तथा स्थानिक सम्बन्धों के प्रभाव की व्याख्या की थी। उन्होंने यूनान तट के समीप कुछ लघु द्वीपों को आगे बढ़ती हुई तट रेखा में मिलते हुए निरीक्षण किया था और पाया था कि समुद्री तटों और तट के समीप स्थित द्वीपोंके मध्य में तलछटी जमाओं



चित्र 1.5 स्ट्रेबो के अनुसार विश्व

के परिणामस्वरूप उनके बीच स्थलीय सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं। उन्होंने भूमध्य सागर में स्थित माउण्ट विसूवियस के ज्वालामुखी विस्फोटों की आँखों देखा वर्णन किया है और विसूवियस को एक जलते हुए पर्वत के रूप में प्रदर्शित किया है। उन्होंने लिखा है कि क्रेटर से बाहर निकलने वाला लावा धीरे–धीरे सघन और कठोर मिलस्टोन के समान कठोर शैल में परिवर्तित हो जाता है। स्ट्रैबो ने यूनान के चूना पत्थर प्रदेश (कार्स्ट प्रदेश) में भूमिगत जल द्वारा निर्मित स्थलाकृतियों के निर्माण का वर्णन भौतिक भूगोलवेत्ता के दृदृष्टिकोण से किया है।

स्ट्रेबोका सर्वाधिक योगदान प्रादेशिक भूगोल में माना जाता है। उन्होंने अपनी विभिन्न पुस्तकों में अलग–अलग प्रदेशों का भौगोलिक वर्णन किया है। उन्होंने इटली, स्पेन, गाल (फ्रांस), यूनान, उत्तरी एवं पूर्वी

यूरोप, एशिया माइनर (टर्की), फारस, मेसोपोटामिया, भारत, अरब, सीरिया तथा मिस्र, लीबिया, इथोपिया आदि अफ्रीकी देशों का भौगोलिक वर्णन किया है। स्ट्रेबो की रचनाओं से उस समय तक ज्ञात संसार के विषय में जानकारी प्राप्त होती है यद्यपि दूरवर्ती क्षेत्रों के विषय में जानकारी कही–सुनी बातों पर आधारित होने के कारण त्रुटिपूर्ण थी। एटलस पर्वत का उसे विस्तृत ज्ञान था। एटलस पर्वत के दक्षिण एवं सहारा मरुस्थल के आन्तरिक और दक्षिणी भागों में रहने वाली गेटूबियन व निगराइट नामक बर्बर जातियों तथा अफ्रीका के मध्यवर्ती व दक्षिणी भागों में निवास करने वाली अन्य बर्बर जातियों के बारे में उसका ज्ञान बहुत सीमित था। यूनानी विद्वानों की भांति उसने अफ्रीका को समकोंण त्रिभुज की आकृति का बताया, जिसका आधार भूमध्यसागर तट तथा छोटी भुजा नील के सहारे इथोपिया से सागर तक माना था।

2.10.2 पोम्पोनियस मेला –

पोम्पोनियस मेला दक्षिणी स्पेन का निवासी था। उसने लैटिन भाषा में दो पुस्तकें–– कास्मोग्राफीतथा डि–कोरोग्राफियालिखी थीं। कास्मोग्राफी में उसने ब्रह्माण्ड का वर्णन प्रस्तुत किया है तथा अन्य भूगोलवेत्ताओं की तरह उसने भी पृथ्वी की स्थिति ब्रह्माण्ड के मध्य बतलायी है। डि–कोरोग्राफिया में मेला ने पृथ्वी को पांच बड़े प्रखण्डों में विभाजित किया हे तथा उत्तरी शीतोष्ण प्रखण्ड का विस्तृत भौगोलिक वर्णन प्रस्तुत किया है। उन्होंनेभूमध्यसागरीय तट, यूरोप, एशिया तथा अफ्रीका के समुद्र तटों की यात्रायें भी की थीं, जिनका वर्णन इन पुस्तकों में उपलब्ध है।

पॉम्पोनियस मेला ने लैटिन स्पेनी भाषा में छोटी बड़ी कई पुस्तकें लिखी थी जिनमें निम्नांकित तीन विशेष महत्वपूर्ण हैं–

(1) ब्रहमांड विज्ञान – मेला ने अपनी कास्मोग्राफी नामक पुस्तक में ब्रह्मांड के विषय में विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है। उन्होंने पृथ्वी को ब्रहमांड के मध्य में स्थित बताया है। इसमें पृथ्वी के ग्रहीय सम्बन्धों का विवरण है।

(2) डिकोरोराफिया – इस पुस्तक में पृथ्वी को पाँच बृहद कटिबंधों में विभक्त किया गया है––.उष्ण कटिबंध, 2. उत्तरी शीतोष्ण कटिबंध, 3. दक्षिणी शीतोष्ण कटिबंध, 4. उत्तरी शीत कटिबंध, और 5. दक्षिणीशीत कटिबंधइस पुस्तक में उत्तरी शीतोष्ण कटिबंध का भौगोलिक वर्णन किया गया है। इसमें मेला कीभौगोलिक यात्राओं का भी वर्णन सम्मिलित है।

(3) स्काईलैक्स –इसमें भूमण्डल के विभिन्न प्रदेशों का संक्षिप्त भौगोलिक वर्णन है। इसमें मेला ने पृथ्वी के दो ध्रुव– उत्तरी और दक्षिणी बताया है। उन्होंने यह भी लिखा है कि पृथ्वी के पाँच बृहत कटिबंधों में से केवल दो कटिबन्धों–उत्तरी शीतोष्ण कटिबंध और दक्षिणी शीतोष्ण कटिबंध में ही मानव निवास के अनूकूल दशाएं पायी जाती हैं और मानव निवास के लिए उपयुक्त ये कटिबंध चारों ओर से जल (समुद्र) से घिरे हुए हैं।

2.10.3 प्लिनी (27–79ई0 पू0.)

प्लिनी का जन्म इटली के विकोना नामक स्थान पर हुआ था। प्लिनी ने कुशल प्रशासनिक कारी के रूप में नीरो तथा टाइटस के शासनकाल में कई उच्च पदों पर कार्य किया था। यह एक महान गणितज्ञ भी थे। इन्होंने पृथ्वी को पिंडा कार स्वरूप में स्वीकार किया था। और बताया कि पृथ्वी अपने अक्ष धुरी पर झुकी हुई है जिसके कारण ऋतु परिवर्तन होता है। उन्होंने विभिन्न भागों के भौगोलिक वर्णन के साथ वहां की आकाशीय वायुमंडलीय दशाओं का भी वर्णन किया है। इन्होंने अपने प्रसिद्ध पुस्तक प्राकृतिक इतिहास जिसके 37 खंड हैं इसके अलावा इनकी तीन अन्य महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं– प्राकृतिक इतिहास, जर्मनी में युद्ध का इतिहास,स्वकालीनइतिहास,मौसमविज्ञान।

2.10.4 पोलिबियस (210–128 ई0 पू0.)

पोलिबियस एक महान इतिहासकार एवं भौतिक भूगोल का ज्ञाता था। नदियों के उद्गम, नदी अपरदन तथा ।बद्ध भूआकृतियों के अध्ययन में उसकी विशेष रुचि थी। उसने नदी घाटी में बाढ़, निक्षेप तथा डेल्टा प्रदेश की रचना पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। पोलिबियस ने अफ्रीका के उत्तरी तट तथा यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों का भौगोलिक वर्णन भी किया है। उसका आल्पस पर्वतों एवं इटली का भौगोलिक ज्ञान पूर्ववर्तियों द्वारा किये गये वर्णनों से कहीं उत्तम है।

2.10.5 टालमी (90–168 ईस्वी .)

प्राचीन यूनानी–रोमन परम्परा का आखिरी भुगोलविद टालमी थे, जिनकी ख्याति में, उनके द्वारा निमित विश्व के मानचित्र के कारण पुनर्जागरण काल में अधिक वृद्धि हुई। वस्तुतः टालमी एक खगोलविद् थे और उनकी वास्तविक अभिरुचि नक्षत्रों की गति का अध्ययन करने तथा विभिन्न स्थानों के अक्षांश–देशान्तर की गणना में थी।

टालमी एक महान खगोलशास्त्री थे जिन्होंने खगोल शास्त्र की प्रसिद्ध पुस्तक "अलमाजेस्ट" की रचना की थी। प्रेक्षण, अन्वेषण तथा लेखन द्वारा टालमी ने गणितीय भूगोल, मानचित्रकला और सामान्य भूगोल के क्षेत्र में अति महत्वपूर्ण योगदान दिया है। प्राचीन काल के समस्त यूनानी और रोमन भूगोलवेत्ताओं में टालमी सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। टालमी के कार्यों का संकलन "अलमाजेस्ट" नामक पुस्तक में किया गया है जो अरबी भाषा में. लिखी गयी है। टालमी की अन्य प्रमुख पुस्तकें है––ज्योग्राफिया" ग्रहीय परिकल्पना",और"एनेलिमा" टालमी के कार्यक्षेत्र का विवरण निम्नांकित हैं।

ज्योग्राफिया नामक ग्रन्थ के आठ खंडो में से प्रथम खण्ड में मुख्यतः सैद्धांतिक नियम हैं, जिनमें मानचित्र प्रक्षेप एवं ग्लोब, निर्माण की प्रविधि भी सम्मिलित है। दूसरे से सातवें खण्ड तक लगभग 8000 स्थानों के नाम और उनको स्थिति निश्चित करने वाले अक्षांश एवं देशान्तर दिये गये हैं। आठवां खण्ड सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि उसमें मानचित्र कला के सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है तथा गणतीय भूगोल, प्रक्षेपों एवं खगोलकी के वेधों को समझाया गया है। ग्रहीय सिद्धान्त नामक ग्रन्थ दो खण्डों में उपलब्ध है, जिसका एक खण्ड ग्रीक भाषा तथा दूसरा खण्ड अरबी भाषोमें उपलब्ध है। इस ग्रन्थ में नक्षत्रों के उदय एवं अस्त होने, ग्रहों की दूरी, गतियां, उपग्रहों एवं ग्रहीय सम्बन्धों व सम्बन्धित सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है।

एनेलिमा मुख्यतः नक्षत्र विद्या एवं विविध प्रक्षेपों की परिकल्पना एवं परिणामों से सम्बन्धित है।

टालेमी को भूगोल जगत का एक अत्यन्त प्रभावशाली विद्वान माना जाता है। उसका योगदान मुख्यतः गणितीय भूगोल के क्षेत्र में विशेष रुप से प्रशंसनीय तथा।भी काल में स्वीकार्य रहा है, जिसके अन्तर्गत पृथ्वी की परिधि, निवास्य, विश्व का विस्तार, प्रधान याम्योत्तर, अक्षांश–देशान्तर रेखाजाल, प्रक्षेप निर्माण, मानचित्र की प्रमुख विशेषताओं तथा विश्व के विभिन्न भागों की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन मिलता है। पृथ्वी की परिधि के मापन हेतु उसने हिप्पार्कस, जिसने सर्वप्रथम वृत्त को 360 अंश में विभाजित किया था, का अनुसरण किया था तथा प्रत्येक अंश के बीच की दूरी 700 स्टेडिया (70 मील) के स्थान पर 500 स्टेडिया (50 मील) मानकर पृथ्वी के परिधि की माप की गणना की थी। परिणामतः पृथ्वी की परिधि की माप

(लम्बाई) में त्रुटि बढ़ गई थी। इसके अतिरिक्त यात्री एवं नाविक विभिन्न स्थानों के बीच की दूरियोंको बहुत बढ़ा–चढ़ाकर बताया करते थे, टालेमी इन्हीं यात्रा वर्णनों पर निर्भर रहा था, फलतः उसके द्वारा तैयार किया गया विश्व मानचित्र विकृत हो गया।

टालमी ने विश्व मानचित्र की रचना के लिए संशोधित शंक्वाकार प्रक्षेप का निर्माण किया था। इसके लिए पृथ्वी को 360 देशांतरों में विभक्त किया गया है किन्तु ज्ञात संसार (पूर्वी गोलार्द्ध) को प्रदर्शित करने के लिए मानचित्र को 80 अंश देशांतरों का बनाया गया था। प्रधान मध्याहन रेखा काल्पनिक सौभाग्य द्वीपों (कनारी द्वीपों) के पास से गुजरती दिखायी गयी थी। टालमी ने दो नये प्रक्षेपों की रचना विधि का भी विवेचन किया है। इनमें एक है लम्बकोणीय प्रक्षेप जिसे तीन तलोंके आधार पर तीन प्रकार से बनाया जा सकता है–– (1) क्षैतिज तल पर (2) याम्योत्तरीय तल पर और (3) ऊर्ध्वाधर तल पर इनका दूसरा प्रक्षेप त्रिविम प्रक्षेप है जिसे दक्षिणी ध्रुव को केन्द्र मानकर बनाया गया था।

1.11 सारांश

प्रस्तुत अध्ययन में प्रादेशिक भूगोल, एवं प्रादेशिक रण की संकल्पना, प्रदेश का वर्गीकरण, प्रदेश संकल्पना की प्रकृति, एवं प्रादेशिक संकल्पना का विकास विश्लेषणवाद का विस्तृत अध्ययन किया गया है, प्रादेशिक करण को भी परिभाषित किया गया है एवं उसकी विस्तृत व्याख्या की गई है। प्राचीन काल में एवं प्राचीन शास्त्रीय काल में भूगोल तथा यूनानी (ग्रीक) भूगोलवेदताओं का भी अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में यूनानी

भूगोलवेत्ताओं–

1.होमर 2.थेलस या थालेस 3.अनेग्जीमेण्डर 4.हिकैटियस 5.हेरोडेट्स 6.प्लेटो 7.अरस्तु 8.सिकंदर 9. थिओफ्रेस्टस 10.पोलिबियस् 11.इरेस्टोस्थनीज 12.हिप्पार्कस 13.पोसिडेनियस का विस्तृत अध्ययन किया गया है।

यूनानी साम्राज्य के पतन के पश्चात रोमन साम्राज्य का उदय हुआ। रोमन भूगोलवेत्ताओं ने मुख्य रूप से ऐतिहासिक भूगोल एवं प्रादेशिक भूगोल के विकाश में महत्वपूर्ण योगदान दिया। यूनानी भूगोलवेत्ता पोलिबियस तथापोसिडोनियस का जो स्थान भौतिक भूगोल के अध्ययन में है,वही स्थान रोमन भूगोलवेत्ता स्ट्रेबो को ऐतिहासिक भूगोल एवं प्रादेशिक भूगोल के क्षेत्र में प्राप्त है। यूनानियों के काम में पहाड़ों, डेल्टा निर्माण, मौसम के परिवर्तन, हवाओं, बारिश, भूकंप और उनके कारणों, ज्वालामुखियों और स्थलाकृतिक विशेषताओं में परिवर्तन के कई संदर्भ शामिल हैं यूनानियों के बाद, राजनीतिक सत्ता रोमनों के हाथों में चली गई। रोम के प्रमुख योगदान मुख्य रूप से ऐतिहासिक और क्षेत्रीय भूगोल के क्षेत्र में थे लेकिन उन्होंने भौतिक और गणितीय भूगोल के क्षेत्र में भी योगदान दिया। रोमनों में, स्ट्रैबो और टॉलेमी ने सबसे अधिक योगदान दिया।

रोमन साम्राज्य की अनुशासित सेनाओं ने विजय अभियानों द्वारा उस समय के विश्व के बारे में रोमवासियों के ज्ञान में अभूतपूर्व विस्तार किया। एक ओर पोम्पेइ ने पूर्व की ओर अल्बानिया और एशिया माइनर पर विजय प्राप्त की तो दूसरी तरफ सीजर पश्चिम में गॉल (फ्रांस) और इंग्लैंड तक अपने साम्राज्य का विस्तार करने में सफल रहा। ऑगस्टस का समय इस प्रकार के ज्ञान विज्ञान का चरम युग था। रोमन काल के भूगोलवेत्ताओं के योगदान भौतिक एवं प्रादेशिक भूगोल के क्षेत्र में रहे य एक ओर जहाँ पोलिबियस और पोसीडोनियस ने भौतिक भूगोल के क्षेत्र में योगदान किया वहीं स्ट्रेबो ने ऐतहासिक एवं प्रादेशिक भूगोल के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान किये।

रोमन काल में भौगोलिक अध्ययन के प्रमुख थे जिसमें ऐतिहासिक भूगोल, प्रादेशिक भूगोल, गणितीय भूगोल एवं मानव चित्रकला खगोलीय भूगोल का भी अध्ययन महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

1.12 स्व मूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

प्रश्न 1. अक्षांश तथा देशान्तर शब्दावलियों का सर्वप्रथम प्रयोग किसने किया था?

(अ)इरेटोस्थनीज ने (ब) अनेग्जीमेण्डर ने

(स) टालमी ने (द) होमर ने

प्रश्न 2. पृथ्वी के वर्णन के लिए निम्नलिखितमें सेकिसने सर्वप्रथम जिओग्राफिया शब्द का प्रयोग किया।

(अ) अनेग्जीमेण्डर ने (ब)इरेटोस्थनीज ने

(स) स्ट्रेबो (द) हैकेटियस

प्रश्न 3. टालमी की प्रसिद्ध ग्रंथमाला जिओग्राफिया कुल कितने खंडो में प्रकाशित हुई थी ?

(अ) 12(ब) 10(स)8 (द) 6

प्रश्न 4 यूनानियों को नोमोन नामक धूमघड़ी से किसने परिचय कराया था ?

(अ) हेरोडोटस (ब) अनेग्जीमेण्डर

(स) इरेटोस्थनीज (द) हिप्पार्कस

प्रश्न 5. नक्षत्रो के वेध के लिए एस्ट्रोलैब नामक चक्रयन्त्र का निर्माण सर्वप्रथम किसने किया था ?

(अ)अनेग्जीमेण्डर ने (ब) पोलिबियस ने

(स) इरेटोस्थनीज ने (द) हिप्पार्कस ने

प्रश्न 6. निम्नलिखित में से किस विद्यावान ने सर्वप्रथम बताया था की अफ्रीकी महाद्वीप ला सागर द्वारा एशिया महाद्वीप से अलग है ?

(अ) हेरोडोटस(ब) टालमी (स)हिप्पार्कस (द) अरस्तु

उत्तरमाला 1.(स) 2.(ब) 3.(स) 4.(ब) 5.(द) 6.(अ)

1.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

- Dikshit R.D. (1997), Geographical thoughtA contestible history of ideas, New Delhi prentice hall of India
- French R.A. (1968),Historical geography in the USSR geography reviews transition vol 9
- Harvy M.E. and Holly B.P. (1983), Themes in geography thought London
- James P.E. (1972),All possible world a history of geographical ideas Indianapolis Odessey press
- Krik W (1951), Historical geography and concept of behavioural environment Indian geography journal silver jubilee volume pp155-160
- Thompson J.O. (1965), History of ancient geography New York biblo tannen
- Hagget P. (1976), Geography-A modern synthesis Harper international edition, New York
- Schultz J.H. (1959),Alexender von Humboldt , Berlin
- Schultz E.C. (1903),American history and its geographic condition,Humgoldt Mifflin, Boston
- Williams M. (1983), The apple of my eye Carl Sauer and Historical geography , Journal of Historical geography Vol.9 pp 1-28

1.14 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

प्रश्न 1– प्रादेशिक भूगोल क्या है , प्रादेशिक भूगोल के वर्गीकरण की व्याख्या कीजिए?

प्रश्न 2– प्रदेश को परिभाषित कीजिए तथा प्रदेशों की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिए?

प्रश्न 3– प्रादेशिक संकल्पना का विस्तृत अध्ययन कीजिए?

प्रश्न 4– प्रादेशिक विश्लेषण एवं प्रदेश वाद' का संक्षिप्त विश्लेषण कीजिए?

प्रश्न 5– भौगोलिक चिंतन में यूनानी विद्वानों की विस्तृत व्याख्या कीजिए?

प्रश्न 6–टालमीका भौगोलिक चिंतन में योगदान की विस्तृत व्याख्या कीजिए?

प्रश्न 6– रोमन भूगोलवेत्ताओं की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए व्याख्या? कीजिए ?

इकाई–3 भारतीय एवं ग्रीक रोमन भूगोल विद्वानों के योगदान की तुलना, अरब भूगोलवेत्ताओं का योगदान

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 भारतीय एवं ग्रीक रोमन भूगोल विद्वानों के योगदान कातुलनात्मक अध्ययन

3.4 अरब भूगोलवेत्ताओं का योगदान

3.4.1.अब्दुल कासिम

3.4.2. अल मसूदी

3.4.3. अलबरूनी

3.4.4. अलइदरीसी

3.4.5. इब्नबतूता

3.4.6. इब्न खालदून

3.5प्रादेशिक वितरण

3.6 सारांश

3.7 स्व मूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

3.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.9 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

3.1 प्रस्तावना

भारतीय भूगोल का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि भारतीय सभ्यता का इतिहास। यद्यपि किसी विशेष ग्रंथ में भौगोलिक ज्ञान का व्यवस्थित विवरण नहीं दिया गया है, तथापि, भौगोलिक ज्ञान को वैदिक पाठ, हिंदू पौराणिक कथाओं, पुराण और रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों में देखा जा सकता है। भौगोलिक ज्ञान जैन और बौद्ध ग्रंथों में भी देखा जा सकता है।

रोम के प्रमुख योगदान मुख्य रूप से ऐतिहासिक और क्षेत्रीय भूगोल के क्षेत्र में थे लेकिन उन्होंने भौतिक और गणितीय भूगोल के क्षेत्र में भी योगदान दिया। रोमन में, स्ट्रैबो और टॉलेमी ने सबसे अधिक योगदान दिया। स्ट्रैबो के ग्रंथ भूगोल को सबसे महत्वपूर्ण भौगोलिक कार्य माना जाता है जो शास्त्रीय काल से हमारे पास आया है।

600 ईसा पूर्व से लेकर 300 ईसवी तक का काल यूनान का स्वर्णकाल कहलाता हैं। भूगोल का नामकरण से लेकर उसको प्रारम्भिक व्यवस्थित रूप देने का काम यूनानी विद्ववानो ने ही किया। यूनानियों ने खगोल विद्या, गणितीय भूगोल ,भू–विज्ञान, जलवायु विज्ञान एवं समून्द्र विज्ञान के विकास में काफी योगदान दिया। सर्वप्रथम यूनानियों ने ही रेखा जाल के आधार पर विश्व मानचित्र बनाया।गणित भूगोल का विकास थेल्स और अनेकजिमेण्डर द्वारा किया गया पर इसको चरम बिंदु पर इरेटॉस्थनीज ने पहुँचाया। 8 वीं से 13 वींशताब्दी का काल अरब भूगोलवेत्ताओ का काल माना जाता हैं। अरब देशो में भूगोल के प्रति बढ़ते रुचि के निम्नलिखिल कारण थे।

1. अरब साम्राज्यका विस्तार यूनानी देशो तक फैल जाना 2. परिवहन मार्गो का विकास3. भारतीय एवं यूरोपीय संस्कृति से संपर्क बढ़ना अरब भूगोलवेत्ताओं ने प्राचीन युग के महत्वपूर्ण यूनानी एवंरोमन ग्रंथो का अरबी में अनुवाद करके ज्ञान को संरक्षितकिया जैसे खलीफा अल–मामून (813 ई.) ने टॉलमी के पुस्तक "अल्माजेस्ट "अरबी

भाषा में अनुवाद करवाया। इसके अलावा स्वच्छ आकाश एवं जलवायु आदि कारकों ने अरबों के भौगोलिक चिंतन के विकास में महत्वपूर्ण साबित हुआ। इन्होंने भूकेंद्रीय संकल्पनाग्रीक से ग्रहण की थी।

साथ ही बगदाद के खलीफा हरुल–अल–रशीद के संरक्षण में शिक्षण संस्थान बैतुल हिक्म की स्थापना ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अरब भूगोलवेत्ताओं ने गणितीय भूगोल , भौतिक भूगोल,एवं प्रादेशिक भूगोल के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

3.2 उद्देश्य

भूगोल का नामकरण से लेकर उसको प्रारम्भिक व्यवस्थित रूप देने का काम यूनानी विद्ववानो ने ही किया। यूनानियों ने खगोल विद्या , गणितीय भूगोल ,भू–विज्ञान , जलवायु विज्ञान एवं समुन्द्र विज्ञान के विकास में काफी योगदान दिया। सर्वप्रथम यूनानियों ने ही रेखा जाल आधार पर विश्व मानचित्र बनाया। प्राचीन भारतीयों भूगोल धर्म पर आधारित था। धार्मिक अभिलेखोँ के अतिरिक्त यात्रियों द्वारा कियेवर्णन विश्व के विभिन्न प्रदेशों की जानकारी के स्रोत हैं। प्राचीन भारतीय विद्धानों को ब्रह्मांड विज्ञानं और विश्व रचना के बारे में सही जानकारी थीं।

अरब साम्राज्य का विस्तार यूनानी देशो तक फैल जाना परिवहन मार्गो का विकास भारतीये एवं यूरोपीयसंस्कृति से संपर्क बढ़ना यूनानियों के बाद, राजनीतिक सत्ता रोमनों के हाथों में चली गई। रोम के प्रमुख योगदान मुख्य रूप से ऐतिहासिक और क्षेत्रीय भूगोल के क्षेत्र में थे लेकिन उन्होंने भौतिक और गणितीय भूगोल के क्षेत्र में भी योगदान दिखाया भूगोल के विकास के उद्देश्य से अरब भूगोलवेत्ताओं के योगदान का अध्ययन प्रस्तुत इकाई में किया गया है।

3.3 भारतीय एवं ग्रीक– रोमन भूगोल वेदत्ता के योगदान की तुलना

भौगोलिक ज्ञान का एक व्यवस्थित विवरण किसी विशेष पुस्तक में वर्णित नहीं है, भौगोलिक ज्ञान को वैदिक पाठ, हिंदू पौराणिक कथाओं, पुराण और रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों में देखा जा सकता है। भौगोलिक ज्ञान जैन और बौद्ध ग्रंथों में भी देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए, ऋग्वेद में अनेक नदियों विशेषकर सिन्धु नदी तंत्र की जानकारी का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में 10–दिशाओं के विचार का भी उल्लेख किया गया था।

वैदिक पाठ में, नौ ग्रहों (9 ग्रह) की अवधारणा का उल्लेख किया गया है। हम अभी भी हिंदू धार्मिक अनुष्ठानों में नौ ग्रहों पर प्रार्थना करते हैं। आधुनिक भूगोल में नौ ग्रहों की अवधारणा 100% सत्य है। हालाँकि वैदिक पाठ के अनुसार नौ ग्रहों के नाम सूर्य, चंद्रमा, पृथ्वी, मंगल, बुध, शुक्र, बृहस्पति, शनि, राहु और केतु हैं।

रामायण महाकाव्यों में उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में श्रीलंका तक भौगोलिक ज्ञान जैसे पर्वत, स्थलाकृति, पठार, पहाड़ियाँ, निवासी, महासागर और महत्वपूर्ण स्थानों का उल्लेख किया गया है। महाभारत में आर्य वार्ता और अनेक राज्यों के विस्तृत भौगोलिक ज्ञान का उल्लेख मिलता है। जातक कथा में बुद्ध के जीवन से संबंधित अनेक स्थलों एवं वनों की जानकारी का उल्लेख मिलता है।

पुराण के अनुसार, दुनिया में सात (द्वीप) थे–

1. शक द्वीप
2. प्लाका द्वीप
3. पुष्कर द्वीप
4. सलामाली द्वीप
5. कुशा द्वीप
6. जम्बू द्वीप
7. क्रौंच

भारतीय उपमहाद्वीप सहित एशिया का अधिकांश भौगोलिक क्षेत्र जम्बू द्वीप का हिस्सा था।

निम्नलिखित प्रमुख भारतीय भूगोलवेत्ता हैं जिन्होंने भौगोलिक विचार के विकास में योगदान दिया

1. वाल्मीकि
2. आर्यभट्ट 500 सीई,
3. वराहमिहिर 587 ई.,
4. भास्कराचार्य 1100 सीई,
5. आर.पी. मिश्रा

भूगोल में ऋषि वाल्मीकि का योगदान

ऋषि वाल्मीकि ने अपने पवित्र ग्रंथ रामायण में 6 प्रकार की ऋतुओं का उल्लेख किया है। छह ऋतुओं के नाम बसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद,हेमंत, और शिशिर हैं। उन्होंने प्रत्येक ऋतु की विशेषताओं का भी उल्लेख किया और उनमें से बसंत ऋतु सर्वोत्तम है।

आर्यभट्ट का योगदान 500 ई.पू., भूगोल में भुगोल शब्द का पहली बार उल्लेख आर्यभट्ट द्वारा लगभग 500 ई.पू. में लिखे गए सूर्य सिद्धांत में किया गया है। पुस्तक में, पृथ्वी के व्यास की गणना 8,000 मील (आधुनिक गणना के बहुत करीब) के रूप में की गई थी। सूर्य सिद्धांत में, हम बहुत से भौगोलिक ज्ञान पा सकते हैं जैसे कि पृथ्वी की गोलाकार आकृति, युगों की गणना (भूवैज्ञानिक समय), ग्रहण, और ग्रहण का रंग। आर्यभट्ट ने बताया कि चंद्र ग्रहण चंद्रमा पर पृथ्वी की छाया के कारण होता है।

भूगोल में वराहमिहिर का योगदान

वराहमिहिर के अधिकांश भौगोलिक ज्ञान का उल्लेख उनकी पुस्तक पंच सिद्धांतिका में किया गया है। वराहमिहर ने ग्रहण की अवधारणा को समझाया। वरामिहिर के अनुसार यदि एक ही मास में सूर्य और चन्द्र ग्रहण हो तो वह अनर्थकारी होता है। ग्रहण को नंगी आंखों से देखने की भी मनाही थी। आधुनिक भूगोलवेत्ता और वैज्ञानिक भी यही सुझाव देते हैं। वराहमिहिर ने पृथ्वी की गोलाकार आकृति का भी उल्लेख किया है और गुरुत्वाकर्षण बल के कारण पृथ्वी सभी वस्तुओं को अपनी ओर आकर्षित करती है।

भूगोल में भास्कराचार्य का योगदान

भास्कराचार्य ने पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण बल पर एक ग्रंथ लिखा था। उन्होंने यह भी बताया कि सभी खगोलीय पिंड अपने आकर्षण शक्तियों के कारण ब्रह्माण्ड में अपनी कक्षा में गति करते है और स्थिर रहते हैं। भास्कराचार्य ने पृथ्वी की परिधि और व्यास की भी गणना की जो आधुनिक गणना के काफी करीब है।

भूगोल में आर.पी. मिश्रा का योगदान

आर.पी. मिश्रा ने क्षेत्रीय भूगोल में योगदान दिया है। आरपी मिश्रा के अनुसार, क्षेत्रीय योजना के लिए बड़े देशों में विकास के पांच स्तर होने चाहिए। पाँच स्तर हैं विकास ध्रुव ,ग्रोथ सेंटर ,वृद्धि बिंदु ,सेवा केंद्र ,बाजार गांव सभी भारतीय मनीषियों ने आदिकाल से ही प्रकृति और मानव को एक ही ईश्वरीय सत्ता की कृति और एक समग्र संगठन के रूप में देखने पर जोर दिया है। परन्तु यूरोप की उत्तर यूनानी संस्कृति की मान्यता इसके विपरीत रही है, इस तथ्य के बावजूद कि यूनानी (ग्रीक) विचारक भारतीय मनीषियों की भांति ही मनुष्य के सम्पूर्ण पर्यावास को उसकी समग्रता में देखने के पक्षधर थे। यूनानी दार्शनिक मानव को प्रकृति का अभिन्न अंग मानते थे और पृथ्वी की सतह पर सजीव और निर्जीव सभी प्रकार के तत्वों को उनके परस्पर अन्तर्सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में देखने के पक्षधर थे। प्राचीन ग्रीक साहित्य इसका स्पष्ट प्रमाण है। ग्लैकेन (1967) ने पश्चिमी देशों के वैचारिक इतिहास में मानव और प्रकृति के परस्पर सम्बन्ध पर केन्द्रित चिंतन धारा के विकास में तीन भिन्न परिदृष्टियों की चर्चा की है।

सबसे पुरातन ग्रीक परिदृष्टि के अनुसार प्रकृति और मानव परस्पर सामंजस्यपूर्ण (हार्मोनियस) सम्बन्ध में जुड़े हैं। इसके बाद प्रचलित परिदृष्टि के अनुसार मानव जीवन प्राकृतिक तत्वों और उनके प्रभावों का परिणाम माना जाने लगा। यह मान्यता आधुनिक वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के दौर के पूर्व तक बनी रही थी। तीसरा चरण वैज्ञानिक और तकनीकी युग का था जिसमें दिनोदिन यह मान्यता प्रबलतर होती गई कि मनुष्य ज्ञान विज्ञान के माध्यम से प्रकृति पर विजय प्राप्त करने में सक्षम है तथा आधुनिक विकास का मूल मंत्र प्रकृति पर मानव की विजय है। आज के उत्तर आधुनिक दौर में विचार परिवर्तन उत्तरोत्तर मनुष्य और प्रकृति के सहअस्तित्व तथा पारिस्थितिकीय संतुलन–स्थापन के पक्ष में होता जा रहा है। मानव और प्रकृति के अन्तरसम्बन्ध पर उपर्युक्त

दार्शनिक मान्यताएं समकालीन भौगोलिक चिंतन में प्रतिबिम्बित होती रही हैं। ग्रीक कालीन भूगोल दोनों के बीच समरसतापूर्ण सम्बन्ध और उनके परस्पर सहअस्तित्व की मान्यता पर आधारित था, और यही मान्यता सामाजिक डार्विनीय चिंतन के माध्यम से रेट्जेल की मानव भूगोल सम्वन्धी परिकल्पना में परिलक्षित हुई थी यद्यपि कि स्थान–स्थान पर रेट्जेल के विचार निश्चय ही नियतिवादी अवधारणा वाले प्रतीत होते थे। बीसवीं सदी के प्रारम्भ के साथ ही मध्ययुगीन नियतिवादी और विज्ञानयुगीन सम्भववादी अवधारणाओं का द्वन्द्व भौगोलिक अध्ययन में प्रतिविम्बित होने लगा था। नियतिवादी अवधारणा के अनुसार प्रकृति मानव जीवन और उसके विकास का मार्ग निर्धारित करती है तथा इन निर्देशों की अवपालना मानव की नियति है। इसके विपरीत सम्भववादी अवधारणा के अन्तर्गत मूलभूत मान्यता यह थी कि मानव और प्रकृति के अन्तरसम्बन्ध सतत् संघर्ष पर आधारित हैं तथा इस संघर्ष में आधुनिक ज्ञान विज्ञान के बल पर मनुष्य की विजय अवश्यम्भावी है। इन विचारकों के अनुसार प्रकृति अपने आप में अत्यधिक सम्भावनापूर्ण है, वह मनुष्य के समक्ष विकास के अनेक सम्भावित रास्ते प्रस्तुत करती है, इनमें से कौन–सा रास्ता मनुष्य चुनता है यह उसकी इच्छा और तकनीकी क्षमता पर निर्भर है।

पृथ्वी के विभिन्न भागों के वातावरण तथा उनके निवासियों की जीवन पद्धति पर वर्णनात्मक लेखन की जड़ें ग्रीक संस्कृति की श्रुति परम्परा से जुड़ी हैं। ये श्रुतियां लिखित रूप में सर्वप्रथम होमर की कृतियों में परिलक्षित हुईं। यही कारण है कि ग्रीक भूगोलवेत्ताओं ने होमर को भूगोल के जनक के रूप में प्रतिष्ठा दी। नौवीं सदी ईसा पूर्व में लिखे गए होमर के ओडिसी शीर्षक महाकाव्य में तत्कालीन ग्रीक चिंतकों को ज्ञात संसार की परिधि पर स्थित विभिन्न स्थानों का सजीव चित्रण है। इस काव्य में ट्रॉय के पतन के पश्चात् महाकाव्य के नायक ओडेसस की इथाका वापसी यात्रा का वृतांत प्रस्तुत है। इस यात्रा के दौरान ओडेसस की नौका तूफान में फंस जाने के कारण दिशाच्युत हो गई थी।

परिणामस्वरूप काव्य के नायक को वापस घर पहुंचने में कुल बीस वर्ष लग गए। इस लम्बी यात्रा के दौरान ओडेसस को जिन–जिन स्थानों से होकर गुजरना पड़ा उनका इस काव्य में रोमांचक वर्णन है। यात्रा के दौरान नायक की नौका एक ऐसे क्षेत्र से गुजरी जहां निरन्तर अंधकार छाया रहता था। बाद में यात्रा के मार्ग में एक ऐसा प्रदेश मिला जो निरन्तर प्रकाशमान था। यह सोचना स्वाभाविक है कि ये दृश्य कवि की कोरी कल्पना के परिणाम नहीं हो सकते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी प्रकार यूरोप के उत्तर में आर्कटिक वृत्त के और उत्तर स्थित प्रदेशों के वर्ष के आधे भाग में दिन तथा शेष समय में रात्रि का अंधेरा व्याप्त होने के बारे मांग सूचना ग्रीकवासियों तक पहुंच गई थी। इसी प्रकार की अन्य अनेक भौगोलिक सूचनाओं को कवि ने रोमांचक साहसिक कथा के रूप में सूत्रबद्ध कर दिया था। कालिदास के मेघदूत की भांति अनेक विद्वानों ने होमर के महाकाव्य में वर्णित विभिन्न स्थानों की भौगोलिक स्थिति निर्धारित करने का प्रयास किया है।

एजियन सागर के पूर्वी तट पर मेंडेयर्स नदी के मुहाने के समीप स्थित मिलेटस नगर (जो उस युग में ज्ञान–विज्ञान तथा व्यापार का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था) के निवासी थालेस पहले ऐसे ग्रीक विद्वान माने जाते हैं जिन्होंने पृथ्वी की सतह पर भिन्न–भिन्न स्थानों की स्थिति निर्धारित करने की दिशा में कारगार प्रयास किया। थालेस का समय सातवीं तथा छठी शताब्दी ईसा पूर्व था। वे स्वयं एक सफल व्यापारी थे। व्यापार के सिलसिले में मिश्र की अपनी यात्रा के दौरान वे मिश्र निवासियों द्वारा विभिन्न स्थानों की लम्बाई–चौड़ाई के माप तथा उनके क्षेत्रफल ज्ञात करने की ज्यामितीय पद्धति से बहुत प्रभावित हुए थे। थालेस ने इनमें से कुछ विधियों से अपने देशवासियों को परिचित किया। थालेस के समकालीन परन्तु आयु में उनसे कुछ वर्ष कम, एनेक्सिमैंडर को ग्रीस के निवासियों को धूप घड़ी (सन डायल) से परिचित कराने का श्रेय है। इस यंत्र में समतल भूमि पर एक सीधी छड़ी खड़ी कर दी जाती है तथा इस छड़ी की छाया के दिशा परिवर्तन तथा उस छाया की परिवर्तनशील लम्बाई के माप के आधार पर उस स्थान की उत्तर–दक्षिण दिशा का सही–सही निर्धारण किया जाता है। छड़ी की परछाईं की लम्बाई दोपहर में (ठीक बारह बजे) न्यूनतम होती है। अर्थात् उस समय सूर्य वहां सबसे समीप होता है। अतः यह छाया रेखा ही उस स्थान का शुद्ध देशान्तर हुई। इतिहासकारों ने ग्रीक भौगोलिक चिंतन और लेखन की ज्यामितीय धारा की स्थापना का श्रेय एनेक्सीमैंडर को ही दिया है। ग्रीक भौगोलिक लेखन में वर्णनात्मक पद्धति का विकास भी इसी युग में हुआ। मिलेटस नगर के निवासी तथा 475 ईसा पूर्व में जन्मे हेकेटियस ने ग्रीक लेखन में वर्णनात्मक लेखन का शुभारम्भ किया। पृथ्वी का वर्णन (पीरियड्स जी) शीर्षक से लिखा उनका ग्रंथ इस विधा का प्रथम प्रयास था। इस पुस्तक में विद्वान लेखक ने पृथ्वी के बारे में विभिन्न स्रोतों से उपलब्ध ज्ञान को संकलित कर उसे सूत्रबद्ध रूप में प्रस्तुत किया जिससे उस ज्ञान से पाठक लाभान्वित हो सके। हिकेटियस ग्रीक साहित्य के सबसे पुराने गद्य लेखकों में से एक हैं।

वर्णनात्मक लेखन के क्षेत्र में दूसरा महत्वपूर्ण नाम हेरोडोटस (लगभग 485–425 ईसा पूर्व) का है। इतिहास लेखन के जन्मदाता के रूप में विश्रुत हेरोडोटस भौगोलिक लेखन के संस्थापकों में से एक हैं। ग्रीस निवासियों और बर्बर जनजातियों के बीच संघर्ष के इतिहास में विषयांतर के रूप में हेरोडोटस ने संघर्ष से सम्बन्धित विभिन्न स्थानों का सविस्तार वर्णन किया है। हेरोडोटस का अभिमत था कि इतिहास लेखन भूगोल सापेक्ष होना चाहिए तथा भूगोल के अध्ययन में ऐतिहासिक परिदृष्टि का समावेश आवश्यक है।

उसके अनुसार भूगोल वह चित्रपट अथवा क्रियास्थल है जहां ऐतिहासिक घटनाक्रम घटित होता है। हेरोडोटस एक महान यात्री था। अपनी यात्राओं के दौरान उसका ध्यान विभिन्न स्थानों की प्राकृतिक दृश्यावली पर निरन्तर केन्द्रित रहता था। परिणामस्वरूप उसने भौगोलिक दृश्य सत्ता का सविस्तार वर्णन किया और साथ ही उनकी व्याख्या करने तथा दृश्यगत स्थलाकृतियों और दृश्यों की व्युत्पत्ति के कारणों की खोज का भी प्रयास किया।

लेखक द्वारा इस दिशा में किए गए प्रयासों में नील नदी के जल प्रवाह में आने वाले वार्षिक परिवर्तन की व्याख्या तथा मेंडेयर्स (मिआंडर) नदी के मुहाने पर बने डेल्टा के निर्माण की प्रक्रिया की व्याख्या शामिल है। हेरोडोटस को गणितीय अध्ययन पद्धति तथा पृथ्वी की अरस्तू ने अपने व्याख्या प्रतिमान को इतने सशक्त और तर्कसंगत ढंग से प्रस्तुत किया था कि उनके द्वारा प्रतिपादित आगमनात्मक अध्ययन पद्धति और तत्सम्बन्धी आधारभूत सिद्धान्त शीघ्र ही वैज्ञानिक अनुसंधान के सर्वसम्मत प्रतिमान बन गए। समकालीन बौद्धिक संसार में अरस्तु की प्रतिष्ठा इतनी व्यापक थी कि उसके विचार विद्वत् समाज में प्रायः निर्विवाद मान लिए जाते थे यद्यपि इनमें से कुछ संकल्पनाएं और अवधारणाएं वास्तव में पूर्ण थी। अरस्तु की यह धारणा कि पृथ्वी की सतह पर मानव अधिवास की सम्भावनाएं किसी स्थान की विषुवत रेखा से दूरी पर निर्भर है तथा विषुवत रेखा के आस–पास के क्षेत्रों में सूर्य की तेज गर्मी के कारण मानव जीवन सम्भव नहीं है, ऐसी हो एक संकल्पना की।

भौगोलिक ज्ञान के विकास में उनके महत्वपूर्ण योगदान के होते हुए भी प्लेटो और अरस्तू की पहचान भौगोलिक ज्ञान के प्रवर्तकों के रूप में नहीं है। अधिकांश इतिहासकार अध्ययन की एक पृथक शाखा के रूप में भूगोल की स्थापना का श्रेय इरास्टोस्थनीज (276–194 ई.पू.) को देते हैं। इन विद्वानों का विश्वास है कि 'भूगोल' शब्द का प्रयोग भी सर्वप्रथम इरास्टोस्थनीज ने ही किया था। भूगोल शब्द की व्युत्पत्ति दो ग्रीक शब्दों 'जी' तथा 'ग्राफे' के संयोग से हुई है। जी का अर्थ है पृथ्वी, और ग्राफे का अर्थ है वर्णन इस प्रकार भूगोल का अर्थ था पृथ्वी का वर्णनात्मक अध्ययन। भूगोल अध्ययन की वह शाखा थी जो ग्रीक सभ्यता के गृह प्रदेश के तर्कपूर्ण और समग्र विवरण पर केन्द्रित थी। इसके अध्येता ग्रीक संस्कृति को ज्ञात क्षेत्रों के परे स्थित प्रदेशों के स्वरूप तथा उनमें रहने वाले लोगों के जीवन पद्धति के प्रति निरंतर जिज्ञासु थे। भूगोल पर जिओग्राफिका शीर्षक से लिखी गई प्रथम शास्त्रीय पुस्तक के रचयिता इरास्टोस्थनीज ही थे। उनके द्वारा प्रतिपादित पृथ्वी की परिधि की अनुमानित लम्बाई अपने समय की दृष्टि से यथार्थ के बहुत समीप थी। परिणामस्वरूप पृथ्वी के वास्तविक स्वरूप के बारे में ज्ञानार्जन की दिशा में इसका बहुत महत्वपूर्ण योगदान था। इरास्टोस्थनीज एलेक्जोड्रिया के प्रसिद्ध संग्रहालय के पुस्तकालयाध्यक्ष थे तथा वे उस पद पर निरन्तर चालीस वर्षों तक पीठासीन रहे। उनके नेतृत्व में यह संग्रहालय खगोल विज्ञान के अध्ययन का एक प्रसिद्ध केन्द्र बन गयाथा। उस युग में खगोल विज्ञान तथा भूगोल परस्पर सम्बद्ध अध्ययन के क्षेत्र के रूप में माने जाते थे। अतः इस पद पर रहते हुए इरास्टोस्थनीज को भौगोलिक अध्ययन के लिए समुचित सुविधा उपलब्ध थी। लेखक ने अपनी पुस्तक में पृथ्वी को पांच जलवायुयीय कटिबंधों में विभक्त किया। ये थे विषुवत रेखीय उष्ण जलवायु वाला प्रदेश। इस के क्रमशः उत्तर तथा दक्षिण स्थित दो समशीतोष्ण कटिबन्ध। तथा इन दोनों समशीतोष्ण दो कटिबन्धों से क्रमशः उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुवों तक विस्तृत दो शीत कटिबन्ध। उष्ण कटिबन्ध 24° उत्तरी अक्षांश से 24° दक्षिणी अक्षांश के बीच फैला हुआ है। इसी प्रकार शीत कटिबन्ध ध्रुवों से क्रमशः 24° अक्षांश दक्षिण तथा उत्तर की ओर फैला है। उष्ण और शीत कटिबन्धों के बीच समशीतोष्ण कटिबन्ध स्थित है।

इरास्टोस्थनीज की मृत्यु के पश्चात् एलेक्जोड्रिया के पुस्तकालयाध्यक्ष हिप्पारर्कस नियुक्त हुए। सर्वप्रथम हिपार्चस ने ही वृत्त को 360 अंशों में विभक्त किया। उसने पृथ्वी पर अक्षांश तथा देशान्तर रेखाओं का जाल भी खींचा, तथा विषुवत रेखा को पृथ्वी पर एक महान वृत्त के रूप में परिकल्पित किया, एक ऐसा वृत्त जो पृथ्वी के पिण्ड को दो बराबर भागों में बांट देता है।हिप्पारर्कस के अनुसार चूंकि पृथ्वी अपनी परिक्रमा 24 घंटों में पूरी करती है अतः इस परिक्रमा के दौरान वह एक घण्टे के अवधि में 15° देशांतर की दूरी तय करती है। मानचित्र प्रक्षेपण के विकास की दिशा में भी हिप्पारर्कस का योगदान महत्वपूर्ण था। उसने पिण्डाकार पृथ्वी को समतल कागज पर चित्रित

करने के प्रयास में आने वाली कठिनाइयों के निराकरण की समस्या पर महत्वपूर्ण योगदान किया।

भौगोलिक अध्ययन में पृथ्वी की खगोलीय स्थिति और तत्सम्बन्धी ज्ञान तथा मानचित्र निर्माण की दिशा में किए गए इरास्टोस्थनीज तथा हिप्पारर्कस के प्रयासों को एलेक्जाड्रिया में अध्ययनरत बाद की पीढ़ी के विद्यार्थियों ने और आगे बढ़ाया। इस प्रकार के ज्ञान संचय के आधार पर प्राप्त सूचनाओं को परस्पर सम्बद्ध ज्ञान भाण्डार के रूप में सूत्रबद्ध कर टॉलमी (90–168 ईस्वी) ने अपने आठ भागों वाले ग्रंथ भूगोल परिदर्शक (गाइड टु जिओग्राफी) में प्रस्तुत किया। टॉलमी स्वयं एक महान खगोलशास्त्री तथा खगोलशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रंथ अल्माजेस्ट के लेखक थे। यह पुस्तक दीर्घ काल तक खपिण्डों (सेलेस्टियल बाडीज) की गतिविधियों से सम्बन्धित सूचनाओं के लिए मानक संदर्भ ग्रंथ के रूप में प्रतिष्ठित रही। टालमी का भूगोल परिदर्शक ग्रंथ भी इसी प्रकार के ज्ञान से सम्बद्ध था।

हिप्पारर्कस द्वारा प्रतिपादित अक्षांश और देशांतर रेखाओं से सम्बन्धित संकल्पना के आधार पर टॉलमी ने उस समय ज्ञात सभी स्थानों की गणितीय स्थिति निर्धारित की। उसकी गाइड टु जिओग्राफी के आठ खण्डों में से छह खण्डों में अक्षांश तथा देशान्तर सम्बन्धी यही सूचनाएं संग्रहीत हैं। प्रथम खण्ड में मानचित्र प्रक्षेपण सम्बन्धी चर्चा है तथा अंतिम (और आठवें) खण्ड में खण्ड दो से सात तक चर्चित सभी स्थानों को प्रदर्शित करने वाले मानचित्र संकलित हैं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि वर्तमान ज्ञान के परिप्रेक्ष्य में टॉलमी की पुस्तक पृथ्वी की भौगोलिक स्थिति के बारे में भ्रांतिमूलक सूचनाओं का बहुत बड़ा अम्बार है। परन्तु आज से अठारह शताब्दी पूर्व पृथ्वी के बारे में तत्कालीन ज्ञान के परिप्रेक्ष्य में यह निश्चय ही एक अति महत्वपूर्ण और पाण्डित्यपूर्ण ग्रंथ था। आज की गणना के अनुसार टॉलमी द्वारा दी गई अक्षांश तथा देशांतर सम्बन्धी सूचनाएं सर्वथा त्रुटिपूर्ण हैं। इसका कारण यह है कि टॉलमी ने इनका निर्धारण विभिन्न स्थानों के बीच की दूरी तय करने में लगे सम्भावित समय के आधार पर किया था जो पूरी तरह सही नहीं हो सकता था। त्रुटि का दूसरा कारण यह था कि टालमी ने पृथ्वी की परिधि की लम्बाई के बारे में इरास्टोस्थनीज द्वारा अनुमानित लगभग सही सूचना का प्रयोग न करके पोसिडोनियस द्वारा अनुमानित लम्बाई का प्रयोग किया जो पृथ्वी की परिधि की वास्तविक लम्बाई से करीब एक चौथाई कम थी।

ग्रीक कालीन भूगोल में हेरोडोटस द्वारा प्रतिपादित अध्ययन पद्धति को आगे बढ़ाने में स्ट्रैवो (64 ई.पू. से 20 ईस्वी) का योगदान बहुत महत्वपूर्ण था। सत्रह खण्डों में प्रकाशित स्ट्रेबो का जिओग्राफी शीर्षक ग्रंथ ग्रीस निवासियों को ज्ञात संसार का विशद् वर्णनात्मक विवेचन था। अन्य ग्रीक भूगोलवेत्ताओं की प्रायः पूरी तरह कृतियों के विपरीत स्ट्रैबो की कृति सर्वथासुरक्षित रूप में प्राप्त थी। इसके प्रथम दो खण्डों में होमर से प्रारम्भ कर स्ट्रैबो के समय तक के भौगोलिक अध्ययन के विकास के इतिहास की विवेचना प्रस्तुत है। इसमें चर्चित व्याख्या से तत्कालीन भूगोल के स्वरूप का सम्यक आभास मिलता है। शेष खण्डों में से आठ यूरोप पर केन्द्रित थे, छह एशिया पर, तथा एक अफ्रीका पर स्ट्रैबो की पुस्तक की रचना का उद्देश्य रोमन साम्राज्य के प्रशासनिक अधिकारियों, राजनीतिज्ञों, तथा देश के सेनापतियों को अपने उत्तरदायित्व के सम्यक निर्वाह हेतु सम्बद्ध स्थानों के बारे में आवश्यक भौगोलिक ज्ञान प्राप्त कराना था। इस ग्रंथ के माध्यम से स्ट्रैबो ने क्षेत्रपरक भौगोलिक लेखन को क्रमबद्ध शास्त्रीय स्वरूप प्रदान किया। अपनी भौगोलिक लेखन पद्धति को खुलासा करते हुए स्ट्रैबो ने लिखा था। भौगोलिक चिंतन का जिस प्रकार पृथ्वी की लम्बाई–चौड़ाई आदि नापने वाला विद्यार्थी अपने कार्य संचालन के लिए खगोलशास्त्रियों के सिद्धांतों का सहारा लेता है, तथा खगोलशास्त्री स्वयं भौतिकशास्त्र के सिद्धांतों का, उसी प्रकार भूगोल के विद्यार्थी के विमर्श की नींव उन विद्वानों के ज्ञान पर खड़ी है जिन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वी के स्वरूप के बारे में ज्ञान भण्डार संकलित किया है। वह जिन विद्वानों के पृथ्वी सम्बन्धी ज्ञान भाण्डार का सहारा लेता है उनके ज्ञान की सत्यता पर उसे पूर्ण विश्वास होना चाहिए। साथ ही यह आवश्यक है कि सम्बद्ध विद्वानों के ज्ञान के स्रोतों के प्रति वह पूर्णतया आश्वस्त हो। इस संचयित ज्ञान के आधार पर भूगोल के विद्यार्थी का सर्वप्रथम कर्तव्य अपने पर्यावास (अपने गृह प्रदेश)– उसके आकार, आकृति, उसके स्वरूप और उसकी संरचना, तथा सम्पूर्ण पृथ्वी के परिप्रेक्ष्य में उस क्षेत्र के आकलन का प्रयास करना है। भूगोल के विद्यार्थी का दूसरा मुख्य कर्तव्य पृथ्वी के अन्य अधिवासित जल और थल खण्डों का सम्यक अध्ययन करते हुए यह पता लगाना है कि वे कौन से महत्वपूर्ण पक्ष हैं जिनकी पूर्ववर्ती विद्वानों ने (जिनकी विद्वत्ता पर उसे विश्वास है) सम्यक व्याख्या नहीं की है (जिससे कि भविष्य के शोधकार्य हेतु दिशा निर्देश मिल सके) (स्ट्रेबो, जोन्स द्वारा अनूदित) स्ट्रैबो तथा टॉलमी दोनों के कार्यकाल में रोमन साम्राज्य अपने चरमोत्कर्ष पर था।

इतिहास में अपने समय तक का यह सबसे विस्तृत साम्राज्य था। इसके कुशल प्रशासन के लिए साम्राज्य के सम्पूर्ण भौगोलिक क्षेत्र और उसके प्रखण्डों के बारे में विस्तृत भौगोलिक ज्ञान नितान्त आवश्यक था। साथ ही

साम्राज्य के बाहरी देशों के साथ होने वाले व्यापार तथा अन्य अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों के सफल संचालन के लिए इन बाहरी क्षेत्रों के बारे में सम्यक भौगोलिक ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता थी। अतः देश के उज्ज्वल भविष्य की दृष्टि से नागरिकों (विशेषकर युवा वर्ग) की शिक्षा हेतु भी भौगोलिक ज्ञान का विकास आवश्यक था। परिणामस्वरूप रोमन साम्राज्य के दौर में भौगोलिक ज्ञान के प्रचार–प्रसार को व्यापक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। स्ट्रैबो और टॉलमी की कृतियां युग की विशेष मांग की परिणति थीं तथा वे समकालीन सामाजिक और राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु लिखी गई थी। इस प्रकार भूगोल सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति में महत्वपूर्ण और उपयोगी भूमिका का निभा रहा था। ज्ञान की विशिष्ट शाखा के रूप में यही भूगोल के फलने–फूलने का मुख्य कारण था।

पांचवीं सदी में रोमन साम्राज्य पतनोन्मुख हो गया। केन्द्रीय प्रशासन निर्बल हो गया था और इसके अधीन अनेक इकाईयां क्रमशः स्वतंत्र हो गईं। इससे व्यापार में गिरावट आई, बाहरी क्षेत्रों से सम्पर्क घट गया, नागरिकों का भौगोलिक बोध उत्तरोत्तर सीमित होता गया, तथा अन्ततः ईसाई संस्कृति वाले पूरे क्षेत्र में लोगों की भौगोलिक दृष्टि अपने आस–पास के क्षेत्रों तक ही सिमट गई। समाज उत्तरोत्तर अधिकाधिक अन्तरमुखी होता गया तथा धर्मान्धता को बढ़ावा मिला। परिणामस्वरूप धर्मग्रंथों को ज्ञान की अंतिम सीमा के रूप में देखा जाने लगा। उनमें लिखा प्रत्येक शब्द अंतिम सत्य था तथा उसके परे और कुछ जानने की आवश्यकता नहीं रही। धर्म ग्रंथों के वक्तव्यों से इतर किसी भी विचार, संकल्पना अथवा सूचना को भ्रांत मस्तिष्क का अनर्गल प्रलाप समझा जाने लगा।

ऐसे वातावरण में ज्ञान–विज्ञान के विकास की सम्भावना समाप्त हो गई। मानवीय जिज्ञासा के समाधान के अवसर नहीं रहे। नई चीजों, नए क्षेत्रों, बाहरी प्रदेशों और उनके जीवन के बारे में जिज्ञासा के प्रतिबंधित होने के साथ ही भौगोलिक ज्ञान विलुप्त होने लगा।

पांचवीं से बारहवीं सदी के बीच का यह मध्य युग यूरोप में ज्ञान–विज्ञान का अंधा युग था। इस दौर में ग्रीक भूगोल वेत्ताओं के विचार, उनकी वैज्ञानिक संकल्पनाएं तथा उनकी महत्वपूर्ण कृतियां धीरे–धीरे विलुप्त हो गईं। यदि कोई भौगोलिक तथ्य धर्म ग्रंथों में वर्णित वक्तव्य से मेल नहीं खाता तो उस तथ्य को सम्बद्ध वक्तव्य के अनुरूपढाल लिया जाता था क्योंकि गिरिजाघरों तथा धर्मगुरुओं द्वारा घोषित सत्य ही अंतिम सत्य था। उदाहरणार्थ प्लेटो के समय से मान्य पृथ्वी के पिण्डाकार स्वरूप को नकार दिया गया तथा पृथ्वी को जेरुसलम पर केन्द्रित एक समतल वृत्त माना जाने लगा।

ग्यारहवीं सदी के अन्त तक टर्की तथा सीरिया पर मुसलमानों का अधिकार स्थापित हो जाने के परिणामस्वरूप ईसाई धर्मावलम्बियों के लिए जेरुसलम की यात्रा के द्वार वन्द हो गए। इससे ईसाइयों में व्यापक असंतोष उत्पन्न हुआ और उनमें मुस्लिम विरोध तथा जेरुसलम को मुसलमानी अधिकार से मुक्त करने की भावना को बल मिला। इस उद्देश्य से 1096 से 1270 ई. के वीच निरन्तर सैन्य संघर्ष के प्रयास किए जाते रहे। इन धर्मयुद्धों (क्रूसेड्स) की भौगोलिक ज्ञान के पुनर्जागरण में महत्वपूर्ण भूमिका थी। इनके कारण युद्ध में भाग लेने वालों और उनके सम्पर्क में आने वालों के भौगोलिक अंतरिक्ष, अर्थात् उनकी भौगोलिक चेतना, में व्यापकता आई। युद्ध से वापस अपने घरों को लौटकर ये सैनिक तथा अधिकारी अपने युद्ध अभियान के दौरान देखे गए स्थानों तथा वहां के निवासियों के बारे में अन्य लोगों को बताते थे। इससे भौगोलिक ज्ञान के प्रति जिज्ञासा का विकास हुआ तथा अपरिचित स्थानों के बारे में ज्ञान प्राप्ति की इच्छा को बल मिला। परिणामस्वरूप दूरस्थ स्थानों के लिए यात्राओं का आयोजन किया जाने लगा। इनमें मार्को पोलो की चीन, सूदूरपूर्व के अन्य क्षेत्रों तथा हिन्द महासागर तक 1271 से 1295 के बीच सम्पन्न की गई यात्रा सबसे प्रसिद्ध है।

धर्मयुद्ध सम्बन्धी ये अभियान भौगोलिक ज्ञान के पुनर्जागरण में एक दूसरी तरह से भी सहायक हुए। धर्मयुद्ध अभियानों के कारण मुसलमान शासकों ने अरब देशों से होकर भारत तथा उसके पूर्व की ओर स्थित द्वीपों की ओर जाने वाले व्यापारिक मार्ग को यूरोपीय व्यापारियों के लिए बन्द कर दिया था। फलस्वरूप भारत तथा यूरोपीय देशों के बीच लम्बे अरसे से चला आ रहा महत्वपूर्ण व्यापार ठप पड़ गया। परिणामस्वरूप यूरोपीय शासक तथा व्यापारी वर्ग इन क्षेत्रों के लिए नए मार्ग की खोज में लग गए। कोलम्बस तथा वास्को डा गामा की विश्व विख्यात समुद्री यात्राएं तथा नए समुद्री मार्गों की खोज इन्हीं प्रयासों की परिणति थीं।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि भारतीय मनीषियों तथा ग्रीक–रोमन विद्वानों ने भूगोल के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान किये। इनके योगदान में कुछ मौलिक समानतायें तथा विषमतायें भी दृष्टिगोचर होती हैं जो निम्नवत समानतायें –

(1) दोनों ही सांस्कृतिक क्रोड़ों में ईसा से पूर्व ही भौगोलिक तथ्यों के प्रति पर्याप्त जागरूकता झलकती है।

(2) दोनों ही सांस्कृतिक कोड़ों में भूगोल प्रधानतया विवरणात्मक तथा अनुमान परक था।

(3) उस प्राचीन में पृथ्वीतल पर पाये जाने वाले तथ्यों की अवस्थिति पर विशेष ध्यान दिया जाता था। इन तथ्यों में परस्पर अन्त– सम्बन्ध अथवा अन्तर्प्रक्रिया का विवेचन नहीं होता था।

(4) उस समय पृथ्वी की आकृति एवं विस्तार तथा जल–थल के वितरण का सम्पूर्ण एवं सही ज्ञान दोनों ही क्षेत्रों के विद्वानों का नहीं था। क्रोड़ क्षेत्र (आर्यावर्त तथा ग्रीक –रोम के आसपास के क्षेत्रों का अपेक्षाकृत सही विवरण प्राप्त होता है परन्तु उपान्तीयएवं दूरस्थक्षेत्रों के बारे में ज्ञान अपूर्ण एवं त्रुटिपूर्ण था।

(5) दोनों ही सांस्कृतिक क्षेत्रों के विद्वान, ब्रह्माण्ड अथवा पृथ्वी की रचना के पीछे ईश्वरीय प्रेरणा एवं प्रयोजन के सिद्धान्त को स्वयं सिद्ध मानते थे। अर्थात वे सृष्टिमें विश्वास करते थे क्रम–विकासमें नहीं। उदाहरण के लिये प्लेटो का विश्वास था कि ईश्वर ने पृथ्वी को सर्व प्रकार पूर्ण बनाया है और मनुष्य इसे विपित करता है जबकि अरस्तू का मत था कि पृथ्वी का स्वरूप क्रमशः पूर्णता की ओर अग्रसर है। भारतीय मनीषी भी ब्रह्माण्ड को ईश्वरीय सृष्टि मानते थे जो प्रारम्भ में (सतयुग में) हर प्रकार पूर्ण, संतुलित एवं सामञ्जस्यपूर्ण रहता है परन्तु काल क्रम में इसका सामञ्जस्य घटता जाता है जिससे इसमें विरूपता एवं असंतुलन उत्पन्न होता है। फलस्वरूप कलयुग के पश्चात प्रलय होता है।

(6) दोनों के मतानुसार पृथ्वी ब्रह्माण्ड के केन्द्र में स्थित है एवं अन्य ग्रह– नक्षत्र इसकी परिक्रमा करते हैं।

(7) पृथ्वी के निर्माण के मूल तत्त्व पर दोनों सांस्कृतिक क्रीड़ों में विचार हुआ था कुछ मत–मतान्तरों के साथ ग्रीक–रोमन जल को प्रमुख तत्त्व मानते थे जबकि भारतीय मनीषियों ने पंच तत्वों में अग्नि को प्रमुख तत्व स्वीकार किया है।

(8) पृथ्वी की आकृति दोनों ही क्षेत्रों में पहले चिपटी (कछुए की पीठ जैसी उत्तल अथवा चाक के सदृष्य) मानी जाती थी परन्तु क्रमशः इसे गोलाभ स्वीकार कर लिया गया था।

विषमतायें –1–भारतीय मनीषियों की भौगोलिक तथ्यों के प्रति अभिरुचि को परम्परा दीर्घकालीन है। यहाँ वैदिक काल (ई० पू० 3000 वर्ष) से ही यह परम्परा निरन्तर 1200 ई० तक मिलती है। ग्रीक–रोम चिन्तन परम्परा ई० पू० सातवीं शताब्दी से प्रारम्भ होकर ईसा के पश्चात प्रथम शताब्दी में ही समाप्त हो गई। अर्थात अधिक से अधिक मात्र 800 वर्ष तक ही ग्रीक– रोमन चिन्तन परम्परा चली।

2– भारत में प्राचीनकालमें किसी व्यक्ति विशेष का योगदान बताना कठिन है क्योंकि प्राचीन भारतीय वेद–पुराण किसी व्यक्ति विशेष के नाम से नहीं जुड़े हैं। इस प्रकार भारतीय चिन्तन परम्परा एक सामूहिक चेतना का प्रतीक है। कालान्तर में आर्य भट्ट, बाराह मिहिर अथवा भाष्कराचार्य का व्यक्तिगत योगदान प्रकट हुआ। इसके विपरीत ग्रीक–रोम क्षेत्र में चिन्तन एवं योगदान व्यक्ति विशेष से जुड़े हुए हैं।

3– यूनानी (ग्रीक)रोमन का योगदान सिर्फ स्ट्राबो तथा टोलेमी जैसे कुछ को छोड़कर प्रमुखतया निगमनात्मक तर्क पर आधारित था। भारतीय परम्परा में अपेक्षाकृत प्रत्यक्षानुभव विधि पर आधारित विवरणों की प्रमुखता मिलती है। प्रादेशिक भूगोल का विशद् विवरण इसका उदाहरण है।

4– यूनानी–रोमन विद्वानों ने पृथ्वी के विस्तार का मापन करने तथा मानचित्रण पर विशेष ध्यान दिया। भारतीय विद्वानों में सूक्ष्म प्रादेशिक विवरण पर अधिक ध्यान था। मापन–मानचित्रण का सर्वथा अभाव मिलता है।

5– भारतीय मनीषियोंने ब्रह्माण्ड की रचना प्रक्रिया को समझने की अधिक चेष्टा की जबकि यूनानी रोमन विद्वानों ने पृथ्वी का स्वरूप पहचानने का ही प्रयत्न किया। ब्रह्माण्ड के रचना सम्बन्धी सिद्धान्त इन्होंने भारतीय मनीषियों से ही, विशेषतया सिकन्दर महान के माध्यम से ग्रहण की।

6– यूनानी–रोमनविद्वानों में जलवायु सम्बन्धी ज्ञान के प्रति अधिक सजगता मिलती है। सर्वप्रथम इन्होंने ही जलवायु कटिबन्धों को विभक्त करने का प्रयास किया। वास्तव में क्लानलामेट शब्द ग्रीक क्लिम से ही बना है जिसका अर्थ है सूर्य का झुकाव। भारतीय चिन्तन में विश्व के जलवायु विभाजन का कोई प्रयास नहीं दिखाई पड़ता।

7– भारतीय ग्रन्थों में भारतीय उपमहाद्वीप के हर भाग का विशद प्रादेशिक विवरण प्राप्त होता है। यूनानी–रोमन विद्वानों का प्रादेशिक विवरण अपेक्षाकृत सीमित है। भूमध्यसागर के निकट के क्षेत्रों का ही प्रामाणिक विवरण मिल पाता है।

3.4 अरब भूगोलवेत्ताओं के योगदान

632 ई० में हजरत मुहम्मद के देहान्त के पश्चात ईस्लाम धर्म के समर्थकों ने अरब के बाहर के क्षेत्रों पर अधिकार करना प्रारम्भ किया। 641 ई० में पर्शियातथा 642 ई० में मिश्र पर ईस्लाम धर्म का प्रभाव हो गया। 732 ई० तक ईस्लाम का प्रसार सहारा क्षेत्र तथा स्पेन– पुर्तगाल तक हो गया। 732 ई० में ही फ्राँस में इस्लाम समर्थकों की पराजय हुई परन्तु स्पेन–पुर्तगाल में इस्लाम का प्रभाव 9 वी शताब्दी तक बना रहा। क्रमशः मध्य एशिया तथा भारतीय उपमहाद्वीप की ओर मो इस्लाम का प्रभाव फैलता गया। इस्लाम के फैलते प्रभाव के साथ–साथ अरबी भाषा का भी प्रसार हुआ। पूर्व मध्य युग में अरबी भाषा के माध्यम से भूगोल में योगदान करने वाले सभी विद्वान अरब भूगोलवेत्ता कहलाते हैं चाहे वे मध्यपूर्व के निवासी हों अथवा मिश्र के चाहे वे अल्जीरिया के रहने वाले हों चाहे स्पेन के।

इस युग में बगदाद, जो प्राचीन बेबीलोन के निकट एक सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में 762 ई० में स्थापित हुआ अरबी भाषी इस्लाम धर्मानुयायी जगत का प्रमुख केन्द्र बना। यहाँ के खलीफा हन–अल–रसीद ने भौगोलिक ज्ञान को आगे बढ़ाने में अभिरुचि ली। इन्होंने यूनानी विद्वानों की कृतियों का अरबी में अनुवाद कराया। दूसरे खलीफा अल–मामून ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया इन्होंने सभी धर्मों के विद्वानों को अनुवाद के काम में लगाया। यूनानी तथा भारतीय विद्वानों की पुस्तकंद सभी स्रोतों से मंगवायी तथा अनुवादकों द्वारा इनका अनुवाद करने को प्रोत्साहित किया। अनुवाद की गई पुस्तक की तौल के बराबर सोना अनुवादक को पारिश्रमिक के रूप में दिया। ऐसे अनुकूल वाता– वरण में विद्वानों का उत्साहित होना स्वाभाविक था। इसीलिए अरबी भाषी विस्तृत क्षेत्र में भौगोलिक ज्ञान का विकास हुआ। इस प्रकार जब ईसा की मृत्यु के पश्चात ईसाई धर्म से प्रभावित क्षेत्रों में अन्ध युग था अर्थात किसी प्रकार के नये ज्ञान को प्रश्रय नहीं दिया जाता था, तब अरब भूगोल बेत्ताओं ने यूनानी विद्वानों के ज्ञान को सुरक्षित रखा, भारतीय साहित्य से प्राप्त ज्ञान का अध्ययन किया तथा स्वयं कठिन यात्राओं द्वारा नये क्षेत्रों के बारे में जानकारी प्राप्त की।

अरब लोगों ने गणितीय, भौतिक तथा प्रादेशिक भूगोल के क्षेत्र में अद्वितीय योगदान किया। उनके कार्य खगोल विज्ञान, जलवायु विज्ञान, सागर विज्ञान, भूआकृति विज्ञान, रेखीय मापन, दिशाओं के निर्धारण, निवास्य विश्व की सीमाओं तथा महाद्वीपों एवं महासागरों के विस्तार के बारे में सराहनीय थे। अरब लोगों को ग्रीक विद्वानों के विचारों ने बहुत प्रभावित किया। पृथ्वी की आकृति एवं आकार के बारे में उन्हीं लोगों के विचारों को ग्रहण किया। अरब लोगों ने पृथ्वी को ब्रह्माण्ड के मध्य में माना जिसके चारों ओर सात ग्रह चक्कर करते थे। पृथ्वी से दूरी के दृष्टिकोण से इन ग्रहों के नाम चन्द्रमा, बुद्ध, शुक्र, सूर्य, मंगल, वृहस्पति और शनि थे। इन सभी के बारे में अनुमान था कि इन सभी के अलग–अलग आकाश थे जबकि टालेमी ने अलग–अलग स्फीयर का सम्बोधन किया था। इन लोगों का विश्वास था कि सातों आकाश में पृथ्वी के सबसे निकट का रंग हरे नीलम, दूसरे का सफेद चाँदी, तीसरे का लाल माणिक्य , चौथे का सफेद मोती, पाँचवें का लाल स्वर्ण , छठें का पीला पुखराज और सातवें का अग्नि पुंज–नूरजैसा था। इसी तरह पृथ्वी के अन्दर सात पेटियां बताया है, इनमें अन्तिम पेटी को नर्क माना है। टालेमी ने पृथ्वी की परिधि सको 151 ई० में 24000 मील (38,400 किमी.) बताया था जबकि अलमामून ने 20,160 मील (32,256 किमी.) और अल बतानी ने 27,000 मील (43,200 किमी.) बताया। अरबों ने निवास्य विश्व की पश्चिमी सीमा को भूमध्य सागर के सिरे, पूर्वी सीमा को सिला (जापान), उत्तरी सीमा को (साइबेरिया) का भूभाग और दक्षिणी सीमा भूमध्य रेखा के दक्षिण बताया।

जलवायु के सम्बन्ध में अरब लोगों ने कुछ बहुमूल्य सुझाव दिये थे। सन् 921 ई० में अरब यात्रियों में अल–वलाखी ने जलवायु सम्बन्धी आँकड़ें एवं सूचनायें एकत्र किया और विश्व का प्रथम जलवायविक एटलस 'किताबुल असकल' नाम से तैयार किया। अल मसूदी ने भारतीय मानसून का बहुत अच्छा वर्णन किया। सन् 985 ई0 में अल–मकदिसी ने विश्व को चौदह जलवायु प्रदेशों में विभाजित किया। उसने यह भी बताया कि जलवायु में परिवर्तन या जलवायु मेंवैभिन्नता न केवल अक्षांशों में होता है वरन् पूरब–पश्चिम स्थिति के अनुसार भी होता है। उसने यह भी विचार प्रकट किया कि दक्षिणी गोलार्द्ध में महासागर अधिक खुले हुए हैं जबकि विश्व के अधिकांश स्थलीय खण्ड उत्तरी गोलार्द्ध में है। अरब विद्वानों ने विश्व को ग्रीक लोगों की भाँति तापक्रम के आधार पर पाँच

कटिबन्धों में विभाजित किया जो इस प्रकार थे– (1) उष्ण कटिबन्ध को दो अयनवर्ती प्रदेशों के बीच में बतायाय (2) दो शीत कटिबन्धों को ध्रुवों के निकट कहा और (3) दो शीतोष्ण कटिबन्ध को मध्यवर्ती स्थिति में बताया। अरबों के अनुसार विश्व का मात्र एक–चौथाई भाग ही आवासित था तथा शेष भाग जलाच्छादित था अथवा अत्यधिक उष्णता या शीतित अवस्था के कारण अनावासित थे। परसियन लोगों ने विश्व को सात साम्राज्यों या राष्ट्रों में विभाजित किया था जिन्हें किशवर कहा जाता था। कभी–कभी इन्हें जलवायु भी कहा गया है। ये सात किसवारों के नाम चीन, भारत, तूरान या तुर्किस्तान, रोमन राज्य, अफ्रीका और ईरान थे। मानसून की सामयिक प्रकृति का विचार सर्वप्रथम अरब भूगोलविदों ने ही दिया था जिन्होंने मानसून शब्द को अरबी भाषा के मौसम शब्द से लिया था। अरव, मिस्र, अलजीरिया और लीबिया के मरुस्थलों से चलने वाली अनेक स्थानीय पवनों का भी वर्णन इन लोगों द्वारा किया गया है। अनेक अरब लेखकों और विद्वानों ने भूगोल के विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान किया है। उनमें से कुछ प्रमुख विद्वानों के योगदान की संक्षिप्त चर्चा यहाँ की जा रही है।

3.4.1 मोहम्मद अब्दुल कासिम–

मेसोपोटामिया के नासिबिन नगर में जन्में मोहम्मद कासिम बगदाद के निवासी थे। इन्हें इब्न–हाकल–अबू–अल–मोहम्मद कासिम के नाम से भी जाना जाता है। उन्होंने पैदल ही अनेक देशों की यात्राएं की थी। 943 ई० में यात्रा आरंभ करके उन्होंने उत्तरी अफ्रीका, मिस्र, सीरिया, आरमेनिया, अजरबेजान, अल जजीरा, ईराक, ईरान, ट्रांसोजानिया, सिसली आदि की यात्राएं की थी। उन्होंने अपनी यात्रा वर्णन से संबंधित एक पुस्तक लिखा था जिसका नाम है 'मार्गों और परिमंडलों की पुस्तक'। इसमें विभिन्न देशों एवं प्रदेशों की सीमाओं, नदियों, जलाशयों, मार्गों, संसाधनों, व्यापारिक वस्तुओं, नगरों आदि का वर्णन सम्मिलित है। मोहम्मद कासिम ने यूरोपीय देशों का भी भौगोलिक वर्णन किया है। उनके विवरण के अनुसार कैस्पियन सागर उत्तरी सागर से जुड़ा नहीं है। उन्होंने यूरोप को एक द्वीप बताया था। उन्होंने विभिन्न प्रदेशों की कृषि प्रणालियों तथा कृषि उपजों आदि का भी वर्णन किया था।

3.4.2 अल–मसूदी–

अल–मसूदी का जन्म दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध (985 ई०) में बगदाद में हुआ था। अल–मसूदी एक भूगोलवेत्ता ही नहीं बल्कि इतिहासकार और प्रसिद्ध लेखक भी थे। उन्होंने एशिया और अफ्रीका के अनेक दूरस्थ भागों की यात्राएं किया था। उन्होंने यूनानी और रोमन विद्वानों की रचनाओं का गहन अध्ययन किया था और यात्राओं द्वारा पर्याप्त भौगोलिक सूचनाओं को संग्रहीत किया था। अल–मसूदी ने कई पुस्तकें लिखा था जिनमें से केवल एक ही पुस्तक उपलब्ध है जिसका नाम है किताब–मुराज–अल–दहाब।

अल–मसूदी ने पृथ्वी की गोलाभ आकृति की पुष्टि की थी। उन्होंने अरब सागर को बृहत्तम सागर बताया था और साथ ही अरब से चीन तक के जलीय में सात सागरों का वर्णन किया था। उन्होंने भौतिक भूगोल में महत्वपूर्ण कार्य किया था। उनके अनुसार नदियां अपना मार्ग परिवर्तन करती रहती हैं और अनेक प्रकार की स्थलाकृतियों का निर्माण करती हैं। उनके अनुसार 'पृथ्वी का कोई ऐसा स्थान नहीं है जो हमेशा जलाच्छादित रहा हो और ऐसा भी नहीं है कि कोई भूमि हमेशा स्थल ही रही हो। हमेशा परिवर्तन होता रहता है।' उन्होंने बंगाल की खाड़ी (हेरकेन्द सागर) की मानसूनी हवाओं का वर्णन एक मौसम विज्ञानी की दृष्टि से किया है। अल–मसूदी ने मनुष्य और पर्यावरण के पारस्परिक संबंध स्थापित करने का भी उल्लेखनीय प्रयास किया था। जलवायु प्रदेशों में विभक्त किया था।

3.4.3 अल–बनी–

अल–बनी (973–1039) का जन्म मध्य एशिया में उज्बेकिस्तान के ख्वारिज्म नगर के समीप सरदरिया (नदी) के तट पर स्थित 'बीःन' नामक स्थान पर हुआ था। इनका बचपन का नाम अबू रिहान मोहम्मद था। उस समय ख्वारिज्म नगर शैक्षिक केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध था। अल–बनी ने यहीं से शिक्षा ग्रहण की थी। अल–बःनी उजबेकिस्तान से गजनी आये थे। वहाँ से उन्होंने भारत की भी यात्रा की थी। उन्होंने धर्म, दर्शन, गणित, ज्योतिष, इतिहास, औषधि (चिकित्सा) विज्ञान की शिक्षा ग्रहण की थी। बाद में उन्होंने अरबी के अतिरिक्त फारसी, यूनानी, संस्कृत आदि भाषाओं को भी सीखा और उन भाषाओं में लिखित प्रमुख पुस्तकों का गहन अध्ययन किया। अल–बनी एक महान विद्वान और बहु–आयामी प्रतिभा के धनी थे। उनकी मृत्यु गजनी में हुई थी।

बहु–आयामी लेखक अल–बनी ने अनेक पुस्तकें लिखी और विभिन्न विषयों पर अपने विचार प्रकट किये।

अल–बनी के प्रमुख ग्रंथ इस प्रकार हैं–(1) किताब–अल–हिन्द, (2) तारीखे–अल–हिन्द, (3)अल–कानून–अल–मसूदी (बादशाह मसूद के कानू (4) अथर–अल–बगिया, (5) किताब–अल–जमाकीर, (6) किताब–अल–सैयदना, (7) अल–तहदीद आदि। उन्होंने पतंजलि के प्रसिद्ध संस्कृत ग्रंथ 'महाभाष्य' का अरबी भाषा में अनुवाद भी किया था। अल–बःनी ने भूगोल संबंधी 27 पुस्तकें लिखा था जिनमें से 12 पुस्तकें मानचित्र कला, भूगणित और जलवायु विज्ञान (प्रत्येक पर चार–चार पुस्तकें) पर थीं। अन्य पुस्तकें धूमकेतुओं, उल्काओं, सर्वेक्षण आदि से सम्बन्धित थीं। अल–बनी का प्रमुख योगदान खगोल विज्ञान, गणितीय भूगोल और प्रादेशिक भूगोल में था।

(1) खगोल विज्ञान में योगदान– अल–बनी ने टालमी की पुस्तक 'अलमाजेस्ट' के अनुरूप खगोल विज्ञान की पुस्तक 'कानून–अल–मसूदी' लिखा था जिसमें महत्वपूर्ण खगोलीय सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है। इस पुस्तक में सूर्य और चन्द्रमा का विस्तृत वर्णन किया गया है। अल–बनी ने पृथ्वी और चन्द्रमा के बीच की अधिकतम और न्यूनतम दूरियों को भी नापा था। उन्होंने यह भी बताया था कि ज्वार की अधिकतम और न्यूनतम ऊँचाई चन्द्रमा की अवस्थाओं (कलाओं) में अंतर का परिणाम होती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि अल–बनी खगोल विद्या के प्रति समर्पित थे।

(2) गणित में योगदान–अल–बनी एक महान गणितज्ञ थे। ज्यामिति और अंकगणित पर उन्हें पूर्ण अधिकार प्राप्त था। वे बीजगणित के भी विशेषज्ञ माने जाते थे। अल–बनी ने गोलीय त्रिकोणमिति के साथ–साथ भारतीय अंकगणित के सिद्धान्तों को भी अपनाया था।

(3) भौतिक भूगोल में योगदान– भूआकृति विज्ञान और जीवाश्म विज्ञान में अल–बनी ने महत्वपूर्ण कार्य किया था। उन्होंने नदियों के बाढ़ क्षेत्रों तथा जल स्रोतों की विवेचना की थी।

(4) प्रादेशिक भूगोल में योगदान– अल– बनी ने एशिया, अफ्रीका और यूरोप के बहुत से देशों की प्रादेशिक विशेषताओं का वर्णन किया है।

(5) औषध विज्ञान– अल–बनी ने औषधियों के निर्माण से सम्बन्धित औषध विज्ञान पर भी पुस्तक लिखी थी। इसमें वनस्पतियों, पशुओं, खनिजों आदि से दवाएं बनाने और उनसे रोगों के उपचार की विधियों का वर्णन किया गया है। उपर्युक्त विवरणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अल–बनी खगोल विज्ञान, दर्शन, भूगोल, भूगर्भशास्त्र, गणित, भू–आकृति विज्ञान, औषध विज्ञान तथा कई भाषाओं के ज्ञाता थे। अपनी यात्राओं, पूर्ववर्ती यूनानी, रोमन, भारतीय विद्वानों की पुस्तकों के अध्ययन, खुले मस्तिष्क और कठोर परिश्रम तथा विशिष्ट लेखन द्वारा अल–बनी मध्यकाल के महत्वपूर्ण भूगोलवेत्ता बन गये थे।

3.4.4 अल–इदरीसी–

अल–इदरीसी (1099–1180 ई०) बारहवीं शताब्दी के अग्रणीय भूगोलवेत्ता थे जिनका मौलिक नाम 'अबू–अबद–अल्लाह मोहम्मद' था। उनका जन्म मोरक्को (अफ्रीका) के उत्तर में स्थित क्वेटा स्थान पर हुआ था। वे स्पेन स्थित कारडोबा के खलीफा इदरिस के वंशज थे। इसी आधार पर वे अल–इदरीसी के नाम से जाने जाते थे। उनकी शिक्षा–दीक्षा कारडोबा नगर में हुई थी। कारडोबा में शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् अल–इदरीसी सिसली के शासक रोजर द्वितीय के आमंत्रण पर पालेरमों नगर (सिसली) पहुँचे और वहाँ लम्बे समय तक रहे। उन्होंने अपने जीवन के प्रारंभिक काल में ही भूमध्य सागर के तटवर्ती अनेक स्थानों की यात्राएं की थी। अल–इदरीसी ने लिस्बन, स्पेन, फ्रांस, इंग्लैण्ड, मोरक्को, सिसली, एशिया माइनर, कुस्तुनतुनिया और अफ्रीका के कुछ आंतरिक भागों की यात्रा किया था। पालेरमों में रहते हुए उन्होंने भूगोल पर कई पुस्तकें लिखा। अपने अनुभव तथा ज्ञात तथ्यों के आधार पर अल–इदरीसी ने एक विश्व मानचित्र भी बनाया था जिसको समझने के लिए एक संदर्भ पुस्तक भी लिखी गयी थी। उनकी विश्व भ्रमण के इच्छुकों के लिए मनोरंजन' नामक पुस्तक अत्यंत रोचक और ज्ञान दायिनी है।

अल–इदरीसी ने हिन्द महासागर, कैस्पियन सागर, कई यूरोपीय तथा एशियाई नदियों के विषय में फैली पूर्ववर्ती भ्रांतियों को दूर किया और नाइजर, डेन्यूब आदि अनेक नदियों के मार्गों की स्पष्ट व्याख्या की। उन्होंने अपने विश्व मानचित्र में भूमण्डल को सात बृहत् जलवायु प्रदेशों में विभाजित किया था और प्रत्येक को प्राकृतिक विशेषताओं के आधार पर उप प्रदेशों में विभाजित किया था। उन्होंने प्रत्येक उप–प्रदेश की भूआकृतियों, नदियों, वनस्पतियों, कृषि उपजों आदि का अलग–अलग वर्णन किया था। अल–इदरीसी द्वारा तैयार किया गया विश्व

मानचित्र भूगोल जगत् के लिए उनकी विशिष्ट देन है। उन्होंने टालमी की रचनाओं का गंभीरता से अध्ययन किया था और उससे वे बहुत प्रभावित थे। उन्होंने उस समय के ज्ञात क्षेत्रों के लिए छोटे–छोटे मानचित्रों का निर्माण करके एक मानचित्रावली का भी निर्माण किया था। उनके मानचित्रों में वास्तविक रूप से ज्ञात तथ्यों एवं विवरणों को ही प्रदर्शित किया गया था। अरब सागर और कैस्पियन सागर की सही स्थिति पहली बार अल–इदरीसी के मानचित्र में ही प्रदर्शित की गयी थी। संक्षेप में, अल–इदरीसी ने अपनी यात्राओं तथा अनुभव के आधार पर ज्ञात देशों और प्रदेशों का प्रादेशिक वर्णन किया था जो लगभग वास्तविक थे।

3.4.5 इब्नबतूता–

इब्नबतूता (1304–1377 ई०) का जन्म उत्तरी अफ्रीका के टेंजियर्स नगर में एक मुस्लिम न्यायाधीश (काजी) परिवार में हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा स्थानीय विद्यालय में हुई थी। उनमें भ्रमण और में विश्व के विषय में अधिक से अधिक जानने की इच्छा बचपन से ही थी। वे अध्ययन के उद्देश्य से मिस्र, सीरिया और हेजाज में कई वर्षों तक रहे और वहाँ के प्रमुख सूफियों (संतों) और विद्वानों से मिले। उन्होंने तीर्थयात्रा के उद्देश्य से 21 वर्ष की आयु में मक्का की हजयात्रा की थी। हजयात्रा के पश्चात् उन्होंने मिस्र, सीरिया, मेसोपोटामिया (इराक), अरब, फारस, एशिया माइनर, मध्य एशिया, कुस्तुनतुनिया, बुखारा, भारत, लंका, मालदीव, सुमात्रा, इथोपिया, चीन आदि प्रदेशों की सफलतापूर्वक यात्राएं की थी।

इब्नबतूता ने अफ्रीका के पूर्वी तट के सहारे दक्षिण की ओर समुद्री मार्ग से भूमध्य रेखा से 100 दक्षिण में स्थित किलवा स्थान तक यात्रा की थी। पश्चिमी एशिया से अनातूलिया, कुस्तुनतुनिया, कीव (मध्य एशिया), बुखारा, समरकन्द और अफगानिस्तान होते हुए हिन्दूकुश पर्वत के दर्रे से होकर 1333 ई० में इब्नबतूता भारत पहुँचे थे। भारत में तत्कालीन बादशाह मोहम्मद बिन तुगलक ने उन्हें काजी न्यायाधीश के रूप में नियुक्त कर लिया। इस प्रकार वे भारत में 8 वर्ष तक रहे और भारत की विस्तृत यात्राएं कीं। भारत से वे मालदीव, श्रीलंका, मलाया होते हुए समुद्री मार्ग से चीन के कैन्टन नगर गये थे और वहाँ से पुनः मोरक्को वापस चले आये थे। यह यात्रा लगभग 30 वर्ष में पूरी हुई थी। कुछ वर्षों बाद उन्होंने सहारा को पार करके नाइजर के तट पर स्थित टिम्बकटू तक की यात्रा किया था। इस प्रकार उनका अधिकांश जीवन यात्राओं में ही बीता था।

इब्नबतूता ने अपनी यात्राओं के अनुभवों तथा विभिन्न स्थानों, नगरों, प्रदेशों आदि की विशेषताओं, इमारतों आदि का विस्तृत वर्णन अपनी रचनाओं में किया है। उन्होंने शरिहलाह' नामक पुस्तक लिखी थी जिसमें अनेक इस्लामिक (मुस्लिम) देशों की मिट्टियों, कृषि, अर्थव्यवस्था, राजनीतिक इतिहास आदि का वर्णन किया गया है। वास्तव में वे एक भ्रमणशील भूगोलवेत्ता थे जिनका उद्देश्य विश्व के विभिन्न स्थानों और देशों की यात्रा करना और वहाँ के प्राकृतिक, आर्थिक, सामाजिक–सांस्कृतिक तथा राजनीतिक दशाओं से परिचित होना और उनका वर्णन करना था।

3.4.6 इब्न खाल्दून–

इब्न खाल्दून (1332–1406) को अंतिः अरब विद्वान माना जाता है जिन्होंने भूगोल के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान किया था। उनका जन्म संभवतः अल्जीरिया (उत्तरी अफ्रीका) में हुआ था। वे अल्जीरिया, ट्यूनीशिया, स्पेन और मिस्र में रहे थे। उन्होंने 1377 ई० में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक मुकद्दीमा' को पूरा कर लिया था। यह पुस्तक छः खण्डों में विभाजित है। (1) सभ्यता, भूगोल और मानव विज्ञान, (2) चलवासी और स्थायी संस्कृति, (3) राजवंश और राज्य, (4) ग्रामीण और नगरीय जीवन, (5) जीवन यापन के साधन, और (6) विज्ञानों का वर्गीकरण।

इब्न खाल्दून को एक कुशल इतिहासकार और समाजशास्त्री के रूप में जाना जाता है किन्तु उन्होंने एक पर्यावरणवादी भूगोलवेत्ता के रूप में मानवीय क्रियाओं और उसकी जीवन शैली पर प्राकृतिक पर्यावरण के प्रभावों की तार्किक व्याख्या की है। उन्होंने अपनी पुस्तक में विभिन्न सामाजिक संगठनों की विकास अवस्थाओं की व्याख्या के साथ ही मरुस्थल के चलवासी जीवन को सर्वाधिक आदिम और पवित्र बताया है। उन्होंने विभिन्न शासन प्रणालियों का भी विवेचन किया है और राजनीतिक शक्ति के रूप में राजवंशों के उत्थान की क्रमिक अवस्थाओं का भी वर्णन किया है। जनसंख्या वितरण के संदर्भ में इब्न खाल्दून का विचार था कि उत्तरी गोलार्द्ध में दक्षिणी गोलार्द्ध की तुलना में जनसंख्या सघन हैं और भूमध्यरेखा के सहारे जनसंख्या अत्यंत विरल है। समय के साथ जनसंख्या में वृद्धि होती है और बस्ती बढ़ती हुई आगे चलकर नगर का रूप ले लेती है। बड़े नगरों का आरंभ पहले लघु बस्तियों के रूप में होता है।

मानव पर पर्यावरण के प्रभाव का विवेचन करते हुए इब्न खाल्दून ने लिखा है कि भूमध्य रेखा के निकट निवास करने वाले लोग तेज धूप के कारण काले हो जाते हैं। उनके अनुसार मनुष्य के गुणों और अभिरुचियों पर प्राकृतिक पर्यावरण का निर्णायक प्रभाव पाया जाता है। इस प्रकार मनुष्य और पर्यावरण के मध्य सम्बंध स्थापित करते हुए पर्यावरण को अधिक महत्वपूर्ण बताने वाले इब्न खादून को विश्व का प्रथम पर्यावरणीय नियतिवादी कहा जा सकता है।

3.5 प्रादेशिक विवरण

अरब विद्वानों ने प्रादेशिक विवरण में विशेष रूचि दर्शाया। अल बरनी की 1030 ई० में लिखी गई किताब–एल–हिन्द इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें इन्होंने हिमालय से निकलने वाली नदियों के गोलाश्मों का विशेष महत्व बताया। इन्होंने यह महत्वपूर्ण तथ्य बताया कि हिमालय की तलहटी में नदियों द्वारा निक्षेपित, पर्वतों के पास बड़े ढोकों में मिलता है जबकि दूर जाने पर छोटे कणों के रूप में इन्होंने भारत में प्रचलित इस सिद्धान्त का कि उयार चन्द्रमा के आकर्षण से उत्पन्न होते हैं, विशेष उल्लेख किया। अलबनी ने सैकड़ों छोटी–बड़ी पुस्तक लिखी तथा भारत के विभिन्न भौगोलिक तथ्यों का विशद विवरण किया।

जीवन के 1154 ई० में इद्रीसी ने एक पुस्तक लिखी जिसका शीर्षक था–जो विश्व भ्रमण करना चाहे उसके लिये मनोरंजन। इन्होंने कई नदियों के मार्ग जिनमें डैन्यूब और नाइजर उल्लेखनीय हैं सही दर्शाया तथा कुछ पर्वत स्थिति भी ठीक चित्रित की इन खालदूनने कई नगरों और अवस्थिति का चित्रण किया। इनके अनुसार नगरीय परिणाम, व्यापार, कलाकौशल तथा विज्ञान हैं। इन्होंने राज्यों के उत्थान–पतन का विश्लेषण किया तथा मनुष्य की विशिष्टताओं पर प्राकृतिक वातावरण तथा संस्कृति के प्रभाव दर्शाये। अल मसूदी ने भी मानव की विशेषताओं को वातावरण के सन्दर्भ में स्पष्ट करने का प्रयास किया। इनके अनुसार जल की मात्रा धरातल एवं प्राकृतिक वनस्पति का मानव पर विशेष प्रभाव पड़ता है। प्रचुर जल एवं उपजाऊ मिट्टी वाले क्षेत्र में बसने वाले व्यक्ति आराम पसन्द होते हैं। इनके अनुसार अरब के बददू साहसी एवं घुम्मकड़ होते है। यूरोपवासियों को इन्होंने कठोर एवं चालाक बताया जबकि विषुवत रेखा के निकट बसने वालों को काली चमड़ी वाला एवं क्रूर। इस प्रकार मसूदी वातावरण को मानव की विशेषतायें निर्धारित करने में अति महत्वपूर्ण माना। अनेक अन्य अरब लेखकों ने मध्य एशिया, हिन्देशिया, चीन, जापान, कोरिया, रूस, मिश्र, सीरिया, ईराक आदि तत्कालीन ज्ञात विश्व के विभिन्न भागों के प्रादेशिक भूगोल प्रस्तुत किये। इनमें अल याकबी, अल जहानी इब्ने फदलम, इब्ने फागीह, अबू–जैद, अबू– दुलफ के नाम उल्लेखनीय हैं।

3.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई में भारतीय एवं ग्रीक – रोमन भूगोल के योगदान की तुलनात्मकव्याख्या की गई है। एवं अरबभूगोलवेदताओं के योगदान का विस्तृत वर्णन किया गया है। जर्मनी, फ्रांस, इटली, ब्रिटेन, आदि देशों के भूगोलवेत्ताओं में भूगोल के विभिन्न पक्षों के अध्ययन और वर्णन में यूनानी तथा रोमन ग्रन्थों से अच्छी रुचि जाग्रत हुई थी। इन अन्य देशों के विद्वानों ने यूनानी और रोमन भूगोलवेत्ताओं का अनुसरण करते हुए, भूगोल को एक संगठित विज्ञान का रूप प्रदान किया था। परन्तु बड़ी देरी करके ये रचनात्मक कार्य किये थे। ईसा की तीसरी शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक का युग अंधेरा युग कहलाया , जिसमें भूगोल के अध्ययन–वर्णन पर ईसाई धर्म का प्रभाव छाया रहा था। इसी कारण यूरोप के विद्वानों को यूनानी और रोमन ग्रन्थों का ठीक–ठीक अनुसरण करने में बहुत देरी हुई थी।

अरब भूगोलवेत्ताओं ने बड़े परिश्रम से प्राचीन यूनानी और भारतीय ग्रन्थों का अध्ययन करके अनुवादित और मौलिक ग्रन्थों की रचना की थी। अरब साम्राज्य की वृद्धि के साथ– साथ व्यापार में वृद्धि हुई थी। उन्होंने भौगोलिक तथा व्यापारिक यात्रायें की थीं। गणितीय भूगोल, भौतिक भूगोल और प्रादेशिक वर्णनों के ग्रन्थ लिखे थे, जिनमें विस्तृत ब्यौरों को समाविष्ट किया गया था तथा वातावरण और मानव के पारस्परिक सम्बन्धों पर भी कुछ विचार व्यक्त किये गये थे। परन्तु अरबों के भौगोलिक वर्णन में एक दोष था। उनमें भाषा को अत्यधिक अलंकृत करने का चाव था, और कहानियों का बहुत चाव था, इसलिये भौगोलिक और ऐतिहासिक तथ्यों में बहुत–सी काल्पनिक और मनगढन्त बातें भी सम्मिलित कर दी गई थीं। इसी कारण अरब में भूगोल एक वास्तविक विज्ञान का स्वरूप न ले सका।

3.7 स्वमुल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

प्रश्न –1 मापक पर आधारित प्रथम मानचित्र किसने बनाया ?

(अ) अनेग्जीमैण्डर (ब) इरेटोस्थनीजस

(स) प्लिनी (द) टॉलमी

प्रश्न 2 'गाइड टू जियोग्रफी' किसकी रचना है?

(अ) टॉलमी (ब) स्ट्रैबो

(स)अरस्तू (द) होमर

प्रश्न 3 ऐस्ट्रोलेब बनवाया :

(अ) पोसिडोनियस (ब) हिप्पारर्कस

(स) जूबा (द) टॉलमी

प्रश्न 4 निम्नलिखित में कौन–सा भूगोलवेत्ता रोमन नहीं था ?

(अ) जूबा (ब) प्लिनी

(स) टॉलमी (द) थेल्स

प्रश्न 5 ग्रीक–रोमन काल में विश्व का सबसे विस्तृत एवं शुद्ध मानचित्र किसने बनाया ?

(अ) टॉलमी (ब) स्ट्रैबो

(स) इरेटोस्थनीज (द) हेरोडोटस

प्रश्न 6 "मुकद्दिमा" के लेखक का नाम है–

(अ) इब्न–हॉकल (ब) अल–मसूदी

(स) इब्न–खालदून (द) इब्नबतूता

प्रश्न–7 इब्न–हॉकल की प्रसिद्ध पुस्तक का नाम है?

(अ) संसार के देश (ब) नगरों की किताब

(स) अल्माजैस्टा (द) उपर्युक्त सभी

प्रश्न 8 मध्ययुगीन सबसे लम्बी खोज–यात्री अरब भूगोल में योगदान करने वाला भूगोलवेत्ता है?

(अ) इद्रिसी (ब) इब्नबतूता

(स) मार्कोपोला (द) इब्न–हॉकल

प्रश्न 9 किताबे हिन्द के लेखक का नाम है ?

(अ) अल–बनी (ब) अल–इस्तखरी

(स) अल–मसूदी (द) अल–याकूबी

उत्तरमाला 1.(अ)2.(अ)3.(ब) 4.(द)5.(अ)6.(स)7.(अ)8. (ब)9.(अ)

3.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

- Semple, E.C., (1911), Influences of Geographic Environment on the basis of Ratzel's Systems ofAnthropogeography, New York.
- Shafi., M. (1960),Al-Masudi as a Geographer inAl-Masudi Millenary com- memoration

Volume,Aligarh.

- Simmons, I.G. (1997), Changing the face of the Earth% Culture, Environment., History, Oxford, Blakwell.
- Simon, M. (1960), What is a Geographical factor? Geography, vol.5 1. Smith, D.M. (1947), Human Geography, London.
- Spate, O.H.K., (1957), How Determinism is Possibilism, Geographical Studies, London.
- Stamp, L.D., (1947), The Land of Britain % Its Use and Misuse, London.
- Stewart, J.Q. (1947), Empirical mathematical rules concerning the Distribution andequilibrium of Population, Geographical Review, Vol.37, pp.461-485.
- Tatham, G. (195 1), Geography in the Twentieth Century, London, Methuen
- Thomas, W.L. (Ed.), (1956), Man's Role in Changing the face of the Earth, Chicago.
- Thompson, J.O. (1965),A History ofAncient Geography, New York, Biblo Tannen.
- Ullman, E.J. (1953), Human Geography andArea Research,AAAG Vol.43, Pp.54-66.
- Urry, J. (1981), Localities region and social class International Journal Urban and Regional Research, Vol.5, pp.455-474.
- Vidal de La Blache (1926), Principles ofHuman Geography, Paris.

3.8 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

प्रश्न 1 भारतीय ग्रीक तथा रोमन भूगोलवेत्ताओं के योगदान की कालानुक्रम में चर्चा कीजिये।

प्रश्न 2 भारतीय ग्रीक–रोमन भूगोल की प्रकृति का तुलनात्मक अध्ययन को समझाइये।

प्रश्न 3 भौगोलिक विचारधारा के विकास में मध्यकालीन अरब भूगोलवेत्ताओं के मुख्य योगदान की व्याख्या कीजिये।

प्रश्न 4प्रमुख अरब भूगोलवेत्ताओं का भूगोल के विकास में योगदान समझाइये।

प्रश्न 5 अरब भूगोल के विकास में सहायक समसामयिक दशाओं की चर्चा कीजिये।

प्रश्न 6 प्राचीन भौगोलिक ज्ञान के परिरक्षण के रूप में अरब भूगोलवेत्ताओं के योगदान की व्याख्या कीजिये।

इकाई–4 पुनर्जागरण काल में भूगोल की प्रगति, भौगोलिक यात्राएं– कोलंबस, वास्को–डि–गामा,फर्डिनेंड मैगलेन

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 पुनर्जागरण काल में भूगोल की प्रगति

4.4 सामान्य वैज्ञानिक प्रगति

4.5 अन्वेषण युग का योगदान

4.5.1. कारपिनी यात्रा विवरण

4.5.2. रुब्रेक विलियम की यात्रा का विवरण

4.5.3. मार्कोपोलो की यात्रा

4.6 पुनर्जागरण काल में भौगोलिक यात्राएं एवं उनका विवरण

4.7 सामुद्रिक यात्राएं

4.7.1. कोलंबस

4.7.2. वास्को–डि–गामा

4.7.3. फर्डिनेंड मैगलेन

4.7.4. अन्य खोज यात्री

4.7 पुनर्जागरण काल के अविष्कार

4.8 पुनर्जागरण काल के भूगोलवेत्ता

4.9 पुनर्जागरण काल की भौगोलिक उपलब्धियां

4.10 सारांश

4.11 स्वमूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

4.12 संदर्भ – ग्रंथ– सूची

4.13 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

4.1 प्रस्तावना

पुनर्जागरण की उत्पत्ति पंद्रहवीं शताब्दी की शुरुआत से अठारहवीं शताब्दी के अंत तक यूरोप में सामाजिक–आर्थिक विकास की पृष्ठभूमि में स्थित करके देखी जा सकती है। यह सामंतवाद से पूँजीवाद तक संक्रमण का काल था। इटली में पुनर्जागरण की शुरुआत को मध्य युग ग्यारहवीं से तेरहवीं शताब्दी की अवधि से रेखांकित किया जा सकता है। यह ध्यान देना दिलचस्प है की उच्च मध्य युग के दौरान इटली शेष यूरोप से काफी भिन्न था। इटली के नगर–राज्यों ने सांस्कृतिक नवीकरण का नेतृत्व किया जिसके कारण पुनर्जागरण हुआ। नवजागरण का अर्थ केवल शास्त्रीय परंपरा का पुनरुद्धार ही नहीं है, जो मध्य युग के दौरान आँखों से ओझल हो गया था। पुनर्जागरण एक पृथक घटना नहीं थी। पुनर्जागरण और इसका प्रभाव पुनरुद्धार से कहीं आगे तक महसूस किया गया था इटली में होने वाले घटनाक्रम ने साहित्य, दर्शनशास्त्र और कला पर इस कदर प्रभाव डाला जिसने मानवता की समझ में ही एक प्रमुख अवधारणामूल परिवर्तन का गठन किया।

उत्तर मध्यकाल का समय तेरहवीं शताब्दी सेसत्रहवों शताब्दी तक माना जाता है। इस काल को पुनर्जागरण काल

कहते है'यह काल पूर्वमाध्यमिक शताब्दियों के अंधेरा युग तथा वर्तमानयुगके बीच का समय था, जिसमें अंधेरे युग के अंधविश्वास धीरे–धीरे दूर होते गये, तथा नवीन वैज्ञानिक प्रकाश विश्व में छाने लगा था। परन्तु इस युग में भौगोलिक ज्ञान का प्रसार बहुत ही धीमी गति से हुआ था। इस समय पृथ्वी के विभिन्न महाद्वीपों और महासागरों के विषय में अधिकाधिक तथ्योंको एकत्रितकरने की आवश्यकता थी। अतः मिशनरी पादरियों ने, भौगोलिक यात्रियों ने, अन्वेषकों(खोजकर्त्ताओं) ने, व्यापारियों ने और उपनिवेशों को बसाने वालो ने उत्साह के साथ दूर–दूर देशों के, सागरों के, द्वीपों के, समुद्रतटों बस्तियों है मानव वर्गों के विषय में नये–नये तथ्यों को क्रमबद्ध ढंग से एकत्रित करने का प्रयास किया था, इसलिए इस पुनर्जागरण काल को तथ्य–अन्वेषण युग भी कहते है।

इन यात्रियों ने नये देशों के विषय में जो कई नई बातें देखी थीं, उनके समझने में और वर्णन करने में बहुत सीगलतियाँ भी की थीं। इसलिए यात्रियों द्वारा लिखे गए वर्णनों में बहुत–सी मनगढ़न्त बातें मौजूद थी।

उत्तर मध्यकाल या पुनर्जागरण काल के अस्वेषणकारी कार्यों, जिनसे पृथ्वी के सम्बन्ध मे विद्वानों एवं सामान्य जनता के ज्ञान में. वृद्धि हुई थी, को अध्ययन के विचार से तीन भागों मे. बटा जा सकता है–(1) संसार भर के महाद्वीपों और महासागरों को पार करती हुई नये–नये देशों –विदेशों की भौगोलिक–व्यापारिक–राजनीतिक यात्राएं तथा नये–नये महाद्वीपों, महाद्वीपों और प्रदेशों की खोजें, जिनका संक्षिप्त उल्लेख आगे किया गया है। यूरोपीय देशों , एशियाई देशों, उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि की खोजें तथा एटलांटिक, पैसिफिक, हिन्दमहासागर के मार्गों की खोजें इसी काल में हुई थीं।

4.2 उद्देश्य

दूसरी शताब्दी के मध्य से यूरोप सें प्राचीन कालीन भौगोलिक ज्ञान का तीव्र हुआ। ग्रीस, अलेवजेस्ड्रिया तथा रोम, सभी केन्द्रों में विज्ञान प्रगति अवरुद्ध हो गई। इन क्षेत्रों में बर्बरलोगों के आक्रमण बढ़ गये पश्चिम की ओर लैटिन भाषी तथा पूरब की ओर ग्रीक भाषी क्षेत्रों में सम्पर्कक्षीण होने लगा।क्रमशः रोम साग्राज्य के यूरोप में विस्तार के साथ चर्च का वर्चस्व स्थापित हो गया। ज्ञान –विज्ञान का प्रसार बाईबिल पर आधारित पादरियों के तक सीमित रह गया। इसीलिए इस युग को अन्धयुग कहा जाता है।

इस युग में भूगोल की प्रगति मात्र यात्राओं के विवरणों तक ही सीमित रहा। इस युग सें धर्मान्धता का बोलबाला हो गया। हर प्रकार की जिज्ञासा को ईश्वर सत्ता में अविश्वास समझकर हतोत्सहित किया गया। प्रत्येक रहस्य को ईश्वर की माया मानकर स्वीकार किया जाने लगा। हर प्रश्न का समाधान एवं अन्तिम प्रमाण बाईबिल की धर्मकथाओं को माना गया। मिथको में आवृतकल्पनाओ को ही वास्तविक एवं प्रमाणिक माना जाने लगा। मानवतावाद पुनर्जागरण के सभी सांस्कृतिक परिवर्तनों के लिए प्रेरणा का मूल स्रोत था जिसका कला, साहित्य, इतिहास और राजनीतिक विचार पर भारी प्रभाव था। मानवतावादी विद्वानों ने खुद को स्टूडिया ह्यूमनिटाज (मानवता का अध्ययन) के लिए समर्पित किया जिसमें अंलकार–शास्त्र, व्याकरण, काव्य और नीतिशास्त्र का अध्ययन शामिल था।

अंधयुग के दार्शनिकों की अभिरुचि बाईबिल में वर्णित परा भौतिक जगत में थी। अब क्रमशः लोग भौतिक जगत की ओर ध्यान देने लगे। अरब में सुरक्षित, प्राचीन काल केयूनानी रोमन चिन्तकों की ओर पुनः लोगों का ध्यान गया तथा उनकी ,कृतियों का नये सिरे से अध्ययन होने लगा। इस प्रकार 15 वीं शताब्दी में पुनर्जागरण का प्रारम्भ हुआ। इसके साथ ही प्राकृतिक विज्ञानों की उन्नति का मार्ग प्रशस्त हुआ। इस काल में, ज्ञान–विज्ञान की अपूर्वपिपासा बढ़ी जिससे सामान्य वैज्ञानिक अभिरुचि को व्यापक आधार मिला प्राकृतिक तत्त्वों की प्रक्रिया समझने की नयी :ज्ञान प्रकट हुई। इसके साथ ही अज्ञात क्षेत्रों के बारे मे जानकारी प्राप्त करने की ललक बढ़ी। इस युग की प्रमुखविशेषताओं को निम्न तीन शीर्षकों में समझा जा सकता हैं। (1) सामान्य वैज्ञानिक प्रगति (2) नये क्षेत्रों की खोज एवं अन्वेषण यात्राओं का विवरण तथा (3) उपर्युक्त दोनों माध्यमों से प्राप्त ज्ञान पर आधारित भौगोलिकपुस्तकों का प्रकाशन।

4.3 पुनर्जागरण काल में भूगोल की प्रगति

विश्व इतिहास विशेषरूप से यूरोपीय इतिहास में तेरहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक की समयावधि को उत्तर मध्यकाल या पुनर्जागरण काल के नाम से जाना जाता है। पूर्व मध्यकाल में लगभग 10 शताब्दियों तक ज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टि पर अंधकार छाया हुआ था और ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में कोई प्रगति नहीं हुई। इसके पहले यूनानी और रोमन विद्वानों के विचारों और कार्यों को भी धर्मान्धता और अंधविश्वास के बढ़ते प्रभाव के कारण त्याग दिया गया था। तेरहवीं शताब्दी से परिस्थितियों में परिवर्तन आरंभ हो गया था और अंधयुग के अंधविश्वास तथा गलत

मान्यताएं, दूर होने लगी थीं और विश्व क्षितिजपर नवीन वैज्ञानिक प्रकाश की किरणें पड़ने आरंभ हो गयीं थीं। इस युग में भौगोलिक ज्ञान का प्रसार मंद गति से होने लगा था।

अरब साम्राज्य के पतन के पश्चात् यूरोप में पुनर्जागरण आरंभ हुआ।। पुर्तगाल के राजकुमार हेनरी ने अरबों को हराकर जिब्राल्टर जलसंधि पर अधिकार कर लिया था। नौचालन में अत्यधिक निपुण और तत्पर होने के कारण वह हेनरी नौचालक'के रूप में प्रसिद्ध था। हेनरी ने सेंट विन्सेंट अंतरीप के समीप सारग्रेस नामक स्थान पर भूगोल का प्रथम और विशाल संस्थान स्थापित किया और इसमें विश्व के विभिन्न भागों के भूगोलवेत्ताओं , गणितज्ञों, खगोलशास्त्रियों तथा मानचित्रकारों को आमंत्रित किया था। उसके प्रयास से अनेक नौचालक प्रोत्साहित हुए और नवीन स्थानों , द्वीपों , देशों आदि की खोज के लिए सहर्ष तैयार हो गये। इस युग में कोलम्बस ने 1492 ई० में "नयी दुनिया" अर्थात् अमेरिका की खोज किया। वास्को–डी–गामा हिन्द महासागर से उत्तमाशा अंतरीप होते हुए 1498 ई० में भारत के कालीकट तट पर पहुँचा और यूरोपवासियों के लिए, भारत का पता लगाया। मैगेलन 1519–20 में यूरोप के पश्चिमी तट से पश्चिम की ओर चला और दक्षिण अमेरिका के दक्षिणी छोर हार्न अंतरीप का चक्कर लगाते हुए प्रशांत महासागर में प्रवेश किया और पूर्वी द्वीप समूह पहुँचा। कैप्टन कुक ने 1768 से 1778 तक (12 वर्षों) की अवधि में प्रशांत महासागर और हिन्द महासागर में विस्तृत यात्राएं किया था। उसने अनेक नये द्वीपों और आस्ट्रेलिया महाद्वीप की खोज किया था।

कोलम्बस, वास्को–डी–गामा, मैगेलन, कुक आदि सभी अभियानीनाविकों ने टालमी द्वारा प्रतिपादित पृथ्वी की परिधि के आकलन और अक्षांश–देशांतर पर विश्वास करके यात्राएं किया था किन्तु उनके अन्वेषणों ने उसे असत्य सिद्ध कर दिया और टालमी के विश्व मानचित्र में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। इस युग में पृथ्वी के सही प्रतिनिधि के रूप में प्रथम ग्लोब की रचना हुई और नाविकों की सुविधा के लिए मरकेटर नामक मानचित्रकार ने शुद्ध आकृति प्रक्षेप का 1569 में निर्माण किया था। इस काल में अनेक दोषपूर्ण और असत्य विचारों को अस्वीकृ त कर दिया गया और कपोल कल्पित गाथाओं का स्थान धीरे–धीरे विश्वसनीय विवरण को प्राप्त होने लगा।

पंद्रहवीं शताब्दी से पहले के विद्वान पृथ्वी को ब्रम्हांडके केन्द्र में स्थित मानते थे किन्तु इस शताब्दी के अंत तक निकोलस कोपरनिकस ने अनेक प्रेक्षणों के आधार पर सिद्ध कर दिया था कि पृथ्वी सहित सभी ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं। 1618 में केपलर ने सिद्ध किया था कि ग्रह वृत्ताकार मार्ग से नहीं बल्कि दीर्घ वृत्तीयमार्ग से संचरण करते हैं। 1686 में आइजेक न्यूटन ने "गुरुत्वाकर्षण का नियम' प्रस्तुत किया। पुनर्जागरण काल में छपाई की मशीन का आविष्कार हुआ जिससे पुस्तकों और मानचित्रों का प्रकाशन सुगम हो गया। यात्राओं और वैज्ञानिक खोजों द्वारा विश्व की रूपरेखा में अनेक महत्वपूर्ण और सार्थक परिवर्तन किये गये। इस प्रकार पृथ्वी के आकार एवं आकृति, महाद्वीपों , द्वीपों, देशों आदि के विस्तार सम्बन्धी अनेक भ्रांतियाँ दूर होती गयीं और भूगोल के विकास के लिए नवीन वैज्ञानिक आधार प्राप्त हुआ।

4.4 सामान्य वैज्ञानिक प्रगति

सामान्य वैज्ञानिक प्रगति का प्रारंभ लियोनार्ड द विन्सी(1452–1519) से माना जा सकता है। इन्होंने सर्वप्रथम यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि पर्वत समूद्रों के भीतर से उठ हैं। इसके परिणामस्वरूप इन्होंने पर्वत के उचे भागों में, समुद्र में रहने वाले जीवों के अवशेष चिन्हों, की ओर ध्यानआकृष्ट किया। विन्सी के इसी कथन से परत निर्माण के सिद्धान्तों का सुत्रपात हुआ। विन्सी ने यह भी प्रमाणित किया नदियाँ अपनी घाटी का निर्माण करती हैं। अपने कटाव के परिणामस्वरूप प्राप्त अवसाद को अपने साथ बहा ले जाकर नदियां समुद्र में अवसाद का निक्षेपण करती हैं।

भूगोल की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं क्रान्तिकारी अवधारणा कोपर निकस (1473–1543) ने प्रस्तुत की। उन्होंने यह तथ्य पश्चिमी जगत में स्थापित किया कि पृथ्वी, सौर मण्डल में केन्द्रस्थ सूर्य की परिक्रमा करके पृथ्वी, सौर मण्डल में केन्द्रस्थ सूर्य की परिक्रमा करती है। यह ब्रह्माण्ड के मध्य मे स्थित निश्चल ग्रह नहीं है।

तेलेसियो (1500–88) ने प्रत्यक्षः अनुभव पर आधारित व्याख्या पर बल दिया। उन्होंने पृथ्वी के अंतर्गत पाए जाने वाले भौतिक पदार्थों को प्रकृति द्वारा निर्मित एवं निश्चित मात्रा में उपलब्ध बताया। इन भौतिक पदार्थों में परिवर्तन तथा स्वरूप की भिन्नता की व्याख्या, दो, परस्पर विरोधी परन्तु साथ– साथ सक्रिय रहने वाली प्रक्रियाओं के माध्यम से किया। यह प्रक्रियाएं हैं– ताप और शीत की। ताप से पदार्थ का विस्तरण होता है एवं वीरलता उत्पन्न होती है जिससे वह गतिमान होता है। यही गति जीवन निर्माण के लिए अनिवार्य है दूसरी ओर शीत से संकुचन संघनन होता है। इसके परिणाम स्वरूप पदार्थ निश्चल एवं निर्जीव होता है। इन्हीं दो नियामक प्रक्रियाओं

के अनवरत परस्पर क्रिया से ब्राह्मण का अस्तित्व है तथा इसमें निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं। पुनर्जागरण काल में विज्ञान की प्रगति में फ्रांसिस बेकन(1561–1626) का योगदान अति महत्वपूर्ण है बेकन ने किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह से मुक्त रहकर प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा तथ्यों के विश्लेषण एवं व्याख्या पर विशेष बल दिया गया। इस प्रकार इन्होंने प्रत्यक्ष अनुभव विधि को प्रश्रय दिया। बेकन के अनुसार किसी तत्व को भली–भांति समझने तथा उसकी सही व्याख्या करने में मानव का पूर्वाग्रह ग्रस्त मस्तिष्क सबसे बड़ा बाधक है। मानव मस्तिष्क के चार प्रकार के पूर्वाग्रहों से ग्रस्त रहता है।

1– नैसर्गिक– जिसके चलते मनुष्य किसी सार्वभौम सत्ता(जैसे,ईश्वर) को अंतिम कारक मान बैठता है। वह प्रकृति के हर तत्व एवं परिवर्तन में उसकी इच्छा की झलक पाता है।

2– व्यक्तिगत– जो किसी मनुष्य की शिक्षा दीक्षा तथा सामाजिक संबंधों से उत्पन्न होती है।

3– पूर्वाग्रह जो प्रचलित नामों से उत्प्रेरित होते हैं। तत्व या वस्तु के नाम विशेष से, विशेष प्रकार के स्वरूप मानस पटल पर उभरते हैं जो भ्रामक हो सकते हैं।

4– पूर्वाग्रह जो पहले से प्रचलित सिद्धांतों– जैसे पृथ्वी चपटी है अथवा सूर्य पृथ्वी का चक्कर लगाता है–

बेकन के अनुसार वास्तविकता की जानकारी हेतु मस्तिष्क के ऊपर वर्णित किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह से मुक्त होना अनिवार्य है। परिणाम जानने के लिए क कारण का ज्ञान होना अनिवार्य है। यह ज्ञान मनुष्य की इंद्रियों से प्राप्त होता है। मस्तिष्क, इंद्रियों द्वारा प्राप्त सूचनाओं के आधार पर ही क्रियाशील होता है कार्य कारण का विवेचन करता है।

अतः वास्तविकता को जानने के लिए प्रत्यक्ष अनुभव आवश्यक है। बिना प्रकृति को समझें, उन सिद्धांतों को नहीं जान सकते जिनसे प्रकृति की वास्तविकता को समझा जा सके। निगमनात्मक तर्क से किसी व्यक्ति को मात्र परास्त किया जा सकता है, सिद्धांतों की खोज नहीं की जा सकती। अतः प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित आग मनात्मक विश्लेषण ही एक मात्र वैज्ञानिक उपागम है जिससे वास्तविक कार्य कारण का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। स्पष्ट है कि बेकन का यह विश्लेषण भूगोल की प्रगति में सहायक सिद्ध हुआ क्योंकि भूगोल प्रधानतया आगमनात्मक विश्लेषण पर आधारित विज्ञान है बेकन की तरह गैलीलियो प्रत्यक्ष अनुभव एवं प्रयोग के आधार पर ही वैज्ञानिक सिद्धांतों को प्रतिपादित करने के पक्ष में थे। परंतु यह प्रत्यक्ष अनुभव की पुष्टि विवेक द्वारा होना आवश्यक मानते थे। इनके अनुसार, वही विश्लेषण सही होता है जिसमें अनुभव प्रयोग तथा विवेक का सम्यक संयोग हो। इनकी मतानुसार, किसी पदार्थ का आदि–अंत नहीं होता। पदार्थों में परिवर्तन अरबों की गतिशीलता परिणाम होते हैं।

4.5 अन्वेषण युग का योगदान

इस युग में अनेक यात्रियों ने मध्य–पूर्व, मध्य एशिया और सुदूर पूर्व और पुरानी दुनिया के ज्ञात स्थलों की खोज स्थलीय और महासागरीय मार्गों द्वारा सम्पन्न की गई। इन लोगों ने अपनी यात्राओं का बहुत व्यवस्थित वर्णन प्रस्तुत किया है। इनमें से अधिकांश यात्रियों कों अपने–अपने राष्ट्रों की ओर से राजनैतिक, कूटनीतिक तथा आर्थिक सहायता द्वारा प्रश्रव एवं सुरक्षा उपलब्ध कराई गई थी। इस यग के महत्वपूर्ण यात्रियों एवं उनके विवरण निम्नवत्है।

कारपिनी का यात्रा विवरण (1185–1252)– पोप इनॉसेन्ट चतुर्थ के समय जान ऑफ प्लेनो कारपिनी को 1425 में मध्य एशिया के मंगोलिया के महान मंगोल शासक मांगू खां के दरबार में धार्मिक दूत बनाकर भेजा गया जहाँ वह तीन वर्ष व्यतीत कियां। इसके दौरान उसने मध्य यूरोप, पूर्वी यूरोप और मध्य एशिया के आन्तरिक भागों की यात्रा किया। यात्रा–वर्णन तातार (मंगोल) जाति के निवास स्थल, शारीरिक रचना, सामाजिक दशाओं, श्कृषि व्यवस्था, अधिवासों तथा क्षेत्रीय जटिलताओं का विशद् उल्लेख किया है। इस क्षेत्र की जनजातियों के तत्कालीन ऋतु प्रवास से प्रभावित हुंआ। इसीं प्रकार लोगों के विशाल तम्बू वाले निवास गृहों और पशु–चालित गाड़ियों की विशेष वर्णन किया। तम्वुओं का आकार इतना बड़ा होता था कि गाड़ी को खींचने हेतु 10 से 15 पशु लगाये जाते। मंगोलिया प्रदेश (आधुनिक कजाक एवं खिरगिज प्रदेश) प्रायः वनविहीन थे। लकड़ी एवं जल अभाव के कारण इन्हें बहुमूल्य माना जाता था। जलाने में सूखा गोबर तथा घास का प्रयोग किया जाता था। पुरुष त्तृधा महिलाओं के वख्र समान प्रकार के होते थे। यहाँ. के लोग अपने यापन में पशुओं से प्राप्त दूध तथा पशु उत्पादकों पर निर्भर होते थे।

रूब्नेक विलियम का यात्रा विवरण (1220–1293)– इसने भी मध्य एशिया मंगोलिया की यात्रा किया जिसका वर्णन अपने यात्रा विवरण में किया है। वह भी फ्रान्स के शासक लूई का राजदूत बनकर मंगोलिया के महान शासक माँगू खां के दरवार में 1252– 1255 तक रहा। इसने भी यहाँ के निवासियों के बारे में सामान्य जानकारी को वर्णन में विस्तारपूर्वक लिखा है। इसने भी मंगोलिया में मार्ग की कंठिनाइयाँ और वहाँ की धरातलीय विशेषताओं का वर्णन किया है जिसमें वहाँ के चलवासी जीवन (यायावर जीवन) का वर्णन किया है। इसने भी यहाँ की बस्तियों में तम्बू के गृहों का विवरण प्रस्तुत किया है जो 10 मीटर व्यास के लगभग होते थ। इसने निरीक्षण करके कैस्पीयन सागर को आन्तरिक सागर बताया। मध्य एशिया की बालकश झील की वास्तविक स्थिति का बताते हुए डान तथा बोल्गा नदियों के उद्‌गम को बताया है। इसी के साध सीधिया प्रदेश एवं उसके महत्व का विवरण दिया है। मंगोल शासन के अन्तर्गत चलवासी प्रकृति का भी वर्णन किया है जिसमें वहाँ के शासकों एवं प्रशासनिक। अधिकारियों के तम्बू को कालीन से तैयार किया जाता था। इस प्रकार प्रशासनिक अधिकारियों के मुख्यालय भी तम्बुओं में निरन्तर गतिशील होते थे।

मार्कोपोलो (1254–1324)– मार्कापोलो अपने समय का प्रसिद्ध यात्री था। इसके पूर्व इसके पित्त निकोलस पोलो और चाचा मेफिओ पोलो ने भी तेरहवीं सदी के मध्य मेंआयोनिया एवं पश्चिम एशिया होते हुए चीन की यात्रा सर्वप्रथम किया था। ये इटली में वेनिस के निवासी थे। ये लोग चीन के शासक कुबलाई खाँ के दरबार में पर्याप्त समय व्यतीत करने के पश्चात गृह नगर वेनिस लौटे। इनकी दूसरी यात्रा 1265 में प्रारभ हुई जिसमें उनका ग्यारह वर्षीय बालक मार्कोपोलो भी साथ था। चीन का शासक मार्कोपोलो से विशेष प्रभावित हुआ। पोलो बन्धुओं ने 30 वर्ष चीन में व्यतीत किया। इस दौरान मार्कोपोलो वहाँ के शासक को प्रभावित करके उनका विश्वासपात्र हो गया जिसकी नियुक्ति विभिन्न प्रशासनिक पदों पर होती रही। इस प्रकार दक्षिणी चीन के मांजी प्रॉन्त के गर्वनर पद पर दस वर्षों तक कार्य किया। अपने पद का लाभ उठाते हुए उसने सम्पूर्ण चीन, तिब्बत, गोवी मरुस्थल तथा निकटवती प्रदेशों की यात्रा किया। 1296–97 में वेनिस लौटते समय कुबलई खाँ के विशेष अनुग्रह पर उसने भारत एवं फारस होते हुए सामुद्रिक मार्ग से यात्रा किया। लौटने के उपरान्त जेनेवा एवं वेनिस संघर्ष में भाग लेने के कारण बन्दी बना लिया गया। इसी समय कारागृह में अपने यात्रा–विवरण को संकलित किया। इसके लिपिवद्ध विवरण लगभग दो सदियों से अधिक समय तक एशिया के अज्ञात प्रदेशों की सामान्य जानकारी एवं मानचित्र निर्माण हेतु प्रमाणिक सामग्री सिद्ध हुए थे।

इसने अपने विवरण में मध्य एशिया और चीन के रेशम मार्ग का विशद वर्णन किया है। इस मार्ग में पड़ने वाले मरुस्थलीय प्रदेश का विस्तृत वर्णन करते हुए इसमें तेज हवाओं के चलने पर सुनाई देने वाली विभिन्न प्राणियों के रोने–चिल्लाने की आवाजों की भी चर्चा किया। ये आवाजें बहुत भयानक होती थीं जो कभी–कभी यात्रियों को भ्रम में डालकर उनकी मृत्यु का कारण बन जाती थीं। उसने वहाँ की सीमा पर लोप नगर (लोपनार क्षेत्र) का वर्णन करते समय लिखा है कि मरुस्थल पार करने के बाद यात्रियों के लिए महत्वपूर्ण स्थल था जहाँ खाद्य सामग्री के साथ अन्य वस्तुयें भी सुलभ थीं। यहाँ के निवासी प्रायः मुसलमान थे। इसी के साथ राजधानी काम्बलुक का विस्तृत विवरण किया गया है। यह नगर चहारदीवारी में जितना विस्तृत था तो उससे अधिक विस्तार उसके बाहर के उपनगरों का था जिनकी संख्या 12 बताया है। यहाँ पर समृद्ध व्यापारियों का निवास था जो समय–समय पर बादशाह को भेंट भी प्रदान करते थे। प्रत्येक उपनगर में विदेशियों के लिए अलग बस्तियाँ थीं तथा विदेशियों के लिए विशेष आवास, मनोरंजन केन्द्र एवं भोजनालय थे। यहाँ के रेशम के व्यापार का विशेष उल्लेख किया है। उसने चीन के धर्म, व्यवसाय, अर्थव्यवस्था, आहार, आदि का विशद् वर्णन किया है। चीन में प्रचलित बौद्ध घर्मावलम्वियों का वर्णन मूर्तिपूजक के रूप में बताया है। उसने चीन में दास प्रथा का वर्णन किया है। उसने यह भी बताया है कि चीन के लोग ऐसे पत्थर जलाते थे जो कठिनाई से जलने के उपरान्त पर्याप्त देर तक जलता रहता था। वस्तुतः यह पत्थर के कोयले का वर्णन था। समुद्री मार्ग से लौटते समय मलाया, हिन्देशिया, बंगाल, मकरान तट होता हुआ फारस पहुँचा। यह पहला यात्री था जिसने भूमध्य सागर से प्रशान्त तट तक सामुद्रिक मार्ग से यात्रा किया। उसने जंजीवार की यात्रा किया और बताया कि वहाँ के निवासी स्वतंत्र शासक के नियंत्रण में थे जो स्वस्थ, लम्बे, मोटे एवं काले थे। इस प्रकार मार्कापोलो अपने काल का महानतम यात्री था जिसने पहली बार लगभग आधी दुनिया की यात्रा किया जिसके सजीव एवं सुरुचिपूर्ण व्यवस्थित वर्णन की मक्त कंठ से प्रशंसा की गई है।

4.5 पुनर्जागरण काल में भौगोलिक यात्राएं एवं उनका विवरण

हेटनर के अनुसार भूगोल में पुनर्जागरण काल प्रारंभ 1492 ई में अमेरिका की खोज 1493 ई में व यूरोप से

पूर्वी द्वीपों तक पहुंचने के समुद्री मार्ग का पता लगने के साथ हुआ। इन्हीं खोजों के पश्चात अनेक छोटे अन्वेषणों का द्वार खुला जिससे 16वीं शताब्दी के मध्य कम से कम पृथ्वी की रूपरेखा स्पष्ट हुई। इसके पूर्व भौगोलिक ज्ञान, पृथ्वी के सिर्फ एक चौथाई भाग तक, जो ज्ञात जगत था सीमित रहा यूरोप में 15 वीं शताब्दी अन्वेषण कार्य में अकस्मात तेजी आई। 14 वीं शताब्दी में इब्नबतूता यात्राओं तथा चीनी अन्वेषण यात्री वह चेंगहों के सातवें अभियान के पश्चात, क्राइम बंद हो गई थीं। परंतु 15वीं शताब्दी के अंतिम चरण में यूरोप में, शासन अथवा व्यापारिक कंपनियों द्वारा प्रेरित अन्वेषण यात्राओं की बाढ़ सी आ गई। इसके पीछे दो महत्वपूर्ण कारण थे। पहला इसाई धर्म का प्रचार दूसरा बहुमूल्य धातु एवं मसालों के स्रोत तक पहुंचने की छटपटाहट। तेरी मध्य तक स्पेन एवं पुर्तगाल, जो आठवीं शताब्दी से ही मुस्लिम शासकों के अधीन थे, मुक्त हो गए।1391 से 1492 तक स्पेन वासी मुस्लिमों के साथ निरंतर युद्ध में संलग्न रहे। मुस्लिमों के अंतिम गढ़ ग्रेनाडा पर ईसाइयों का अधिकार, कोलंबस की यात्रा प्रारंभ करने के कुछ ही पूर्व था। मुस्लिम शासन से छुटकारा पाने के बाद ईसाइयों में मुसलमानों द्वारा कबूल कराने तथा मार डालने की प्रबल आकांक्षा थी। रूपवती अपना व्यापार बढ़ाने को उत्सुक थे। व्यापार बढ़ाने के लिए सोना–चांदी की आवश्यकता थी उस समय यूरोप में चीनी उपलब्ध नहीं थी। प्रशीतकों के अभाव में मांस को सुरक्षित रखने के लिए नमक लगाकर अथवा सुखा कर रखना पड़ता था। परंतु इस प्रकार से सुरक्षित मांस बिना मसाले के प्रयोग के नहीं खाया जा सकता था। मसालों का प्रमुख स्रोत मलक्का हिंदेशिया था। परंतु यूरोप से हिंदेशियातक पहुंचने का मार्ग अरबों द्वारा अवरुद्ध हो गया था। अरब एशिया से मसालों तथा बहुमूल्य धातुओं को यूरोप के मुख्य व्यापारिक केंद्र जिनेवा तथा वेनिस में बाधा उत्पन्न करते थे तथा भारी मुनाफा कमाते थे।

अन्वेषण यात्राओं का प्रारंभ पुर्तगाल से हुआ। पुर्तगाल के राजकुमार हेनरी ने जिसे मार्गदर्शक कहा जाता था। 1415 ई में जिब्राल्टर जलसंधि के दक्षिण स्थित मुस्लिम गण पर अधिकार किया वही उसे ज्ञात हुआ कि उत्तरी अफ्रीका के बाजारों में अरबों व्यापारियों द्वारा विक्रय किए जाने वाले पदार्थ– सोना हाथी दांत शुतुरमुर्ग के पर तथागुलाम सहारा रेगिस्तान के पारे से प्राप्त होते हैं। इससे हेनरी को समुद्र मार्ग द्वारा अफ्रीका के गिनी तट पर पहुंचने की प्रेरणा मिली ताकि इस अति लाभदायक व्यापार पर पुर्तगाल का आधिपत्य स्थापित हो सके। राजकुमार हेनरी ने 1418 ई में विश्व का प्रथम भौगोलिक शोध संस्थान सागरेस में स्थापित किया जहां एक वेधशाला, तथा मानचित्र एवं पांडुलिपियों का संग्रहालय भी स्थापित किया। इस संस्थान का उद्देश्य पुर्तगाल के नाविकों को नव कायम की नई विधियां बताना, तथा नक्शों की सहायता से अफ्रीका के तट के किनारे – किनारे चलते हुए आवश्यक जानकारी प्राप्त करना था।

अटलांटिक महासागर और भूमध्य सागर के स्थल पर बसे होने के कारण, यूरोपीय देशों में पुर्तगाल ही ऐसा देश था जो अपने भूमध्य सागर एवं अटलांटिक तट पर नव चालन के अनुभव के आधार पर खुले समुद्र में पहुंचने का साहस कर सकता था। जेनेवा और वेनिस के व्यापारियों के संपर्क में रहने के कारण व्यापार व्यापारिक पोतों के संचालन का अनुभव पुर्तगाली नाविकों को पहले से प्राप्त था। उन्हें समुद्र में दिशा ज्ञान कराने की विधि की काटलान के मानचित्र से प्राप्त थी। राजकुमार हेनरी के संरक्षण में यह नाविक अफ्रीका के दक्षिणी भाग की खोज करने में संलग्न हो गए। सर्वप्रथम यह नाभिक अटलांटिक महासागर में स्थित अफ्रीकातट के निकटस्थ तीन द्वीप समूह – कनारी, मादीचेरा तथा एजोर्स में सफल हुए।

दक्षिण की ओर बढ़ने में पुर्तगाली नाविक शीघ्र सफल नहीं हुए। ग्रीक विद्वानों के इस अवधारणा का की विषुवत रेखा के आसपास अत्यधिक जिसके कारण समुद्र का पानी खौलता है था किसी मनुष्य का वहां रहना संभव नहीं है, व्यापक प्रचलन होने के कारण कोई भी नाविक दक्षिण की ओर आगे बढ़ने का साहस नहीं करता था। इस भ्रांति की पुष्टि 1418 ई में राजकुमार हेनरी द्वारा भेजे गए असफल अभियान से नहीं हुआ। इस अभियान मेंकनारी द्वीप के दक्षिण 20 अंश 7 मिनट से आगे बढ़ने से उक्त क्रांति के कारण इंकार कर दिया। इसका कारण यह था कि इस अक्षांश पर अफ्रीका के पश्चिमी तट पर बोजादोर अंतरीप स्थित है जो समुद्र में आगे की ओर निकला हुआ है। इसके तट पर दक्षिण की ओर प्रवाहित समुद्री जल धारा में भवर एवं झाग की बहुलता है समुद्र का खोलता पानी समझकर नाविकों ने आगे बढ़ने से इनकार किया था। अरबों द्वारा निर्मित मानचित्र में इसी तरह के पास समुद्र जल में से बाहर निकलता हुआ शैतान चित्रित किया गया था। इससे भी नाविकों की भ्रांति पुष्टि हो गई थी अंततः 1434 ई में जिल ईयानेस कप्तान ने दक्षिण की और बढ़ने की एक नई विधि निकाली।

वह अपने बेड़े को कनारी द्वीप से सीधे खुले समुद्र में ले गया जहाँ से अदृश्य हो जाए। वहां से सीधी दक्षिण की ओर बढ़ कर बोजादोर अंतरीप से बहुत आगे निकल कर पुनः समुद्र तट की ओर मुड़ा। पहुंचने पर उनकी भ्रांति दूर हो गई। तत्पश्चात 1435 ई में पुर्तगाली नाविक बोजादोर से लगभग 400 मील आगे तक जा

पहुंचे। 1441 ई में पुर्तगाली नाविक मौरितनिया तट पर पहुंच गए जहां उन्हें कुछ सोना प्राप्त हुआ। साथ ही वे 10 मर्द औरतों को भी पकड़ लाए इससे पुर्तगाल में उत्साह की लहर आ गई। 1444 एवं 1448 के बीच लगभग 40 पुर्तगालीबेड़े तट के सहारे केपवर्ल्ड तथा सेनेगल नदी तक पहुंचे तथा गुलामों को पकड़कर पुर्तगाल लेने का लाभदायक व्यापार बढ़ चला। तथा 1471 ई वमें कलियों ने पश्चिमी अफ्रीका तत्पर एलमिना में अपना दुर्ग स्थापित किया। 1473 ई में प्रथम बार एक पुर्तगाली जहाज विषुवत रेखा के पार गया। 1486 से 87 ई मेंबार्थो लोलिन डियास, विश्क्त रेखा के दक्षिण बड़ा। वहां उत्तर की ओर प्रवाहित समुद्री धारा तथा तेज हवा की चपेट से वह पहले खुले समुद्र में पश्चिम की ओर बढ़ा तथा पुनः जब पूरब की ओर मुड़ा तो अफ्रीका में अंगोला की खाड़ी में विद्यमान पोर्ट एलिजाबेथ जा पहुंचा। इस प्रकार पुर्तगाली अफ्रीका के पश्चिमी तट का पूरा चक्कर लगाने में सफल हुए।

4.7 सामुद्रिक यात्राएं

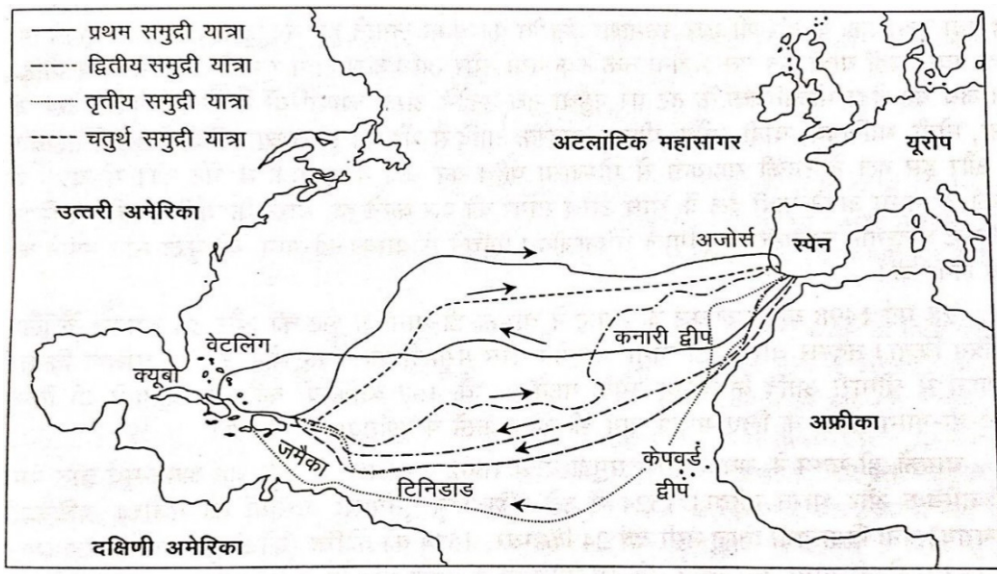
स्थल यात्राओं के बाद पन्द्रहवीं सदी के प्रारम्भ से समुद्री यात्राओं का प्रारम्भ स्पेन तथा पूर्तगाल,से हुआ। डायज द्वारा केप मार्ग की प्रारम्भिक खोज के उपरान्त 1498 में वास्कोडिगामा सर्वप्रथम भारत के लिए समुद्री मार्ग की खोज किया। तत्पश्चात कोलम्बस ने नई दुनिया की खोज किया। उसके उपरान्त मैगेलन ने 1519–22 के वीच विश्व का चक्कर लगाकर उसके गोल होने को प्रमाणित किया। इस प्रकार यह समय अन्वेषण का महान काल के रूप में प्रसिद्ध हुआ। ऐसी यात्राओं का उद्देश्य भारत तथा गरम मसालों के द्वीपों तथा चीन एवं सुदूर पूर्व से सीधा सम्पर्क स्थापित करने, अज्ञात प्रदेशों पर यूरोपीय देशों द्वारा अधिकार स्थापित करने, स्थल मार्ग में लुटेरों का आतंक, स्थलीय उष्ण तथा शुष्क जलवायु, स्थल मार्ग में अनेक साम्राज्य की उपस्थिति, जैसे कारणों से मुक्त होना था। इसके अतिरिक्त द0पू0 एशिया तथा सुदूर पूर्व के उष्ण एवं उपोष्ण प्रदेशों की उपजों, वसों, कलात्मक वस्तुओं तथा अनेक शिल्पी उत्पादों की माँग भी यूरोपीय देशों में बढ़ने लगी। इन्हें स्थल मार्गों से मँगाने में विचौलियों के कारण मंहगी हो जाती थीं। इस प्रकार यूरोपीय शासकों ने व्यापार के माध्यम, धर्मगुरू पोप के माध्यम, बड़े–बड़े नाविकों और व्यापारियों द्वारा धनलिप्सा के कारण सीधा सम्पर्क स्थापित करने का प्रयांस किया। इस प्रकार समुद्री मार्गों के अन्वेषण हेतु वांछित पृष्ठभूमि एवं मानसिकता हो गई थी। इसी कारण पुर्तगाल के महान नाविक राजकुमार हेनरी तथा स्पेन के शासक इसाबेला एवं फर्डिनेण्ड ने अपने देश के नाविकों को आर्थिक सहायता एवं उत्साहवर्द्धन करके इन सुदूर प्रदेशों की यात्रा हेतु तैयार किया। इसी के तारतम्य में इंग्लैण्ड, फ्रान्स, नीदरलैण्ड ने भी अपने देश से यात्रियों को भेजना प्रारम्भ किया। इस समय के महान यात्रियों में डायाज, वास्कोडिगामा, कोलम्बस, अमेरिगोवासपक्की, मैगलेन, ड्रेक और कप्तान कुक हुए। इनमें से डायाज तथा वास्कोडिगामा ने अफ्रीका के केप अन्तरीप का चक्कर लगाकर भारत का मार्ग खोजा। कोलम्बस तथा वासपक्की पश्चिम से यात्रा करके भारत पहुँचने के प्रयास में वासपक्की ने अमेरिका के अधिकांश भाग का पता लगाया जवकि कोलम्बस ने नई दुनिया की खोज किया। मैगेलन ने पश्चिम से यात्रा करके प्रशान्त महासागर को पार करके गोलीय पृथ्वी की अवधारणा को सिद्ध किया। ब्रिटेन ड्रेक और कुक ने एकाधिक बार पृथ्वी की परिक्रमा करके अनेक नवीन द्वीपों एवं आस्ट्रेलिया की खोज किया। इस प्रकार प्रमुख यात्रियों में वास्कोडिगामा, कोलम्बस तथा मैगेलन तथा कप्तान कुक की यात्राओं का वर्णन अग्रिम पंक्तियों में किया गया है।

4.7.1 क्रिस्टोफर कोलम्बस (1415–1506)–

कोलम्बस का जन्म 1451 में इटली में जेनेवा में एक व्यापारी के घर हुआ था। इसके पिता ऊन का व्यापार करते थे जिनका सम्बन्ध बन्दरगाह पर जहाजों तथा नाविकों से था। इस प्रकार उसका बालक नाविकों के जीवन एवं यात्रा की कठिनाइयों से पूर्ण रूप से परिचित होता गया। नियमित शिक्षा के अभाव में भी उसकी रुचि भूगोल, मानचित्रों, आदि में बचपन से थी और विभिन्न नक्षत्रों की स्थिति तथा दिशाओं को ज्ञात करने का विधिवत ज्ञान प्राप्त किया। 14 वर्ष की आयु में एक व्यापारिक जहाज पर नांविक की नौकरी में आया। इस समय भूमध्यसागर एक अशान्त क्षेत्र था किन्तु 25 वर्ष की आयु तक उसने सम्पूर्ण भूमध्य सागर की यात्रा कर डाली। इसी समय एक जलयान दुर्घटना के पश्चात् लिस्बन (पुर्तगाल) पहुँचा जहाँ के शासक प्रिंस हेनरी से भेंट हुई। इनके निर्देशन में वह कई समुद्री यात्रायें सम्पन्न किया। प्रिंस के उत्साह को देखते हुए वहाँ नौकरी करने की सोची जिसके लिए उसने स्पेनी तथा पुर्तगीज भाषाओं के साथ–साथ भूगोल, मानचित्रकला तथा जहाजरानी की शिक्षा प्राप्त किया और अपने कतिपय सम्बन्धों के आधार पर पुर्तगाल के शाही जहाजी बेड़े में नौकरी प्राप्त किया। इसके अन्तर्गत 1482 में पश्चिमी अफ्रीका तट पर घाना की साहसिक यात्रा करके उत्साहित हुआ। इस समय स्पेन और पुर्तगाल के शासकों के संरक्षण में वहाँ के नाविकों में अपने–अपने देश के लिए नये–नये देशों तथा द्वीपों की खोज करके वहाँ

बस्तियाँ बसाकर आधिपत्य जमाने तथा व्यापार करने की अदम्य इच्छा की। इसी के साथ धर्मगुरू पोप का भी आर्शीवाद प्राप्त था। दोनों देशों के आपसी संघर्ष में एक समझौते के अन्तर्गत स्पेन पश्चिम दिशा में और पुर्तगाल पूर्वी दिशा में अपनी समुद्री यात्रा सम्पन्न करते थे।

यात्रा की पृष्ठभूमि– कोलम्बस ने समुद्री यात्रा के लिए, सर्वप्रथम मार्कोपोलो तथा अन्य की रचनाओं का अध्ययन करके पूर्वी एशिया का ज्ञान प्राप्त किया क्योंकि उस समय सुदूर भारत समेत अनेक पूर्वी देशों की सम्पदा का विशेष आकर्षण था। इस समय पृथ्वी के गोलीय स्वरूप की पहचान हो चुकी थी। बेहीम के ग्लोब तथा अन्य प्रमाणों के आधार पर प्रमाणित हो चुका था कि पूर्वी एशिया तथा यूरोप के बीच समुद्रों का विस्तार 130°पूर्वी देशान्तर है (यह विस्तार वास्तविक रूप में 230°पूर्वीदेशान्तर है)। मार्कोपोलो ने बताया था कि चीन तट से 2400 किमी. की दूरी पर जापान है। इस प्रकार यह धारणा बलवती हो गई कि पश्चिम से समुद्री यात्रा द्वारा सरलतापूर्वक चीन–जापान तट तक पहुँचा जा सकता है। कोलम्बस ने ऐसी यात्रा के सम्बन्ध में अनेक जहाजी कप्तानों तथा नाविकों से सम्पर्क किया। इस प्रकार कोलम्बस के मन में यह धारणा बस गई कि भारत, चीन तथा अन्य पूर्वी द्वीपों तक पश्चिमी मार्ग द्वारा भी पहुँचा जा सकता है। 1482 में उसका सम्पर्क इटली के एक विद्वान टोसकैनलीसे हुआ जिसने संदर्भों, लेखन सामग्रियों तथा मानचित्रों द्वारा पश्चिमी मार्ग द्वारा एशिया–श्रमण की योजना के विविध पहलुओं का समर्थन किया। कोलम्बस अपनी सम्पूर्ण योजना तथा टोसकैनली की विचारधारा का समन्वयन करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि ऐसी यात्रा के माध्यम से व्यवसाय एवं व्यापार वृद्धि, धर्म– प्रचार, नवीन देशों की खोज एवं उन पर आधिपत्य तथा अत्यधिक सोना एवं धन–प्राप्ति जैसे अनेक लाभों की प्राप्ति हो सकती थी। इसी आशा एवं उत्साह के साथ 1482 में पुर्तगाल के शासक जॉन द्वित्तीय से मिला किन्तु राज्य की मंत्रणापरिषद् से ऐसी योजना अस्वीकार कर दी गई क्योंकि पुर्तगालके नाविक अफ्रीका मार्ग से पहुँचने की तैयारी में लगे हुए थे। इसी समय पर्तगाली शासन के संरक्षण में डायाज अफ्रीका तट के सहारे 1450 मील की यात्रा कर चुका था। इसी यात्रा का संदर्भ देकर कोलम्बस 1484 में स्पेन की महारानी इसावेला एवं महाराजा फर्डिनेण्ड के दरबार में अपनी योजना प्रस्तुत किया। पुर्गाल की स्पर्धा में स्पेन के शासकों को नेस अदम्य साहसी नाविक की योजना पसन्द आयी जो पश्चिम के मार्ग से पूर्वीदेशों की यात्रा करके आधिपत्य स्थापित कर सके किन्तु उस समय मूर जाति के संघर्ष में उलझने के कारण स्पेन के शासक ने उसकी योजना को स्वीकार करते हुए कुछ



समय के लिए स्थगित रखा।

चित्र 1.1 कोलम्बस के यात्रा मार्ग

कोलम्बस अपने 90 नाविक साथियों को लेकर 3 अगस्त 1492 को स्पेन के पालोस समुद्र पत्तन से भारत के लिए प्रस्थान किया। उसके जहाजी बेड़ा में "सांता मारिया' और दो अन्य छोटे जहाज "पिन्टा' और "नीना' सम्मिलित थे। वह कनारी द्वीपों से होते हुए पश्चिम की ओर आगे बढ़ता गया। 2 अक्टूबर 1492 को वह बहामा के वाल्टिंग द्वीप पहुँचा और वहाँ से दक्षिण की ओर अनेक द्वीपों की खोज की जिनका नाम पश्चिमी द्वीपसमूह रखा गया। वहाँ वह उत्तरी क्यूबा के तट से होता हुआ हिस्पेनीओला (हैटी) पहुँचा। वहाँ बस्ती बसानेके उद्देश्य से अपने

44 साथियों को छोड़कर कोलम्बस ने स्वदेश के लिए प्रस्थान किया। कोलम्बस का विश्वास था कि उसने भारत के लिए समुद्री मार्ग की खोज कर ली है क्योंकि वह वेस्ट इंडीज को ही भारतसमझ रहा था। कोलम्बस 5 मार्च 1493 को वापस पालोस पहुँचा जहाँ उसकी सफलता से उत्साहित नागरिकों और सरकार ने उसका जोरदार सत्कार किया।

24 सितम्बर 1493 को कोलम्बस पश्चिमी द्वीप समूह के लिए दूसरी यात्रा पर निकला। अबकी बार वह 17 जलयान, लगभग 1500 व्यक्तियों और प्रभूत मात्रा में खाद्य एवं अन्य साप्रगी लेकर निकला था। डोमिनिका, मेरी गेलान्टे, ग्वाडेलुप, एण्टीगुआ, सान्ता क्रूज, पोर्टीरिको, वर्जनि आदि द्वीपों का पता लगाते हए वह पुनः हस्पेनीओला (हैटी) पहुँचा किन्तु वहाँ बस्ती बसाने में असफल रहा और पास के एक अन्य द्वीप पर प्रथम यूरोपीय बस्ती बसाया जिसका नाम अपनी साम्राज्ञी के नाम पर "ईसा बेला" रखा। पश्चिम की ओर यात्रा करते हुए वह क्यूबा पहुँचा और उसे ही एशिया महाद्वीप की मुख्य भूमि माना। इसके पश्चात् वह स्वदेश लौट आया और मार्च 1496 को स्पेन पहुँच गया। स्पेन में दो वर्ष रुकने के पश्चात् कोलम्बस ने तीसरी समुद्री यात्रा पर पहले से अधिक दक्षिण के लिए प्रस्थान किया और ड्रिनिंडाड तथा ओरीनीको नदी के मुहाने तक की यात्रा की और हैटी लौट आया जहाँ उसे स्थानीय विद्रोह और विश्वासघात का सामना करना पड़ा। उसे बन्दी बनाकर स्पेन ले जाया गया किन्तु उसके पूर्ववर्ती कार्यों पर विचार करते हुए साम्राज्ञी ईसा बेला ने उसे क्षमा कर दिया।

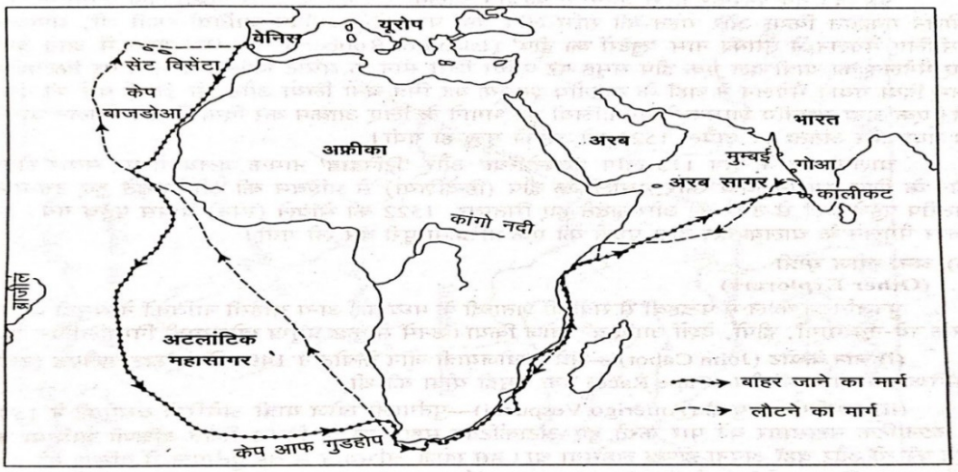
एशिया के समुद्री मार्ग की खोज में कोलम्बस चौथी समुद्री यात्रा 9 मई 1502 को आरंभ किया और हॉन्डुरासकी खोज करते हुए पनामा जा पहुँचा। अनेक कठिनाइयों के कारण वहाँ से कोलम्बस 1504 में स्पेन लौट आया। तब तक साम्राज्ञी ईसा बेला की मृत्यु हो चुकी धी। वह अर्थाभाव से पीड़ित और बीमार रहने लगा था और दो वर्ष पश्चात् 1506 में कोलम्बस की मृत्यु हो गयी। उसका जीवन कठिन परिश्रम और जोखिम से पूर्ण था। वह भारत का खोज करने निकला था। वह भारत तो नहीं किन्तु नये संसार (अमेरिका) की खोज करने में सफल रहा और विश्व प्रसिद्ध हो गया।

4.7.2 वास्को–डी–गामा–

वास्को–डी–गामा (1460– 1524) एक पुर्तगाली नाविक था जिसका जन्म साइनस नामक स्थान पर हुआ था। उसने पुर्तगाल की सेना में रहकर नौचालन का कुशल प्रशिक्षण प्राप्त किया था। पुर्तगाली शासक भारत के लिए समुद्री मार्ग की खोज कराना चाहते थे और इसके लिए वास्को–डी–गामा को चुना गया।

वास्को–डी–गामा ने चार लघु जहाजी बेड़ा के साथ 1497 में भारत के लिए अपने अभियान पर रवाना हुआ। वह 96 दिनों तक बिना भूमि दिखे लगभग 7200 किमी० (4500 मील) की समुद्री यात्रा करने के पश्चात् अफ्रीका के दक्षिणी–पश्चिमी तट पर सेन्ट हेलना की खाड़ी में पहुँचा। वहाँ उसे स्थानीय हाटेन्टाट निवासियों के विरोध और संघर्ष का सामना करना पड़ा जिसके कारण वहाँ से आगे यात्रा पर बढ़ गया। अफ्रीका के दक्षिणी छोर उत्तमाशा अंतरीप का चक्कर लगाते हुए वह जेम्बजी नदी के मुहाने तक पहुँच गया। वहाँ यात्री दल एक महीना तक रुक गया और अधिकांश लोग स्कर्वी की बीमारी से पीड़ित रहे। जब यह बेड़ा मोजाम्बिक के तट पर पहुँचा तब उन्होंने अरब व्यापारियों के चार जलयान देखे जो सोना, मोती, माणिक्य, चाँदी, लौंग, पीपल, अदरक आदि से भरे थे। अरब व्यापारियों ने इनकी सहायता की और इस दल ने उनकी सहायता से मोम्बासा पहुँच कर वहाँ के शासक से भेंट की। मोम्बासा से वास्को–डी–गामा अपने यात्री दल के साथ अरब सागर को पार करते हुए भारत के पश्चिमी तट पर स्थित कालीकट बन्दरगाह पर पहुँचा। पुर्तगाल से कालीकट पहुँचने में वास्को–डी–गामा को कुल सात महीने का समय लगा था।

28 मई 1498 को कालीकट के सप्राट ने वास्को–डी–गामा से भेंट की और उसे व्यापार के लिए आमंत्रित



चित्र 1.2 वास्को–डी–गामा का यात्रा मार्ग

किया। तदन्तर वास्को–डी–गामा भारतीय गरम मसालों को लेकर स्पेन के लिए प्रस्थान किया। इस यात्रा में बीमारी आदि के कारण उसके यात्री दल के 60 व्यक्तियों की मृत्यु हो गयी थी किन्तु वास्की–डी–गामा भारत के लिए समुद्री मार्ग की खोज करने में पूर्णतया सफल रहा।

वास्को–डी–गामा ने अपनी दूसरी समुद्री यात्रा 1502 में आरंभ की और वह अपने पूर्व ज्ञात मार्ग से मोजाम्बिक और भारत पहुँचा। 1524 में उसे एशिया में पुर्तगाली बस्तियों का सर्वोच्च अधिकारी (वायसराय) बना दिया गया किन्तु उसी वर्ष 24 दिसम्बर, 1524 को कोच्चि (कोचीन) में उसका देहावसान हो गया। वास्को–डी–गामा द्वारा खोजे गये इस नये मार्ग ने समुद्री व्यापार के लिए एक विशाल क्षेत्र प्रदान किया। आगे चलकर इसी समुद्री मार्ग से पुर्तगाली , फ्रांसीसी , ब्रिटिश और डच व्यापारियों ने दक्षिणी एवं दक्षिणी–पूर्वी एशियाई देशों (भारत, श्रीलंका, ब्रह्मा, हिद्चीन, हिदेशिया आदि) और ऑस्ट्रेलिया में अपनी–अपनी व्यापारिक बस्तियों की स्थापना की थी।

4.7.3 फर्डानन्ड मेगेलन–

प्रसिद्ध समुद्री यात्री फर्डीनन्ड मैगेलन (1480–1521) का जन्म पुर्तगाल में सबरोंसानामक स्थान पर हुआ था। वह पूर्वी द्वीपसमूह में पुर्तगाली सेना में एक सैनिक था जिसने पुर्तगाल द्वारा मलक्का विजय में भाग लिया था। 1514 में उसने पुर्तगाल छोड़कर स्पेन की नागरिकता स्वीकार कर ली थी।

फर्डिनेण्ड मैगेलन अपने समय का अत्यन्त उत्साही, अति बुद्धिमान, धैर्यवान, अनुशासित, कुशल कप्तान तथा योग्य नाविक था जिसने यात्रा करके पृथ्वी के गोलीय स्वरूप को प्रमाणित किया। इसके लिए उसे अपने जीवन से भी हाथ धोना पड़ा। सबसे पहले उसने पश्चिम से यात्रा करते हुए पूर्वी क्षेत्रों की यात्रा सम्पन्न किया जिसमें उसने अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए अदम्य साहस का परिचय देते हुए भूख, प्यास, विद्रोह की परवाह न करते हुए दीन–हीन साधनों एवं जर्जरित जहाजों की सहायता से विशाल प्रशान्त महासागर को पार करने में सफलता प्राप्त किया था। यह प्रारम्भ से ही राज–दरबार एवं शाही व्यवस्था से सम्बन्धित था। 1505 से 1512 के बीच भारत, पूर्वी द्वीप समूह, मलक्का आदि में स्थापित पुर्तगाली उपनिवेशों की यात्रायें किया। शाही–सेवा में भर्ती होकर अनेक युद्धों में भाग भी लिया। मोरक्को के युद्ध के बाद अनेक आरोपों एवं प्रत्यारोपों से दुखी होकर इसने पुर्तगाल छोड़ दिया और स्पेन में प्रवासित होकर वहाँ की नागरिकता ग्रहण किया। धीरे–धीरे वहाँ के शासक से मिलकर पश्चिम से यात्रा करके भारत तथा पूर्वी द्वीप पहुँचने की योजना से अवगत कराया। स्पेन के शासक चार्ल्स पंचम ने उसकी धैर्यता, दृढ़ता कार्यशैली और अनुभवों को देखते हुए प्रभावित हुआ किन्तु स्पेन तथा पुर्तगाल के पारस्परिक द्वेष के कारण पश्चिम मार्ग से यात्रा सम्पन्न करने हेतु पर्याप्त परेशानी उठानी पड़ी और विलम्ब भी होता गया क्योंकि पुर्तगाल का राजदूत स्पेन के शासक को उसके विरुद्ध भड़काता भी रहता था। इन्हीं सब कारणों से किसी प्रकार स्पेन प्रशासन से उसे पाँच पुराने जहाजों के साथ स्पेनिश कप्तानों को ले जाने की आज्ञा हुई जो मैगेलन के विरोध में रहते थे। उसकी यात्रा का विवरण उसके अभिन्न दास मित्र एण्टोनियो पेगाफेड्टा के

विवरण द्वारा आज भी उपलब्ध है।

मैगेलन ने राजकीय सहायता से 230 नाविकों के दल के साथ पूर्वी द्वीप समूह के लिए पश्चिम की ओर से समुद्री मार्ग की खोज करने के उद्देश्य से 20 सितम्बर,1519 को स्पेन के सेविलेबन्दरगाह से प्रस्थान किया। ब्राजील के पूर्वी तट से दक्षिण की ओर ही बढ़ते हुए यह चालक दल अक्टूबर, 1520 को दक्षिणी अमेरिका के दक्षिणी छोर पर स्थित जल संधि से होकर प्रशांत महासागर में प्रवेश किया। इसी के नाम पर इस जलसंधि को मेगेलन जलसंधि कहा जाता है। प्रशांत महासागर में मैगेलन का चालक दल 110 दिनों तक बिना किसी तूफानी प्रतिरोध के लगातार यात्रा करता रहा किन्तु अभी एशिया तक नहीं पहुँच पाया था। खाद्य सामग्री समाप्त हो चुकी होने के कारण वे लोग भूख से बेहाल रहने लगे। उसी बीच स्कर्वी बीमारी फैलने से यात्री दल के 19 लोगों की मृत्यु हो गयी और अनेक कमजोर और काम करने में असमर्थ हो गये।

98 दिन तक निरन्तर यात्रा करने के पश्चात् चालक दल एक द्वीप पर पहुँचा जहाँ लोगों ने ताजा भोजन एकत्रित किया और राहत की सांस ली। वहाँ पर लुटेरी आदिम जातियाँ रहती थीं, सम्भवतः इसीलिए मैगेलन ने उसका नाम "लुटेरों का द्वीप" रखा था। यात्रा में आगे बढ़ते हुए मैगेलन का यात्री दल एक द्वीप समूह पर पहुँचा जिसे स्पेन के सम्राट फिलिप के नाम पर फिलीपीन्स नाम दिया गया। मैगेलन ने वहाँ के स्थानीय शासक को मित्र बना लिया और उसे ईसाई धर्म की दीक्षा दी। एक अन्य स्थानीय शासक ने पुर्तगालियों को भगाने के लिए आक्रमण कर दिया जिसमें मैगेलन घायल हो गया और अंततः 7 अप्रैल 1521 को उसकी मृत्यु हो गयी।

चालक दल के शेष 5 लोग "विक्टोरिया' और "ट्रिनिडाड' नामक जलयानों पर सवार होकर स्पेन के लिए प्रस्थान किये और मसालों के द्वीप (हिन्देशिया) से पश्चिम की ओर बढ़ते हुए उत्तमाशा अंतरीप पहुँचे जहाँ से उत्तर की ओर बढ़ते हुए सितम्बर, 1522 को सेविले (स्पेन) वापस पहुँच गये। इस प्रकार मैगेलन के चालक दल द्वारा पृथ्वी की एक परिक्रमा पूरी कर ली गयी।

4.7.4 अन्य खोज यात्री–

पुनर्जागरण काल में पन्द्रहवीं से सत्नहवीं शताब्दी के मध्य कई अन्य साहसी नाविकों ने समुद्री यात्राएं करके नये–नये मार्गों , द्वीपों , देशों आदि की खोज किया। उनमें से कुछ प्रमुख खोजयात्री निम्नलिखित हैं–

(1) जान केबोट –अंग्रेज खोजयात्री जान केबोट ने 1497 में न्यूफाउण्डलैण्ड (उत्तरी अमेरिका) के रास अंतरीपश्तक समुद्री यात्रा की थी।

(2) अमेरिगो वसपुक्की –पुर्तगाली खोज यात्री अमेरिगो वसपुक्की ने 1500 में अटलांटिक महासागर को पार करते हुए अंटार्कटिका महासागर के निकट स्थित दक्षिणी जार्जिया की खोज की थी और वहाँ अपना झण्डा लहराया था। इस खोज अभियान में वह पुर्तगाल से दक्षिण की ओर बढ़ता हुआ दक्षिण अमेरिका के ब्राजील तट पहुँचा और वहाँ से दक्षिणी अमेरिका के पूर्वी तट से होता हुआ प्लेट नदी के एस्चुअरी (ज्वारनदमुख) तक की यात्रा की और एक विशाल महाद्वीप की मुख्य भूमि पर पैर रखने वाला प्रथम यूरोपीय बन गया। इसीलिए अमेरिगो वसपुक्की के नाम पर नयी दुनिया का नाम अमेरिका रखा गया।

(3) फ्रांसिस ड्रेक –अंग्रेज खोजयात्री फ्रांसिस ड्रेक ने समुद्री मार्ग से 1572 में सम्पूर्ण पृथ्वी का एक चक्कर लगाया। उसकी यात्रा से अटलांटिक, प्रशांत और हिन्द महासागर के आर–पार यात्राओं के लिए अन्य नाविक भी प्रोत्साहित हुए। फ्रांसिस ड्रेक पन्द्रहवीं सदी में स्पेन तथा पुर्तगाल ने पारम्परिक प्रतिद्वंदिता के फलस्वरूप विश्व के अनेक ज्ञात तथा अज्ञात प्रदेशों पर पोप की आज्ञा की आड़ में आधिपत्य कर रहे थे। इसे देखकर सर्वप्रथम ब्रिटेन के शासक तथा यूरोप के अन्य राष्ट्रों ने गुप्त एवं सार्थक ढंग से विरोध किया कि स्पेन तथा पुर्तगाल के शासकों की चतुरता धीरे– धीरे प्रकट होती गई। स्पेन तथा पुर्तगाल की सफलता तथा समृद्धि को देखकर महारानी विक्टोरिया ने (अपने देश के अनुभवी एवं साहसी कप्तान फ्रांसिस ड्रेक को दक्षिणी प्रशान्त के द्वीपों की खोज का कार्य सौंपा। इसके अधीन तीन युद्धपोतों तथा 5 जहाजों के साथ 3 दिसम्बर, 1577 को एक बेड़ा रवाना किया गया। इस समय तक मैगेलन को जलसंयोजक तंत्र के मार्ग की जानकारी हो चुकी थी जिससे वह 54 दिनों में लाप्लाटा एस्चुअरी पहुँचा। वहाँ रुककर आवश्यक खाद्य सामग्री की व्यवस्था किया। जहाजों की मरम्मत कराया। इसके बाद वह आगे की यात्रा प्रारम्भ किया। सभी प्रकार की बाधाओं को पार करता हुआ 16 सितम्बर, 1578 को प्रशान्त महासागर में प्रवेश किया। लगभग 50 दिन तक भयंकर तूफान का सामना करते हुए आगे बढ़ा। अपनी सैनिक टुकड़ी के बल पर स्पेनिश जहाजों तथा बस्तियों को लूटा। इसके उपरान्त उत्तरी अमेरिका के तट से होता

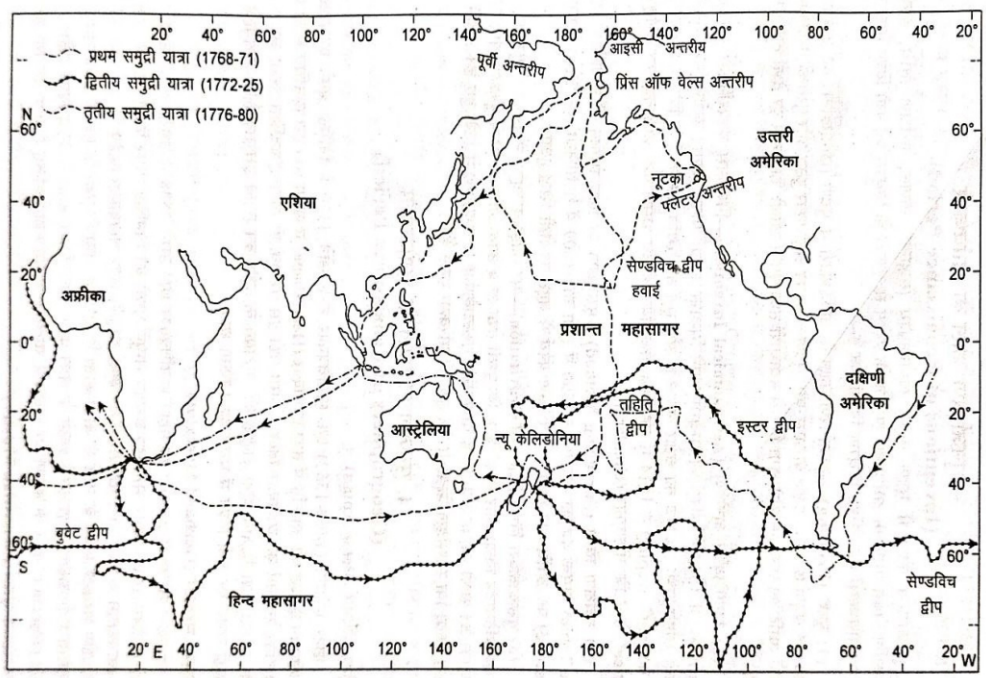
हुआ उत्तरी प्रशान्त महासागरीय मार्ग से होता हुआ मलक्का द्वीप तथा पूर्वी द्वीप समूह पहुँचा। अपने तीनों जहाजों में मसाला, कोपरा तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुओं से भरकर 2 वर्ष 9 माह के बाद पुनः प्लाईमाथ बन्दरगाह (इंग्लैण्ड) पर लौट आया। इस कार्य से इंग्लैण्ड में उसकी इतनी अधिक प्रसिद्धि हुई कि महारानी विक्टोरिया स्वयं जहाज पर आकर उसे "नाइट" की उपाधि प्रदान किया। इसके उपरान्त वह सर फ्रान्सिस ड्रेक कहलाया।

(3) हडसन —हडसन नामक यूरोपीय अन्वेषक ने 1608 में उत्तरी–अमेरिका के उत्तरी पूर्वी भाग की खोज की थी जिसके नाम पर ही हडसन खाड़ी का नामकरण किया गया है।

(4) तस्मान —डच यात्री तस्मान ने 1649 में जावा (पूर्वी द्वीप समूह) से चलकर आस्ट्रेलिया के दक्षिण में स्थित तस्मनिया द्वीप की खोज की थी। उसने वहाँ से न्यूजीलैण्ड तक की यात्रा की और न्यूजीलैण्ड से जावा वापस हो गया था।

(5) कप्तान जेम्स कुक —जेम्स कुक का जन्म 1728 में यार्कशायर (ब्रिटेन) के मार्टन नगर में हुआ था। वह 1755 में ब्रिटिश सेना में भर्ती हो गया और आठ वर्षों (1759–1767) तक कनाडा के पूर्वी तटों का सर्वेक्षण किया।उसने तीन बार महान समुद्री यात्राएं एवं खोजे की थी। प्रथम यात्रा (1768–1771) के दौरान वह समुद्री बेड़ा के साथ इंग्लैण्ड से चलकर दक्षिण अमरिका के दक्षिणी छोर होकर न्यूजीलैण्ड पहुँचा और वहाँ से आस्ट्रेलिया के पूर्वी तट से होता हुआ जावा तथा वहाँ से उत्तमाशा अंतरीप होते हुए लंदन लौट गया। दूसरी यात्रा (1772–75) में उसने अंटार्कटिका महाद्वीप के तटों का चक्कर लगाया तीसरी यात्रा (1776–80) में वह उत्तमाशा अंतरीप से होकर न्यूजीलैण्ड गया और वहाँ उत्तरी प्रशांत महासागर के द्वीपों(हवाई द्वीप समूह) की खोज किया और उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी तट की विस्तृत खोज किया।

कप्तान जेम्स कुक सोलहवीं तथा पत्रहवीं सदी में अधिकांश अंग्रेज, फ्रेंच तथा डच समुद्री यात्रियों ने पूर्वी तथा पश्चिमी दिशा से दक्षिणी–पूर्वी द्वीप समूह की खोज किया था। अनुमान है कि स्पेन तथा पुर्तगाल के नाविक आस्ट्रेलिया के पूर्वी तट पर सोलहवीं सदी में पहुँच गये थे किन्तु उसके बारे में कोई ठोस जानकारी न दे सके थे। इसका नाम टेरा आस्ट्रेलिया दिया था। सत्रहवीं सदी में समुद्र बल मेंइंग्लैंड तथा हालैण्ड ने वर्चस्व बनाया और दोनों इस क्षेत्र में प्रतिस्पर्धी थे। आस्ट्रेलिया, अन्टार्कटिका और आर्कटिक की खोज में आगे चलकर इंग्लैण्ड तथा रूस आगे आये तथा हेम्पीयर, टारस, कारपेन्टर तथा टसकान ने आस्ट्रेलिया के विभिन्न भागों तक यात्रा सम्पन्न किये। डेग्पीयर न्यूहालैण्ड (आस्ट्रेलिया) की यात्रा करके 70 में इंग्लैण्ड वापस लौटा।



चित्र1.3 कप्तान कुक की यात्राएं

4.8 पुनर्जागरण काल के आविष्कार

पुनर्जागरण काल में मुद्रण कला, खगोलिकीय सिद्धान्तों, गणित, सर्वेक्षण विधि, दूरबीन,गुरुत्वाकर्षण नियम आदि के आविष्कार हुए जिनके प्रयोग से भूगोल के विकास को नयी दिशा मिल गयी थी। इन आविष्कारों का संक्षिप्त विवरण निम्नांकित है––

(1) मुद्रण –पुनर्जागरण काल के आविष्कारों में मुद्रण (छापाखाना) का आविष्कार सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। 1470 ई० के आस–पास मुद्रण कला का आविष्कार हुआ और पुस्तकों , पत्रिकाओं , मानचित्रों आदि का प्रकाशन होने लगा जिससे नवाचारों तथा नवीन खोजों का प्रसार दूर देशों तक सम्भव हो गया।

(2) खगोलिकीय अन्वेषण – निकोलस कापरनिकस ने 1543 में सौरमंडल सम्बंधी अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि पृथ्वी सहित सभी ग्रह सूर्य का चक्कर लगाते हैं और सूर्य की स्थिति केन्द्रीय है न कि पृथ्वी की। इसी प्रकार केपलर ने 1614 में यह सिद्ध किया कि ग्रहों का भ्रमण पथ अण्डाकार या दीर्घवृत्तीय है न कि गोलाकार।

(3) सर्वेक्षण विधि –भूसरवेक्षण के लिए प्रयुक्त होने वाले समपटल नामक यंत्र का आविष्कार 1590 में हुआ था। 1609 में गैलीलियोने दूरबीन का आविष्कार किया जो सर्वेक्षण कार्य में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ।

(4) गुरुत्वाकर्षण नियम –सर आइजक न्यूटन ने 1687 में गुरुत्वाकर्षण नियम का प्रतिपादन किया और सिद्ध किया कि पृथ्वी तथा अन्य आकाशीय पिण्डों में गुरुत्वाकर्षण शक्ति पायी जाती है। सभी आकाशीय पिण्ड पारस्परिक गुरुत्वाकर्षण से ब्रह्माण्ड में टिके हुए हैं। उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि सौरमंडल के सभी ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं।

4.9 पुनर्जागरण काल के भूगोलवेत्ता

(1) पीटर एपियन –पीटर एपियन (1405–1552) एक मॉनचित्रकार थे जिन्होंने 1530 में निर्मित अपने मानचित्र में पृथ्वी को पान के पत्ते की आकृति में तथा हृदयाकार दिखाया था। इस मानचित्र में अक्षांश और देशांतर रेखाओं को वक्राकार दिखाया गया था। इस पर एक ही गोलार्द्ध प्रदर्शित किया जा सकता था और दूरियां तथा दिशायें दोनों अशुद्ध थीं। एपियन के प्रक्षेप का महत्व इस संदर्भ में अधिक है कि उसने सही समय पर सही दिशा में पथ प्रदर्शन किया था।

(2) गरहार्ड मरकेटर –मरकेटर सौलहवीं शताब्दी का महान मानचित्रकार था। उसने 1538 में उत्तरी और दक्षिणी दोनों गौलाद्धों के लिए अलग–अलग मानचित्र बनाकर सम्पूर्ण पृथ्वी का मानचित्र तैयार किया था। मरकेटर को वास्तविक ख्याति उसके द्वारा 1569 में निर्मित शुद्ध आकृति वाले बेलनाकार प्रक्षेप से हुई। उसी के नाम पर यह प्रक्षेप मरकेटर प्रक्षेप के नाम से जाना जाता है। इस पर सम्पूर्ण पृथ्वी के मानचित्र को सामानांतर सीधी खीचीं गयी अक्षांश–देशान्तर रेखाओं के जाल पर प्रदर्शित किया जाता है। शुद्ध दिशा प्रक्षेप होने के कारण यह जलयान चालकों या नाविकों के लिए, विशेष उपयोगी है।

(3) सेबस्टियन मुस्टर–जर्मन विद्वान सेबस्टियन मुस्टर (1489–1552) पुनर्जागरण काल के विश्व भूगोल का प्रथम लेखक था। उसने 120 सहयोगी लेखकों के योगदान से छः खण्डों में एक पुस्तक प्रकाशित (1544) की थी जिसका नाम "विश्व भूगोल" था। पुस्तक के सभी खण्डों का प्रकाशन लगभग 18 वर्षों में सम्पन्न हुआ था। पुस्तक के प्रथम खण्ड में समकालीन विश्व भूगोल का संक्षिप्त परिचय है और शेष पांच खण्डों में विश्व के विभिन्न प्रदेशों का विस्तृत भौगोलिक वर्णन है। यह पुस्तक कई दशाब्दियों तक महत्वपूर्ण संदर्भ ग्रंथ के रूप में प्रतिष्ठित रही।

(4) फिलिप क्लूवेरियस –जर्मन लेखक क्लूवेरियस युवावस्था में 12 वर्षों तक (1601–13) जर्मनी के बाहर भ्रमण और सैनिक अभियान में लगा रहा। उसने पश्चिमी यूरोपीय देशों तथा पश्चिमी द्वीप समूह की यात्रा की थी। वह 1615 से 1622 (मृत्यु) तक भूगोल सम्बन्धी लेखन कार्य करता रहा। क्लूवेरियस ने "विश्व भूगोल का परिचय" नामक ग्रंथ लैटिन भाषा में लिखा था जो छः खण्डों में 1616 से लेकर 1624 तक प्रकाशित हुई थी। इसका अंतिम (छठाँ) अंक उसकी मृत्यु (1622) के पश्चात् 1624 में प्रकाशित हुआ था। इसके प्रथम खण्ड में पृथ्वी का सामान्य विवरण तथा शेष पाँच खण्डों में यूरोप, उत्तरी अफ्रीका, पश्चिमी एशिया और अन्य प्रदेशों का भौगोलिक विवरण दिया गया है।

(5) नथैनियल कार्पेन्टर –आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में कार्यरत ब्रिटिश भूगोलवेत्ता नथैनियल कार्पेन्टर (1589–1628) द्वारा लिखित अंग्रेजी भाषा में विश्व भूगोलपर प्रथम पुस्तक 1625 में प्रकाशित हुई थी। कार्पेन्टर जर्मन भूगोलवेत्ता क्लूवेरियस का समकालीन और उससे प्रभावित था।

(6) बर्नहार्ड वारेनियस –सत्रहवीं शताब्दी के महान भूगोलवेत्ता वारेनियस (1622–1650 ई०) का जन्म हेम्बर्ग के समीप एलब नदी के तट पर स्थित हिजेकर नगर में हुआ था। उन्होंने हेम्बर्ग विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र, भौतिकी, गणित और जीव विज्ञान में शिक्षा प्राप्त की थी। शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् वारेनियस ने ऐम्सटरडम नगर के एक परिवार में प्राइवेट शिक्षक के रूप में तीन वर्ष (1647–50) तक कार्य किया। ऐम्सटरडम एक व्यस्त व्यापारिक केन्द्र था जहाँ से व्यापारी दूरवर्ती प्रदेशों दक्षिण–पूर्व एशिया, जापान और प्रशांत महासागरीय द्वीपों तक व्यापार के उद्देश्य से जाया आया करते थे। डच व्यापारी अपने व्यापार क्षेत्रों की भौगोलिक दशाओं, उनके उत्पादन, व्यापारिक वस्तुओं, नगरों, पत्तनों, समाजों तथा उनकी सामाजिक–सांस्कृतिक दशाओं आदि के विषय में जानने के लिए आतुर रहते थे। इसका वारेनियस पर बड़ा प्रभाव पड़ा और भौगोलिक अध्ययन में उसकी रुचि बढ़ने लगी। इसी के परिणामस्वरूप वारेनियस ने 1644 में "जापान और स्याम का भोगोलिक वर्णन" नामक पुस्तक प्रकाशित किया। वारेनियस की दूसरी पुस्तक "सामान्य भूगोल" 1650 में प्रकाशित हुई। वारेनियस प्रथम भूगोलवेत्ता था जिसने भौतिक भूगोल और मानव भूगोल के मौलिक अंतरों पर विचार किया था। उसने भूगोल को दो वर्गों में विभाजित किया––(1) क्रमबद्ध भूगोलऔर (2) विशिष्ट या प्रादेशिक भूगोल। इस प्रकार वारेनियस प्रथम भूगोलवेत्ता था जिसने क्रमबद्ध भूगोल और प्रादेशिक भूगोल के द्विधात्वकी नींव रखी थी। उसके अनुसार सामान्य भूगोल में विषय के सिद्धान्तों तथा नियमों की और प्रादेशिक भूगोल में विभिन्न प्रदेशों के विशिष्ट स्वरूपों का वर्णन किया जाता है। वारेनियस के अनुसार सामान्य भूगोल का अभिप्राय क्रमबद्ध भूगोल से है। वारेनियस ने यह भी स्पष्ट किया था कि प्रादेशिक भूगोल सामान्य भूगोल पर और सामान्य भूगोल प्रादेशिक भूगोल पर निर्भर है। इस प्रकार दोनों परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। सामान्य भूगोल में विश्व को एक इकाई मानकर उसके भौतिक दशाओं का अध्ययन किया जाता है जबकि प्रादेशिक (विशिष्ट) भूगोल में विश्व के प्रदेशों तथा विशिष्ट देशों का वर्णन किया जाता है। वारेनियस ने सामान्य भूगोल को निम्नांकित 3 भागों में विभक्त किया है––

(1) निरपेक्ष भाग – यह पार्थिव भाग है जिसमें पृथ्वी के आकार एवं आकृति, महाद्वीपों, महासागरों और वायुमंडल का वर्णन सम्मिलित होता है।

(2) सापेक्षिक भाग – यह ग्रहीय भाग है जिसके अन्तर्गत पृथ्वी का अन्य आकाशीयपिण्डों (ग्रहों) तथा सूर्य से सम्बंध और विश्व जलवायु पर उसके प्रभाव की व्याख्या की जाती है।

(3) तुलनात्मक भाग –इसमें पृथ्वी का सामान्य वर्णन, भूतल पर स्थानों की सापेक्ष स्थिति और नौसंचलन के सिद्धान्तों का वर्णन सम्मिलित होता है।

वारेनियस के विचार से भूगोल के –अन्तर्गत भूतल की स्थलाकृतियों , जलवायु, जलाशयों , वनों , मरुस्थलों, खनिज पदार्थों, पशुओं और मानव बस्तियों का अध्ययन किया जाता है। उसने सांस्कृतिक भूदृश्य को मानवीय प्रभाव का परिणाम बताते हुए इसके अन्तर्गत निवासियों , उनकी प्रकृति, भाषा, धर्म, कला, संस्कृति, व्यापार, नगर और शासन के वर्णन को सम्मिलित करने पर बल दिया था। वारेनियस प्रथम भूगोलवेत्ता था जिसने बताया कि पृथ्वी पर अधिकतम तापमान भूमध्यरेखीय पेटी में नहीं बल्कि अयन रेखाओं (कर्क और मकर रेखाओं) के समीप स्थित मरुस्थलीय भागों में पाया जाता है। इस प्रकार वारेनियस को सत्रहवीं शताब्दी तक का श्रेष्ठतम भूगोलवेत्ता माना जाता है।1649 में वारेनियस ने जापान और थाईलैंड का प्रादेशिक भूगोल प्रकाशित किया था। उसके अधिकांश अध्यायों में मानवीय पक्षों का विवेचन किया गया था। उसके एक वर्ष बाद, 1650 में उसने सामान्य भूगोल का क्रमबद्ध निरूपण किया था, जिसमें अधिकतर प्राकृतिक पक्षों का वर्णन किया गया था। उसी ग्रंथ में उसने एक कुछ लंबी सूची उन विषयों की तैयार की थी जिनको भूगोल में सम्मिलित करना चाहता था, परंतु उसकी असामयिक मृत्यु के कारण वह कार्य पूर्ण ना हो सका। वारेनियस को क्रमबद्ध भूगोल का जनक माना जाता है।वारेनियस ने भूगोल में द्वैतवाद की ओर संकेत किया था, जो कुछ अंशों में आज भी मौजूद है यह अद्वैतवाद भौतिक परिवर्तन सामाजिक सांस्कृतिक परिघटना के बीच होता है। खगोल में बिल्कुल भौतिक प्रकार की प्रक्रिया आएं और परीघटनाएं वे होती हैं, जो स्थलमंडल,जलमंडल और वायुमंडल से संबंधित होती है। तथा, वे परिघटनाएं भी भौतिक प्रकार की होती हैं, जो पृथ्वी के साथ संबंधों पर निर्भर करती हैं। इस प्रकार की प्राकृतिकप्रक्रियाओं का तथा नामों का अध्ययन उन विधियों के द्वारा किया जा सकता है। जो भौतिक विज्ञान और

गणित विज्ञान में प्रयोग किए जाते हैं, वैज्ञानिक सूक्ष्मता के साथ सिद्ध किए जा सकते हैं। भूगोल का दूसरा पक्ष जिसमें समाज– सांस्कृतिक प्रक्रियाएं तथा परि घटनाएं होती हैं, वे प्राकृतिक विज्ञानों के समान निश्चित नहीं होती हैं यह वर्गों के संबंध में जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं, उनमें अनिश्चितता के बजाय संभावना बताई जाती है। भूगोल के इस द्वैतवाद के कारण ही वारेनियस ने भूगोल के दो पक्ष फुल तथा विशेष भूगोल किए थे। सामान्य भूगोल में समस्त पृथ्वी के भौतिक तथ्यों का क्रमबद्ध वर्णन था, और विशेष भूगोल में प्रादेशिक वर्णन थे, जिनमें मानवीय पक्ष की प्रधानता थी।

4.10 पुनर्जागरण काल की भौगोलिक उपलब्धियाँ

(1) नवीन क्षेत्रों की खोज–तेरहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक का समंय नवीन खोजों और अन्वेषणों के लिए जाना जाता है। इस अवधि में पश्चिमी यूरोप के खोज यात्रियों ने अत्यंत लम्बी–लम्बी साहसिक यात्राएं किया और अनेक नये–नये महाद्वीपों , द्वीपों , देशों, महासागरों , सागरों , समुद्री मार्गों आदि का पता लगाया। मार्कोपोलो, कोलम्बस, वास्को–डी–गामा, मैगेलन, जान केबोट, अमेरिंगो वसपुक्की, फ्रांसिस ड्रेक, हडसन और तस्मान पुनर्जागरण काल के प्रसिद्ध खोज यात्री थे। कोलम्बस ने नयी दुनियाउत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका की खोज किया। मैगेलन ने यूरोप से दक्षिणी अमेरिका के दक्षिणी छोर (मैगेलन जलसंधि) से होकर पूर्वी एशिया के लिए समुद्री मार्ग की खोज की थी। वास्को–डी–गामा ने यूरोप से अफ्रीका के दक्षिणी छोर (उत्तमाशा अंतरीप) का चक्कर लगाते हुए भारत तक के समुद्री मार्ग की खोज किया था। अमेरिगो वसपुक्की ने दक्षिणी अमेरिका की मुख्य भूमि और दक्षिण में अंटार्कटिका के पास स्थित जार्जिया द्वीप की खोज की थी। जान कैबोट और हडसन ने उत्तरी अमेरिका के उत्तर–पूर्व में स्थित द्वीपों (न्यू फाउण्डलैंड आदि) और खाड़ियों का पता लगाया। तस्मान ने आस्ट्रेलिया के दक्षिण स्थित तस्मानिया द्वीप की खोज की थी।

(2) मानचित्र कला का विकास–पुनर्जागरण काल में मानचित्रकला के क्षेत्र में कई सुधार हुए और नवीन विधियों को विकसित किया गया। मरकेटर, पीटर एपियन, सेबस्टियन मुस्टर आदि इस युग के प्रमुख मानचित्रकार थे। मानचित्रकला में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान मरकेटर का माना जाता है जिसने शुद्ध आकृति बेलनाकार प्रक्षेप (मरकेटर प्रक्षेप) का निर्माण किया था।शुद्ध दिशा प्रक्षेपहोने के कारण यह नाविकों के लिए अति उपयोगी सिद्ध हुआ।

(3) विश्व भूगोल या सामान्य भूगोल की रचना–सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में कुछ भूगोलवेत्ताओं ने विश्व का भूगोल लिखा था। सर्वप्रथम सेबास्टियन मुस्टर ने अपने सहयोगियों की सहायता से छः खण्डों में विश्व भूगोल लिखा था। जो 1544 में प्रकाशित हुई थी। क्लूवेरियस द्वारा लैटिन भाषा में लिखित "विश्व भूगोल का परिचय" का प्रकाशन छह खण्डों में 1616 से 1624 के बीच हुआ था। कार्पेन्टर ने अंग्रेजी भाषा में "विश्व भूगोल" लिखा जो 1625 में प्रकाशित हुई। सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक वारेनियस द्वारा लिखी गयी "सामान्य भूगोल'को माना जाता है जो 1650 में प्रकाशित हुई थी। इसमें सम्पूर्ण विश्व को एक इकाई मानकर विभिन्न भौगोलिक तथ्यों (भौतिक एवं सांस्कृतिक दोनों) का अध्ययन क्रमबद्ध रीति से किया गया था।

4.11 सारांश

यह इकाई पश्चिमी विश्व के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण अवधियों में से एक को समाविष्ट करती है पुनर्जागरण काल जिसका अर्थ 'पुनर्जन्म' या 'पुनः जागृति' होता है। पुनर्जागरण काल किसी एक घटना का नाम नहीं है। बल्कि यह घटनाक्रम और नए विचारों की एक श्रृंखला थी जिसने अंततः आधुनिकता के युग को जन्म दिया। प्रारंभिक पंद्रहवीं शताब्दी और अठारहवीं शताब्दी के अंत की अवधि के दौरान यूरोप में कला, साहित्य, दर्शनशास्त्र खगोल विज्ञान और प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्रों में एक शक्तिशाली, नई ऊर्जा और सर्जनात्मकता का प्रसार हुआ अर्थात, दूसरी शब्दों में, सभी प्रकार के शिक्षण के क्षेत्रों में। बौद्धिक दृष्टि से, मध्यकालीन चर्च द्वारा समाज पर थोपे गए विश्व–दृष्टिकोण से यह एक निर्णायक अंत था।

विद्वानों और विभिन्न प्रकार के सर्जनशील व्यक्तियों द्वारा यूनान और रोम की शास्त्रीय संस्कृतियों की पुनः जांच प्रारंभ की गई। उतना ही महत्वपूर्ण था उनके द्वारा जिसे मानवतावाद के रूप में जाना गया उसका अध्ययन, जिसमें 'मानव', 'मनुष्य', ब्रह्मांड में मनुष्य का महत्व और उसका स्थान और उसके साथ–साथ व्यक्ति का महत्व महत्वपूर्ण विषय–वस्तु थे। इसमें जीवन के एक नए तरीके का अग्रदूत संकेन्द्रित था, जिसने भगवान के अस्तित्व को स्वीकार किया लेकिन इस विचार को बढ़ावा दिया कि मनुष्य और ईश्वर के बीच सीधा संबंध था। इसने

जाँच–पड़ताल की भावना को भी प्रोत्साहित किया, और सांसारिक सरोकारों और मानवीय प्रयासों की वैधता को स्वीकृति प्रदान की। भौगोलिक दृष्टि से, मानवतावाद की उत्पत्ति लोरेंस, इटली में हुई।

सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से, यह वह समय था जब सामंतवाद समाप्त हो रहा था और पूँजीवाद अपना प्रारंभिक प्रारूप ग्रहण कर रहा था। इटली में परिवर्तन सबसे अधिक चिहित थे, जहाँ सामंतवाद ने बहुत गहरी जड़े विकसित नहीं की थीं और जहाँ इसके विभिन्न स्वतंत्र शहर–राज्यों में वाणिज्य फल–फूल रहा था। फिर, धीरे–धीरे समाज में एक व्यक्ति की प्रतिष्ठा निर्धारित करने के लिए जन्म और परिवार से सम्पदा अधिक महत्वपूर्ण हो गई। विश्राम और अतिरिक्त पैसे का अंतिम परिणाम वास्तुकला सहित कला के कार्यों की शुरुआत में हुआ। लिओनारदं दा विंची और माइकल एंजेलो इस काल के प्रेरित दो सबसे प्रसिद्ध कलाकार थे। विश्वविद्यालयों में चर्चाएँ और बहसें जीवंत थी।

पुनर्जागरण काल के दौरान प्राकृतिक विज्ञान में बढ़ती रुचि थी और प्राकृतिक दुनिया का अध्ययन करने के लिए उपकरणों में वृद्धि हुई। टेलिस्कोप का आविष्कार हॉलैंड में किया गया था, और फिर इटली में एक प्राकृतिक वैज्ञानिक, दार्शनिक और गणितज्ञ, जिसका नाम गैलीलियो गैलीली था उन्होंने खुद के लिए एक टेलिस्कोप बनाया। उन्होंने वर्षों तक इसके माध्यम से ब्रह्माण्ड का अध्ययन किया। अंततः उन्होंने ब्रह्माण्ड के कोपर्निकस के सिद्धांत को सही साबित किया। गैलीलियो के कार्य का यह उदाहरण हमें यह समझने में मदद करता है कि वैज्ञानिक क्रांति मानवतावाद का एक महत्वपूर्ण पहलू था क्योंकि इसने अनुभववाद को जन्म दिया था। इस पद्धति के अनुसार, ज्ञान केवल सत्ताधारियों द्वारा ही प्राप्त नहीं किया जा सकता था बल्कि इसे अवलोकन, प्रयोग करके और आँकड़ों के संयोजन के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता था, और फिर सामान्य नियमों के निर्माण के लिए इसका उपयोग किया जाना था। इस प्रकार अन्वेषण काल के चरम युग का अन्त हुआ। बारहवीं तथा तेराहवीं सदी में स्थल मार्ग से मध्य एशिया और सुदूर पूर्वी भाग तथा भारत की खोज की गई। इसके उपरान्त पन्द्रहवीं तथा तेराहवीं सदी में सागरीय मार्ग से यात्रा करके मुक्त यात्रा मार्ग की खोज की गई जिसके द्वारा यूरोप के विभिन्न देशों के यात्रियों ने व्यापार को आगे बढ़ाया। इसी के साथ पृथ्वी के विस्तार, इसकी आकृति, भौगोलिक ज्ञान, क्षेत्रीय अध्ययन, एशिया, यूरोप, अफ्रीका, उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका, भारत, आस्ट्रेलिया तथा असंख्य द्वीपों के सम्बन्ध में प्रमाणिक जानकारी प्राप्त होनें लगी। धार्मिक अंधविश्वास का समय समाप्त हो गया। तर्कसंगत तथ्यों के आधार पर भौगोलिक ज्ञान का प्रसार होने लगा। इसके बाद भूगोल का पुनरुत्थान काल प्रारम्भ हो गया और भूगोल के नवीन स्वरूप तथा उसकी अन्य शाखाओं का विकास विज्ञान तथा धर्म के अन्य विषयों की भाँति धीरे–धीरे होने लगा।

4.12 स्वमूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

प्रश्न 1– पुनर्जागरण काल के सर्वप्रथम भूगोलवेत्ता–

(अ)वर्नहार्ड वारेनियस (ब) फिलिप क्लू वेरियस

(स) गरहार्ड मर्केटर (द)अमेरिगो वपुक्की

प्रश्न 2– किस विद्वान ने 'नई दुनिया' की खोज की–

(अ) मार्कोपोलो (ब) कोलंबस

(स) हेटनर (द) टॉलमी

प्रश्न 3– वारेनियस ने स्पष्ट भेद किया

(अ) भौतिक एवं मानव भूगोल के मध्य

(ब) मात्रात्मक भूगोल तथा गुणात्मक भूगोल के मध्य

(स) ऐतिहासिक तथा समसामयिक भूगोल के मध्य

(द) सामान्यतथा विशिष्ट भूगोल के मध्य

प्रश्न 4– भारत के लिए समुद्री मार्ग की खोज के लिए किस विद्वान को चुना गया–

(अ) वास्कोडिगामा (ब)फुर्डिनण्ड मैगलेन

(स) मार्को पोलो (द) क्रिस्टोफर कोलंबस

प्रश्न 5– पुनर्जागरण काल में मानव चित्रकला में सबसे अधिक योगदान किसका है–

(अ) पीटर एपीएन (ब) मर्केटर

(स) सेबेस्टियन मुस्टर (द) फिलिप क्लू वेरियस

प्रश्न 6– मुद्रण का आविष्कार किस काल में हुआ–

(अ) प्राचीन काल (ब) शास्त्रीय काल

(स) पुनर्जागरण काल (द) आधुनिक काल

उत्तरमाला 1.(अ) 2.(ब) 3.(द) 4.(अ) 5.(ब) 6.(स)

4.12 संदर्भ – ग्रंथ– सूची

- Gibson, E.M.W., (1983), Realism in Geographical Themes, London.
- Gold, J.R., (1980),An Introduction to Behavioural Geography, Oxford, Ox- ford University Press.
- Gould, P.R. (1969), Methodology Development Since the Fifties, in Board,
- C.. Chorley, R.J. Haggett, P.And Stoddart, D.R. Progress in Geography, Vol.1, London, EdwardArnold, pp. 1-50.
- Gregory, S., (1963), Statistical Methods and the Geographer, London. Longman.
- Grigg, D.. (1965). The Logic of Regional Systems,Annals of theAssociation
- ofAmerican Geographers, Vol.55, pp.451-491
- Guyot,A., (1849), The Earth and MaN% Lectures on Comparative Physical Geography in its Relation to the History of Mankind Boston, Gould and Lincoln.
- Haggett, P., (1966), LocationalAnalysis in Human Geography, New York.
- Haroon, M. (2000) R.J. (1951), The French School of Geography, in G.Taylor Ed. Geography in the Twentieth Century, New York.
- Hartshorne, R., (1951), Civilization and Climate, New Heven, Yale UniversityPress,

4.13 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

प्रश्न 1– वास्कोडिगामा की समुद्री यात्रा का वर्णन कीजिए?

प्रश्न 2–पुनर्जागरण काल में भौगोलिक चिंतन का विकास' विस्तृत व्याख्या कीजिए

प्रश्न 3– पुनर्जागरण काल में प्रमुख खोज यात्री कौन–कौन से हैं, वर्णन कीजिए?

प्रश्न 4– पुनर्जागरण काल के भूगोलवेत्ता का उल्लेख कीजिए?

प्रश्न 5– जागरण काल में भौगोलिक उपलब्धियों का विस्तृत अध्ययन कीजिए?

इकाई–5 वैज्ञानिक अन्वेषण एवं ज्ञानोदय काल में भूगोल– वैज्ञानिक प्रगति, विशुद्ध भूगोल संप्रदाय

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 वैज्ञानिक भू–अन्वेषण एवं ज्ञानोदय काल में भूगोल भू–मापन एवं सर्वेक्षण

5.4 वैज्ञानिक प्रगति

5.5 ज्ञानोदय काल में भौगोलिक कार्य

5.5.1 यात्रा विवरण

5.5.2. भौगोलिक कृतियां

5.6 विशुद्ध भूगोल संप्रदाय या शुद्ध भूगोल

5.6.1 बुइशिंग

5.6.2 बुआचे

5.6.3 गट्टेरेर

5.6.4 होम्मेयर

5.6.5 ज्यूने

5.7 सारांश

5.8 स्व मूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

5.9 संदर्भ–ग्रंथ–सूची

5.10 अभ्यास प्रश्न(सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

5.1 प्रस्तावना

क्रमबद्ध विज्ञानों अर्थात् भौतिकी, रसायन शास्त्र, भूविज्ञान, वनस्पति–विज्ञान, प्राणि–विज्ञान, आदि विषयों के क्षेत्र में किये गये अनुसन्धानों से जो तथ्य और नवीन ज्ञान की प्राप्ति हो रही थीं, उनके परस्पर संश्लेषणसे लोगों में जागृति उत्पन्न हो गयी थी। इस कारण से भी भौगोलिक अध्ययन की ओर विद्वानों एवं सामान्य व्यक्तियों की प्रवृत्ति बढ़ने लगी थी। अठारहवीं शताब्दी से पूर्व भूगोल का प्रयोग अधिकतर ऐतिहासिक घटनाओं के स्थलीय वर्णनों के लिए तथा सरकार द्वारा प्रशासन के लिए किया जाता था। परन्तु अठाहरवीं शताब्दी के मध्य में भूगाल ने एक स्वतन्त्र विज्ञान का स्वरूप धारण कर लिया था। अतःभूगोल अब इतिहास का सेवक न रहकर उसका आधारभूत साथी बन गया था। भूगोल में वह शक्ति थी कि उसके द्वारा वह भविष्य का पूर्वानुमान कर सकता था। बदलता हुआ दृष्टिकोण खोजों के युग में पृथ्वी और मनुष्यों के विषय में जो दृष्टिकोण के परिवर्तन होने आरम्भ हुए थे, वे अठारहवीं शताब्दी में तीव्रगामी हो गए थे। वोल्टेयर तथा फ्राँसीसी और जर्मन दार्शनिकों ने लोगों के विचारों में नई लहरें उत्पन्न कर दी थीं। यात्रियों तथा विद्वानों को मिस्र, ईरान (पशिया), भारत और चीन की संस्कृतियाँ खोज में मिली थीं, जो यूरोपियन संस्कृतियों से अधिक प्राचीन, अधिक स्थायी, अधिक गुण–सम्पन्न और अधिक विचारशील थीं। अनुभवों और अन्वेषणों के आधार पर उन प्राकृतिक नियमों को संकलित किया जाने लगा जो समस्त पृथ्वी और उसके लोगों पर लागू हो सकते थे।

5.2 उद्देश्य

प्राकृतिक विज्ञानों के अध्ययन में बढ़ती हुई रुचि ने तथा पृथ्वी–सम्बन्धी सामान्य ज्ञान के प्रसार ने भूगोल की प्रगति के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार कर दिया था। प्राकृतिक विज्ञानों की खोजों से भौतिक परिघटनाओंतथा जैविक परिघटनाओं के सम्बन्ध में जो नया ज्ञान प्राप्त हुआ था उससे पृथ्वी–तल का अधिक वैज्ञानिक ढंग से वर्णन करना सम्भव हो गया था। उस समय तक पृथ्वी पर प्राकृतिक वातावरण के बीच मानव का स्थान कम महत्वपूर्ण रहा था। अब इस विषय की ओर भी लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ। विचारणीय विषय यह था कि क्या इस पृथ्वी की रचना इस उद्देश्य से हुई थी कि इस पर मानव तथा मानवीय संस्कृति का विकास हो, या ऐसा नहीं था। इस समस्या को हल करने के लिए भी पृथ्वी के भौगोलिक वर्णन में लोगों की रुचि बढ़ी थी।

शुद्ध भूगोल वर्णन के लिए राजनीतिक सीमा को कमर भूगोलवेत्ताओं ने भौगोलिक वर्णन के की अठारवीं शताब्दी को कई भरीसही बताया। प्राकृतिक सीमा के अन्तर्गत न हुए इसके लिए प्राकृतिक सीमा को शुद्ध भूगोलकी संज्ञा दी गयी। शताब्दी के उत्तरार्ध में कुछ भूगोलवेत्ताओं ने भूगोल को एक स्वतंत्र विज्ञान शुद्ध भूगोल" के रूप में विकसित करने का सराहनीय कार्य किया। शुद्ध भूगोल के समर्थकों का प्रयास था कि भूगोल में विश्व का अध्ययन राजनीतिक प्रदेशों के आधार पर नहीं बल्कि अधिक वास्तविक तथा स्थाई प्राकृतिक आधार पर किया गया है।

5.3 वैज्ञानिक भू–अन्वेषण ज्ञानोदय काल में भूगोल का भू मापन एवं सर्वेक्षण

यद्यपि सोलहवीं शताब्दी तक स्पेन एवं पुर्तगाली नाविकों द्वारा कि गोलाभ आकृति एवं वास्तविक विस्तार का पता चल गया, तथा वास्तविक अन्वेषण का कार्य पूर्ण नहीं हो पाया था। अभी उच्च अक्षांश तथा विशाल महाद्वीपों जैसे अफ्रीका एशिया उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका अस्ट्रेलिया के आंतरिक भागों के बारे में अल्प जानकारी थी। 16 वीं शताब्दी के मध्य में अन्वेषण यात्राओं में थोड़ा ठहराव आ गया था। सत्रहवीं शताब्दी में इंग्लैंड, हालैंड फ्रांस के अन्वेषण परिषदों की स्थापना हुई, जिनके तक इन देशों के लोगों ने रेशम, जवाहरात एवं मसालों के क्षेत्र में पहुंचने हेतु वैकल्पित समुद्री मार्गो महाद्वीपों के आंतरिक भागों में व्यवस्थित वैज्ञानिक अन्वेषण प्रारंभ किए।

1549 ईही एक जर्मन, हरबर्टस्टाइन ने रूस पर एक पुस्तक प्रकाशित की थी। इसी आधार पर इंग्लैंड एवं हालैंड वासियों ने उत्तरी सागर की ओर से चीन जापान पहुंचने के कई प्रयास किए किसी प्रकार नोवा तस्लेमलिया तक पहुंच सके। हालैंड का यह अभियान 1594 ईस्वी में बारेंट्ज की मृत्यु इसी अभियान में 1597 ई में इतने ऊंचे अक्षांश में जाड़ा बिताने के प्रयास में हो गई। इसी प्रकार एशिया पहुंचने हेतु एक उत्तरी पश्चिमी मार्ग ढूंढने के प्रयास भी हुए जिससे उत्तरी अमेरिका का उत्तर से चक्कर लगाकर चीन और भारत तक पहुंचा जा सके। उसी समय यह सामान्य धारणा बन गई कि दक्षिण अमेरिका की तरह उत्तरी अमेरिका का भी आखरी छोर बहुत पतला सा है। इस प्रयास में 1576 ई में मारटिन फ्रॉबिसर 63^0 उत्तरी अक्षांश पर बफिंन द्वीप दक्षिण पूर्वी छोर तक, हडसन 10 ई में हडसन की खाड़ी तक तथा बिलोर एवं बफिन 1616 ई 1712 ई ट्रांसफर स्थित बफिन द्वीप तक पहुंचने में सफल हुए थे। इसके पश्चात ये अभियान भी समाप्त हो गए।

अब अन्वेषकोंने समुद्री मार्गो को छोड़कर महाद्वीपों के आंतरिक भागों का अन्वेषण आरंभ किया। रूसी साइबेरिया के आंतरिक भागों की छानबीन करने में जुट गए। मास्को से पूरब की ओर चलते हुए वे 1577 ई तक ओब नदी के मुहाने तक पहुंच गए थे। इसी क्रम को जारी रखते हुए वे 1610 ई तक ये मुहाने तक और कर्म से आगे बढ़ते हुए 1617 ई तक लीना नदी के मुहाने तक तथा 1742 ई में सुदूर उत्तर में स्थित चेल्यूस्किंन प्रायद्वीप में पहुंचे। एक दूसरा दल सीधे पूरब की ओर चलता हुआ 1639 ई तक प्रशांत सागर तट ओखोटस्क एवं कमस्चट्का प्रायद्वीप तक पहुंच गया। बेरी ने 1726 से 28 में बेरिंग जल संधि से होकर कमस्चट्का तक की समुद्री यात्रा की।

दूसरी ओर अंग्रेजी डच एवं फ्रांसीसी अनुदेशकों ने उत्तरी अमेरिका के उत्तरी भाग की खोज जारी रखी। वे हडसन खड़ी से स्थल मार्ग से 1789 ई तक मैकेंजी नदी के मुहाने तक पहुंचने में सफल हुए। फ्रांसीसी अन्वेषक सेंट लारेंस की खाड़ी से आगे बढ़कर वृहत झीलों के पार 1751 ई तक रॉकी पर्वत श्रेणियों तक पहुंचे। इधर स्पेनी अन्वेषक ने मिसीसिपी के मुहाने से प्रारंभ करके दक्षिण संयुक्त राज्य, मेक्सिको, मध्य अमेरिका तथा दक्षिण अमेरिका के एंडी पर्वत श्रेणियों के सहारेवाल्दीविया तक का क्षेत्र एवं ज्युआकिन से आने तक तथा पोटो सी से ब्यूनस आयर्स तक का क्षेत्र 1520 ई से 1552 ईके मध्य तक छान मारा था।

अब अनुदेशकों का ध्यान प्रशांत महासागर एवं हिंद महासागर एवं उनमें स्थित द्वीपों की ओर गया। कुक इन में सबसे बड़ा अन्वेषक था जिसने 1768 से 1780 के बीच तीन बड़ी समुद्री यात्राएं की। उसने आस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैंड का चक्कर लगाया अंटार्कटिका की परिक्रमा की तथा बेरिंग जल संधि के पार गया। स्पेनी अनुदेशकों द क्यूरो एवं टार्रेस ने 1605–06 के बीच मध्य प्रशांत महासागर के विभिन्न द्वीपों की छानबीन की। तस्मान 1642–44 के बीच चक्कर काटा और तस्मानिया द्वीप की खोज की।

इस प्रकार 1600–1800 के बीच विश्व के विभिन्न भागों की विस्तृत जानकारी यूरोप वासियों को प्राप्त हो गई। आंतरिक भागों का स्पष्ट ज्ञान अभी नहीं हो सका था क्योंकि सहारा एवं कालाहारी जैसे विशाल मरुस्थल एवं कांगो बेसिन के घने जंगलों के आर–पार जाना सरल नहीं था। इस महाद्वीप के आंतरिक भागों की पूरी जानकारी क्रमशः मुंगोपार्क, डेनहम, कूडने एवं क्लैपरटोन,स्पेक, नास्टिगल तथा स्टैनले जैसे साहसी अनुदेशकों के प्रयास से 19वीं शताब्दी में ही प्राप्त हो सकी, तथापि इसी युग में अफ्रीका की खोज के प्रयास प्रारंभ हो गए थे।

भू मापन एवं सर्वेक्षण– इशू की महत्वपूर्ण उपलब्धि अन्वेषण के साथ–साथ भू मापन एवं विभिन्न स्थानों की सही अवस्थिति निर्धारण है। 1669 ईमें पिकार्ड ने दूरबीन का आविष्कार किया तथा एवं एमियन के मध्य अक्षांश का निर्धारण किया 1683–1700 के बीच कासिनी ने इस विधि का अनुसरण करके फ्रांस के अक्षांश देशांतर निर्धारित किए। 1731ई में हैडले सेक्सटैंट का अविष्कार करके मापन का कार्य सरल कर दिया। तोरीसेली द्वारा निर्मित बैरोमीटर का पेस्केल ने ऊंचाई मापन उपयोग में ही किया था। फारेनहाइट तथा केडमर ने गैलेलियो द्वारा निर्मित तापमापी का व्यवहारिक उपयोग दर्शाया। इसी काल में त्रिभुजीकरण विधि द्वारा मापन एवं अवस्थिति निर्धारण का का कार्य होने लगा।

5.4 वैज्ञानिक प्रगति

इस युग में न सिर्फ नए स्थानों क्षेत्रों एवं विश्व के विभिन्न भागों की अन्वेषण यात्राओं से प्राप्त नए तथ्यों का पता लगा, इस युग के वैज्ञानिकों जैसे न्यूटन(गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत के जनक)बेकन (आगमनात्मक विश्लेषण पद्धति),डिस्करटेंस (निगमनात्मक पद्धति के प्रवर्तक) के प्रभाव से एक वैज्ञानिक क्रान्ति भी हुई। यद्यपि पृथ्वी की सामान्य आकृति की रूप रेखा पुर्नजागरण काल में ही स्पष्ट होने लगी थी तथापि न्यूटन तथा हयूगेन्स के प्रमाणों द्वारा इसका विषुवत रेखा पर उभरा तथा ध्रुवों की ओर चिपटा होना भी सिद्ध हो गया और इस प्रकार पृथ्वी की नारंगी समानआकृति की पुष्टि हुई। क्वीटो और लैपलैंड (सोवियत संत्र) में अक्षांशीय मापन द्वारा भी यह तथ्य पुष्ट हुआ कि पृथ्वी सर्वत्र पूर्ण रूपेण गोलाभनहीं हैं। अतःटोलेमी के समय से प्रचलित इस मान्यता का खण्डन हुआ कि पृथ्वी का सर्वत्र पूरब–पश्चिम विस्तार उत्तर–दक्षिण की अपेक्षा अधिक है। अब पृथ्वी का सही मानचित्र नये प्रक्षेपों पर बनने लगा। 1682 ई० में कासिनी ने सम्पूर्ण पृथ्वी का सही मानचित्र प्रस्तुत किया। अनेक अन्वेषण यात्राओं से प्राप्त तथ्यों के आधार पर नये सिरे से विश्लेषण द्वारा प्राकृतिक भूगोल के क्षेत्र में नयी परिकल्पनाओंका सूत्रपात हुआ। इनमें से निम्न महत्त्वपूर्ण हैं–

(1) न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त द्वारा पृथ्वी की सौरमण्डल से उत्पत्ति एवं सौरमण्डल में पृथ्वी की गति पर प्रकाश डाला। बाद में इन्हीं सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए कान्ट (1755) एवं लाप्लास (1796) ने नेबुला से पृथ्वी की उत्पत्ति का सिद्धान्त प्रस्तुत किये।

(2) 1696 ई० में स्टेनो ने यह सिद्ध किया कि विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न प्रकार की चट्टानों के मिलने का वास्तविक कारण यह है कि उनका निक्षेपण विभिन्न दशाओं में हुआ।

(3) 1695 ई० में वुडवार्ड ने चट्टानों की प्रकृति पहचानने में, उनमें पाये जाने वाले जन्तुओं और वनस्पतियों के अवशेष का महत्त्व दर्शाया।

(4) हटन ने, 1788 ई० में समरुपतावादका सिद्धांत प्रतिपादित किया। इसके अनुसार पृथ्वी तल पर अपरदन की प्रक्रिया अनवरत चलती रहती है। जो प्रक्रियायें अभी सक्रिय हैं वही भूतकाल में मी सदैव क्रियाशील रही हैं। पृथ्वीतल पर विभिन्न प्रकार के भूदृश्य (पर्वत, घाटी, पठार आदि) इसी निरन्तर चलने वाली अपरदन प्रक्रिया के परिणाम हैं। इसके पूर्व भूदृश्यों की व्याख्या हेतु आकस्मिक हलचलों का सहारा लिया जाता था। इसी समरुपतावाद सिद्धान्त का अधिक स्पष्ट विवेचन 1802 ई० में प्लेफेयर ने किया।

(5) पालास तथा इसर ने 1777 ई० में पर्वतों की संरचना उद्भव (वतपहदप) तथा उनकी जलवायु एवं वनस्पति पेटियों पर प्रकाश डालो।

(6) आइजक वोसिमस ने (1663) में सामुद्रिक जलधाराओं की रुप रेखा प्रस्तुत की।

(7) हैली ने 1686–87 में वाष्पीकरण की प्रकिया पर ध्यान दिया तथा जलचक्र की रूपरेखा प्रस्तुत की। विभिन्न अक्षांशपर तापमान की तथा एक ही अक्षांश पर जल एवं थल में ताप की भिन्नता की ओर ध्यान आकृष्ट किया। अन्त में इस जल–थल के ताप में भिन्नता केआधार पर मानसून की प्रक्रिया स्पष्ट की।

(8) 1735 ई० में हेडली से वायु पेटियों का सम्बन्ध पृथ्वी की दैनिक गति से जोड़ा।

(9) 1740 ई० में बॉयल ने ऊँचाई के साथ वायुदाब में ह्रास की प्रवृत्ति की ओर ध्यान आकृष्ट किया।

(10) टूर्नफोर्ट ने 1701 में वनस्पतियों का अध्ययन करके समुद्रतल से बढ़ती ऊँचाई के साथ वनस्पति के विकास में हास की प्रवृत्ति की ओर ध्यान आकृष्ट किया।

(11) जॉन रे ने 1691 में वनस्पति शास्त्र के क्रमबद्ध अध्ययन द्वारा जैविक तत्वों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया।

(12) 1789 में जेसियस ने पौधों का सामान्य प्रक्रम स्थापित किया।

(13) 1758 ई० में वेरनर ने भौमिकीय कालक्रम स्थापित किया। इसका आधार पारमास द्वारा प्रस्तुत यूराल तथा अल्टाई पर्वतों में चट्टानों के निर्माण का क्रम था।

(14) इउलर, लैम्बर्ट आदि ने विभिन्न प्रकार के मानचित्र प्रक्षेप निर्मितकरने हेतु सिद्धान्त प्रस्तुत किये जिनके आधार पर पृथ्वी के विभिन्न भागों हेतु कम से कम विकृतियों एवं त्रुटियों वाले, उपयुक्त मानचित्र प्रस्तुत किये जाने लगे।

भूगोल की प्रगति –ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि इस युग में पृथ्वी और विभिन्न क्षेत्रों के बारे में ज्ञान में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। यह वृद्धि तीन प्रकार से हुई।

(1) विभिन्न अन्वेषण यात्राओं के परिणामस्वरूप पृथ्वी की सही आकृति एवंविस्तार का बोध हुआ।

(2) विभिन्न महाद्वीपों के अब तक अज्ञात आन्तरिक क्षेत्रों, विशेषतया एशिया उ० अमेरिका तथा द० अमेरिका, के बारे में प्रामाणिक तथ्य प्राप्त हुए।

(3) विभिन्न वैज्ञानिक परिकल्पनाओं द्वारा नवीन उपलब्ध तथ्यों, जैसे पृथ्वी का स्वरुप एवं गति, उद्भव, महाद्वीपों एवं महासागरों कीउत्पत्ति, विभिन्न क्षेत्रों की जलवायु एवं वनस्पति की विशेषतायें आदि केविश्लेषण की नयी दिशायें खुली। हेटनर ने इस युग की प्रवृत्ति पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि जहाँ पुर्नजागरण काल में प्राचीन (ग्रीक एवं रोमन) भूगोल को वर्तमान के लियेभी सही मान लिया और टोलेमी द्वाराप्रस्तुत भूगोल मेंयत्र–तत्र नयी सूचनाओं के आधार पर संशोधन कियेगये, इस युग में यह ज्ञान उदित हुआ कि न सिर्फ प्राचीन काल की अपेक्षा अब मानव के ज्ञान क्षितिज का विस्तार हुआ वरन् सम्पूर्ण भौगोलिक दशायें–लोग, राज्य के नगर एवं मार्ग भी नितान्त परिवर्तित हो गई है।इसी लिये इस युग के भूगोल का प्राचीन भूगोल से सर्वथा मिन्न होना अपरिहार्य है।

इस प्रकार न सिर्फ वर्तमान भूगोल वरन् प्राचीन कालीन भूगोल की भीवैज्ञानिक व्याख्या होने लगी। इस प्रवृत्ति के उभाड़ने में बेकन तथा डेसकार्टेस दोनों दार्शनिकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। इन्होंने इस बात पर जोर दिया कि विज्ञान को धर्म तथा नूतकालिक पूर्वाग्रह से मुक्त होना अनिवार्य है। यद्यपि बेकन वैज्ञानिक अध्ययन के लिये आगमनात्मक विधि अर्थात प्रत्यक्ष अनुभव से प्राप्त तथ्यों के आधार पर सामान्य सिद्धान्त प्रतिपादित करने,के पक्षधर थे। तथा डेसकार्टेस निगमनात्मक विधि अर्थात सामान्य सिद्धान्त गणितीय तर्क के आधार पर निरूपण, के पक्षधर थे, परन्तु दोनों ही इस बात के समर्थक थे कि किसी भी तत्व को दैवी चमत्कार का परिणाम नहीं मानना चाहिये। दोनों दार्शनिक इस बात पर बल देते थे कि जो भी तत्व पृथ्वीतल पर प्रकट होता है, उसका मूल कारण खोजा जाना चाहिये। दूसरे शब्दों में दोनों ही दार्शनिक कार्य–कारण विश्लेषण के पक्षधर थे।

5.5 ज्ञानोदय काल में भौगोलिक कार्य

भौगोलिक कार्य इस ज्ञानोदय युग की इन प्रवृत्तियों का भूगोल पर भीप्रभाव पड़ा। इस युग में भूगोल की प्रगति तीन प्रकार से हुई। यात्रा विवरण इस युग में वैज्ञानिक अन्वेषण यात्राओं के साथ जाने वाले कुछ भ्रमणकारियों ने उत्कृष्ट यात्रा विवरण प्रस्तुत किये। इनमें पिता–पुत्र फारस्टर अधिक उल्लेखनीय हैं। जोहान राइन

होल्ड (पिता) तथा जार्ज (पुत्र) फारस्टर, कुक के साथ उनकी दूसरी अन्वेषण यात्रा में शामिल हुएथे। इस यात्रा के दौरान हिन्द तथा प्रशान्त महासागर के विभिन्न द्वीपों पर ने विभिन्न पौधों के संग्रह किये तथा वनस्पति समुदायों के अध्ययन किये। इन लोगों ने महाद्वीपों के पूर्वी एवं पश्चिमीछोरों पर,एक ही अक्षांश पर तापक्रम प्रतिरूपका अध्ययन किया और इस प्रकार पश्चिमी यूरोप एवं पश्चिमी उत्तरी अमेरिका के जलवायु की समानता पर प्रकाश डाला। इन दोनों ने मनुष्य पर जलवायु के निश्चयात्मक प्रभाव के सिद्धान्त को अस्वीकार किया। कुक की अन्वेषण यात्रा में शामिल होने से पूर्व फारस्टरस ने 1765 ई० में रूस सरकार के निमन्त्रण पर वोलग्श स्टेपी की यात्रा की थी तथा वहाँ मानव बसाव की समस्याओं का अध्ययन किया था। फारस्टर ने दक्षिणी समुद्र सम्बन्धी अपने वृत्तान्तों का क्रमबद्ध विवरण निम्न छः शीर्षकों में प्रस्तुत किया था।

1– पृथ्वी और भूमि 2– जल एवं महासागर 3– वायुमण्डल 4– ग्लोब पर विभिन्नतायें 5– जैविक तत्त्व तथा 6– मानव इन्होंने मानव तथा वातावरण के घनिष्ठ की ओर विशेष ध्यान दिया था। दक्षिणी समुद्र में स्थित द्वीपों के सन्दर्भ में फारस्टर ने जनसंख्या घनत्व तथा संसाधन के अन्तर्सम्बन्ध को दर्शाने का प्रयास किया। दूसरे ऐसे यात्री, जिन्होंने भौगोलिक ज्ञान में वृद्धि की जेम्स रेनेल थे, जो 1767–77 में भारत के प्रधान सर्वेयर थे। इसके पूर्व 1762 ई० में इन्होंने मलक्का जलसंधि को पार करके हिन्देशिया के द्वीपों का अध्ययन किया था। अपने विवरण में इन्होंने हिन्देशिया के लोगों, जलवायु तथा समुद्र तटों का विवरण दिया है। 1764 ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नौकरी में आने के पश्चात रेनेल ने बंगाल का एटलस तैयार किया। भारत की अपने यात्रा विवरण में इन्होंने गंगा–ब्रह्मपुत्र के जलोढ़ निक्षेप द्वारा विशाल डेल्टा की निर्माण प्रक्रिया का विवरण दिया है। इनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान हिन्द महासागर तथा अटलांटिक महासागर की जलधाराओं का विवरण है। इससे सर्वप्रथम अटलांटिक महासागर में समुद्री धाराओं की गतिविधि पर प्रकाश पड़ा।

भौगोलिक कृतियाँ इस युग में नयी वैज्ञानिक दृष्टि से अन्वेषण यात्राओं से प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण के आधार पर कई पुस्तकें प्रकाशित हुई। जिन्होंने भूगोल की प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया। इनमें बफन की पुस्तक 'नैचुरल हिस्ट्री' उल्लेखनीय है। इस पुस्तक में बफन ने विश्व भर के अन्वेषक यात्रियों के यात्रा विवरणों का लाभ उठाते हुए प्रकृति में होने वाले परिवर्तनों से सम्बन्धित अपने नियम प्रतिपादित किये।बफन 1739 से 1788 ई० तक पेरिस के वनस्पति उद्यान के निदेशक रहे। अतएव उन्हें पौधों एवं जन्तुओं के अनगिनत नमूने तथा विश्व भर के यात्रा विवरण उपलब्ध थे।

बफन ने क्रमशः ठंढी होती हुई पृथ्वी की अवधारणा को स्वीकार किया। उनका विश्वास था कि पृथ्वी पर जो उष्मा प्राप्त है वह पृथ्वी की आन्तरिक भागों से ही निकलने वाली उष्मा है। सीधे सूर्य से प्राप्त होने वाला सूर्यातप, क्रमशः ठंढी होती पृथ्वी से ताप के ह्रास की क्षतिपूर्ति नहीं कर सकता। यदि वनों का आवरण न हो तो सूर्य से प्राप्त होने वाले ताप तथा पृथ्वी से बाहर निकलने वाले ताप में संतुलन स्थापित हो सकता है। इसके उदाहरण स्वरूप, बफन ने एक ही अक्षांश पर स्थित पेरिस और क्यूबेक (कनाडा)के तापक्रम में भिन्नता की ओर संकेत किया। क्यूबेक, अधिक वनाच्छादित होने के कारण ठंढा रहता है, जबकि पेरिस में वनों की कमी के कारण तापक्रम ऊँचा रहता है।

बफन के अनुसार वे लोग जो जलवायु के कुप्रभाव से बचने का कोई उपाय नहीं करते, जलवायु से बहुत प्रभावित होते हैं। परन्तु मनुष्य पृथ्वी पर कहीं भी किसी भी जलवायु से सामञ्जस्य स्थापित करने में समर्थ है। बफन की मान्यता थी कि ईश्वर ने पृथ्वी का सृजन किया है परन्तु वे यह नहीं मानते थे कि ईश्वर ने प्रारम्भ से ही सृष्टि की समग्र योजना निर्धारित कर दी है। उनके अनुसार ईश्वर ने मनुष्य को पृथ्वी पर विजय प्राप्त करने तथा इसका स्वरूप बदलने का निर्देश दिया है।

सभ्यता का विकास करने की प्रक्रिया में मनुष्य पृथ्वी का स्वरूप बदलता और निखारता है। इस प्रकार बफन पहले विद्वान हैं जिन्होंने मनुष्य को परिवर्तन के कारक के रूप में स्वीकार किया। बफन, प्राकृतिक इतिहास के जन्मदाता माने जाते हैं।

5.6 विशुद्ध भूगोल संप्रदाय या शुद्ध भूगोल–

राजनीतिक क्षेत्रों के बजाय प्राकृतिक क्षेत्रों के आधार पर पृथ्वीतल का वर्णन करना शुद्ध भूगोल माना जाता है।

सतहवी शताब्दी में अथानासियस किरचर ने यह मत व्यक्त किया था कि पृथ्वी के ग्लोब पर बहुत सी द्रोणियाँहै, जिनको पर्वत श्रेणियाँ एक दूसरे से पृथक् करती है। अपने मत को विस्तारपूर्वक समझाते हुये, अधानासियस

किरचर ने उपरोक्त द्रोणियों को अध्ययन की क्षेत्रीय ईकाइयाँ मानकर पृथ्वी के ग्लोब का प्रादेशिक वर्णन लिखने की आवश्यकता पर बल दिया था। परन्तु उस समय इस विचार पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया था अठारहवीं शताब्दी के मध्य में इस विचार का पुनर्जागरण हुआ।

5.6.1बुइशिंग—1754 से 92 ई० के बीच 11 खण्डों में प्रकाशित बुइशिंग ने अपनी पुस्तक न्यू डिसिक्रिप्टशन ऑफ द अर्थमें सभी स्रोतों से एकत्र भौगोलिक तथ्यों को प्रस्तुत किया। इसका उद्देश्य अर्थात 'ज्ञात भूतल का विवरण प्रस्तुतकरना' था। इसमें राजनीतिक ईकाइयों के आधार पर हर प्रकार के आँकड़ों एवं सूचनाओं का संग्रह था। इसमें वस्तुतः यूरोप का विशद वर्णन उसी प्रकार से किया गया था जैसे पुनर्जागरण काल में म्यून्स्टर ने किया था। तथापि,जेम्स के अनुसार, बुइशिंग ने दो नयी संकल्पनाओं का उपयोग किया।

1—जनसंख्या घनत्व को एक भौगोलिक तत्त्व के रूप में देखना तथा

2— जल परिवहन के माध्यम से किसी क्षेत्र के लोगों का स्थानीय संसाधनों पर निर्भरताकम करना। पहली बार दूसरी संकल्पना द्वारा विभिन्न देशों के मध्य आर्थिक परस्पर निर्भरता की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया था। ध्यान देने की बात है कि इसी समय ग्रेटब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति का सूत्रपात हुआ था।

5.6.2 बुआख—: बुईशिंग के समकालीन फ्रेंच विद्वान बुआख ने यह संकल्पना प्रस्तुत की, कि पृथ्वी कई नैसर्गिक बेसिनो में विभक्त है। प्रत्येक बेसिन अपने चतुर्दिक सीमा पर स्थित पर्वत श्रोणियों द्वारा पड़ोसी बेसिनों से विलग हैं। इन्होंने तीन प्रकार की पर्वत श्रेणियां बतायीं।

(क) सर्वोच्च पर्वत, जिनका विस्तार पूरब—पश्चिम अथवा उत्तर—दक्षिण मिलता है।

(ख) मध्यम वर्ग की श्रोणियां, जो प्रथम वर्ग की श्रेणियों की शाखायें हैं। ये मुख्य नदी बेसिनों को एक दूसरे से पृथक करती हैं, तथा

(ग) निम्न श्रेणियाँ जो मध्यम ऊंचाई की श्रेणियों की शाखायें हैं तथा जिनसे छोटी नदियाँ निकलती हैं। इसी प्रकार इन्होंने समुद्रों को भी जल के भीतर पायी जाने वाली श्रेणियों द्वारा बेसिनों में विभक्त माना। परन्तु बुआख की यह अवधारणा भ्रामक तथा सिर्फ यूरोप के ज्ञान पर आधारित थी। उन्होंने इस बात की ओर कोई ध्यान नहीं दिया कि एक नदी बेसिन कई पर्वत श्रेणियों के आर—पार भी पायी जाती है। तथापि बुआख की इस अवधारणा का प्रभाव दीर्घकाल तक बना रहा।

5.6.3 गेटेरर —गेटेरर ने इसी संकल्पना का उपयोग करते हुए 1775 ई० में प्रकाशित अपनी पुस्तक में नदी बेसिनों के आधार पर विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया। परन्तु वे राजनीतिकईकाइयों को पूर्णतः त्याग नहीं सके। गेटेरर ने भूगोल को निम्नवत परिभाषित किया। भूगोल, पृथ्वी कावर्णन है जो इस बात पर ध्यान देता है कि भूतल का स्वरूप कैसा है तथा मनुष्य ने इसे कैसे परिवर्तित किया है। इसके अन्तर्गत ब्रह्माण्ड एवं पृथ्वी का अलग—अलग तथा इनके परस्पर प्रभावों का वर्णन किया जाता है। गेटेरर ने मानव निवास्य के रूप में पृथ्वी के ऐतिहासिक एवं व्यवहारिक पक्षों के विवरण पर विशेष ध्यान दिया था।

5.6.4 होम्मेयर—होम्मेयर ने बुआख की संकल्पना का पूर्ण रूपेण उपयोग करते हुए पृथ्वी के प्राकृतिक विभाजन पर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने इस बात पर बल दिया, कि राजनीतिक इकाईयाँ ऐतिहासिक घटनाओं के परिणाम हैं एवं परिवर्तनशील है, जबकि प्राकृतिक विभाग स्थाई एवं अपरिवर्तनीय हैं। इन्होंने प्राकृतिक प्रदेशों का एक पदानुक्रम भी प्रस्तुत किया। इस पदानुक्रम में सबसे निम्न स्तर पर स्थल उसके उपर, इलाका, उसके उपर प्रदेश तथा।बसे ऊपर एक प्राकृतिक विभाग आता है। इनमेंउन्होंने कोई स्पष्ट विभाजक रेखा या परिधि नहीं बतायी वरन् एक सापेक्षिक पैमाने की भिन्नता को आधार माना। स्थल का विस्तार सबसे कम है जो धरातल पर खड़े होकर देखने से क्षितिज के विस्तार तक सीमित है। अन्य विभाग क्रमशः ऊंचे स्थल पर खड़े होकर देखने से विस्तृत होते क्षितिज से सीमांकित होते हैं।

5.6.5 ज्यूने—इसी परम्परा में, ज्यूने जो बर्लिन में रीटर के पूर्ववर्ती प्राध्यापक थे, की पुस्तक है जिसका शीर्षक है अर्थात 'एक वैज्ञानिक भूविज्ञान का प्रयास इन्होंने भौगोलिक विवरण हेतु राजनीतिक ईकाइयों का पूर्ण परित्याग कर दिया तथा प्राकृतिक विभागों को आधार बनाया। प्राकृतिक विभागों के आधार पर भौगोलिक विवरण प्रस्तुत करने वाले विद्वानों को विशुद्ध भूगोल सम्प्रदाय के अन्तर्गत माना गया।जबकि बुइत्सिंग की भांति राजनीतिक इकाइयों के आधार पर विवरण प्रस्तुत करने वालों को राजनीतिक—सांख्यिकीय सम्प्रदाय कहा गया।

राजनीतिक–सांख्यिकीय सम्प्रदाय के भूगोलवेत्ताओं को अन्तिम कड़ी माल्टे ब्रन को माना जाता है। जिनकी पुस्तक1810 से 1829 के मध्य छः खण्डों में प्रकाशित हुई। इसका अंग्रेजी अनुवाद 'युनिवर्सल जाग्राफी' के नाम से हुआ। इसमें भूगोल का इतिहास, भौगोलिक संकल्पनाओं की रूपरेखा, प्रमुख प्राकृतिक स्वरूप, जन्तु एवं वनस्पति, के अतिरिक्त विश्व के वृहत भागों का भूगोल लिखा गया है। ब्रन ने पृथ्वी की उत्पत्ति से सम्बन्धित सिद्धान्तों की समीक्षा की है तथा विप्लववादी एवं एकरूपतावादी के मध्य विवाद का उल्लेख करते हुए प्राकृतिक भूगोल को विवरणात्मक स्तर पर ही बनाये रखना उचित माना। इन्होंने जलवायु द्वारा मानव की विशेषताओं के निर्धारित होने का सिद्धान्त अस्वीकार कर दिया।

ब्रन ने स्थल गोलार्द्ध की संकल्पना को मानते हुए पेरिस को स्थल गोलार्द्ध का केन्द्र माना। इनकी सम्पूर्ण पुस्तक प्राचीनकाल में स्ट्राबो की पद्धति का अनुसरण करती है। तथापि, डिकिन्सन शब्दों में 'अपनीप्रकट कमियों के बावजूद यह पुस्तक भौगोलिक विवरण के इतिहास में एक कीर्तिस्तम्भ है क्योंकि इसने वह कार्य पूरा किया जो इसी काल में रीटर पूरा नहीं कर सके अर्थात पृथ्वी के स्थल एवं लोगों का विवरण तथापि ब्रन की तुलना रीटर से करना असंगत है क्योंकि ब्रन की पुस्तक में किसी विशेष दार्शनिक दृष्टिकोण का सर्वथा अभाव है। ये पुरानी परम्परा के निर्वाहक थे जबकि रीटर ने एक सर्वथा नये दृष्टिकोण का सूत्रपात किया जिसका भूगोल में दूरगामी प्रभाव पड़ा।

5.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन में अठारहवीं शताब्दी के भूगोलवेत्ताओं के कार्य बड़े महत्वपूर्ण थे। राजनीतिक–सांख्यिकीय भूगोल और शुद्ध भूगोल में जो वादानुवाद उत्पन्न हुआ था, उससे नई विचार–धाराओं को प्रोत्साहन मिला था। फॉर्स्टर्स पिता–पुत्र ने भौगोलिक यात्राओं, अन्वेषणों और अनुसंधानों की परिपाटी चालू की तथा भौगोलिक वर्णनों के लिये साहित्यिक शैली को अपनाया। कान्ट ने भूगोल के अध्ययन क्षेत्र को परिभाषित करके स्पष्ट किया था। इस प्रकार अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक भूगोल एक स्वतन्त्र विज्ञान बन कर दृढ़ आधार पर खड़ा हो गया था।

5.8 स्व मूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

प्रश्न 1.शुद्ध भूगोल किस प्रकार की सीमा के प्रदेशों का अध्ययन था ?

(अ) राजनीतिक (ब) औद्योगिक

(स) प्राकृतिक (द) सांस्कृतिक

प्रश्न 2– बफन की प्रसिद्ध पुस्तक का नाम क्या है–

(अ) नैचुरल हिस्ट्री (ब) यूनिवर्सल जियोग्रैफी

(स) संक्षिप्त भूगोल (द)यूरोप का भूगोल

प्रश्न 3– किस विद्वान ने 1682 ई में संपूर्ण पृथ्वी का सही मानचित्र प्रस्तुत किया?

(अ) हैडले (ब) न्यूटन

(स) बेकन (द) कासिनी

प्रश्न 4– समरूपतावाद का सिद्धांत किस विद्वान ने प्रतिपादित किया था?

(अ) जॉन रे(ब) हटन(स) ,वुडवाड(द) स्टेनो

प्रश्न 5– वैज्ञानिक अन्वेषण युग में सबसे अधिक किस विद्वान ने अन्वेषण यात्राएं की–

(अ) फारस्टर(ब) गेटेरर(स) होम्मेयर(द) जेम्स रेनेल

उत्तरमाला–1.(अ) 2. (अ) 3. (द) 4. (ब) 5. (अ)

5.9 संदर्भ–ग्रंथ–सूची

- Ley, D.(1980)% Geography without man -A Humanistic Critique, Research Paper No.24 School Of Geography, Oxford University, Oxford
- Marsh, G.P. (1984)% ManAnd The Nature Or Physical Geography as Modified by HumanActions Harvard University Press, Cambridge
- Norton, W.(1984)% HistorialAnalysis in Geography, Longman , London
- Martin. (1951)% The necessity for determinism transaction institute of British geographers
- Paltt,R.S. (1957) %A review of regional geographyA.A.A G. Vol.47 pp 187-190
- % Field of study inAmerican geography, the development of theory and method explain by selections research Paper No. 61 department of Geography University of Chicago, Chicago
- Raza, M.(1979)% Is survey of research in geography ICSSR, New Delhi
- Peet, R. (1977) % The development of radical geography in United States radical Geography Maroufa Press, Chicago

5.10 अभ्यास प्रश्न(सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

प्रश्न 1– वैज्ञानिक भू अन्वेषण एवं ज्ञानोदय काल में भूगोल का संक्षिप्त वर्णन कीजिए?

प्रश्न 2– ज्ञानोदय काल में भौगोलिक यात्राओं तथा का वर्णन कीजिए?

प्रश्न 3– विशुद्ध भूगोल संप्रदाय या शुद्ध भूगोल क्या है विभिन्न विद्वानों का लिखिए?

प्रश्न 4 ज्ञानोदय काल में प्रगति के साथ भौगोलिक कृतियों का विस्तृत वर्णन कीजिए?

प्रश्न 5– ज्ञानोदय युग में भू मापन एवं सर्वेक्षण के विकास का अध्ययन कीजिए?

इकाई–6 भूगोल का दार्शनिक आधार कांट, आधुनिक भूगोल का जर्मन संप्रदाय– हंबोल्ट एवं रिटर की कृतियां एवं संकल्पनाएँ

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 भूगोल के दार्शनिक आधार का शिलान्यास – कान्ट

6.4 आधुनिक भूगोल का प्रारंभ

6.5 जर्मन में भौगोलिक चिंतन का विकास एवं योगदान

6.6 अलेक्जेंडर वॉन हंबोल्ट

6.7 कार्ल रिटर

6.8 हंबोल्ट तथा कार्ल रिटर का तुलनात्मक अध्ययन

6.9 सारांश

6.10 स्व मूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

6.11 संदर्भ–ग्रंथ–सूची

6.12 अभ्यास प्रश्न सत्रांत परीक्षा की तैयारी

6.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत अध्ययन में भूगोल का अध्ययनजर्मन संप्रदाय की भूमिका को दर्शाया गया है जिसमें प्रसिद्ध दार्शनिक कान्ट विचारधाराओं और जर्मन के हंबोल्ट एवं कार्ल रिटर की कृतियों को दर्शाया गया है दोनों विद्वानों की तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर उनकी समानता और असमानता को भी दर्शाने का प्रयास किया गया है' वर्तमान वैज्ञानिक भूगोल का आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी में जर्मनी में हुआ था। अठारहवीं शताब्दी के भूगोलवेत्ताओं के अनुसन्धानों, लेखों और ग्रन्थों ने जो आधार तैयार किया था, उस पर वैज्ञानिक भूगोल की स्थापना हुई थी। पृथ्वीतल के सम्बन्ध में और पृथ्वी पर निवास करने वाले जीवधारियों के सम्बन्ध में बहुत–सी जानकारी प्राप्त हो चुकी थी। दोनों फार्स्टर्स के लेखों और ग्रन्थों में भौगोलिक अन्वेषण की विधि का निरूपण किया गया था। और कान्ट ने भूगोल के अध्ययन क्षेत्र का ढाँचा तैयार किया था। इस प्रकार भूगोल का ठोस आधार स्थापित हो चुका था, जिस पर 19वीं शताब्दी में भूगोल के भव्य भवन का निर्माण किया गया था।

भूगोल को विज्ञान के रूप में विकसित करने के महान् कार्य का श्रेय जर्मनी के तीन महान् भूगोलवेत्ताओं को है, जिनके शास्त्रीय भौगोलिक ग्रन्थ और लेख भूगोल के प्रकाश–स्तम्भ बन गये थे। उनके द्वारा जो भूगोल को वैज्ञानिक विषय का रूप दिया गया था, और भौगोलिक अन्वेषणों को विधियों प्रेक्षणों की सूक्ष्मता का, तथा अभिलेखों और वर्णनों की शुद्धता का जो उच्च स्तर उन्होंने स्थापित किया था, उनका अनुसरण करके बीसवीं शताब्दी के भूगोलवेत्ता इस विषय का अधिक विकास करते रहे हैं।

6.2 उद्देश्य

भूगोल का दर्शन दर्शन का उपक्षेत्र है जो भौगोलिक पद्धति के साथ सामान्य रूप से भौगोलिक पद्धति के साथ, और अधिक व्यापक रूप से संबंधित मुद्दों जैसे कि अंतरिक्ष और स्थान की धारणा और प्रतिनिधित्व के साथ भूगोल में ज्ञानमीमांसा, तत्वमीमांसा और स्वयंसिद्ध मुद्दों से संबंधित अध्ययन क्षेत्र के आधार पर भौतिक भूगोल की चार प्रमुख शाखाएं हैं– भू–आकृति विज्ञान (स्थलमंडल), जलवायु विज्ञान (वायुमंडल), समुद्र विज्ञान (जलमंडल), और जीव भूगोल (जीव मंडल भूगोल के तीन दर्शन तत्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा और स्वयं सिद्ध को जानना हैं।भूगोल के दो प्रधान अंग है : श्रृंखलाबद्ध भूगोल तथा प्रादेशिक भूगोल। पृथ्वी के किसी स्थानविशेष पर श्रृंखलाबद्ध भूगोल

की शाखाओं के समन्वय को केंद्रित करने का प्रतिफल प्रादेशिक भूगोल है।

6.3 भूगोल के दार्शनिक आधार का शिलान्यास कान्ट

इस युगकी तीसरी बड़ी उपलब्धि यह थी कि भूगोल को एक स्वतंत्र,सार्थक अध्ययन विषय के रूप में मान्यता मिली। अब तक भूगोल को,मात्र उपयोगी आंकड़े,एवं सूचनाओं का स्रोत माना जाता था। इसके पूर्व भूगोल द्वारा प्राप्त तथ्यों को, ऐतिहासिक अध्ययन में, सहायक समझा जाता था। एक स्वतंत्र विषय के रूप में इसकी कोई मान्यता नहीं थी ऊपर वर्णित कुछ विवरणात्मक भौगोलिक पुस्तकों के प्रकाशन के अतिरिक्त, सनी कांत के कोईनिग्सवर्ग विश्वविद्यालय 1356 से 1796 के मध्य प्राकृतिक भूगोल पर दिए गए भाषणों से भूगोल को एक सार्थक,स्वतंत्र विषय के रूप में मान्यता मिली। कान्ट एक दार्शनिक थे। वे पराभौतिक शास्त्र तथा तर्क शास्त्र भी पढ़ाते थे। परन्तु उन्होंने भौतिक भूगोल पर भी ब्याख्यान दिये। उस समय भौतिक, भूगोल के अन्तर्गत पृथ्वी के प्राकृतिक स्वरूप के साथ–साथ मानव प्रजाति एवं मानव के कार्यों द्वारा उत्पन्न पृथ्वी तल पर परिवर्तन को भी शामिल किया जाता था। कान्ट ने तार्किक ढंग से सम्पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति में भूगोल की भूमिका पर प्रकाश डाला।

कान्ट के अनुसार ज्ञान दो प्रकार से प्राप्त होता है

(1) विशुद्ध तर्क द्वारा तथा

(2) इन्द्रियों के माध्यम से प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा।

इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव या तो आन्तरिक इन्द्रियों से प्राप्त होता है या बाह्य इन्द्रियों से। वाह्य इन्द्रियों से प्रकृतिका ज्ञान होता है जबकि आन्तरिक इन्द्रियों से आत्मा का। प्रकृति के बारे में प्राप्त ज्ञान ही प्राकृतिक भूगोल है। प्रत्येक व्यक्ति चूंकि हर काल अथवा हर स्थान का स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता, अतएव उसे दूसरों द्वारा प्राप्त अनुभवों पर निर्भर होना पड़ता है। प्रकृति के विषय में वाह्य ज्ञान को तीन प्रकार व्यवस्थित जैसे उच्चावच, जलवायु, प्रत्यक्ष पर निर्भर होना पड़ता है। प्रकृति के विषय में बाह्य ज्ञान को तीन प्रकार व्यवस्थित किया जा सकता है। (क) एक प्रकार के तत्त्वों जैसे उच्चावच, जलवायु, वनस्पति, मानव का एक समय क्रमशः अध्ययन करके (ख) प्रकृति में मिलने बाले प्रत्येक तत्त्व का एक काल खण्डमें एक साथ अध्ययन करके तथा (ग) प्रकृति में पाये जाने वाले सभी तत्त्वों का एक एक स्थान अथवा क्षेत्र में अध्ययन करके। प्रथम विधि संकल्पनात्मक है जिसके सहारे विभिन्न क्रमवद्ध विषय जैसे भौतिक शास्त्र, वनस्पति शास्त्र, जलवायु विज्ञान, मानव शास्त्र आदि का विषयवस्तु प्राप्त होता है। दूसरे प्रकार का ज्ञान इतिहास का विषय वस्तु है तथा तीसरे प्रकार का अध्ययन भूगोल का विषय वस्तु है। सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए तीनों प्रकार के ज्ञान अनिवार्य हैं। किसी एक प्रकार से उपलब्ध ज्ञान अधूरा एवं अपूर्ण होगा। विभिन्न तत्त्वों के मात्र संकल्पनात्मक वर्गीकरण द्वारा अध्ययन करने से भ्रांतियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, यदि मात्र प्राकृतिक गुण–धर्म के आधार पर देखा जाय तो मगरमच्छ एवं छिपकली एक ही कोटि के जीव हैं। उनमें सिर्फ आकार का फर्क है। परन्तु मगरमच्छ एवं छिपकली को सर्वथा सामान मानना वास्तविकता को नकारना होगा। मगरमच्छ जल में अन्य जल के अन्दर निवास करने वाले जीवों के साथ रहता है जबकि छिपकली का निवास्य स्थल है। अतएव विना भौगोलिक दृष्टिकोण से अध्ययन किये मगरमच्छ एवं छिपकली का ज्ञान अपूर्ण रहेगा। चूंकि प्रत्येक तत्व विभिन्न कालावधियों में एक सा नहीं रहता अतएवं ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अध्ययन किये बिना भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं होता। स्पष्ट है कि किसी तत्व की सम्पूर्ण जानकारी तमी प्राप्त होगी जब उसके तीनों पक्षों पर ध्यान दिया जाय अर्थात (1) उसकी स्वाभाविक प्रकृति (2) उसका क्षेत्रीय परिवेश एवं (3) कालक्रमिक विकास। दूसरा पक्ष ही भूगोल का विषय वस्तु है।

कान्ट ने भूगोल को कई खण्डों में विभक्त किया।

(1) प्राकृतिक भूगोल : जिसके अन्तर्गत प्रकृति की सामान्य रूपरेखा का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

(2) गणितीय भूगोल : में पृथ्वी का सौरमण्डल में स्थान, इसका आकार विस्तार एवं इसकी गतियों पर ध्यान दिया जाता है।

(3) नैतिक भूगोल : जिसमें विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के आचरण, मूल्य रीति–रिवाज आदि का अध्ययन करते है।

(4) राजनीतिक भूगोल : में प्राकृतिक परिवेश एवं राजनीतिक ईकाइयों के सम्बन्ध पर ध्यान दिया जाता है।

(5) व्यापारिक भूगोल : में इसका विवेचन किया जाता है कि क्यों किसी देश में एक प्रकार की वस्तुओं की अधिकता होती है तो दूसरे देश में उसका अभाव रहता है और कैसे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार प्रारम्भ होता है।

(6) धार्मिक भूगोल : में इस तथ्य का विवेचन किया जाता है कि किस विभिन्न धार्मिक सिद्धान्तों में परिवर्तन हो जाता है। जैसे सुदूर पूर्व एवं यूरोप में ईसाई धर्म के स्वरूप में भिन्नता क्यों और कैसे उत्पन्न हो जाती है।

कान्ट अपने समय का महान दार्शनिक, विचारक तथा भूगोलविद था। मूल रूप से वह दार्शनिक था किन्तु अपने दार्शनिक दृष्टिकोण को व्यक्त करते समय भूगोल पर पर्याप्त लिखा। इसी के साथ तत्कालीन भौगोलिक चिन्तन को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया। कान्ट का जन्म पूर्वी एशिया के कोगिंसबर्ग में 22 अप्रैल सन् 1724 को हुआ था। उसकी शिक्षा लैटिन भाषा के माध्यम से हुई। सन् 1740 में उच्च शिक्षा के लिए कोगिंसबर्ग विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। सर्वप्रथम उसने धर्मशाखा में शिक्षा प्राप्त किया। उसके पश्चात् कान्ट ने दर्शन, गणित, भौतिकी एवं इतिहास में भी शिक्षा प्राप्त किया। सन् 1746 से 1755 तक उसने गृह–शिक्षक का कार्य किया। इसके उपरान्त अपना अध्ययन जारी रखते हुए कान्ट नेपर शोध प्रस्तुत किया जिसके उपरान्त उसकी नियुक्ति कोसिंगबर्ग विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के व्याख्याता के पद पर 34 वर्ष की आयु में हुई। उसने दर्शन शास्त्र पर अध्यापन करते समय अन्य विषयों पर व्याख्यान देना प्रारम्भ किया। यह सन् 1765 से विश्वविद्यालय के ग्रीष्मावकाश काल में भूगोल पर निरन्तर 30 वर्षों तक व्याख्यान देता रहा। इसकी यह भाषणमाला सन् 1795 के बाद प्रकाशित हुई। इस प्रकार कान्टभूगोल के अध्यापक न होते हुए भी अपनी रुचि से भूगोलविदू बने। उनके भूगोल विषय पर विज्ञान, इतिहास एवं दर्शन की छाप दिखाई देती है।

भूगोल में योगदान–कान्ट मूल रूप से दार्शनिक था किन्तु उसने भूगोल के क्षेत्र में पर्यात कार्य किया। उसने भौगोलिक चिन्तन को भी प्रभावित किया। कान्ट की रुचि मुख्यतः परिस्थिक भूगोल में थी। वह उन विद्वानों में एक था जिसे विश्वास था कि मानव समाज के विकास में भूगोल की एक महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। भौतिक भूगोल में उसकी रुचि मुख्यतः आनुभविक ज्ञान के समस्त क्षेत्र के दार्शनिक अनुसंधान के माध्यम से उत्पन्न हुई। वास्तव में एक दार्शनिक तथा विचारक के रूप में वह एक सैद्धान्तिक भूगोलविद् था जो बिना क्षेत्र अध्ययन किये आनुभविक तथ्यों को वर्गीकृत करने का प्रयास किया। कान्ट ने अपने दर्शन एवं चिन्तन के आधार पर ज्ञान प्राप्त करने के दो स्त्रोत बताया। प्रथम साधन शुद्ध विवेक या तर्कों के आधार पर और द्वित्तीय साधन इद्रियों या चेतना के आधार पर होता है। चेतना के आधार पर ज्ञान भी दो प्रकार का होता है––प्रथम, आन्तरिक चेतन तथा द्रित्तीय, बाह्य चेतन से प्राप्त होता है। इस प्रकार आन्तरिक चेतन का सम्बन्ध मानव से और बाह्य चेतन का सम्बन्ध प्रकृति से होता है। यही दोनों तथ्य मिलकर भौगोलिक पर्यावरण का निर्माण करते हैं। काण्ट के अनुसार भूगोल की दृश्य एवं स्पष्ट शाखाओं का सम्बन्ध भौतिक भूगोल से है। ये सब प्रकृति के अंग होते हैं। भूगोल का दूसरा महत्वपूर्ण अंग मानव होता है जिस पर काण्ट ने संक्षेप में वर्णन कर दिया है। भूगोल में यह अंग भी महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इसी आधार पर मानव शास्त्रीय मूगोल, मानव भूगोल तथा मानव पारिस्थितिकी का विकास हुआ है।

आनुभविक तत्वों के क्रमबद्ध अध्ययन करने हेतु उनके समूहीकरण या विभाजन करने के लिए काण्ट ने दो पद्धतियों को बताया है। तथ्यों का वर्गीकरण या तो प्रकृति के अनुसार किया जा सकता है अथवा काल एवं स्थान में स्थिति के अनुसार किया जा सकता है। उसका पहला वर्गीकरण तार्किक है जबकि दूसरा वर्गीकरण भौतिक है। तार्किक वर्गीकरण, वस्तुतः क्रमबद्ध भूगोल के लिए आधार प्रस्तुत करता है जैसे प्राणिविज्ञान में प्राणियों का अध्ययन, वनस्पति शाखा में पादपों का अध्ययन, भौमिकी में शैलों का अध्ययन तथा समाजशाखा में सामाजिक, सांस्कृतिक तथा मानवीय समूहों का अध्ययन किया जाता है। प्रकृति के अनुसार किया गया वर्गीकरण भौतिक (प्राकृतिक) वर्गीकरण होता है जो इतिहास तथा भूगोल के लिए आधार प्रस्तुत करता है। इस प्रकार इसके अन्तर्गत प्राकृतिक घटनाओं अर्थात् भौगोलिक विवेचनों एवं वर्गीकरण द्वारा प्राकृतिक घटनाओं का वर्णन महत्वपूर्ण होता है। इतिहास में उन तथ्यों का अध्ययन किया जाता है जो समय में एक के बाद एक घटित होते रहते हैं। इसे कालानुक्रमिक विज्ञानकहते हैं जबकि भूगोल में उन तथ्यों का अध्ययन किया जाता है जो स्थानके संदर्भ में पास–पास पायी जाती हैं। इसे जीवभूविस्तारी विज्ञानकहा जाता है। इतिहास तथा भूगोल, दोनों ही मौलिकविज्ञान हैं जो क्रमबद्ध विज्ञानों के समीप हैं। इनके अभाव में मानव विश्व का सम्पूर्ण ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। इसी प्रकार भौगोलिक व्याख्या को समझने के लिए समय यह काल का विशेष महत्व होता है क्योंकि स्थलरूप के विकास का विश्लेषण समय या काल के संदर्भ के अभाव में अधूरा रहता है।

कांट ने भौगोलिक यात्राएं नहीं किया था जिसके कारण उन्हें "आराम कुर्सी वाला दार्शनिक भूगोलवेत्ता'के रूप में

जाना जाता है। कांट की अभिरुचि मुख्यतः भौतिक भूगोल में थी जिसके अन्तर्गत उन्होंने मानव प्रजातियों , पृथ्वी पर भौतिक क्रियाओं तथा प्राकृतिक अवस्थाओं को समाहित किया था। वे एक सैद्धान्तिक भूगोलवेत्ता थे जिन्होंने आनुभविक तथ्यों को वर्गीकृत करने का उल्लेखनीय प्रयास किया था। कांट के विचार से भूगोल विज्ञान की तुलना में एक वर्णनात्मक या वर्गीकृत विषय हैं। उन्होंने इसके लिए कॉस्मोग्राफीशब्द का प्रयोग किया था जिसका अर्थ है वर्णनात्मक भूगोल। उन्होंने इतिहास और भूगोल की तुलना करते हुए कहा था कि भूगोल सभी समय में रहा है और यह इतिहास का आधार है। भूगोल इतिहास की घटनाओं के विश्लेषण में सहायता प्रदान करता है। उनके अनुसार इतिहास और भूगोल दोनों संगठित विज्ञान हैं जिनके द्वारा विश्व का अध्ययन किया जाता है। इसीलिए इन दोनों के मध्य व्यापक पारस्परिक सम्बंध पाया जाता है। कांट के अनुसार विश्व के ज्ञान का प्रथम चरण भौतिक भूगोल है जो विश्व के सम्बंध में हमारे बोधों या अवगमोंको समझाने के लिए अनिवार्य है। भौतिक भूगोल ही एक विषय है जो प्रकृति की एक सामान्य रूपरेखा प्रस्तुत करता है। यह इतिहास ही नहीं बल्कि अन्य सभी प्रकार के भूगोल का भी आधार है। भूगोल की अन्य शाखाओं का मूलाधार भौतिक भूगोल ही है। कांट ने भूगोल को एक दार्शनिक विचारधारा प्रदान करते हुए उसके अध्ययन क्षेत्र को स्पष्ट करने का प्रयास किया था। उनके अनुसार भूगोल में पृथ्वी का अध्ययन मानव गृह (0६३ 0 पाक) के रूप में किया जाता है। कांट के भौतिक भूगोल के अन्तर्गत खगोलिकीय भूगोल, गणितीय भूगोल, पादप भूगोल, जन्तु भूगोल, राजनीतिक भूगोल आदि सम्मिलित थे।

ज्ञान के संबंध में कांट ने बताया है कि ज्ञान या तो शुद्ध तर्क के प्रयोग द्वारा अथवा अनुभूतियों द्वारा प्राप्त किया जाता है। प्रत्यक्ष ज्ञान दो प्रकार का होता है– प्रथम,वह ज्ञान होता है द्वारा समझा जाता है जबकि द्वितीय, बाह्य अनुभूति से समझा जाने वाला ज्ञान होता है और साथ–साथ मानव के समस्त आनुभविक ज्ञान को विश्व में प्रस्तुत करता है। विश्व को जिस प्रकार से आन्तरिक अनुभूति से समझा जाता है, उसे आत्मा कहते हैं अथवा मानव, स्वयं को प्रकृति में बाह्य अनुभूति द्वारा निरीक्षित किया जाता है। काण्ट के अनुसार मानव विज्ञान में मानव की आत्मा का अध्ययन किया जाता है जबकि भौतिक भूगोल में प्रकृति का अध्ययन किया जाता हैं। इस प्रकार भौतिक भूगोल विश्व के ज्ञान का प्रथम भाग है। चूँकि प्रत्येक व्यक्ति का समय एवं स्थान के संदर्भ में सीमित अनुभव होता है, अतएव प्रत्येक काल को अपने अनुभव को दूसरे के अनुभवों से सीखना चाहिए। इस सम्बन्ध में जो कुछ भी प्रेक्षण किया गया है, उसकी विश्वसनीयता का सदैव ध्यानपूर्वक परीक्षण करना चाहिए। इस प्रकार ग्रहीत अप्रत्यक्ष अनुभव दो प्रकार का होता है। यह या तो विवरणात्मक (राशी) होता है या वर्णनात्मक होता है। प्रथम प्रकार के अनुभव को इतिहास कहा जाता है जबकि दूसरे को भूगोल कहा जाता है। आनुभविक ज्ञान को भी समय एवं स्थान में वर्गीकृत किया जाता है। स्थान के संदर्भ में तथ्यों का अध्ययन भूगोल है और समय के सन्दर्भ में किया गया अध्ययन इतिहास है। इस सम्बन्ध में कान्ट ने बताया कि भूगोल केवल समय एवं स्थान के दृष्टिकोण से इतिहास से अलग है। इतिहास तथ्यों का एक विवरण होता है जो एक–दूसरे तथ्यों का अनुसरण करते हैं तथा इनका सम्बन्ध समय के संदर्भ में होता है। भूगोल में स्थान क संदर्भ में एक–दूसरे के अतिरिक्त तथ्यों का विवरण प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार इतिहास आख्यान होता हैं जबकि भूगोल विवरणात्मक होता है।

इतिहास और भूगोल के सम्बन्धों की व्याख्या करते हुए काण्ट ने यह प्रश्न भी प्रस्तुत किया था कि भूगोल और इतिहास में पहले कौन है? इसका समाधान करते हुए बताया कि भूगोल सभी समय रहा है और इतिहास का आधार है। इस प्रकार यदि इतिहास प्राचीन है तो उसके साथ भूगोल भी प्राचीन है जो इतिहास की घटनाओं की सुस्पष्ट व्याख्या करने में सहायता करता है। भौतिक भूगोल प्रकृति की रूपरेखा होती है जो न केवल इतिहास का आधार होती है वरन् सभी प्रकार के सम्भव भूगोल का भी आधार है।

मानव–पर्यावरण सम्बन्ध–यद्यपि काण्ट ने भौतिक भूगोल के बारे में ही व्याख्या करने का प्रयास किया है. किन्तु वह प्रथम व्यक्ति था जिसने भौतिक भूगोल के क्रमबद्ध चिन्तन के साथ–साथ भूगोल में मानव तथा उसकी क्रियाओं को महत्वपूर्ण स्थान दिया। उसने मानवीय तथा प्राकृतिक घटनाओं की अन्तर्क्रियाओं को स्वीकार करते हुए भूतल पर परिवर्तन करने वाले कारकों में मानव को महत्वपूर्ण कारक बताया। वह प्रकृति की विविधता को – मानते हुए भौतिक भूगोल के साथ मानवीय क्रियाकलापों तथा उसके प्रभावों को उचित स्थान देकर भविष्य में रिटर के लिए मार्ग प्रशस्त किया। इस प्रकार उसका दृष्टिकोण मानव–केन्द्रित न होकर मानव–पर्यावरण सम्बन्धों की ओर ध्यान आकर्षित करने का प्रयास रहा। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि उसने भूगोल के अन्तर्गत प्राकृतिक वर्णम के साथ–साथ मानवीय अध्ययन को भी इस विज्ञान के चिन्तन के विकास में महत्वपूर्ण स्थान दिया। काण्ट के अनुसार भूगोल, विज्ञान की तुंलना में एक वर्णनात्मक अथवा वर्गीकृत विषय है। काण्ट ने क्षेत्रवर्गी शब्दका प्रयोग

किया है जिसका अर्थ वर्णनात्मक भूगोल होता है। हेटनर द्वारा इसे जीव–भू–विस्तार में परिवर्तित कर दिया गया जो स्पष्ट करता है कि वर्णन की व्याख्या महत्वपूर्ण होती है। उनकी "अन्कनडिनगुन्ग'के अनुसार भूगोल की निम्न शाखायें हैं––

1. गणितीय भूगोल– भूगोल की इस महत्वपूर्ण शाखा में पृथ्वी का एक गोलाभ स्वरूप में अध्ययन किया जाता है जिसमें उसके आकार, विस्तार, पृथ्वी की गतियों और सौरमण्डल में उसका स्थिति का अध्ययन किया जाता है।

2. आचरण भूगोल – भूगोल की इस शाखा में मानव के रीति– रिवाजों, परम्पराओं और विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है। उदाहरण के लिए प्राच्य सभ्यता में पितृ हत्या अत्यधिक–क्रूर एवं भयानक कृत्य माना जाता है किन्तु इसके विपरीत लैपलैण्ड में एक घायल पिता, पुत्र से आशा करता है कि उसकी हत्या कर दे ताकि वह कष्ट से छुटकारा पा जाये।

3. राजनैतिक भूगोल– राजनैतिक भूगोल में राजनीतिक इकाइयों तथा उसके भौतिक आधार के बीच अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। उदाहरण के लिए प्राचीन परसियां में दो राजनैतिक इकाइयों का अस्तित्व था जिनके बीच आपसी स्वतन्त्रता का प्रश्न उठा जिसका समाधान करने के लिए दोनों को करमन मरुस्थल के आधार पर विभाजित किया गया। इसमें प्रादेशिक तथा राजनैतिक दोनों इकाइयों को सम्मिलित किया। काण्ट की इस विधि से आगे चलकर रिटर भी बहुत प्रभावित हुआ।

4. वाणिज्य भूगोल– भूगोल की इस शाखा में इस तथ्य का अध्ययन किया जाता है कि किसी देश में किसी वस्तु का उत्पादन क्यों अधिक होता है तथा अन्य कुछ देशों में कम होता है। ऐसी दशा में ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की स्थिति उत्पन्न होती है।

5. धर्म वैज्ञानिक भूगोल – भूगोल की इस शाखा में विभिन्न पर्यावरण में घटित होने वाली धार्मिक समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। उदाहरण के लिए पूर्वी देशों में रहने वाले ईसाइयों और यूरोपियन ईसाइयों के बीच उनके अन्तर का अध्ययन किया जाता है। काण्ट को भूगोल का प्रशंसक कहा जा सकता है जो भूगोल को शैक्षणिक मूल्य का वैज्ञानिक यंत्र बताया। उसने यह भी बताया कि भूगोल में मानव तथा विश्व के बारे में उपयोगी ज्ञान उपलब्ध होता है। यह प्रथम व्यक्ति था जिसने भूगोल को जीव–विस्तार के रूप में स्वीकार किया जाता है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि काण्ट ने अपने अध्यापन काल में भौतिक भूगोल पर ही व्याख्यान दिये थे किन्तु उन व्याख्यानों में गणितीय, वनस्पति, जन्तु एवं मानव भूगोल सम्बन्धी सामग्री भी थी। क्योंकि उसमें पेड़–पौधों, जन्तुओं तथा मानव वर्गों का विशेष रूप से वर्णन उपलब्ध होता है। यद्यपि उसके द्वारा दिये गये व्याख्यानों में मानव तथा वातावरण की पारस्परिक क्रियाओं का उल्लेख मिलता है, किन्तु उसने मानव भूगोल पर कोई विस्तारपूर्वक ग्रन्थ नहीं लिखा। इसी प्रकार प्रादेशिक भूगोल की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए भी उसने प्रादेशिक भूगोल पर कोई ग्रन्थ नहीं लिखा। फिर भी काण्ट ने भूगोल को दार्शनिक विचारधारा के अध्ययन के लिए विस्तृत रूपरेखा निर्धारित करने का प्रयास किया।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 18वीं शताब्दी के भूगोलवेत्ताओं का इस विषय के विकास में महान योगदान रहा। राजनैतिक–साँख्यिकीय भूगोल तथा शुद्ध भूगोल की दो विभिन्न विचारधाराओं ने भूगोल के लिए एक नई. विचारधारा की दिशा प्रदान की। यदि रीन हाल्ड फार्स्टर ने भौगोलिक यात्राओं एवं अनुसंधानों के आधार पर क्रियात्मक एवं वैज्ञानिक शैली अपनाते हुए भौगोलिक साहित्य में अपना महान योगदान दिया तो काण्ट महोदय ने भूगोल के अध्ययन क्षेत्र को परिभाषित करके स्पष्ट किया। इस प्रकार हम समझते हैं कि 18वीं शताब्दी के अन्त तक भूगोल का अस्तित्व एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में उभरकर सामने आ चुका था।

6.4 आधुनिक भूगोल का प्रारंभ

19वीं शताब्दी के प्रारंभ के साथ ही आधुनिक भूगोल का शुभारंभ भी हुआ। प्राचीन काल में पृथ्वी की आकृति, इसका अन्य ग्रहों से संबंध तथा विभिन्न स्थलों की अवस्थिति निर्धारित करने हेतु अक्षांश–देशांतर का निर्धारण ही भूगोल का विषय क्षेत्र रहा। पुनर्जागरण काल में क्लूवेरियसवेरेनियस ने पृथ्वी के विभिन्न भागों, विशेषकर यूरोप का, सामान्य विवरण भी विशेष भूगोल के अंतर्गत प्रस्तुत किए। अन्वेषण एवं ज्ञानोदय युग में महाद्वीपों के आंतरिक भागों तथा नई समुद्री मार्गो से पृथ्वी के उत्तरी छोरों (उत्तरी अमेरिका) दक्षिणी पूर्वी छोरों(ऑस्ट्रेलिया न्यूजीलैंड) प्रशांत महासागर के असंख्य द्वीपों तक पहुंचने के यात्रा विवरणों पर आधारित विवरण प्रयोगात्मक भूगोल, बुइसिंग,

बुआख, होम्मेयर, गेट्टेयर तथा ब्रन द्वारा प्रस्तुत किए गए। भूगोल का स्वरूप विवरणात्मक ही बना रहा। कांत ने भूगोल के संपूर्ण ज्ञान की अभिवृद्धि में अपूर्व एवं विशिष्ट योगदान के प्रति ध्यान आकृष्ट किया, परंतु भूगोल का, 18 वीं शताब्दी के अंत तक विवरणात्मक स्वरूप ही बना रहा। पहली बार 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में दो जर्मन विद्वानों एलेग्जेंडर वान हंबोल्ट तथा कार्ल रिटर– ने भूगोल को यह विवरणात्मक स्तर से उठाकर विश्लेषणात्मक आधार पर प्रतिष्ठित किया। इन दोनों विद्वानों ने अपने अपने विशिष्ट ढंग से भूगोल में किसी क्षेत्र विशेष अथवा होटल पर एक साथ पाए जाने वाले विभिन्न तत्व में अंतर संबंध का विश्लेषण करना भूगोल का कार्य बताया। इस प्रकार इन दोनों दार्शनिक विद्वानों ने भूगोल को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। कारण है कि हार्टशोर्न ने इस युग को भूगोल का 'क्लासिकल' का काल मानते हैं सामान्यतया ईसापूर्व के अरस्तु एवं प्लेटो आदि ग्रीक विद्वानों के काल को 'क्लासिकल' युग माना जाता है। हेटनर इस महान युग का प्रारंभ 1799 ई व मानते हैं क्योंकि इसी वर्ष हंबोल्ट ने अमेरिका की अन्वेषण यात्रा प्रारंभ की थी उनकी महान कृति आधार बनी। सुविधा हेतु इस युग का विस्तार 1800 से 1859 ई तक माना गया है। अवधि में हम्बोल्ट के महान कृति तथा रीटर के प्रसिद्ध ग्रंथ (भू विज्ञान) की रचना हुई।

6.5 जर्मनी में भौगोलिक चिन्तन का विकास एवं योगदान

भूगोल के विकास में जर्मनी के विद्वानों का महान योगदान है। अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में जर्मन विद्वानों ने भूगोल को ठोस आधार देने हेतु अथक प्रयास किया। इनके समय में जर्मनी में प्राचीन भाषाओं, धार्मिक शास्त्रों , विधि शास्त्रएवं तार्किक ज्ञान की शिक्षा प्रदान करना ही विश्वविद्यालयों का मुख्य उद्देश्य था। उन्नीसवीं सदी के मध्य में भौतिकी, जैविकीतथा सामाजिक विज्ञानों के पाठ्यक्रमों का मानकीकरण किया गया जिसके अन्तर्गत कई विषय पढ़ने का अवसर दिया गया। जर्मनी में प्रथम विश्वविद्यालय की स्थापना सन् 1809 ई0 में हुई। उन्नीसवीं सदी के अन्त तक विश्वविद्यालयों में भूगोल शिक्षण की व्यवस्था नहीं थी और भूगोल के अध्यापकों में भूगोल विषय की पृष्ठभूमि नहीं थी। जर्मनी के अधिकांश भूगोल प्राध्यापक कार्ल रिटर के छात्र थे जिनकी पृष्ठभूमि भी भूगोल नहीं वरन् अन्य विषयों जैसे इतिहास, गणित, भौतिकी, अभियांत्रिकी, आदि की पृष्ठभूमि से शिक्षित होकर आये थे। इस काल में अनेक भौगोलिक परिषदों की स्थापना भी हुई जिसका उद्देश्य पृथ्वी का ग्रह के रूप में अध्ययन, भौगोलिक साहित्य तथा सूचनायें प्रकाशित करना था। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में विश्व के भूगोलविदों ने भूगोल की परिभाषा देने का प्रयास किया। जर्मनी के विद्वानों ने भूगोल की कुछ महत्वपूर्ण अवधारणाओं का समर्थन तथा निरूपण किया। इन विद्वानों में हम्बोल्ट तथा रिटर को भूगोल का प्रयोग कहा गया। यद्यपि इन लोगों ने भूगोल के वर्तमान स्वरूप की कल्पना नहीं किया था किन्तु उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध में इन लोगों ने भौगोलिक चिन्तन पर पर्याप्त प्रकाश डाला। वर्लिन विश्वविद्यालय में नवस्थापित भूगोल विभाग का प्रथम विभागाध्यक्ष तथा प्रोफेसर बनने का सौभाग्य कार्ल रिटर को प्राप्त हुआ जहाँ उन्होंने सन् 1820 से 1859 तक कार्य किया। दोनों महान विचारकों के बाद अन्य विज्ञानों की भाँति भूगोल में भी विशिष्टीकरण तथा – विशष्ट पद्धतियों द्वारा किये अध्ययन को महत्व मिलने लगा। इसके कारण रैटजेल, रिचथोफेन, हेटनर, पेन्क जैसे विद्वानों का योगदान विशिष्ट क्षेत्रों में रहा। सन् 1870 से 1880 के बीच जर्मनी के अधिकांश विश्वविद्यालयों में भूगोल का उच्च अध्ययन प्रारम्भ हो गया जिसके साथ ही निम्न स्तर पर भूगोल का अध्ययन प्रारम्भ हो गया। आगे चलकर रिचथोफेन ने भूगोल की महत्वपूर्ण सेवा किया जिन्होंने क्षेत्र–विवरणी विज्ञान के आधार पर अध्ययन करने पर बल दिया। इस विचारधार को हेटनर ने आगे बढ़ाया। इसी आधार पर जर्मनी में लैण्डशाफ्ट तथा आंग्लभाषी देशों में लैण्डस्केप का चिन्तन प्रारम्भ हुआ।

प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व का काल जर्मनी में भौगोलिक चिन्तन के विकास का स्वर्णिम काल कहा जाता है। इसी समय भूगोल की सभी महत्वपूर्ण शाखाओं, प्रादेशिक चिन्तन, भूदृश्य संकल्पना, आदि का सही दिशा में विकास हुआ। लैण्डशाफ्ट संकल्पना के उपरान्त कालान्तर में क्षेत्रीय वैभिन्नता संकल्पना का विकास हुआ। हेटनर का कथन था कि पृथ्वी के धरातल पर विकसित विविधता और विभिन्न लक्षणों वाले प्रदेशों का विकास–आधार वैभिन्नतापूर्ण धरातल तथा वहाँ की मानव पृष्ठभूमि है जबकि स्ल्यूटर का कथन है कि किसी प्रदेश विशेष के भूदृ श्य वहाँ के प्राकृतिक कारकों की विशेषताओं तथा उनके अन्तर्सम्बन्धों के प्रतिफल होते हैं। भूराजनीति का अध्ययन भी उन्नीसवीं सदी में प्रारम्भ हुआ। इस विषय पर रेटजेल का विशेष योगदान था जिसने इस विषय पर दो खण्डों में विस्तृत ग्रंथ की रचना किया। सन् 1970 के दशक में मानव कल्याण के निमित्त पारितंत्रों के आधार पर अध्ययन प्रारम्भ किया गया। वर्तमान में सांख्यिकीय विधियों, वायुफोटो, दूरस्थ संवेदन, कम्प्यूटर प्रणाली, मानव आचरण आदि पर विशेष महत्व किया जा रहा है। यहां जर्मन सम्प्रदाय के प्रमुख भूगोलविदों हम्बोल्ट, रिटर के साथ ही

रिचथोफेन, रैटजेल, पैशेल, पेन्क तथा हेटनर के योगदानों की चर्चा की जायेगी।

6.6 अलेक्जेण्डर वॉन हम्बोल्ट (1769–1859)–

उन्नीसवीं शताब्दी के महान भूगोलवेत्ता अलेक्जेण्डर वॉन हम्बोल्ट एक युग परिवर्तक और सर्वतोन्पुखी प्रतिभा वाले विद्वान थे जिन्होंने भूगोल और उसकी विभिन्न शाखाओं में ही नहीं बल्कि अन्य अनेक विज्ञानों जैसे भूगर्भ विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, प्राणि विज्ञान, जलवायु विज्ञान आदि में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने लगभग 64000 किमी ० लम्बी खोज यात्राएं की थी और तथ्यों का सूक्ष्म निरीक्षण और पर्यवेक्षण किया था। उन्होंने अपने प्रेक्षणों द्वारा एकत्रित तथ्यों का युक्तिसंगत विश्लेषण किया और भूगोल को एक विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित किया। हम्बोल्ट अपने युग के अग्रणीय विचारक और शीर्षस्थ वैज्ञानिक थे। उन्होंने अपने मौलिक शोध कार्य द्वारा विज्ञान की अनेक शाखाओं को संवर्वित किया। हम्बोल्ट ने कई विज्ञानों में शिक्षा पायी थी और प्रारंभ में उनकी अभिरुचि प्राकृतिक विज्ञानों में अधिक थी किन्तु बाद में वे भौगोलिक चिन्तन की ओर प्रवृत्त हुए और भूगोल ही उनका मुख्य कार्यक्षेत्र बन गया। हम्बोल्ट ने अपने पूर्ववर्ती भूगोलवेत्ताओं वारेनियस, कांट आदि के योगदानों और भोगोलिक चिन्तन के क्रमिक विकास का भली प्रकार आकलन करने के उपरांत भौगोलिक अध्ययन को स्पष्ट दार्शनिक आधार और पूर्णता प्रदान किया। हम्बोल्ट के नेतृत्व में उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक भूगोल एक स्थानिक परिदृ ष्टि वाले एक समग्र विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठिन हो गया था।

प्रतिष्ठित शास्त्रीय भूगोल के प्रतिपादन में हंबोल्ट का व्यक्तित्व बहुत महान है। वह ऐसा प्रतिभाशाली और प्रज्ञा वान व्यक्ति था जिसने विज्ञान की अनेक शाखाओं के विकास में योगदान दिया। मनी में हम्बोल्ट की स्मृति को चिर स्मरणीय रखने के लिए हम पर कई वैज्ञानिक संस्थाएं स्थापित हैं, जिनमें भूगोल सहित अनेक विज्ञानों और तकनीकों में अन्वेषण किए जाते हैं। यह ख्याति के संस्थान हैं जिनमें संसार के विभिन्न राष्ट्रों के छटे हुए वैज्ञानिक रिसर्च करने और उच्च अध्ययन के लिए पश्चिम जर्मनी में आते हैं। अंतरराष्ट्रीय छात्रवृत्ति अभी अनुसंधानकर्ताओं को दी जाती हैं।

जीवन परिचय–हम्बोल्ट का जन्म जर्मनी में प्रशा के एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। हम्बोल्ट के पिता प्रशा को सेना में एक उच्च अधिकारी के रूप में कार्यरत थे। हम्बोल्ट की दस वर्ष की अवस्था में ही उनके पिता की मृत्यु हो गयी थी और हम्बोल्ट तथा उनके बड़े भाई का पालन–पोषण तथा शिक्षा उनकी माता के संरक्षण में हुई थी। उनकी प्रारंभिक शिक्षा निजी शिक्षकों द्वारा उनके गृह नगर टेगेल में हुई थी। 18 वर्ष की आयु में हम्बोल्ट ने फ्रेंकफर्टविश्वविद्यालय में प्रवेश लिया किन्तु छः महीने पश्चात् ही वहाँ से घर वापस आ गये क्योंकि उनकी माता उन्हें बर्लिन में कारखाना प्रबंधन की शिक्षा दिलाना चाहती थीं। अरुचि के कारण उन्होंने कुछ ही महीने में कारखाना प्रबंधन का अध्ययन भी छोड़ दिया और तदनन्तर दूसरे वर्ष (1789) गाटिंगन विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया जहाँ भौतिक विज्ञान, दर्शनशास्त्र और पुरातत्व विज्ञान का अध्ययन आरंभ किया। गाटिंगन में उनका सम्पर्क प्रसिद्ध वनस्पति विज्ञानी जार्ज फ्रार्स्टर से हुआ। फार्स्टर से प्रभावित होकर हम्बोल्ट की रुचि वनस्पतियों के अध्ययन में लगने लगी और उन्होंने वनस्पतियों के पारिस्थितिकीय अध्ययन को अपने चिंतन का मुख्य विषय बना लिया। गाटिंगन में अध्ययन की अवधि में हम्बोल्ट ने जार्ज फार्स्टर के साथ राइन नदी से होते हुए नीदरलैण्ड और वहाँ से जलमार्ग द्वारा इंग्लैण्ड की यात्रा किंया था। इस यात्रा से उनके जीवन में एक नया मोड़ आया और वे प्राकृतिक तत्वों के पारस्परिक सह–अस्तित्व और उनके प्राकृतिक पर्यावरण के संदर्भ में अध्ययन की ओर प्रवृत्त हुए।

हम्बोल्ट ने उच्च शिक्षा के लिए 1790 में हैम्बर्गके एक वाणिज्य महाविद्यालय में प्रवेश लिया जहाँ वाणिज्य, असर वनस्पति विज्ञान, खनिज विज्ञान और भूगोल उसके अध्ययन विषय थे। वाणिज्य महाविद्यालय में एक वर्ष शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् हम्बोल्ट ने खनिज विज्ञान की उच्च शिक्षा के लिए "फाइबर्ग अकेडमी आफ सांइस' में प्रवेश लिया। इस संस्था में उन्होंने प्रसिद्ध भूविज्ञानी वर्नर के निर्देशन में भूविज्ञान का अध्ययन किया। वहाँ उन्होंने खनिज विज्ञान के साथ–साथ प्राणि विज्ञान में भी रुचि बनाये रखा। उन्होंने खदानों में पायी जाने वाली वनस्पतियों पर वैज्ञानिक प्रयोग किया और उसके आधार पर लेटिन भाषा में एक पुस्तक (फ्लोराए फ्राइबर जेन्सिस) लिखा जिसमें खदानों के भीतर पायी जाने वाली वनस्पतियों के विश्लेषण के साथ ही पारिस्थितिकीय अध्ययन भी सम्मिलित था। हम्बोल्ट ने लैटिन में भूगोल के लिए "जिओग्नाजिया" शब्द का प्रयोग किया था जिसे जर्मन में "अर्डकुण्टे' और अंग्रेजी में 'ज्योग्राफी' कहा जाता है। इस पुस्तक की भूमिका में हम्बोल्ट ने लिखा है कि वनस्पतियों को भूगोल का अभिन्न अंग होना चाहिए। हम्बोल्ट की 'जिओग्नाजिया' नामक पुस्तक 1793 में प्रकाशित

हुई जिसने आधुनिक भूगोल अध्ययन के लिए एक माडल (नमूना) प्रस्तुत किया। 1794 में हम्बोल्ट अपने बड़े भाई के पास जेना गये जहाँ उनका सम्पर्क गेटे, शिलर, शेलिंग, फीस्ते आदि अनेक विचारकों से हुआ। ये विचारक वैज्ञानिक अध्ययन में प्रकृति की एकता और उसकी व्यापक समरसता की खोज के समर्थक थे। इनके विचारों से हम्बोल्ट बहुत प्रभावित हुए क्योंकि वे स्वयं भी प्राकृतिक जीवन की समरसता में विश्वास करते थे। इसी सेद्धान्तिक आधार पर उन्होंने वनस्पति भूगोल सम्बंधी शोधकार्य किया।

सन् 1797 ई0 में सरकारी नौकरी से त्यागपत्र देने के उपरान्त वह यात्रा करने के उद्देश्य से स्पेन चला गया। स्पेन सरकार से उसके सूदूर उपनिवेशों की यात्रा हेतु अनुमति पत्र प्राप्त करके दक्षिणी अमेरीका की यात्रा प्रारम्भ किया। इस यात्रा में उसके साथ प्रसिद्ध फ्रेंच वनस्पतिशास्त्री ए0 बोन्पलैण्ड भी था। इन दोनों ने दक्षिणी अमेरीका के उत्तरी भागों की दूर–दूर तक पूर्वी तट से पश्चिमी तट तक तथां अमेजन बेसिन से एण्डीज के शिखर तक यात्रा किया। अपनी यात्रा वेनेजुरला से प्रारम्भ करके लानोज के घास के मैदान तक गया। ओरिनीकों नदी की ऊपरी घाटी में नावों से यात्रा किया। वह उत्तरी एण्डीज की चोटियों एवं शिखरों पर पहुँचा। यहाँ से क्यूबा, मेक्सिको तथा मध्य अमेरीका भी गया। वनस्पति शास्त्री के साथ रहने के कारण उसकी रूचि भी वनस्पति शाखा में बढ़ती गई और अपने समय का योग्य 4 चनस्पतिशास्त्री हो गया। आज भी उष्ण कटिबन्धीय वनस्पति पर उसकी रचनायें प्रमाणिक मानी जाती हैं। हम्बोल्ट ने अपनी यात्राओं के दौरान 40 विविध प्रकार के यन्त्रों का उपयोग किया था जिनमें दूरवीक्षण यन्त्र, प्रेक्सटेण्ट, क्वाड़रेण्ट साइनोमीटर (आकाश की नीलिमा नापने वाला यंत्र), वायुदाब मापक यन्त्र आदि प्रमुख यन्त्र थे। जिन स्थानों का सर्वेक्षण उसके द्वारा किया गया, उनके अक्षांश तथा देशान्तर रेखाओं का भी निर्धारण किया गया। देशान्तरों का निर्धारण करने के लिए कालमापी (क्रोनोमीटर) का प्रयोग किया गया था। नई दुनियां की यात्रा समाप्त करके वह फ्रान्स लौटा। पेरिस में उसने 22 वर्ष बिताया जहाँ उसने की स्थापना किया। पेरिस में रहकर उसने एक पुस्तक "नई दुनिया की खोज" प्रकाशित कराया। यह पुस्तक भूगोल, भूविज्ञान, वनस्पतिशाख तथा मौसम विज्ञान के लिए बहुमूल्य निधि है। तीस वर्षों तक जर्मनी से बाहर रहने के पश्चात् रिटर के विशेष प्रयास तथा प्रशिया के शासक के निमंत्रण पर 1827 ई0 में पुनः जर्मनी लौटा जहाँ उसकी नियुक्ति मंत्रिस्तर के पद, राजा के सलाहकार पद. पर हुई। साठ वर्ष की आयु में रूस सरकार के निमंत्रण पर यूराल, प0० साइबेरिया एवं अल्टाई पर्वतीय प्रदेश में खनिज खोज का कार्य किया। रूस से लौटने के उपरान्त अपना प्रसिद्ध अंथ. कॉसमॉस लिखा। उसकी मृत्यु 1859 ई0 में हुई।हम्बोल्ट ने 1800 में ओरीनिको नदी की लगभग 2700 किमी ० बेसिन का सर्वेक्षण किया। इस यात्रा की अवधि में उन्होंने उष्ण कटिबंधीय वनों के पेड़ – पौधों तथा जीवाश्मों के नमूनों का भंडार एकत्रित कर लिया। नवम्बर , 1800 में हम्बोल्ट अपने सहयात्री बोनप्लांड के साथ कुमानावापस पहुँच गये और वहाँ से क्यूबा की यात्रा पर निकल पड़े। 1801 में वे दोनों कोलम्बिया के बन्दरगाह कार्तेजेना पहुँचे। कार्तेजेना से वे दोनों एण्डीज पर्वत श्रेणी के सर्वेक्षण के लिए खोज यात्रा आरंभ किया। वहाँ उन्होंने कोलम्बिया , इक्वेडोर और पेरू में एण्डीज पर्वत श्रृंखला का सर्वेक्षण किया। इस सर्वेक्षण द्वारा उन्होंने महत्वपूर्ण स्थानों के अक्षांश – देशांतर की माप किया और उनके तापमान एवं सागर तल से ऊँचाई आदि से सम्बंधित आंकड़े एकत्रित किया। पेरू के लीमा नगर पहुँच कर हम्बोल्ट ने समुद्र तट का सर्वेक्षण किया। उन्होंने पेरू के तट के समानांतर दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवाहित होने वाली ठण्डी धारा का पता लगाया जिसे पेः धारा या हम्बोल्ट धारा के नाम से जाना जाता है।

वह उत्तरी एण्डीज की चोटियों एवं शिखरों पर पहुँचा। यहाँ से क्यूबा, मेक्सिको तथा मध्य अमेरीका भी गया। मार्च 1803 में हम्बोल्ट गायाकिल (इक्वेडोर) से मैक्सिको के लिए प्रस्थान किया। मैक्सिको में लगभग एक वर्ष रहकर हम्बोल्ट ने मैक्सिको की प्राकृतिक दशा, अर्थव्यवस्था तथा जनसंख्या सम्बंधी प्रभूत आंकड़े एकत्रित किया जिसके आधार पर बाद में उन्होंने मैक्सिको के प्रादेशिक भूगोल पर एक लेख लिखा। 1804 में वे अपने सहयोगी वैज्ञानिक के साथ क्यूबा की राजधानी हवाना पहुँच गये। वहाँ से संयुक्त राज्य अमेरिका के फिलाडेल्फिया नगर होते हुए जून 1804 में बर्लिन (जर्मनी) के लिए प्रस्थान किया। 1806 में नैपोलियन से पराजित होने के पश्चात् जर्मनी का जनजीवन काफी आंदोलित था और वहाँ की परिस्थितियाँ अनुसंधान के लिए उपयुक्त नहीं थीं। अतः हम्बोल्ट 1807 में पेरिस (फ्रांस) चले गये और 19 वर्षों तक वहाँ रहकर उन्होंने फ्रांसीसी भाषा में नये महाद्वीप के भूमध्य रेखीय प्रदेशों की यात्रा शीर्षक से एक पुस्तक लिखी जो 30 अंकों में प्रकाशित हुई।

हम्बोल्ट की रचनाएं–

हम्बोल्ट ने 1789 से लेकर मृत्यु पर्यतं (1859) अनेक लेख संग्रह और पुस्तकें प्रकाशित किया था। उनका सबसे अंतिम और महत्वपूर्ण ग्रंथ कासमास है जिसके अंतिम खण्ड का प्रकाशन उनकी मृत्यु के पश्चात् 1862 में हुआ

था। हम्बोल्ट की प्रमुख रचनाएं निम्नांकित हैं

1. राइनलेण्ड बेसाल्ट यह हम्बोल्ट का शोध ग्रंथ है जिसका प्रकाशन 1789 में हुआ था। इसमें राइन बेसिन की शैलों और खनिजों की विशेषताओं का वर्णन है।
2. जिओग्नाजिया भूगोल के विषय क्षेत्र और अध्ययन पद्धति से सम्बंधित यह पुस्तक 1793 में प्रकाशित हुई थी।
3. नये महाद्वीप के भूमध्य रेखीय प्रदेश की यात्रा – फ्रांसीसी भाषा में लिखित यह पुस्तक 30 अंकों में 1815 से 1820 के मध्य प्रकाशित हुई। यह हम्बोल्ट की दक्षिणी अमेरिका की यात्रा पर आधारित थी।
4. मध्य एशियायह पुस्तक 1829 में दो खण्डों में प्रकाशित हुई थी।
5. मैक्सिको और क्यूबा का प्रादेशिक भूगोल– इसमें मैक्सिको तथा क्यूबा का हम्बोल्ट द्वारा किये गये पर्यवेक्षणों पर आधारित वर्णन है।
6. कॉसमॉसयह हम्बोल्ट की सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुस्तक है जो 1845 से 1862 के मध्य पाँच खण्डों में प्रकाशित हुई थी। इसमें समस्त विश्व का विस्तृत वर्णन है। इसके प्रथम खण्ड में ब्रह्माण्ड के स्वरूप का सामान्य वर्णन है। दूसरे खण्ड में प्रकृति के चित्रण और वर्णन में मानवीय प्रयासों के इतिहास की चर्चा है। तीसरे खण्ड में खगोल विज्ञान का वर्णन है। चौथे और पाँचवें खण्डों में पृथ्वी का मानव गृह के रूप में वर्णन है। इसमें पृथ्वी के भौतिक और जैविक नियमों के साथ ही मानव जीवन का वैज्ञानिक वर्णन भी सम्मिलित है।

हम्बोल्ट का विधितंत्र–

हम्बोल्ट की अध्ययन विधि या विधितंत्र का मूलाधार वैज्ञानिकता थी। वे कल्पना पर नहीं बल्कि प्रत्यक्ष दर्शन पर विश्वास करते थे। उनके विधितंत्र के प्रमुख पक्ष निम्नांकित हैं –

1. आनुभविक विधिइसके द्वारा तथ्यों के प्रेक्षण, परीक्षण, मापन आदि प्रायोगिक क्रियाओं द्वारा जानकारी प्राप्त की जाती है। हम्बोल्ट की अध्ययन पद्धति आनुभविक और आगमनात्मक थी।
2. क्रमबद्ध विधिइसके द्वारा तथ्यों का अध्ययन वर्गीकरण विधि सेविषयानुक्रम के अनुसार किया जाता है।
3. तुलनात्मक विधि इसके अन्तर्गत दृश्य घटनाओं या तथ्यों के वितरण प्रतिरूपों तथा प्रेक्षणों की तुलना करते हुए निष्कर्ष निकाला जाता है और सामान्यीकरण किया जाता है।
4. रेखाचित्रीय विधि इसके अनुसार तथ्यों के वितरण प्रतिरूपों को अधिक स्पष्ट करने के लिए मानचित्रों और आरेखों का प्रयोग किया जाता है।
5. सूक्ष्मता और परि शुद्धता इसमें प्रक्षेण की सूक्ष्मता और यथार्थता पर विशेष ध्यान दिया जाता है और तथ्यों की माप सूक्ष्म ढंग से की जाती है।
6. रेखाचित्रीय विधि इसके अनुसार तथ्यों के वितरण प्रतिरूपों को अधिक स्पष्ट करने के लिए मानचित्रों और आरेखों का प्रयोग किया जाता है।
7. सूक्ष्मता और परिशुद्धता इसमें प्रक्षेण की सूक्ष्मता और यथार्थता पर विशेष ध्यान दिया जाता है और तथ्यों की माप सूक्ष्म ढंग से की जाती है।

हम्बोल्ट अन्वेष्ण की आनुभविक विधि पर बल देते थे और काल्पनिक या अनुमानों पर आधारित तथ्यों एवं विचारों पर विश्वास नहीं करते थे। उन्होंने अध्ययन और वर्णन की क्रमबद्ध विधि को अपनाया था। कॉसमॉस में क्रमबद्ध विधि को ही अपनाया गया है। हम्बोल्ट तथ्यों और प्रदेशों की तुलना करते हुए किसी प्रदेश की विशेषताओं को समझाने का प्रयास करते थे। उनके निबन्धों में तुलनात्मक विधि को अपनाया गया है और उनमें तुलनाओं की बहुलता पायी जाती है। जटिल तथ्यों या वितरणों को समझाने के लिए वे मानचित्रों और आरेखों का भी सहारा लेते थे। हम्बोल्ट के अध्ययन विधि की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे पर्यवेक्षणों या मापों की शुद्धता पर बहुत ध्यान देते थे। हम्बोल्ट उन अग्रणीय वैज्ञानिकों में से एक थे जिन्होंने प्रथम बार कालमापीका प्रयोग करके स्थान–स्थान की देशांतरों को निश्चित किया था। एण्डीज पर्वत पर ऊँचाइयों की माप के लिए उन्होंने वायुदाबमापी का प्रयोग किया था। इस प्रकार वे अपने समय तक ज्ञात तकनीकों का प्रयोग अपने सर्वेक्षणों में करते थे और सूक्ष्मता तथा परिशुद्धता पर अधिक बल देते थे। हम्बोल्ट ने अपनी खोजयात्राओं के दौरान विभिन्न

स्थानों के तापमान, वायुदाब, पवनों की दिशा, अक्षांश और देशांतर, समुद्रतल से ऊँचाई, चुम्बकीय भिन्नता, शैलों की भिन्नता, वानस्पतिक प्रकारों आदि के निर्धारण में उच्च स्तरीय सूक्ष्मता और शुद्धता का परिपालन किया था। यही कारण था कि हम्बोल्ट की पर्यवेक्षण एवं वर्णन विधि भावी अन्वेषकों के लिए प्रेरणा–स्रोत और मार्गदर्शिका बन गयी थी।

हम्बोल्ट की भौगोलिक संकल्पनाएं–

हम्बोल्ट ने एक वैज्ञानिक विषय के रूप में भूगोल को संस्थापित करने का अति महत्वपूर्ण और अग्रणीय कार्य किया था। उन्होंने भूगोल की कई संकल्पनाओं को प्रतिपादित किया था जो निम्नांकित हैं।

(1) मानव गृह के रूप में भूतल भौगोलिक चिन्तन का इतिहास

हम्बोल्ट का विचार था कि भूगोल में पृथ्वी के तल (भूतल) का अध्ययन मानव गृह के रूप में किया जाता है। हम पृथ्वी का अध्ययन इसलिए करते हैं क्योंकि वहाँ मनुष्यों का निवास है। हम्बोल्ट की यह संकल्पना तब से आज तक मान्य रही है। मानव गृह के रूप में पृथ्वी तल का अर्थ पृथ्वी के उस भू–भाग से है जिस पर मानव का निवास है और जहाँ मानव क्रियाएं होती रहती हैं।

(2) स्थानिक वितरणों का विज्ञान

हम्बोल्ट भूगोल को विश्व के स्थानिक वितरणों (क्षेत्रीय वितरणों) का विज्ञान मानते थे। परवर्ती भूगोलवेत्ताओं ने इस संकल्पना को स्वीकार किया और स्थानिक वितरण की संकल्पना भूगोल की मौलिक स्वतंत्र विषय के रूप में पृथक् स्थान प्रदान करती है। संकल्पना बन गयी। स्थानिक वितरण की संकल्पना ही भूगोल को अन्य क्रमबद्ध या वर्गीकृत विज्ञानों में है।

(3) सामान्य भूगोल ही भौतिक भूगोल है

वारेनियस द्वारा विश्लेषित सामान्य भूगोल के अन्तर्गत प्राकृतिक तत्वों के साथ ही मानव का अध्ययन भी सम्मिलित होता था और तब तक भूगोल भौतिक और मानव भूगोल में वर्गीकृत नहीं था।

हम्बोल्ट ने विश्व भूगोल या सामान्य भूगोल के लिए भौतिक भूगोल' शब्दावली का प्रयोग किया था किन्तु उनके भौतिक भूगोल में मानवीय अध्ययन भी सम्मिलित होता था। इस प्रकार हम्बोल्ट द्वारा प्रतिपादित भौतिक भूगोल सामान्य भूगोल का ही दूसरा नाम था। उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ कॉसमॉस में लिखा है कि भौतिक भूगोल का उद्देश्य सजीव और निर्जीव प्रकृति के मध्य सम्बंध श्रृंखला का अध्ययन करना है। इसमें आकाशीय पिण्ड से लेकर जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति और मानव समूह तक के वर्णन किये जाते हैं। हम्बोल्ट के पश्चात् मानवीय तथ्यों का अध्ययन भूगोल की एक पृथक् शाखा मानव भूगोल। के अन्तर्गत किया जाने लगा और भूगोल की प्रमुख शाखाएं बन गयी–भौतिक भूगोल और मानवभूगोल भौतिक और मानवीय सम्बंधों का अध्ययन है हम्बोल्ट के विचार से भूगोल में जैव और अजैव प्रकृति के सम्बंधों तथामानव और प्रकृति के मध्य पाये जाने वाले सम्बंधों का विश्लेषण किया जाता है। उनके अनुसार इन सम्बंधों की खोज करना भूगोलवेत्ता का परम कर्तव्य है।

हम्बोल्ट ने कॉसमॉस में भूगोल की प्रकृति जन्तुओं की बताते हुए लिखा है कि समस्त सजीव और निर्जीव तत्वों में पारस्परिक सम्बन्ध होता है। वनस्पतियों और तुलना में मनुष्य अधिक समर्थ होता है और वह मिट्टी, मौसमी दशाओं और अपने चारों ओर व्याप्त वायुमंडल पर अपेक्षाकृत् कम निर्भर करता है। वनस्पतियों और जन्तुओं की तुलना में मानव पर प्रकृति का नियंत्रण अपेक्षाकृत् कम होता है। फिर भी मनुष्य का पार्थिव जीवन के साथ अनिवार्य और घनिष्ट सम्बंध है। भूगोल में इन्हीं सम्बंधों का विश्लेषण किया जाता है।

(4) तथ्यों की विषमांगता

हम्बोल्ट के अनुसार क्रमबद्ध विज्ञानों में अध्ययन किये जाने वाले तथ्यों में समरूपता और समांगता पायी जाती है किन्तु भूगोल में अध्ययन किये जाने वाले तथ्यों में विषमांगता और भिन्नता होती है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर विद्यमान तथ्यों में सामान्यतः कुछ न कुछ भिन्नता अवश्य पायी जाती है जिसका विश्लेषण करना भूगोलवेत्ता का कर्तव्य होता है। परवर्ती भूगोलवेत्ताओं ने भूगोल को क्षेत्रीय भिन्नता का अध्ययन करने वाले विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया।

(5) पार्थिव एकता

पार्थिव एकता में हम्बोल्ट का अटल विश्वास था। उनके अनुसार प्रकृति के जैविक और अजैविक सभी तथ्य परस्पर सम्बंधित होते हैं और एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। इसलिए पृथ्वी की सही व्याख्या समष्टि रूप में ही की जाती सकती है। सम्पूर्ण प्रकृति में एकता पायी जाती है और भूगोल में इसी एकता का अध्ययन किया जाता है। बूंश के अनुसार हम्बोल्ट ने अपने एक मित्र को पत्र में लिखा था कि उत्तरी धूव से दक्षिणी ध्रुव तक केवल एक आत्मा ही सम्पूर्ण प्रकृति को सजीव बनाये हुए है, केवल एक ही जीवन पत्थरों, वनस्पतियों, जन्तुओं और स्वयं मनुष्य में भी व्याप्त है।' हम्बोल्ट प्रकृति को एक जैव इकाई मानते थे जिसकी उत्पत्ति किसी विशेष क्षेत्र में जैव (चेतन) और अजैव (अचेतन) वस्तुओं के सुव्यवस्थित अंतर्सम्बंधों से होती है। इसीलिए वे एकीकृत विज्ञान में विश्वास रखते थे जिसमें समस्त भौतिक, जैविक और सामाजिक विज्ञान सम्मिलित रहते हैं।

6.7 कार्ल रीटर (1779–1859)

रीटर का जन्म जर्मनी की हार पहाड़ियों में स्थित एक गाँव के साधारण परिवार में हुआ था। इनके पिता एक चिकित्सक थे जिनकी मृत्यु, जब रीटर पाँच वर्षके थे तभी हो गयी। तब रीटर का परिवार आर्थिक कठिनाई में पड़ गया। उस समय इस परिवार के घरेलू अध्यापक, गुटस मुथ्स ने रीटर की बड़ी मदद की। उन्होंने रीटर को 1784 ई० में स्नेफेनटाल में नये ढंग के विद्यालय में, जिसमें गुटसमुथ्स अध्यापक हो गये थे, दाखिल करा दिया तथा उनके निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करा दी। इस विद्यालय में जिसे साल्त्समान ने स्थापित किया था, रूसो एवं पेस्टोलाजी के सिद्धान्त के अनुसार शिक्षा दी जाती थी। विद्यार्थियों को पाठ्य पुस्तक रटाने की बजाय उन्हें प्रकृति के निकट सम्पर्क में रहकर विभिन्न प्रकार के अनुभवों एवं व्यवहारिक कार्यों द्वारा शिक्षा दी जाती थी। इस विद्यालय में शिक्षण का प्रमुख सिद्धान्त था–दृश्य से अदृश्य की ओर ले जाना अर्थात प्रवृति (दृश्य) के माध्यम से ईश्वर(अदृश्य) से परिचित कराना।

कार्ल रिटर जर्मनी के महान भूगोलवेत्ता और हम्बोल्ट के समकालीन थे। हम्बोल्ट के साथ कार्ल स्टिर को भी आधुनिक भूगोल का संस्थापक माना जाता है। रिटर बर्लिन विश्वविद्यालय में भूगोल के प्रोफेसर थे और अर्डकुण्डे' नामक प्रतिष्ठित ग्रंथमाला प्रकाशित किया था जिसने भौगोलिक अध्ययन को अत्यंत उच्च स्तर पर पहुँचा दिया था। उन्होंने भूगोल के विकास में चिरस्मरणीय और अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान दिया और भौगोलिक अध्ययन को एक नयी दिशा प्रदान की। हम्बोल्ट और रिटर दोनों एक–दूसरे की रचनाओं के प्रशंसक और मित्र थे। भौगोलिक चिंतन के इतिहासकार हम्बोल्ट और रिटर दोनों विद्वानों के भौगोलिक दृष्टिकोणों और अध्ययन विधियों को एक दूसरे का पूरक मानते हुए उन्हें आधुनिक भूगोल का युगल संस्थापक मानते हैं।

जीवन परिचय–

कार्ल रिटर का जन्म 1779 में एक साधारण परिवार में हुआ था। उनके पिता पेशे से चिकित्सक थे जिनकी मृत्युके समय रिटर की आयु मात्र 5 वर्ष थी। उनकी माता केलिए अर्धाभाव के कारण चार बच्चों का पालन–पोषण और शिक्षा की व्यवस्था करना कठिन था। सौभाग्य से तत्कालीन प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री क्रिश्चियन साल्जमैन ने बालक रिटर से प्रभावित होकर उसे अपना शिष्य बना लिया और अपने निजी प्रयोगात्मक शिक्षण संस्थान में उसके शिक्षा की व्यवस्था कर दी। साल्ज मैन ने अपने विद्यालय में बच्चों को प्रयोगों और प्रत्यक्ष दर्शन के माध्यम से अपने अनुभव द्वारा ज्ञान अर्जित कराने के उद्देश्य से प्रयोगात्मक शिक्षा कार्ल रिटर का आरंभ किया था। वहाँ गट्स मूथस नामक शिक्षक के संरक्षण में रिटर को रखा गया था जो प्रत्यक्ष दर्शन के आधार पर भूगोल की शिक्षा देने में अभिरुचि रखते थे। विद्यालय के शिक्षक बच्चों को स्वयं अपने अनुभव के आधार पर मनुष्य और प्रकृति के पारस्परिक सम्बंधों को समझने के लिए प्रेरित करते थे। इस प्रकार बचपन में ही रिटर में प्राकृतिक पर्यावरण में उपस्थित विविधता में एकता और उसकी मौलिक समरसता के प्रति उत्सुकता उत्पन्न हो गयी थी जो आगे चलकर उनके भौगोलिक चिन्तन का आधार बन गयी। हार्टशोर्न (1939) ने सही ही लिखा था कि रिटर के समय और उनके पश्चात शायदही किसी विद्यार्थी को इतने व्यवस्थित ढंग से तैयार किया गया हो जितना कि रिटर।

विद्यालयी शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् रिटर को एक धनी परिवार में निजी शिक्षक के रूप में काम मिल गया। इसके साथ ही रिटर ने फ्रैंकफर्स्ट विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया और वहाँ इतिहास तथा भूगोल का अध्ययन आरंभ किया। 1807 में रिटर की प्रथम भेंट हम्बोल्ट से हुई और वे हम्बोल्ट के दृदृष्टिकोण तथा तथ्यों के पर्यवेक्षण से बहुत प्रभावित हुए और भौगोलिक अध्ययन के प्रति उनमें विशेष रुचि जागृत हो गयी। उन्होंने यूरोप के

प्रादेशिक भूगोल का सविस्तार अध्ययन किया और 1812 में यूरोप के प्रादेशिक भूगोल पर दो खण्डों में पुस्तक प्रकाशित किया। इसके पश्चात् उन्होंने दो वर्ष (1814–16) के लिए गाटिंगन विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया तथा इतिहास और भूगोल के साथ ही भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र और खनिज विज्ञान की भी शिक्षा प्राप्त की। विश्वविद्यालय स्तर पर रिटर ने यूनानी और लैटिन भाषाओं का चयन किया और इतिहास तथा भूगोल का गहराई से अध्ययन किया। गाटिंगन विश्वविद्यालय छोड़ने के पश्चात् रिटर की अमरकृति अर्डकुण्डे'के प्रथम दो खण्ड 1917–18 में प्रकाशित हुए। जर्मनी में इस ग्रंथ का बड़ा स्वागत हुआ और इसी के आधार पर उन्हें फ्रैंकफर्ट विश्वविद्यालय, बर्लिन में 1820 में नवसृजित भूगोल के प्रोफेसर पद पर नियुक्ति मिल गयी।

इसके दो वर्ष पहले (1818) से वे इसी विश्वविद्यालय में इतिहास के प्रोफेसर पद पर कार्य कर रहे थे। रिटर ने 1820 में बर्लिन भौगोलिक संस्था की स्थापना किया था। 1959 में 80 वर्ष की आयु में रिटर की मृत्यु हो गयी। यह संयोग ही था कि इसी वर्ष हम्बोल्ट का भी देहावसान हुआ था। आधुनिक भूगोल के दोनों संस्थापकों की मृत्यु के पश्चात् भौगोलिक चिन्तन के इतिहास में एक युग (शास्त्रीय युग) का अंत हो गया।

रचनायें

रिटर भूगोल के समर्पित अध्येता, प्रभावी शिक्षक व लेखक थे। उन्होंने अपने जीवनकाल में कई ग्रन्थ, मानचित्र एवं शोधपत्र प्रकाशित किये थे, उनमें मुख्य निम्नवत् हैं–

1. यूरोप का भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं सांख्यिकीय चित्रण (1804),
2. यूरोप की धरातलीय प्रकृति एवं आर्थिक संसाधनों पर छः मानचित्र (1806)
3. यूरोप के भूगोल का दूसरा खण्ड (1807),
4. नवीन भूगोल, अप्रकाशित (1810),
5. विधितन्त्र पर कई शोधपत्रों का प्रकाशन (1911 तक),
6. न्यूजीलैण्ड का औपनिवेशीकरण (1842),
7. भौगोलिक अध्ययन (1852),
8. भौगोलिक ग्रन्थ अर्डकुण्डे (म्तकानदकम) का प्रथम खण्ड 'अफ्रीका महाद्वीप' (1817),
9. अर्डकुण्डे का द्वित्तीय खण्ड एशिया महाद्वीप' (1818).
10. अर्डकुण्डे के अगले छः खण्डों का प्रकाशन (1832–1838),
11. अर्डकुण्डे के ग्यारह खण्डों को पूर्ण कर उसके सम्पूर्ण 19 खण्डों का प्रकाशन (1839–1859)
12. रिटर की उक्त अमरकृति अर्डकुण्डे के इन उन्नीस खण्डों में वह अफ्रीका तथा एशिया महाद्वीपों का प्रादेशिक वर्णन ही पूरा कर सके थे, यूरोप पर लिखना अभी शोष ही था अर्थात् उनका यह ग्रन्थ अधूरा ही रहा।

संकल्पनायें

डिकिंसन के अनुसार रिटर की भैगोलिक संकल्पनायें निम्नवत् हैं

1. स्थानिक तत्वों में कार्यकारण एवं परस्पर निर्भरता का सम्बन्ध पाया जाता है।
2. भौगोलिक अध्ययन में पर्वतों एवं नदियों का विशेष महत्व है क्योंकि इन के द्वारा प्रदेशों का सीमांकन सही ढंग से किया जा सकता है।
3. भूगोल का सम्पूर्ण अध्ययन मानव केन्द्रित होना चाहिए।
4. पृथ्वी तल का प्रत्येक क्षेत्र अद्वितीय एवं विशिष्ट है।
5. सम्पूर्ण पृथ्वी एक जैविक इकाई के रूप में है।
6. भूतल के विभिन्न क्षेत्रों के निवासियों पर वहां के प्राकृतिक वातावरण का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।
7. पृथ्वी के सभी तत्वों में एकता विद्यमान है, कोई भी तत्व निरपेक्ष नहीं है बल्कि सभी तत्व सापेक्ष हैं।

रिटर का विधितंत्र

कार्ल रिटर ने अपने अध्ययन और वर्णन में जिन विधियों को अपनाया था वे निम्नांकित हैं

1. आनुभविक विधि रिटर भूगोल को एक आनुभविक विज्ञान मानते थे और उन्होंने अपने भौगोलिक अध्ययनों के लिए इसी विधि का चयन किया। वे विभिन्न भौगोलिक तथ्यों का सावधानीपूर्वक प्रेक्षण और निरीक्षण करते थे, प्रेक्षित तथ्यों तथा सूचनाओं को एकत्रित करते थे और उनके आधार पर सत्य तथा समान्यीकरण का निर्धारण करते थे।
2. तुलनात्मक विधि कार्य कारण सम्बंधों को समझाने के लिए रिटर ने तुलनात्मक विधि को उपयोगी मानते हुए अर्डकुण्डे में भौगोलिक तथ्यों का विवेचन इसी विधि से किया है। इसीलिए उन्होंने 'अर्डकुण्डे' का दूसरा नाम 'सामान्य तुलनात्मक भूगोल' रखा था।
3. विश्लेषण और संश्लेषण विधि रिटर पहले प्रेक्षित तथ्यों या एकत्रित सूचनाओं का विश्लेषण करते थे और उनकी तुलना करते थे। इसके पश्चात् उनका संश्लेषण करते हुए क्षेत्र के सभी तथ्यों को समेकित करके सामान्यीकरण करते थे। रिटर की यह अध्ययन पद्धति भूगोल को एक वैज्ञानिक स्वरूप प्राप्त करने में बड़ी सहायक सिद्ध हुई।
4. मानचित्रण विधि रिटर ने भौगोलिक तथ्यों की स्थिति को प्रदर्शित करने के लिए मानचित्रण विधि को उपयोगी माना था। इसीलिए उन्होंने यूरोप के 6 भौतिक मानचित्र भी बनाये थे। उन्होंने अर्डकुण्डे के विभिन्न खण्डों में भी प्रादेशिक मानचित्र दर्शाये हैं।

भूगोल में योगदान–

भूगोल जगत में रिटर को तुलनात्मक प्रादेशिक भूगोल का संस्थापक कहा जाता है। रिटर के अनुसार भूगोल विज्ञान की वह शाखा है जो पृथ्वी के समस्त स्वरूपों, दृश्यों तथा सम्बन्धों को एक स्वतंत्र इकाई के रूप में अध्ययन करता है और एकीकृत समष्टिका मानव और उसके निर्माता के साथ सम्बन्धों को उजागर करता है। उसने दृढ़तापूर्वक यह भी कहा कि भूगोल का केन्द्रीय सिद्धान्त प्रकृति के रूपों तथा सभी तथ्यों का मानव जाति से सम्बन्ध स्थापन' में है। उसने भूगोल को पृथ्वी के विज्ञान (ब्रह्माण्ड विज्ञान के प्राकृतिक दर्शन के अर्थ में) के रूप में बताया जो वास्तविक उद्देश्यों से अधिक दूरी तक जाता है अर्थात् मानव के निवास स्थान के रूप में पृथ्वी का वर्णन करना। रिटर ने भूगोल को अर्डकुण्डे' अथवा भूविज्ञान बताया जो स्थानीय दशाओं से सम्बन्ध रखता है और सामयिक, औपचारिक तथा भौतिक विशेषताओं के संदर्भ में स्थानों के गुणों को सम्मिलित करता है। इसका प्रथम गुण स्थलाकृति है अर्थात् यह पृथ्वी के धरातल के प्राकृतिक विभाजन का वर्णन करता है। दूसरे गुण के अन्तर्गत जल, सागर, वायुमण्डल और मानव जीवन के आधार के वितरण एवं संचलन सम्मिलित करता है। प्रकृति विज्ञान के भौगोलिक पक्ष के रूप में पार्थिव दशाओं का वर्णन किया गया था। इसमें खनिजों, पौधों और पशुओं के वितरण को सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार रिटर ने यह भी बताया कि भूगोल ऐसा विषय है जो केवल स्थानों, नदियों, पर्वतों, यात्रा मार्गों के बारे में ही वर्णन नहीं करता अपितु साथ ही साथ मानव और प्रकृति के अन्तर्सम्बन्धों की भी व्याख्या करता है। उसने 'अनेकता में एकता' की अवधारणा को विकसित किया। भूगोल के विभिन्न क्षेत्रों में उसकी देन इस प्रकार है–

1. भौगोलिक क्षेत्र –रिटर ने होमेयर की शुद्ध भौगोलिक अवधारणा को कभी भी स्वीकार नहीं किया। उसने किसी प्रदेश के भौतिक लक्षणों, प्राकृतिक संसाधनों एवं ऐतिहासिक तत्वों के अन्तर्सम्बन्धों को स्पष्ट करना तथा प्रदेश के भौगोलिक व्यक्तित्व को समझाना आवश्यक माना। प्रकृति तथा पृथ्वी की एकता को सर्वोपरि मानकर उसने हम्बोल्ट की भाँति भौगोलिक चिन्तन की रूपरेखा प्रस्तुत किया किन्तु इसका किसी निश्चित नियमों के अन्तर्गत घटित होने के सम्बन्ध में नियमों एवं सिद्धान्तों की व्याख्या करना मुख्य उद्देश्य होता है। रिटर ने भूगोल के क्षेत्र को तीन घटकों में विभाजित किया है– 1. लक्षणीय, 2. स्वरूपीय, और 3. भौतिक रूपीय। प्रथम घटक का सम्बन्ध पृथ्वी के प्राथमिक या स्थिर स्वरूपों से होता है। इसके अन्तर्गत महाद्वीपों को सम्मिलित किया है। द्वितीय घटक के अन्तर्गत सुस्पष्ट गतिशील तथा परिवर्तनशील दिखाई देने वाले स्वरूपों को शामिल किया है जिसमें गतिशील अथवा संचलित सागर, वायुमण्डल, ज्वालामुखी आदि आते हैं और तीसरे लक्षण में जैविक स्वरूपों जैसे पादपों, प्राणियों तथा अजैविक पदार्थों मुख्यतः खनिजों को सम्मिलित किया गया है। उसने इस तीनों घटकों को प्राकृतिक वातावरण का अंग कहा है। रिटर ने इन घटकों पर मानव–क्रियाकलापों के प्रभाव का मूल्यांकन करने के

प्रयास किया है।

2. आनुभविक विज्ञान के रूप में भूगोल—रिटर का विचार था कि भूगोल अन्य विज्ञानों की भाँति मात्र सिद्धान्तों पर आधारित न होकर आनुभाविक विज्ञान होता है। इसलिए रिटर ने भूगोल के सम्बन्ध में कहा है 'मेरी अध्ययन प्रणाली सिद्धान्तों पर ही आधारित न होकर तथ्यों, उसके प्रेक्षण एवं परिणाम पर आधारित होती है। अतः प्रारम्भ में क्षेत्र अध्ययन के अन्तर्गत निरीक्षण एवं विश्लेषण करने के बाद किसी निष्कर्ष पर पहुँचना चाहिए। उसके इसी चिन्तन के आधार पर आगे चलकर डब्ल्यू0 एम० डेविस ने स्थलरूपों के अध्ययन एवं वर्गीकरण करते समय कहा कि 'हमारे पास परिवेश तथा उसके लक्षणों को देखने के लिये चक्षु होने चाहिए।' डेविस का यह कथन भौगोलिक अध्ययन हेतु एक मूल अंश है, इसीलिये तथ्यों के प्रेक्षण एवं संकलन के उपरान्त भूगोलविदों को उसका सावधानी से निरीक्षण करके क्षेत्र में अन्य तथ्यों के साथ पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए और भौगोलिक अध्ययनों में अन्तर्निर्भरता और अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए। हार्टशोर्न ने तथ्यों की अन्तर्निर्भरता के चिन्तन को विशेष महत्व प्रदान किया। इसने तत्व जटिलता को गतिशील, परस्परव्यापी, विभिन्न स्तरों पर अन्तःग्रंथित एवं अन्तर्सम्बन्धित मानते हुए इससे सम्बन्धित सभी व्यवहारिक तथ्यों का अध्ययन किया।

3. क्षेत्रवर्णी अध्ययन एवं उसका सम्बन्ध —रिटर का यह चिन्तन प्रादेशिक भूगोल के क्षेत्र में है। इस प्रकार उसकी रुचि प्रादेशिक या क्षेत्रीय अध्ययन में सम्मिलित सम्पूर्ण तथ्यों के बारे में रही है। ऐसे अध्ययन से क्षेत्र की विशिष्ट विशेषतायें प्रकट होती हैं जिसके लिये तुलनात्मक पद्धति का सहारा लिया जा सकता है यद्यपि रिटर स्वयं क्षेत्रीय लक्षणों के तुलनात्मक अध्ययन की भली–भाँति व्याख्या न कर सका।

इस प्रकार उसका यह दृष्टिकोण भ्रामक एवं अधूरा रहा। यह सम्भव है कि वह हम्बोल्ट की तुलनात्मक पद्धति से प्रभावित रहा हो किन्तु अपने प्रादेशिक अध्ययन में लागू करने में सफल न में हो सका। अपनी महाद्वीपीय प्रादेशिक विभाजन को अर्डकुण्डे में क्षेत्रीय अध्ययन के अन्तर्गत सम्मिलित किया जो उसका एक महत्वपूर्ण कदम कहा जा सकता है।

अपनी प्रादेशिक अध्ययन की योजना को लागू करने के लिए अर्डकुण्डे में प्रारम्भिक स्तर पर भौतिक लक्षणों के आधार पर विभाजित किया जो निम्न प्रकार हैं–

1. पर्वत– (1) समान्तर श्रेणियाँ जैसे हिमालय तथा जूरा पर्वत, (2) अभिसारी एवं अपसारी पर्वत, (3) एक केन्द्र से विकसित पर्वत जैसे पामीर, (4) बलयाकार पर्वत जैसे ट्रान्स सिल्वानिया तथा वोहेनिया, (5) एक प्रतिच्छेदित पर्वत जैसे कराकोरम तथा हिन्दुकुश।
2. पठार– इसे उच्च समतल प्रदेश कहा तथा लगभग 1,000 मीटर ऊंचाई बताया,
3. मैदान– इसकी ऊँचाई 400 मीटर तक बताया और
4. मध्यवर्तीय धरातलीय क्षेत्र– इसे दो धरातलीय इकाइयों के बीच वाले क्षेत्र को सम्बोधित किया।

4. क्रमबद्ध भूगोल —यद्यपि रिटर ने क्रमबद्ध भूगोल के अध्ययन को महत्वपूर्ण नहीं माना है तब भी अपनी पुस्तक अर्डकुण्डे में परोक्ष रूप से उसके महत्व को स्वीकार किया। इस सम्बन्ध में रिटर की विचारधारा को सही मानने के कारणों की समीक्षा फ्रोवेल के अनुसार जहाँ रिटर ने क्रमबद्ध अध्ययन के गौण महत्व की बात कही है, उसके बारे में तथ्य कुछ और हैं क्योंकि (1) 1828 तथा 1831 ई0 के बीच दिये गये तथा लिखे गये विविध लेखों में उसने विशेष स्थलरूपों के क्रमबद्ध अध्ययन पर बल दिया है, (2) रिटर ने अपने अर्डकुण्डे ग्रंथ में अफ्रीका वाले खण्ड में विभाजन का आधार अपने आप में निश्चित क्रमबद्धता का प्रतीक है, (3) मार्थे ने अर्डकुण्डे के विभिन्न खण्डों में 24 प्रकार के क्रमबद्ध अध्ययन की चर्चा किया है, (4) रिटर की पुस्तक यूरोप का भूगोल स्वयं में क्रबद्ध भूगोल का एक सुन्दर उदाहरण है और (5) रिटर ने स्वयं 1828 ई0 में विज्ञान अकादमी के समक्ष पढ़े गये निबन्ध में क्रमबद्ध अध्ययन की विधितंत्र पर प्रकाश डाला है।

रिटर द्वारा क्रमबद्ध अध्ययन की व्याख्या से प्रतीत होता है कि रिटर ने भूगोल को शुद्ध विज्ञान के रूप में पूर्णतया अस्वीकार कर दिया है केवल संकीर्ण अर्थ में भूगोल को क्रमबद्ध अध्ययन कहा है। पृथ्वी के प्रादेशिक विभाजन तथा उसकी व्याख्या के क्रमबद्ध अध्ययन को प्रादेशिक अध्ययन का अंग मानते हुए उसे शुद्ध विज्ञान से स्वतंत्र रखते हुए उसके लिए क्रमबद्ध शब्द का प्रयोग किया है। इस प्रकार शोध एवं विधितंत्र के विकास में क्रमबद्धता को पूर्णतःस्वीकार किया है क्योंकि भूगोल में किसी प्रकार के शोध को क्रमबद्ध विधितंत्र के अभाव में स्पष्ट नहीं किया

जा सकता। इस प्रकार यही कहा जा सकता है कि रिटर द्वारा क्रमबद्ध भूगोल की व्याख्या को दोहरे अर्थ में प्रयुक्त भ्रामक अभिव्यक्ति कहा जा सकता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि रिटर द्वारा ऐसा करने का उद्देश्य भूगोल की एकता को अक्षुण्य रखना और द्वैधता के चिन्तन से पूर्णतया मुक्त रखना प्रतीत होता है।

5. मानव भूगोल—रिटर ने भूगोल में मानव की भूमिका पर भी लिखा है। उसने प्रदेशों के अध्ययन में मानवीय पक्ष को स्पष्ट किया है। उसने बताया कि पृथ्वी और उस पर निवास करने वालों के बीच घनिष्ट सम्बन्ध पाया जाता है। इनके बीच सम्बन्धों के सम्यक् अध्ययन हेतु दोनों की भूमिका को समझना आवश्यक होता है। रिटर ने एक ओर प्रकृति एवं मानव के बीच सम्बन्धों की चर्चा किया तो दूसरी ओर मानव एवं क्षेत्रीय इतिहास तथा स्थल के सम्बन्धों का वर्णन किया है। उसके अनुसार प्रदेश अपने मानव का अध्ययन करता है और मानव अपने प्रदेश का। इसी प्रसंग में हेटनर ने कहा है कि रिटर ने अपने अध्ययन में मानव की भूमिका पर इनता अधिक ध्यान केन्द्रित कर दिया है कि वह प्रकृति तथा मानव के बीच सम्बन्धों को निर्धारित करने के उद्देश्य को ही भूल गया।

6. नियतिवादी दृष्टिकोण—मानव और प्रकृति सम्बन्धों के अध्ययन में मानवीय महत्व को स्वीकार करते रिटर ने भी हम्बोल्ट की भाँति प्रकृति के प्रभाव को महत्वपूर्ण बताया। उसने बताया कि किसी प्रदेश का स्थलीय प्रभाव वहाँ के निवासियों को प्रभावित करता है। यूरोप का वर्णन करते समय वहाँ की समुद्री तटरेखा के प्रभाव तथा महत्व की भलीभाँति व्याख्या किया है। इस सम्बन्ध में रिटर का यह कथन उल्लेखनीय है इसी प्रकार उसने प्रकृति के तत्वों के साथ जलवायु को महत्वपूर्ण बताया।

7. अनेकता में एकता का सिद्धान्त—रिटर का भूगोल में महत्वपूर्ण योगदान उसका अनेकता में एकता का सिद्धान्त है। उसके अनुसार परिवास के जैविक तथा अजैविक संघटकों के बीच मौलिक एकता पायी जाती है जिसके अन्तर्गत मानव अपने सांस्कृतिक पर्यावरण का निर्माण करता है। ऐसे किसी उपागम में किसी एक क्षेत्रीय इकाई के भूगोल को समझने के लिए पर्यावरण के समस्त भौतिक तथा सांस्कृतिक घटकों को एक साथ लेकर विचार किया जाता है और उनके बीच अन्तर्सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। यह एक प्रादेशिक प्रादेशिक उपागम है।अनेकता में एकता का तात्पर्य यह होता है कि प्राकृतिक सीमा से घिरा हुआ प्रत्येक क्षेत्र जलवायु, उत्पादन, सभ्यता, जनसंख्या और इतिहास के संदर्भ में एक इकाईहोता है अर्थात् अनेक तत्वों का किसी एक इकाई से अध्ययन किया जाता है। रिटर ने कुछ नियतिवादी निरीक्षण किया जो हम्बोल्ट से अधिक नहीं वरन् उसकी पुनरावृत्ति थी तथा महाद्वीपों का संश्लेषित वर्णन प्रस्तुत किया। ऐसे वर्णन करने के कारण रिटर के योगदान का उतना महत्व नहीं है जितना महत्व पृथ्वी के धरातल पर विभिन्न स्तर पर पार्थिव तत्वों के प्रादेशिक सम्बन्धों की अवधारणा को नियंत्रण करने वाले नियमों के तंत्र से निष्कर्ष निकालने की उसकी योग्यता में निहित है।

8. सामान्य भौगोलिक विवरण—रिटर ने भौगोलिक तथ्यों एवं सिद्धान्तों के विवरण को प्रस्तुत करने के लिए निगमनात्मक पद्धति का उपयोग किया है। इस पद्धति के अन्तर्गत मौलिक तथ्यों तथा अन्य तरीकों से स्थापित सत्य तथ्यों तथा नियमों के आधार पर नूतन निष्कर्षों का प्रतिपादन किया जाता है। इस प्रकार हम्बोल्ट तथा रिटर के विचारों में बहुत कम अन्तर किया जा सकता है। पार्थिव तथ्यों की स्थानिक व्यवस्था में दोनों समकालीन भूगोलविदों में पर्याप्त समानता मिलती है। उपर्युक्त विवरणों के अतिरिक्त रिटर ने अनेक भौगोलिक तथ्यों को प्रस्तुत किया। उसने जल एवं स्थल गोलार्द्ध, जल तथा स्थल के गरम एवं शीतल होने की दर में अन्तर और उत्तरी एवं दक्षिणी गोलार्द्ध में जलीय तथा स्थलीय भागों के अनुपात में अन्तर के कारणों पर भी विचार में किया। उसने यह भी बताया कि महाद्वीपों में अन्तर पाये जाते हैं। सभी महाद्वीपों की तट रेखा की से तुलना में अफ्रीका की तट रेखा छोटी एवं सममित है तथा इसके आन्तरिक भाग का सम्बन्ध महासागर से कम है जबकि एशिया में सागरीय प्रवेशिका में अधिक हैं तथा आन्तरिक भाग से समुद्र का सम्पर्क कम है। यूरोप महाद्वीप की स्थिति इन सभी से अलग है। यहाँ के सागर तट की लम्बाई अधिक है और उसके भीतरी भागों का समुद्र से पहुँच मार्ग भी सुगम है। उसने प्रत्येक महाद्वीप की पहचान भिन्न जाति तथा भिन्न रंग से की थी। उदाहरण के लिये अफ्रीका की पहचान काले रंग के निवासियों, यूरोप की गोरे रंग के लोगों, एशिया की पीले रंग के निवासियों और अमेरिका की लाल रंग के निवासियों द्वारा पहचान किया था। इस अति सामान्यीकरण से कई समस्यायें भी उत्पन्न हो गई थीं।

9. अर्डकुण्डे —रिटर ने भूगोल पर अपनी प्रसिद्ध पुस्तक अर्डकुण्डे लिखी है। अर्डकुण्डे जर्मन भाषा का एक शब्द है जिसका प्रयोग प्रकृति और इतिहास के संदर्भ में पृथ्वी के विज्ञान के लिये होता है। रिटर ने कहा था कि पृथ्वी तथा उसके निवासियों में लगभग व्युत्क्रम सम्बन्ध स्थापित है और एक बिना दूसरे का उसके समस्त सम्बन्धों में

सही प्रकार से प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। अतः भूगोल और इतिहास सदैव अविच्छेद्यही रहेंगे। स्थलाकृतियाँ अपने निवासियों को प्रभावित करती हैं तो उसी क्रम में निवासियों द्वारा स्थलाकृतियाँ भी प्रभावित होती हैं। उदाहरण के लिये यूरोप के पूर्वी भाग (रूस) में भौगोलिक लक्षणों की एकरूपता तथा इतिहास की भी एकरूपता मिलती है किन्तु पश्चिम में इसके विपरीत पर्यावरण और इतिहास में पर्याप्त विविधता पाई जाती है। यूरोप के दक्षिणी भाग का इतिहास समृद्ध था जहाँ मिस्रवासियों, कार्थेजियन्स, यूनानी, रोमन, फ्रेंच और आइबेरियनों के प्रयास एवं उपलब्धियाँ थी। उसने अपनी इस पुस्तक में यूरोपीय सभ्यता के उत्तर–पश्चिम की ओर संचलन सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। यद्यपि रिटर की रचनाओं से स्पष्ट होता है कि पृथ्वी, वस्तुतःमानव निवास के लिए बनी है जैसे कि आत्मा के लिये शरीर बना होता है, उसी प्रकार भौतिक विश्व मानव जाति के लिए बना है। रिटर के कार्य का तार्किक विकास एवं मूल्यांकन उन भूगोलविदों की रचनाओं से होता है जिन्होंने विभिन्न तथ्यों, उच्चावच, जलवायु, वनस्पति और मानव का किसी एक क्षेत्र के अन्तर्गत अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन किया है।

भौगोलिक चिन्तनों का विवेचन निम्न प्रकार है (आर० ई० डिकिन्सन– 1969)–

1. रिटर ने भूगोल को एक तर्कपूर्ण सिद्धान्त या प्रागमुभावत्मक सिद्धान्त से निगमनिक विज्ञान की अपेक्षा आनुभाविक विज्ञान माना है, 2. पार्थिव तत्वों के स्थानिक व्यवस्था में सम्बद्धता होती है, क्षेत्रीय तत्व में इतने अधिक अन्तर्सम्बन्धित होते हैं कि क्षेत्र को एक अलग इकाई के समान विलक्षणता प्रदान करते हैं, 3. सीमा रेखा में, चाहे वे जलीय (जैसे– नदियाँ) अथवा शुष्क (पर्वत) हों, सभी का उद्देश्य किसी क्षेत्र के भूगोल की अर्न्तवस्तु को समझने के माध्यम होते हैं (हार्टशोर्न–1961), 4. रिटर के अनुसार भूगोल का सम्बन्ध पृथ्वी के किसी क्षेत्र में एक साथ पाये जाने वाले पदार्थों से होता है। उसने क्षेत्रों का अध्ययन संश्लेषित अथवा पूर्णता में किया, 5.रिटर ने भौगोलिक अध्ययन की विषयवस्तु और उद्देश्य के सम्बन्ध में मानव केन्द्रित दृष्टिकोण अपनाया और उसका समस्त अध्ययन मानव पर केन्द्रित था और उसी पर समाप्त होता था और उसका विश्वास था कि पृथ्वी जीव से बनी है। यहाँ तक कि उसके छोटे व्योरे में ईश्वरीय उद्देश्य के साथ मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनुकूल बताया है। वह अपने उद्देश्य में आदर्शवादी था।

रिटर के प्रमुख संक्षेप में रिटर की उपलब्धियाँ उसकी क्षेत्र विवेचना, पृथ्वी की एकता, मानव का क्षेत्रीय विवरणों में उपयुक्त स्थान, प्राकृतिक परिवेश, मानवीय तत्व विवेचन, मानवीय तत्व का पर्यावरण के साथ अन्तर्सम्बन्ध जैसे प्रकरणों पर उसकी विवेकी व्याख्या उसकी कमियों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण थीं। इसीलिये रिटर को महान भूगोलविद् कहा गया है।

6.8 हंबोल्ट तथा कार्ल रिटर का तुलनात्मक

हम्बोल्ट और रिटर की विचारधाराओं में समरूपताओं के बिंदु

1. दोनों ही भूगोल को स्थानिक वितरण का विज्ञान मानते थे।
2. दोनों ही भौगोलिक अध्ययन में आनुभाविक विधिको महत्वपूर्ण देते थे।
3. दोनों ही प्रकृति की एकतास रखते थे। दोनों का मत था कि भौतिक भूगोल का कार्य प्रकृति की एकता की व्यक्त करना और दर्शाना था, तथा प्रकृति के अन् और तर्कपूर्ण अनुसन्धान के द्वारा शक्ति (वितबम) के अति विशाल भण्डार में और पदार्थमें एकता और अनुरूपतास्थापित करना था। वे इस संसार की विविधता में एकताको देखते थे। दोनों ही पृथ्वी–तल पर जैव–सृष्टितथा निर्जीव सृष्टि में सम्बन्धोंकी खोज निकालना और वर्णन करना आवश्यक समझते थे।
4. दोनों ने ही भौगोलिक अध्ययन में 'मानव'को भी सम्मिलित किया हुआ था, यद्यपि दोनों ने मानव को भिन्न–भिन्न महत्व दिये थे। उनकी मित्रता आगे समझायी गई है।
5. दोनों ही पृथ्वीतल पर होने वाली परिघटनाओंमें कार्यकारण सम्बन्धों की खोज तुलनात्मक विधि से करते थे, जैसे कि दूसरे विज्ञानों में, विशेषकर शरीर–रचना विज्ञान, वनस्पति विज्ञान व प्राणि विज्ञान आदि में होता है।

भौगोलिक विचारधारा की उपर्युक्त समरूपतायें हम्बोल्ट की ग्रन्थमाला कॉसमॉस में तथा रिटर की ग्रन्थमाला अर्डकुण्डे में सर्वत्र विद्यमान है।

हम्बोल्ट और रिटर की विचारधाराओं में अन्तर–

1. हम्बोल्ट की शिक्षा प्राकृतिक विज्ञानों में हुई थी। उसके अन्वेषण और खोजें भी बहुत से प्राकृतिक विज्ञानों, जैसे–वनस्पति विज्ञान, भूविज्ञान, भौतिकी, रसायन विज्ञान, शरीर–विज्ञान आदि में हुई थी। रिटर की शिक्षा गणित, दर्शनशास्त्र और इतिहास में हुई थी।
2. हम्बोल्ट एक अन्वेषक था, उसके द्वारा दिये गये तथ्यों और नई अन्तर्दृष्टियों के लिये कई विज्ञान उसके ऋणी हैं। रिटर ने अपेक्षाकृत कम यात्रायें की थीं।
3. हम्बोल्ट की क्रमबद्ध भूगोल पर ग्रन्थमाला 'कॉसमॉस' थी, रिटर की प्रादेशिक भूगोल पर ग्रन्थमाला 'लाण्डेरकुण्डे'थी।
4. भौगोलिक अध्ययन में मानव का स्थान तो हम्बोल्ट ने भी दिया था, किन्तु इन अध्ययनों में अन्य तत्वों की तरह मानव का साधारण महत्व था। इसके विपरीत रिटर ने मानव को केन्द्रीय स्थान दिया था।
5. रिटर के विचार ईश्वर उद्देश्यवादी थे। उनका मत था। ईश्वर ने इस पृथ्वी की रचना मानव के विकास के उद्देश्य से की है। पृथ्वी की सृष्टि ईश्वरीय उद्देश्य की पूर्ति के लिये हुई थी। अतः प्रत्येक महाद्वीप को एक निश्चित प्रकार की स्थिति तथा आकृतिप्रदान की गयी है, ताकि वह मानव के विकास में अपनी निश्चित भूमिका अदा कर सके।

सत्रहवीं शताब्दी के अंत तक पुनर्जागरण काल समाप्त हो गया था और अठारहवीं शताब्दी में आधुनिक भूगोल की नींव पड़ने लगी थी। इस काल में इस बात को लेकर दो वर्ग हो गये कि भूगोल का अध्ययन प्राकृतिक सीमाओं के अन्तर्गत किया जाना चाहिए अथवा राजनीतिक सीमाओं के अन्तर्गत। इसी प्रकार विधितंत्र के रूप में क्रमबद्ध भूगोल और प्रादेशिक भूगोल के द्विधात्व ने जन्म लिया और भूगोल में क्रियात्मक तथा वैज्ञानिक विधि का आरंभ हुआ। कांट द्वारा भूगोल के दार्शनिक आधार की स्थापना अठारहवीं शताब्दी की महान उपलब्धि थी।

6.9 सारांश

प्रस्तुत अध्ययन में काण्ट ने अपने अध्यापन काल में भौतिक भूगोल पर ही व्याख्यान दिये थे किन्तु उन व्याख्यानों में गणितीय, वनस्पति, जन्तु एवं मानव भूगोल सम्बन्धी सामग्री भी थी। क्योंकि उसमें पेड़–पौधों, जन्तुओं तथा मानव वर्गों का विशेष रूप से वर्णन उपलब्ध होता है। यद्यपि उसके द्वारा दिये गये व्याख्यानों में मानव तथा वातावरण की पारस्परिक क्रियाओं का उल्लेख मिलता है, किन्तु उसने मानव भूगोल पर कोई विस्तारपूर्वक ग्रन्थ नहीं लिखा। इसी प्रकार प्रादेशिक भूगोल की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए भी उसने प्रादेशिक भूगोल पर कोई ग्रन्थ नहीं लिखा। फिर भी काण्ट ने भूगोल को दार्शनिक विचारधारा के अध्ययन के लिए विस्तृत रूपरेखा निर्धारित करने का प्रयास किया।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 18वीं शताब्दी के भूगोलवेत्ताओं का इस विषय के विकास में महान योगदान रहा। राजनैतिक–साँख्यिकीय भूगोल तथा शुद्ध भूगोल की दो विभिन्न विचारधाराओं ने भूगोल के लिए एक नई विचारधारा की दिशा प्रदान की। यदि रीन हाल्ड फार्स्टर ने भौगोलिक यात्राओं एवं अनुसंधानों के आधार पर क्रियात्मक एवं वैज्ञानिक शैली अपनाते हुए भौगोलिक साहित्य में अपना महान योगदान दिया तो काण्ट महोदय ने भूगोल के अध्ययन क्षेत्र को परिभाषित करके स्पष्ट किया। इस प्रकार हम समझते हैं कि 18वीं शताब्दी के अन्त तक भूगोलका अस्तित्व एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में उभरकर सामने आ चुका था।

6.10 स्व– मूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर–

प्रश्न 1– निम्नलिखित में से किसने सर्वप्रथम वास्तविकता से संबंधित विज्ञानों का वर्गीकरण प्रस्तावित किया था?

(अ) रिचार्ड हार्टशोर्न (ब) एलेग्जेंडर वॉन हंबोल्ट

(स) इनैमुअल कांट (द) कार्ल रिटर

प्रश्न 2–'अर्डकुंण्डे' नामक पुस्तक को लिखा थाः

(अ) कार्ल रिटर (ब) एलेग्जेंडर वॉन हंबोल्ट

(स) फ्रेडरिक रैटजेल (द) रिचथोफेन

प्रश्न 3– निम्नलिखित में से किसने भूगोल को इस प्रकार परिभाषित किया है भूगोल प्रकृति के अध्ययन से संबंधित है

(अ) कार्ल रिटर (ब) अल्फ्रेड हेटनर

(स) एलेग्जेंडर वॉन हंबोल्ट (द) आईपीवजेरासिमोव

प्रश्न 4– 18शताब्दी के अंतिम और सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक कौन थे?

(अ)एलेग्जेंडर वॉन हंबोल्ट (ब) कार्ल रिटर

(स) हेटनर (द) इनैमुअल कांट

प्रश्न 5– कॉसमॉस' ग्रंथ किस विद्वान ने लिखा?

(अ) फ्रेडरिक रेटजैल (ब) हेटनर

(स) एलेग्जेंडर वॉन हंबोल्ट (द) विडाल डी ला ब्लाश

उत्तरमाला – 1. (स) 2. (अ) 3. (स) 4. (द)5. (स)

6.11 संदर्भ–ग्रंथ–सूची

- PerdA. (1967)% Behaviour and location a foundation for Geography and Dynamic location theory vol. 1 Gleerup
- (1969) % Behaviour and location a foundation for Geography and Dynamic location theory vol. 2 Gleerup
- Ratzel,F. (1882)%Anthrogeographie vol. 1 J Engethron , Stuttgart
    - (1891) %Anthrogeographie vol. 2 J. Engethron , Stuttgart
    - (1897) % Politische Geographice R. Oldenberg, Berlin
- Relph, E. (1979)%An enquiry into Relations between phenomenology and geography the Canadian Geography vol.14, pp 193-201
- (1976)% Please and placelessness Pion, London
- Sayer,A. (1985)%Realism in geography in johnston R.J (ed) % the future of geography, Methuen, London pp 159-173
- (1989)% on the dialogue between humanism and historical metallism in geography in koyabshi,A.And McKenzie S Remarking Human Geography Unwin Hyman Boston, pp 206-226
- Setwart, J.Q. (1947)% Empirical mathematical rules concerning the distribution and equilibrium of population geographical review vol. 37 PP 461- 485
- (1956)% the development of social physicsAmerican journal of physics volume 18

6.12 सत्रांत परीक्षा की तैयारी

प्रश्न 1– "भूगोल के दार्शनिक आधार का शिलान्यास कांड" इस कथन की विस्तृत व्याख्या कीजिए?

प्रश्न 2– आधुनिक भूगोल में हंबोल्ट के योगदान का वर्णन कीजिए?

प्रश्न 3– हंबोल्ट की संकल्पना ओं का विस्तृत वर्णन कीजिए?

प्रश्न 4– कार्ल रिटर के जीवन परिचय तथा इनकी भौगोलिक कृतियों का तथा भूगोल में योगदान की व्याख्या कीजिए?

प्रश्न 5– कार्ल रिटर तथा हंबोल्ट का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए?

इकाई–7 द्वैतवाद, हेटनर की कृतियां एवं संकल्पनाएं

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 भूगोल में द्वैतवाद तथा द्विभाजन

7.4 द्वैतवाद के विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

7.5 द्वैतवाद की सार्थकता

7.6 भौतिक बनाम मानव भूगोल

7.6.1 भौतिक भूगोल

7.6.2 मानव भूगोल

भौतिक भूगोल और मानव भूगोल का द्विविभाजन असंगत

एवं मानव भूगोल के द्वैत का तार्किक विश्लेषण

7.7 क्रमबद्ध बनाम प्रादेशिक भूगोल

7.7.1 क्रमबद्ध भूगोल

7.7.2 प्रादेशिक भूगोल

भूगोल में क्रमबद्ध एवं प्रादेशिक विश्लेषण की व्याख्या

क्रमबद्ध एवं प्रादेशिक भूगोल के अंतर्संबंध

7.8 ऐतिहासिक बनाम समसामयिक भूगोल

7.8.1 भूगोल में ऐतिहासिक कारक

7.8.2सांस्कृतिक भूदृश्यों का विकास

7.8.3 प्राचीन भूगोल का निर्माण

7.8.4 ऐतिहासिक काल में भौगोलिक परिवर्तनों का अध्ययन

7.9 हेटनर की कृतियां एवं संकल्पनाएँ

7.10 सारांश

7.11 स्व मूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

7.12 संदर्भ–ग्रंथ–सूची

7.13 अभ्यास प्रश्न(सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

7.1 प्रस्तावना

भूगोल में द्वैतवाद पर विशेष ध्यान दिया। जिसके लिए उन्होंने भौतिक भूगोल शब्द का प्रयोग किया। जिसको क्रमबद्ध भूगोलके रूप में भी अध्ययन किया जाता है 19वीं शताब्दी के अंत तक मनुष्य संसार में जो भी अध्ययन किया उसको किसी दो पक्षों में नहीं रखा जाता था। भूगोल में दो अलग–अलग क्षेत्र नहीं होते हैं। इस बात को मेकिण्डर ने भी 1787 में अपने एक प्रसिद्ध भाषण जिसका शीर्षक था, में भी साबित करने का प्रयास किया।परंतु बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में विडाल डी ला ब्लाश, ब्रून्ज, डिमांजियाँ फ्रांसीसी भूगोल वेताओं ने मानव भूगोल के अध्ययन पर विशेष जोर दियातथा उसके प्रत्येक घटकों का अध्ययन किया गया और ढेरसारे ग्रंथ लिखे

गए जिसके आधार पर मानव भूगोल को एक नया विषय क्षेत्र प्राप्त हुआ। इस द्वैतवाद के उपरांत भूगोल को संसार भर के विश्वविद्यालयों में अलग–अलग पढ़ा जाने लगा। परंतु भूगोल में आज भी इन दोनों पक्षों का अध्ययन एक दूसरे से शत–प्रतिशत अलग नहीं किया जा सकता है। बल्कि यह दोनों पक्ष थोड़ी बहुत मात्रा में एक दूसरे से सम्बद्ध होते हैं। अतः उनका सम्मिलित अध्ययन आवश्यक है।

7.2 उद्देश्य

18वीं शताब्दी के आरम्भ में इमैनुअल काण्ट ने जर्मनी में भौतिक भूगोल के अध्ययन के लिए एक विशिष्ट पद्धति प्रस्तावित की। हम्बोल्ट ने भी भौतिक भूगोल पर बल दिया। द्वैतवाद का अर्थ है विषय का दो मुख्य शाखाओं में बँट जाना। यह आवश्यक नहीं कि ये दोनों शाखाएँ परस्पर विरोधी हों, ये एक–दूसरे की पूरक भी हो सकती हैं।द्वैतवाद वह स्थिति है जिसमें किसी एक ही समय में समान विषय वस्तु पर दो विपरीत विचार उत्पन्न होते हैं। इसके अंतर्गत जब दोनों विपरीत विचार विचारधारा के स्तर पर वाद के रूप में किसी विषय में सिद्धांतः स्थापित हो जाते हैं। द्विभाजन किसी विषय में द्वैतवाद का उत्पाद अथवा परिणाम होता है। भूगोल में भौगोलिक चिंतन के अध्ययन का मूल बिंदु मानव–प्रकृति संबंध रहा है इसके अंतर्गत प्रकृति का मानव पर तथा मानव का प्रकृति पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण किया गया है और यही विश्लेषित अध्ययन ही भूगोल में द्वैतवाद तथा द्विभाजन का मुख्य आधार बना।

1.3 भूगोल में द्वैतवाद तथा द्विभाजन

भूगोल में द्वैत एवं द्विभाजन स्थान या क्षेत्र भौगोलिक अध्ययन का केन्द्र बिन्दु है। इसके अन्तर्गत भूत पर स्थित विभिन्न तथ्यों या समस्त भूदृश्य का अध्ययन किया जाता है। भौगोलिक तथ्यों के अन्तर्गत भौतिक तथा मानवीय (सांस्कृतिक) दोनों प्रकार के तथ्य सम्मिलित होते हैं। एक स्थानिक विज्ञान के रूप में भूगोल के सम्यक् अध्ययन के लिए निश्चित वैज्ञानिक विधियाँ अपेक्षित होती हैं।

भूगोल के ऐतिहासिक विकास के दौरान भूगोलविदों को एक ऐसी विधितंत्रात्मक समस्या का सामना करना पड़ रहा है जिसे द्वैतवाद तथा द्विभाजन की संज्ञा दी गई है। भूगोल विषय के विधितंत्रों तथा क्षेत्रों के सीमांकन के अध्ययन हेतु अपनायी जाने वाली पद्धति में सदैव द्वैतवादिता दिखाई देती है। इसके अध्ययन में द्वैतवाद पहले भी था और आज भी मिलता है जिसके आधार पर द्विभाजन हुआ। ऐसे द्विभाजन में नियतिवाद बनाम सम्भववाद, क्रमबद्ध भूगोल बनाम प्रादेशिक भूगोल, भौतिक भूगोल बनाम मानव भूगोल, आदि। द्वैतवाद की विचारधारा भूगोल में ही अकेले नहीं है वरन् अन्य सहविज्ञानों में भी किसी न किसी रूप में विद्यमान रहा है। विधितन्त्रो,अध्ययन पद्धतियों, विषय क्षेत्र तथा सिद्धान्तों को लेकर उत्पन्न वैचारिक मतभेद भूगोल में द्वैतवाद कहलाता है।

1.4 द्वैतवाद के विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भूगोल में द्वैतवाद का विकास– भूगोल में द्वैतवाद के लक्षण प्राचीन यूनानी भूगोलवेत्ताओं के अध्ययन में ही पहली बार दिखाई दिए। यूनानी भूगोलवेत्ताओ में अरस्तू जहां क्रमबद्ध भूगोल के वहीं स्ट्रैबो प्रादेशिक भूगोल के समर्थक थे। अरब भूगोलवेत्ता प्रादेशिक भूगोल के समर्थक रहे है उन्होंने विश्व को विभिन्न प्रदेशों किश्वार (एक प्रकार का सांस्कृतिक प्रदेश) में वर्गीकृत किया। काण्ट क्षेत्रीय भूगोल के समर्थक रहे हैं। आधुनिक भौगोलिक अध्ययन में वारेनियस ने द्वैतवादी विचारधारा को स्थापित किया। हम्बोल्ट जहां क्रमबद्ध भूगोल को महत्व देते हैं वही रीटर प्रादेशिक भूगोल के समर्थक भूगोलवेत्ता रहे हैं। हेटनर के कोरोलाजी का संबंध वस्तुतः प्रादेशिक भूगोल से है। ब्लास ने अपने पेज की संकल्पना के माध्यम से प्रादेशिक अध्ययन का समर्थन किया। उल्लेखनीय है कि पेज ब्लास द्वारा चिन्हित एक रीवर बेसिन में निर्मित एक सांस्कृतिक प्रदेश है। बुन्स ने क्रमबद्ध अध्ययन पद्धति को महत्वपूर्ण माना। हर्बटसन ने विश्व को वृहद प्राकृतिक प्रदेशों में वर्गीकृत कर प्रादेशिक भूगोल के विषय में महत्वपूर्ण योगदान दिया। हर्टसोन की क्षेत्रीय विभेदन की संकल्पना मूलतः प्रादेशिक अध्ययन की है। हर्टसोन के समकालीक सेफर क्रमबद्ध भूगोल के समर्थक हैं उन्होंने भूगोल में मात्रात्मक विकास के क्रांति को प्रेरित किया। द्वैधता के विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि– उत्तर–दित्तर युग के बाद उन्नीसवीं सदी के अन्तिम तीन दशकों के अन्तराल में जर्मनी में भूगोल के शैक्षणिक विकास में त्वरित विकास मिलता है। कई दृष्टिकोण से इस युग को भूगोल के विकास का क्रान्तिक काल कहा गया है। वह नींव, जो हम्बोल्ट तथा रिटर ने भूगोल के लिये रखा था, भूगोल के एकात्मक स्वरूप के अध्ययन को शक्ति प्रदान न कर सकी। इन दोनों के अनुयायियों ने भूगोल के

सम्बन्ध में अपने संस्थापकों के विचारों तथा उनके आधार पर नूतन चिन्तनों को सामने रखने के प्रयास में भूगोल को कई दिशाओं में मोड़ दिया। इसके परिणामस्वरूप भूगोल को ज्ञान की एक शाखा के रूप में उसके एकात्मक स्वरूप के ऊपर प्रश्न चिन्ह खड़ा कर दिया। रिटर की मृत्यु के उपरान्त जर्मनीमें भूगोल का न कोई प्रोफेसर था न कोई उस पद से समकक्ष विश्वविद्यालय में आ ही सका। इसके उपरान्त भूगोल में अध्ययन की धारा ऐतिहासिक भूगोल से हटकर उन लोगों के हाथ में आ गई जिनका प्रादुर्भाव एवं प्रशिक्षण भौमिकी के क्षेत्र से पल्लवित हुआ था अथवा पृथ्वी के मानवेत्तर लक्षणों के अध्ययन में पारंगत थे। इस प्रकार भूगोल विषय में भौतिक भूगोल का अध्ययन प्रारम्भ हुआ। इस युग में भूगोल के शैक्षणिक स्तर में उन्नति तथा अन्य कार्यों के सम्पादन के साथ–साथ भौगोलिक चिन्तन का विकास ही महत्वपूर्ण नहीं था वरन् उससे अधिक महत्वपूर्ण भौगोलिक क्षेत्र में विधितंत्र में प्रच्छन्न विभाजन को समाप्त करके एकात्मक विषय के रूप में स्थापित करना था। उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशकों में सामान्य वैज्ञानिक वातावरण में प्रारम्भिक छायावाद के दार्शनिक चिन्तन, चाहे वह रिटर का रहा हो अथवा हम्बोल्ट का, ग्राह्यता से बहुत दूर थे।

यह परिवर्तन चिरसम्मत युग के अन्त से स्पष्ट होने लगा। वास्तव में भौगोलिक चिन्तन में यह अन्तर ऐतिहासिक विकास के स्वेच्छाचारी विभाजन को इस सीमा तक व्याप्त कर गया था कि चिरसम्मत युग की कुछ निश्चित अवधारणाओं पर इसका प्रभाव देखने को मिलता है। इस सम्बन्ध में बुशरजैसे चिरसम्मतकालीन भूगोलविद् ने अपने कई समकालीन विद्वानों की रचनाओं में प्राकृतिक सीमाओं और प्राकृतिक प्रदेशों की अवधारणा को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने शरीर विज्ञानतथा शरीर रचना विज्ञान की सादृश्यता का प्रयोग करते हुए (यद्यपि दोनों के बीच सादृश्यता को पूर्ण न मानकर) इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि भूगोलविदों को किसी विशेष प्रयोजन के अतिरिक्त पृथ्वी के धरातल को किसी भी प्रकार के क्षेत्रीय प्रदेशों में विभाजित करने का प्रयास नहीं करना चाहिए वरना तत्वों के आधार पर क्रमबद्ध भूगोल के संदर्भ में अध्ययन करना चाहिए। इस विचारधारा का सबसे अधिक समर्थन एलिस रेक्लस ने किया जो रिटर की भाँति विश्व के प्रादेशिक भूगोल का विवरण प्रस्तुत करने के पूर्व एक संक्षिप्त एवं सामान्य क्रमबद्ध भूगोल लिखा किन्तु उसे विशेष ख्याति नाम के प्राकृतिक भूगोल की पुस्तक से मिली। इन्होंने भी 19 खण्डों में विश्व का प्रादेशिक भूगोल को 1875–94 ई० के बीच पूरा किया। इसी समय अमेरिका में रिटर के शिष्य अर्नाल्ड गुयेट ने व्याख्यात्मक अन्तर्सम्बन्ध के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। रिटर के दूसरे शिष्य ल्यूड ने तुलनात्मक भूगोल की अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास किया।

रिटर के परवर्ती काल में उनके मानव केन्द्रित दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए विभिन्न प्रदेशों के मानवीय तत्वों के ऐतिहासिक पक्ष के विवेचन को महत्व दिया गया। इसके फलस्वरूप वास्तविक भूगोल वही कहा जाने लगा जिसमें किसी प्रदेश विशेष के मानवीय तत्वों का अध्ययन ऐतिहासिक संदर्भ में किया जाय। 1859 ई० में चार्ल्स डार्विन की क्रान्तिकारी पुस्तक के प्रकाशन के उपरान्त प्रकृति के प्रत्येक तत्व का डार्विन की तीन प्रमुख प्रक्रियायों प्राकृतिक चयन, आनुवंशिक परिवर्तन और सशक्ततम की उत्तरजीविता के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करने की प्रवृत्ति बलवती होने लगी। इस प्रकार भूगोलविदों का एक वर्ग ऐसा हुआ जो भूगोल को प्राकृतिक तत्वों के क्रमबद्ध अध्ययन तक सीमित रखना चाहता था। इसमें आस्कर पेशेल प्रमुख थे जिन्होंने 1870 ई0 में (तुलनात्मक भूविज्ञान की नई समस्या अर्थात् भूतल की आकारिकी का अध्ययन) की रचना किया। इसमें इन्होंने रिटर की आलोचना करते हुए मत व्यक्त किया कि तुलनात्मक भूगोल का निश्चित लक्ष्य भूतल के विभिन्न क्षेत्रों में समान दिखाई देने वाले भौतिक स्वरूप का तुलनात्मक अध्ययन, विशेषतायें, उद्भव एवं विकास प्रक्रिया के संदर्भ में करना चाहिए। इस प्रकार पेशेल ने भौतिक भूगोल में आकारीय अध्ययन के दिशा–निर्देश को निश्चित करते हुए प्राकृतिक तत्वों के अध्ययन तक सीमित रखने का प्रयास किया। इसके बाद से ही भूगोल में एक ओर प्रादेशिक–मानवीय अध्ययन और दूसरी ओर क्रमबद्ध–प्राकृतिक अध्ययन की परिपाटी का प्रचलन बढ़ने लगा। भूगोल में अध्ययन के इसी द्वन्द को द्वैतवाद के नाम से पुकारा जाने लगा और इसी दृष्टिकोण से द्वैतवाद के अध्ययन का प्रारम्भ हुआ। इस द्वैतवाद का भूगोल के विकास पर दूरगामी प्रभाव पड़ा। अनेक परवर्ती विद्वानों के एकीकृत समन्वयन के प्रयास के बावजूद उन्नीसवीं सदी के अन्त तक द्वैतवाद का यह विवाद बना रहा। पैशेल के भूआकारिकी के अध्ययन को प्रबल समर्थन मिला। बेल्जियन भूगोलविद् मिशोटे ने इस चिन्तन का समर्थन करते हुए कहा कि (हार्टशोर्न– 1969, पृ0 68)। सामान्यतया पेशेल के नेतृत्व में भूगोल का विस्तार प्राकृतिक विज्ञानों के उन क्षेत्रों में होने लगा जिनका विकास एवं प्रयोग विज्ञान की अन्य शाखाओं में हो रहा था। एक समय में ऐसा प्रतीत होने लगा कि पृथ्वी से सम्बन्ध रखने वाले प्राकृतिक विज्ञानों को भूगोल ही समझा जाने लगा। दूसरी ओर मानव शास्त्र, कृषिगत भूमि उपयोग, व्यापार तथा गमनागमन सहित मानव भूगोल का अध्ययन स्थलरूपों के सम्बन्ध में होने लगा अथवा प्रादेशिक अध्ययन तक सीमित रहा।

7.5 द्वैतवाद की सार्थकता

द्वैतवाद की सार्थकता या औचित्य किस सीमा तक है? का समाधान खोजने के लिए भौगोलिक अध्ययन में तत्वगत समीक्षा आवश्यक होती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि भूगोल के अध्ययन को मानव और मानवेत्तर विषयक विवेचन में विभक्त करके विश्लेषित करने की आवश्यकता होती है। हम्बोल्ट प्राकृतिक तत्वों का प्रयोग भौतिकी के समान वाले विज्ञान के लिए करते थे। उनके अनुसार प्राकृतिक का अर्थ विश्व की प्रकृति सम्बन्धी तथा प्राकृतिक भूगोल का उद्देश्य जैविक तथा अजैविक प्रकृति या तत्वों को सम्बद्ध करने वाले अन्तर्सम्बन्धों की व्याख्या हेतु नियमों को प्रतिपादित करना है। इस अर्थ में प्राकृतिक भूगोल को वेरेनियस के सामान्य भूगोल में सम्मिलित किया जाता है।

भूगोल में मानव तथा मानवेत्तर सम्बन्धी द्वैतात्मक अध्ययन का आधार इस रूप में मिलता है कि दोनों प्रकार के तत्वों कीप्रकृति एक–दूसरे से अलग होती है। पृथ्वी तल पर इन दोनों तत्वों की पृथकता को दो विशिष्ट खण्डों में विभक्त किया जा सकता है क्योंकि सभी तत्वों का एकात्मक एवं विशिष्ट स्वरूप पाया जाता है। सूक्ष्म रूप से अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि किसी भी तत्व समूह की विशिष्टता तथा एकात्मकता भी वास्तविकता से परे है क्योंकि प्रत्येक समूह के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के तत्व मिलते हैं जिनके पर्यवेक्षण, निरीक्षण तथा अध्ययन की अलग– अलग विधियाँ होती हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक समूह या वर्ग में कुछ ऐसे तत्व भी होते हैं जो अपने वर्ग के अन्य तत्वों की तुलना में दूसरे वर्ग के तत्वों से घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित होते हैं। उदाहरण के लिए मानव वर्ग के कृषिगत तत्वों का मानवेत्तर वर्ग के प्राकृतिक वनस्पति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध हैं, जबकि प्राकृतिक वनस्पति का अपने वर्ग के शैल–समूह अथवा कृषिगत पौधों का अपने वर्ग के अधिवास से क्षीण सम्बन्ध है। इसी प्रकार वायुमण्डलीय तत्वों के समग्र रूप, जलवायु तथा अन्य प्राकृतिक तत्वों की अध्ययन पद्धति भी अलग–अलग होती है। भूआकारिकी के लघु भूदृश्यों, लघुस्तरीय जलवायु, मिट्टी अथवा वनस्पति, सभी प्रकार के ऊपर न्यूनाधिक रूप में मानवीय क्रियाकलापों का प्रभाव दिखाई देता है। इस प्रकार किसी भी तत्व को सर्वथा मानव या मानवेत्तर निरपेक्ष नहीं कहा जा सकता। हेटनर के शब्दों में भूगोल तथा मानव किसी क्षेत्र के विशिष्ट स्वरूप के अभिन्न अंग हैं, वस्तुतः वे परस्पर रूप में इतने आबद्ध हैं कि उन्हें विलग करना असम्भव है। ऐसा ही विचार हरबर्टसन ने 1916 ई० में व्यक्त किया कि, 'हम एक मानव निवास्य को (उसकी सम्पूर्णता में से किसी एक अभिन्न अंग को निकाले बिना) इनके निवासियों से विलग नहीं कर सकते। एक सम्पूर्ण इकाई को मानव तथा पर्यावरण में विभक्त करना हत्या सदृश्य कार्य है। कोई जीवन्त इकाई विभक्त किये जाने के उपरान्त जीवन्त नहीं रह जाती है वरन मृत एवं अपूर्ण हो जाती है।' ब्लाश ने भी इसी आशय को व्यक्त करते हुए बताया है कि, मानव भूगोल की स्थिति किसी ऐसे भूगोल से भिन्न नहीं है जिसमें से मानवीय दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण तत्व विलग कर दिये गये हैं। वस्तुतः मात्र विशेषज्ञों के मस्तिष्क के अतिरिक्त ऐसे विभाजन को अन्यत्र कहीं कोई स्थान नहीं मिलता है। उपर्युक्त विवरण के आधार पर प्राकृतिक भूगोल पर दृष्टिपात करें तो वहाँ भी ऐसी ही दशा देखने को मिलती है। यह भी एकात्मक विषय न होकर कई विज्ञान विषयक तथ्यों का संग्रह है।

जिसमें प्रत्येक विषय का अलग लक्ष्य होता है। यही कारण है कि कुछ विद्वान प्राकृतिक भूगोल को अजैव तत्वों तक सीमित रखते हैं। इसीलिए जैव तत्वों के अध्ययन वाले विषय को अलग करके जीव भूगोल की संज्ञा दी गई है। इस प्रकार यहाँ भी जैव तथा अजैव अध्ययन के बीच द्वैतात्मक द्वन्द प्रारम्भ हो जाता है। इसी प्रकार अजैव तत्वों को विभाजित किया जाय तो अजैव खण्ड भी कई विलग तत्वों का एकात्मक रूप प्रकट करता है। इस प्रसंग में वुलरिज तथा ईस्ट ने स्थल, वायु तथा समुद्र को सर्वथा विलग तत्व मानते हुए इस पर बल दिया कि ये तीनों परस्पर रूप में सम्बन्धित हैं और इसी अन्तर्सम्बन्धता के आधार पर एकात्मक (एकसूत्रता) स्वरूप प्रदर्शित करते हैं। यह स्पष्ट है कि पृथ्वी तल को जीव या मानव का परिवास माना जाय तो भी इसके गुम्फित प्राकृतिक तत्व–समुच्चयके अध्ययन हेतु एक सार्थक एवं आवश्यक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है। करना असम्भव है। ऐसा ही विचार हरबर्टसन ने 1916 ई0 में व्यक्त किया कि,"हम एक मानव निवास्य को (उसकी सम्पूर्णता में से किसी एक अभिन्न अंग को निकाले बिना) इनके निवासियों से विलग नहीं कर सकते। एक सम्पूर्ण इकाई को मानव तथा पर्यावरण में विभक्त करना हत्या सदृश्य कार्य है। कोई जीवन्त इकाई विभक्त किये जाने के उपरान्त जीवन्त नहीं रह जाती है वरन् मृत एवं अपूर्ण हो जाती है।" ब्लाश ने भी इसी आशय को व्यक्त करते हुए बताया है कि, "मानव भूगोल की स्थिति किसी ऐसे भूगोल से भिन्न नहीं है जिसमें से मानवीय दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण तत्व विलग कर दिये गये हैं। वस्तुतः मात्र विशेषज्ञों के मस्तिष्क के अतिरिक्त ऐसे विभाजन को अन्यत्र कहीं कोई स्थान नहीं मिलता है।" करें तो वहाँ भी ऐसी ही दशा मानवेत्तर तत्वों के बीच मिलने वाली दशाओं को मानवकृत

तत्वों में भी देखा जाता है।

मानवीय क्रियाकलापों से उद्भूत सभी तत्वों में भी विलगाव की समस्या प्रकट होती है जैसा कि ए०एच० क्लार्क (1954ई0) ने में स्पष्ट किया है कि एक आर्थिक भूगोल अनेक विषयों का मिश्रित रूप है जिसमें विषयगत विशेषीकरण की प्रवृत्ति मिलती है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि अब इसके स्वरूप को एक समग्र या एकात्मक विषय की तरह देखना संदेहास्पद प्रतीत होने लगा है। उदाहरण के लिए, मानवोपयोगी जैव पदार्थों से उत्पादित मिट्टी जैसे तत्व का सम्बद्धता सूत्र कृषि भूगोल (मानवेत्तरतत्व) का सम्बन्ध मिट्टी, जलवायु, ढाल प्रवणता, जलप्रवाह, आदि दशाओं से होता है किन्तु कृषि भूगोल तथा खनिज उत्पादन में कोई अन्तर्सम्बद्धता नहीं मिलती है। अतएव कृषि तथा खनिज उत्पादन दोनों को आर्थिक भूगोल में एकात्मक रूप में इस अर्थ में दिखाना कि दोनों कार्य मानव–आजीविका के आधार हैं, एक काल्पनिक आधार प्रस्तुत करता है तथा उसमें कोई ठोस आधार नहीं होता है। इसी प्रकार दूसरा उदाहरण परिवहन तत्व का लिया जा सकता है, जो एक आर्थिक कार्य के रूप में आर्थिक भूगोल का अभिन्न अंग माना जाता है। वस्तुओं, व्यक्तियों तथा विचारों का प्रवाह न केवल आर्थिक वरन् सम्पूर्ण मानवीय क्रियाकलाप से सम्बन्धित होता है जिसके कारण इसे परिसंचरण कहते हैं। यह सम्पूर्ण भूगोल का एक विशिष्ट अंग होता है न कि मात्र आर्थिक भूगोल की एक शाखा है। प्राकृतिक जगत में परिवहन का साधन नदियां एवं सागर होते हैं जबकि मानव जगत में सड़क, रेल आदि। दोनों ही समान तंत्र का निर्माण करते हैं जिनमें ऊर्जा का प्रवाह होता है। ऊर्जा के आयतन में प्रसरण एवं संकुचन के अनुसार दोनों प्राकृतिक तथा मानव तंत्रों में भी परिवर्तन होता रहता है। इसी अवधारणा के आधार पर उलमैन ने भूगोल को क्षेत्रीय अन्तर्क्रिया का विज्ञान कहा है।

इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि–

(1) भूगोल में अध्ययन किये जाने वाले प्राकृतिक अथवा मानवकृत तत्व या तत्व समिश्र में क्षीण एकात्मकता और प्रखर वैभिन्नता पाई जाती है। इस प्रकार भूगोल में तत्व समूह में एकात्मकता का अध्ययन युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता है।

(2) प्राकृतिक अथवा मानव जगत में अनेक ऐसे तत्व हैं जिनका भौगोलिक संदर्भ में अपने वर्ग के अन्य तत्वों से क्षीण सम्बन्ध होता है जबकि दूसरे वर्ग के तत्वों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। अतएव आन्तरिक सम्बद्धता के आधार पर किसी वर्ग विशेष के अध्ययन को वास्तविक भूगोल मानना भ्रामक है और (3) पृथ्वी तल पर सम्पूर्ण तत्वों में एकात्मकता एवं एकसूत्रता दिखायी देती है जहाँ न केवल थल, वायु, जल, जन्तु एवं पादप ही अपितु गृह, खेत, मार्ग तथा अन्य अमूर्त तत्वों का संग्रथित एवं गुम्फित समुच्चय मिलता है। इस समष्टि में से मानव तथा उसके क्रियाकलापों को बाहर कर देने के उपरान्त उसका कुछ न कुछ अंश विनष्ट हो जाता है। इस प्रकार प्राकृतिक बनाम मानव भूगोल का द्वैतवाद संकाल्पनिक अथवा ऐतिहासिक, दोनों कसौटियों पर निरर्थक सिद्ध होता है।

भूगोल के प्रागैतिहासिक काल में यूनानी, रोमन और अरब भूगोलविदों के लेखों में भी अस्पष्ट और दुर्बोध द्वैतवाद मिलता है। हेरोडोटस ने अपने समय की प्रमुख जातियों, राष्ट्रीयताओं तथा उनके भौतिक परिवेश के वर्णन पर बल दिया था। स्ट्रैबो ने प्रादेशिक वर्णन पर ध्यान केन्द्रित किया था जबकि टालेमी ने गणितीय भूगोल पर अधिक महत्व दिया। हिप्पोक्रेटस, अरस्तु, जेनोफोन, आर्यभट्ट, अलमसूदी और इब्रखाल्दून जैसे विद्वानों ने भौतिक पर्यावरण का मानव की जीवन शैली पर पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या किया। भूगोल में द्वैतवादी विचारधारा यूरोप में पुनर्जागरण काल के उत्तरार्द्ध में स्पष्ट रूप में दिखाई देती है। उसी काल से भूगोल भी कई पारस्परिक विशिष्ट शाखाओं में विभाजित दिखाई देता है। भूगोल में यह द्विभाजन अथवा प्रशाखन तर्कसंगत भी दिखाई देता है। यद्यपि समय के साथ प्राचीन द्विभाजन के साथ–साथ नवीन द्विभाजनों की विचारधारायें भी उभरकर आ गई हैं। कुछ महत्वपूर्ण द्वैतवाद की प्रमुख द्विभाजन संकल्पनायें निम्न प्रकार हैं–

7.6 भौतिक बनाम मानव भूगोल

पारंपरिक रूप से भूगोल को दो वर्गों में विभक्त किया जाता है भौतिक भूगोल और मानव भूगोल। हार्टशोर्न ने भूगोल के इस द्वैत को असंगत बताया है। वास्तव में भौतिक या प्राकृतिक तत्व और मानवीय तत्व एक–दूसरे से बिल्कुल अलग–अलग और भिन्न नहीं हैं। वास्तव में आज से लगभग 150 वर्ष पूर्व तक भौतिक भूगोल (या प्राकृतिक भूगोल) का जो अर्थ था वह आज नहीं है। उसे कई संदर्भों में प्रयोग किया गया है। अतः 'भौतिक भूगोल' के

स्थान पर प्राकृतिक भूगोल का प्रयोग अधिक सार्थक प्रतीत होता है। 'भौतिक भूगोल शब्दावली उत्पत्ति अठारहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध जर्मन भूगोलवेत्ता वारेनियस के वर्गीकरण के परिणामस्वरूप हुई थी। परवर्ती वर्षों में इसका प्रयोग कांट, हम्बोल्ट, रिटर आदि प्रख्यात जर्मन भूगोलवेत्ताओं ने भी किया। वारेनियस ने एक पुस्तक लिखी थी जिसका नाम था 'सामान्य भूगोल' (जियोग्राफी जर्नलिस)। इसे आज का क्रमबद्ध भूगोल या वर्गीकृत भूगोल कहा जा सकता है। हम्बोल्ट ने भौतिक भूगोल का प्रयोग भौतिकी जैसे विज्ञान के नियमों के संदर्भ में ही किया था जिसका आशय वारेनियस के 'सामान्य भूगोल' के लगभग 'हम्बोल्ट के अनुसार, 'भौतिक भूगोल' (विश्व की भौतिकी) की प्रमुख समस्या उन सम्बंधों के सिद्धान्तों को निश्चित करना है जो जीवन की दृश्य घटनाओं का सम्बंध अजैव प्रकृति से करते हैं। कांट और हम्बोल्ट दोनों ही भौतिक भूगोल में मनुष्य को सम्मिलित करते थे जो प्रकृति की एकता के लिए अनिवार्य है। परवर्ती दशकों में लेखकों ने हम्बोल्ट का ही अनुसरण किया तथा भौतिक भूगोल में मानव जातियों का अध्याय भी सम्मिलित किया। किन्तु बीसवीं शताब्दी में मनुष्य को भौतिक भूगोल से अलग कर दिया गया और उसके लिए मानव भूगोल नामक नयी शाखा सृजित की गयी।

बुलरिज एवं ईस्ट ने लिखा है कि "भूगोल का अस्तित्व एक सेतु के रूप में है जो दोनों पक्षों को जोड़ता है। जब भी और जिन कारणों से भी विषय के इन पृथक् पक्षों पर बल दिया जाता है, मौलिक उद्देश्य के विपरीत है। मैकिण्डर (1887) ने भी इन दोनों पक्षों के एकीकरण पर बल दिया था। किन्तु भूगोल की सेतु की संकल्पना के परिणाम स्वरूप भूगोल में द्वैत किसी न किसी रूप में जीवित रहा है। 1859 ई० को भौगोलिक इतिहास में एक विभाजक वर्ष माना जाता है क्योंकि इसी वर्ष दो महान जर्मन भूगोलवेत्ताओं हम्बोल्ट और रिटर का निधन हो जाने पर शास्त्रीय काल का अंत हो गया और इसी वर्ष डार्विन की पुस्तक जीवों की उत्पत्ति' प्रकाशित हुई जिससे वैज्ञानिक चिंतन और दृष्टिकोण में तीव्रता से परिवर्तन हुआ। परवर्ती भूगोलवेत्ताओं में वैचारिक मतभेद उत्पन्न हुए। भूगोलवेताओं के एक वर्ग ने भूगोल को प्राकृतिक विज्ञान के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया तो अन्य वर्ग ने भूगोल में मानवीय तत्वों के अध्ययन पर बल दिया। फ्रोबेल, पेशेल, गरलैण्ड आदि भूगोलवेत्ताओं ने भूगोल को प्राकृतिक तत्वों का अध्ययन करने वाला विषय बताया और रिटर की तुलनात्मक अध्ययन विधि की आलोचना की।

(1882 में जर्मन भूगोलवेत्ता फ्रेडरिक रैटजेल की पुस्तक एन्थ्रोपोज्योग्राफी (मानव भूगोल) प्रकाशित हुई जिसमें मानवीय तत्वों के क्रमबद्ध अध्ययन को सम्मिलित किया गया था। रैटजेल ने मनुष्य के वितरण का अध्ययन प्राकृतिक पर्यावरण के संदर्भ में किया था। रिटर के समकालीन जर्मन भूगोलवेत्ता रिचथोफेन ने भौतिक तथ्यों का अध्ययन प्रादेशिक आधार पर प्रस्तुत किया था।

भौतिक भूगोल और मानव भूगोले का स्पष्ट द्विभाजन बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ यद्यपि इस प्रवृत्ति का आरंभ उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही हो गया था। बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशक से बाइडल डी ला ब्लाश, ब्रुन्श, डिमांजियां आदि फ्रांसीसी भूगोलवेत्ताओं ने मानवीय पक्षों तथा क्रिया–कलापों के अध्ययन पर अधिक बल दिया और मानव भूगोल की पुस्तकें लिखीं। उन्होंने मानव भूगोल के विषय–क्षेत्र का भी निर्धारण किया। इसके परिणामस्वरूप भूगोल का विषय क्षेत्र दो भागों में विभक्त हो गया (1) भौतिक भूगोल, और (2) मानव भूगोल। शैक्षिक जगत् में विभिन्न संकायों में स्थान प्रदान करने तथा अध्ययन की सुविधा के दृष्टिकोण से भूगोल के प्राकृतिक और मानवीय दोनों पक्षों के गहन अध्ययन के लिए ही भूगोल का यह द्विभाजन किया गया है।

(1) भौतिक भूगोल

यह भूगोल की एक प्रमुख शाखा है जिसमें पृथ्वी के भौतिक (गैर–मानवीय) तत्वों का भौगोलिक अध्ययन सम्मिलित होता है। इसके अन्तर्गत उन समस्त भौतिक तत्वों का अध्ययन सम्मिलित होता है जो प्राकृतिक पर्यावरण का निर्माण करते हैं। भौतिक भूगोल में स्थलमंडल, जलमंडल तथा वायुमंडल के भौतिक तत्वों का क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है। भूआकृति विज्ञान, जलवायु विज्ञान, समुद्र विज्ञान, मौसम विज्ञान, जैव भूगोल, पर्यावरण भूगोल आदि भौतिक भूगोल की महत्वपूर्ण शाखाएं हैं।

(1) भूआकृति विज्ञान के अन्तर्गत भूआकृतियों की उत्पत्ति एवं विकास तथा भूआकृतिक प्रक्रमों, अनाच्छादन (अपक्षय एवं अपरदन) आदि का विश्लेषण किया जाता है।

(2) जलवायु विज्ञान के अन्तर्गत जलवायविक तत्वों (तापमान, आर्द्रता एवं वर्षा, वायुदाब आदि) की उत्पत्ति एवं संघटन तथा प्राकृतिक पर्यावरण पर उनके प्रभावों और संबंधों का अध्ययन किया जाता है।

(3) समुद्र विज्ञान के अन्तर्गत महासागरीय जल की प्रकृति (घनत्व, तापमान, लवणता आदि), जल की गहराई

एवं गति, महासागरीय नितल की बनावट, महासागरीय जल की वनस्पतियों तथा प्राणियों के अध्ययन को सम्मिलित किया जाता है।

(4) जैव भूगोल जीवमंडल के जीवों (पादपों एवं प्राणियों) के वितरण सम्बंधी क्षेत्रीय भिन्नताओं का अध्ययन किया जाता है।

(5) पर्यावरण भूगोल के अन्तर्गत पारिस्थितिक तंत्र के विभिन्न संघटकों की प्रकृति, कार्यों, पारस्परिक अंतःक्रिया आदि का अध्ययन किया जाता है। भौतिक भूगोल की विभिन्न शाखाओं का विभाजन मुख्यतः क्षेत्रीय विशेषताओं के आधार पर किया जाता है किन्तु ध्यातव्य है कि स्थलमंडल, जलमंडल, वायुमंडल, जीवमंडल आदि एक दूसरे से पूर्णतः भिन्न और अलग नहीं हैं बल्कि वे परस्पर घनिष्ट रूप से सम्बंधित हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि भौतिक भूगोल में सम्बद्धता का अभाव पाया जाता है। किर्क ब्रायन के शब्दों में, "भौतिक भूगोल के अन्यान्य तत्वों में सम्बद्धता का अभाव है। वह विशिष्ट विज्ञानों का समूह है जिसमें प्रत्येक का अध्ययन उसके लिए ही किया जाता है।"

(2) मानव भूगोल

मानव भूगोल के अन्तर्गत मानव तथा उसके पर्यावरण के मध्य स्थापित पारस्परिक सम्बंधों और उससे उत्पन्न भूदृश्यों एवं तथ्यों का अध्ययन किया जाता है। इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण मानवीय क्रियाओं तथा गुणों का भौगोलिक अध्ययन सम्मिलित होता है। अध्ययन तत्वों के आधार पर मानव भूगोल की अनेक शाखाओं एवं उप–शाखाओं का विकास हुआ है। आर्थिक भूगोल, अधिवास भूगोल, जनसंख्या भूगोल, राजनीतिक भूगोल, सांस्कृतिक भूगोल, सामाजिक भूगोल, ऐतिहासिक भूगोल आदि मानव भूगोल की प्रमुख शाखाएं है।

(1) आर्थिक भूगोल के अन्तर्गत मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं का भौगोलिक अध्ययन किया जाता है। इसमें विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों (मृदा, जल, जैव तत्व, ऊर्जा, खनिज आदि), आर्थिक क्रियाओं (आखेट, मत्स्याखेट, वनोद्योग, पशुचारण एवं पशुपालन, कृषि, निर्माण उद्योग, परिवहन, संचार, व्यापार, वाणिज्य आदि) के साथ ही अन्य विविध आर्थिक पक्षों तथा संगठनों का अध्ययन सम्मिलित होता है। संसाधन भूगोल, कृषि भूगोल, औद्योगिक भूगोल, वाणिज्य भूगोल, परिवहन भूगोल आदि आर्थिक भूगोल की प्रमुख शाखाएं हैं।

(2) अधिवास भूगोलके अन्तर्गत ग्रामीण और नगरीय अधिवासों काअध्ययन सम्मिलित होता है। ग्रामीण अधिवास भूगोल और नगरीय भूगोल इसकी दो उपशाखाएं हैं।

(3) जनसंख्या भूगोल में जनसंख्या के वितरण, घनत्व, संघटन एवं स्थानांतरण, जनसंख्या परिवर्तन, जनसंख्या–संसाधन सम्बंध, जनसंख्या समस्या आदि का अध्ययन किया जाता है।

(4) राजनीतिक भूगोल में राष्ट्र देशों की सीमा, विस्तार, विभिन्न घटकों, उपविभागों, शासित भूभागों, आंतरिक तथा बाह्य राजनीतिक सम्बंधों आदि का अध्ययन सम्मिलित होता है।

(5) सांस्कृतिक भूगोल के अन्तर्गत सांस्कृतिक क्रियाओं, सांस्कृतिक समूहों और उनके तथा पर्यावरण के मध्य होने वाली अंतःक्रियाओं आदि का अध्ययन किया जाता है।

(6) सामाजिक भूगोल के अन्तर्गत सामाजिक वर्गों, सामाजिक प्रक्रियाओं, सामाजिक विशेषताओं, सामाजिक संगठनों, सामाजिक समस्याओं आदि का अध्ययन सम्मिलित होता है।

(7) ऐतिहासिक भूगोल में किसी प्रदेश के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक विकास के अनुक्रम, विकास प्रक्रिया, विकास अवस्थाओं आदि का क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है। मानव भूगोल के विभिन्न तत्व परस्पर घनिष्ट रूप से सम्बंधित और अन्योन्याश्रित होते हैं अतः विभिन्न उपशाखाओं के रूप में उनके अध्ययन को पृथक् करना भौगोलिक अध्ययन की पूर्णता के विपरीत है। उल्लेखनीय है कि धर्म, भाषा, प्रजाति आदि का अध्ययन सामाजिक भूगोल तथा। सांस्कृतिक भूगोल के साथ ही जनसंख्या भूगोल में भी किया जाता है। ग्रामीण और नगरीय अधिवासों को एक–दूसरे से स्पष्टतः पृथक् नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार कृषि, उद्योग, संसाधन, परिवहन, व्यापार आदि क्रियाएं एक–दूसरे से घनिष्ट रूप से सम्बंधित हैं जिनको अलग–अलग अध्ययन विषयों के अन्तर्गत रखना उचित एवं तार्किक नहीं प्रतीत होता है।

भौतिक भूगोल और मानव भूगोल का द्विभाजन असंगत–

भौतिक भूगोल और मानव भूगोल का द्विभाजन असंगत भूगोल के प्राकृतिक (भौतिक) और मानवीय तत्वों में कोई वास्तविक पृथकत्व नहीं है क्योंकि दोनों परस्पर सम्बंधित और पार्थिव हैं। मनुष्य की प्रत्येक रचना खेत, गृह, बस्ती आदि प्राकृतिक तथा। संस्कृतिक तत्वों के सम्मिश्रण को प्रदर्शित करती है। हार्टशोर्न के अनुसार, वास्तव में भूगोल का एक एकीकृत क्षेत्र है जिसके कुछ लक्षणों पर प्रकृति का तथा अन्य पर मनुष्य का अधिक प्रभाव दिखायी पड़ता है। इसी विचार को हेटनर ने भी व्यक्त किया था। हेटनर ने क्षेत्रीय एकता में प्रकृति और मनुष्य को अभिन्न माना था। इसी विचार की पुष्टि करते हुए हरबर्टसन (1916) ने लिखा था कि 'हम किसी आवासित क्षेत्र को उसके निवासियों से पृथक् नहीं कर सकते। सम्पूर्ण को मनुष्य तथा पर्यावरण द्वारा अलग करना घोर अपराध है। विच्छेदन कर दिये जाने पर कोई जीवधारी पूर्ण नहीं रह सकता, वह मृतक और अपूर्ण हो जाता है।' हम्बोल्ट और रिटर की संकल्पना इस तथ्य पर आधारित थी कि समस्त पार्थिव विशेषताएं (भू–विशेषताएं) अविभाज्य हैं। उच्चावच, ढाल, वर्षा, तापमान, वृक्ष, पशु, मनुष्य, गृह, गांव, नगर, कारखाने, व्यापारिक प्रतिष्ठान, सड़कें, राज्य, संस्कृति, समाज आदि पार्थिव विशेषताओं के प्रमुख वर्गीकरण नहीं है बल्कि व्यक्तिगत तथ्य हैं। ऐसे तत्वों की सूची असीमित हो सकती है, अतः इनके अध्ययन की सुविधा के लिए उन्हें कुछ वर्गों में विभाजित करना आवश्यक हो जाता है।

जिन प्राकृतिक (भौतिक–जैविक) तत्वों का अध्ययन भौतिक भूगोल में किया जाता है उनका सम्बंध मानव जीवन तथा मानवीय क्रियाओं से भी है। मानवीय क्रियाओं पर उच्चावच, जलवायु, जलाशय, मिट्टी, खनिज पदार्थ, प्राकृतिक वनस्पति, जीव जन्तु आदि का प्रभाव पाया जाता है। अतः मानव भूगोल के तत्वों का अध्ययन तथा विश्लेषण प्राकृतिक तत्वों के ज्ञान के बिना सही ढंग से नहीं किया जा सकता है। इतना ही नहीं कुछ भौगोलिक तत्व ऐसे होते हैं जिनका स्पष्ट द्विभाजन करना अत्यंत कठिन है। उदाहरण के लिए वृक्षों एवं घासों (वनस्पतियों) का अध्ययन भौतिक भूगोल में प्राकृतिक वनस्पति के रूप में और मानव भूगोल में बागवानी एवं कृषि के रूप में किया जाता है। मिट्टी की रचना में प्राकृतिक तत्वों और मनुष्य दोनों का हाथ होता है। इसीलिए मिट्टी का अध्ययन भौतिक भूगोल और मानव भूगोल दोनों में किया जाता है, यद्यपि अध्ययन के दृष्टिकोण में अंतर पाया जा सकता है।

यदि हम जलाशय का उदाहरण लें तो इसका द्विभाजन भी सुगम नहीं है। केवल अध्ययन की सुविधा के लिए ही समुद्रों, नदियों, झीलों आदि को प्राकृतिक मान लिया जाता है और मानव निर्मित तालाबों, नहरों तथा अन्य जलाशयों का अध्ययन मानव भूगोल के अन्तर्गत किया जाता है। इसी प्रकार खनिज पदार्थों का अध्ययन भौतिक भूगोल का विषय माना जाता है जबकि एक संसाधन के रूप में खनिज पदार्थों के संचय, उत्पादन, उपभोग आदि का अध्ययन मानव भूगोल में किया जाता है। इन उदाहरणों से विदित होता है कि भौगोलिक तत्वों के द्विभाजन से भूगोल विषय की पूर्णता समाप्त हो जाती है और इस प्रकार का अध्ययन एकांगी ही होता है। भौतिक में भूगोल और मानव भूगोल के द्वैत के पक्ष में तर्क की अरभ बीसबी शताब्दी के प्रारंभिक दशकमें ही हो गया था। ब्लाश, बूंश, डिमांजियां आदि फ्रांसीसी भूगोलवेत्ताओं ने भूगोल में मानवीय तत्वों के अध्ययन की आवश्यकता पर अधिक बल दिया जिसके परिणामस्वरूप भूगोल में द्विधात्व या द्वैतवाद के विचार का उदय हुआ। इसके पश्चात् विशेषरूप से बीसवीं शताब्दी के मध्य से अन्य विज्ञानों की भाँति भूगोल में भी विशिष्टीकरण की लहर चल पड़ी और विभिन्न भौगोलिक तत्वों के सूक्ष्म अध्ययन की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा। किसी तत्व या क्षेत्र विशेष के विषय में विस्तृत जानकारी तथा सूक्ष्म अध्ययन के लिए विषय और क्षेत्र का लघु खण्डों में वर्गीकरण आवश्यक हो जाता है। वर्तमान समय में समग्र के अध्ययन के लिए आवश्यक है कि विभिन्न खण्डों के विस्तृत अध्ययन के पश्चात् उनके संयोजन द्वारा समग्र का अध्ययन पूर्ण किया जाय। इस प्रकार बढ़ते विशिष्टीकरण और सूक्ष्म अध्ययन के लिए भूगोल का भौतिक भूगोल और मानव भूगोल में द्विभाजन को उपयुक्त माना जा सकता है। यही कारण है कि आज शोध का विषय सामान्यतः सम्पूर्ण भूगोल, भौतिक भूगोल या मानव भूगोल के अन्तर्गत नहीं बल्कि उनकी उपशाखाओं–प्रशाखाओं के अन्तर्गत किये जाते हैं। इसलिए वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भौतिक भूगोल और मानव भूगोल के द्विभाजन को उपयोगी और सार्थक माना जा सकता है।

शैक्षिक जगत् में प्राकृतिक तथा सामाजिक विज्ञानों में यथोचित स्थान पाने के लिए भूगोल का उपर्युक्त विभाजन उपयोगी है। भौतिक भूगोल प्राकृतिक विज्ञानों – भौतिकी, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान आदि के अधिक निकट है जबकि मानव भूगोल सामाजिक विज्ञानों – मानव शास्त्र, इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीतिविज्ञान, समाजशास्त्र, जनसंख्या अध्ययन आदि के अधिक समीप है। अतः भौतिक भूगोल और मानव भूगोल का द्विधात्व

निरर्थक नहीं है बल्कि समायानुकूल है। भौतिक भूगोल और मानव भूगोल में भूगोल का द्विभाजन और उनके उपवर्गों में पुनर्विभाजन अधिक पुराना नहीं है। यह बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों की घटना है। हार्टशोर्न के अनुसार इसकी उत्पत्ति भूगोल में आंतरिक आवश्यकता से नहीं हुई है बल्कि उस दार्शनिक सोच से हुई है जिसने मनुष्य को शेष प्रकृति से पृथक् करके और यथासंभव दृश्य घटनाओं (भूदृश्यों) के पृथक् अध्ययन का प्रयत्न किया। मानवीय प्रभाव से मुक्त दृश्य घटनाओं का विचार प्राकृतिक नियमों की रचना और प्रयोग में सुविधा जनक होता है। भूगोल की प्रतियोगिता वर्गीकृत (क्रमबद्ध) विज्ञानों से है। भूगोल वर्गीकृत विज्ञानों से तभी मुकाबला कर सकता है जब वह अपनी सभी शाखाओं में अपने विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति कर सके। इसलिए आवश्यक है कि भूगोल विभिन्न भू–तत्वों के अंतर्सम्बंधों का प्रेक्षण और व्याख्या करने में समर्थ हो। इन विशेषताओं में कुछ थोड़ा–बहुत मानव मुक्त हैं तो कुछ की उत्पत्ति मानवीय क्रियाओं द्वारा हुई है। अतः सामान्यतः कोई भी भूतत्व या उसकी विशेषता शुद्ध रूप से'प्राकृतिक' अथवा शुद्ध रूप से 'मानवीय' नहीं हो सकती। हार्टशोर्न के शब्दों में, 'भू–विशेषताओं के अंर्तसंबंधों के अध्ययन में भूगोल उन विशेषताओं का उतना ही अध्ययन करता है जहाँ तक वे उसके अंतर्संबंधों की व्याख्या करते हैं चाहे वे प्राकृतिक नियम हो अथवा सामाजिक नियम। उन्होंने विषय के सुदृढ़ विकास तथा विद्यार्थियों के लिए विश्व–बोध की दृष्टि से 'प्राकृतिक विज्ञान' और 'सामाजिक विज्ञान' के विभाजन को ही दुर्भाग्यपूर्ण बताया है।

पिछले पाँच दशकों में भूगोल में बढ़ते विशिष्टीकरण के परिणामस्वरूप विभिन्न प्राकृतिक एवं सामाजिक विज्ञानों में प्रयुक्त सिद्धान्तों तथा नियमों का इतना अधिक अंधानुकरण किया जाने लगा है कि भूगोल भूतल के एकीकृत अध्ययन के अपने मूल उद्देश्य से काफी हट गया है। इस प्रकार सभी विज्ञानों की जननी कहे जाने वाले भूगोल विषय को अपने अस्तित्व की रक्षा कर पाना कठिन होता जा रहा है। इसके लिए आवश्यक है कि भूगोल के द्विभाजन के विपरीत इसके समग्र स्वरूप को प्रतिष्ठित करने पर बल दिया जाय।

7.7 क्रमबद्ध बनाम प्रादेशिक भूगोल

क्रमबद्ध भूगोल और भूगोल के द्विभाजन का इतिहास बहुत पुराना है किन्तु इसका वास्तविक विकास उन्नीसवीं शताब्दी के भूगोलवेत्ताओं द्वारा सम्भव हुआ। आज से 2000 वर्ष पूर्व यूनानी तथा रोमन भूगोलवेत्ताओं के एक वर्ग का मानना था कि भूगोल का मुख्य उद्देश्य विभिन्न स्थानों तथा देशों के सम्बंध में संगठित सूचनायें एकत्रित करना था जबकि दूसरा वर्ग भू–माप, नदियों के स्रोतों की खोज, जलवायु कटिबंधों के निर्धारण आदि पर बल देता था। सत्रहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध जर्मन भूगोलवेत्ता वारेनियस ने भूगोल को दो खण्डों में विभाजित किया था–(1) सामान्य भूगोल, और (2) विशिष्ट भूगोल। वारेनियस के अनुसार 'सामान्य भूगोल' विज्ञान का अंग है और पृथ्वी का सामान्य अध्ययन करता है। यह सम्पूर्ण पृथ्वी से सम्बंधित है और उसके विभिन्न क्षेत्रों तथा दृश्य घटनाओं या तथ्यों का वर्णन करता है। वह भूगोल की आधार शिला है और सामान्य नियमों का प्रतिपादन करता है। उन्होंने व्यक्तिगत देशों के अध्ययन को 'विशिष्ट भूगोल' का अंग बताया था और स्वयं भी जापान तथा थाईलैण्ड के मानवीय पक्षों का अध्ययन किया था। वारेनियस द्वारा प्रयुक्त शब्दावली और प्रयोग का अन्तर वास्तविक अर्थ में तत्वों और क्षेत्रों के अध्ययन से ही सम्बंधित है। ब्लाश के अनुसार वारेनियस की आस्था भूगोल के द्विभाजन में नहीं थी। क्रमबद्ध भूगोल में प्रचलित क्रमबद्ध विज्ञानों से सार्वभौमिक एवं जननिक अवधारणाओं की खोज करने की प्रेरणा प्राप्त हुई और दूसरी ओर प्रादेशिक भूगोल कभी भी विशिष्ट अध्ययन की परिधि से बाहर न निकल सका। संक्षेप में कहा जा सकता है कि सामान्य या क्रमबद्ध भूगोल विश्व का एक इकाई के रूप में अध्ययन करता है फिर भी इसे भौतिक भूगोल तक सीमित रखा गया जिसे प्राकृतिक नियमों द्वारा प्रतिपादित किया जाता है। इसके विपरीत विशिष्ट भूगोल में मुख्यतः विशिष्ट देशों तथा विश्व–प्रदेशों के वर्णन को निर्दिष्ट किया जाता है। विशिष्ट भूगोल में नियमों को प्रतिपादित करना कठिन होता है क्योंकि इसमें मानव समुदाय सम्मिलित होता है जिसके आचरण का पूर्वानुमान करना सम्भव नहीं होता है तथापि विशिष्ट भूगोल के अध्ययन से परिकल्पनाओं तथा संरचनात्मक विचारों के प्रतिपादन में सहायता मिलती है।

अठारहवीं शताब्दी में कांट और उन्नीसवीं शताब्दी में हम्बोल्ट ने सामान्य के स्थान पर से भौतिक का प्रयोग करके पहले से अधिक भ्रांति उत्पन्न कर दी। रिचथोफेन के प्रभाव से उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक जर्मन भूगोलवेत्ता इस बात पर लगभग एकमत हो गये थे कि भूगोल में तत्वों और क्षेत्रों दोनों का अध्ययन समान रूप से महत्वपूर्ण है। जर्मनी में भूगोल को 'लैण्डशाफ्ट' का अध्ययन माना गया और उसका अनेक अर्थों में प्रयोग किया गया। लैण्डशाफ्ट का एक अर्थ प्रदेश या सादृश्य भूमि लगाया गया तथा प्रादेशिक भूगोल को भूगोल का आधार बताया गया और सामान्य (वर्गीकृत) भूगोल को गौण स्थान दिया गया। बीसवीं शताब्दी में फ्रांसीसी भूगोलवेत्ताओं

ब्लाश, बूंश, डिमांजिया, ब्लाश आदि ने प्रादेशिक भूगोल को अधिक महत्व प्रदान किया और वहाँ प्रादेशिक अध्ययनों की भरमार सी हो गयी। हार्टशोर्न के अनुसार, 'वर्गीकृत (क्रमबद्ध) और प्रादेशिक भूगोल के दीर्घकालीन विवाद और बदलते हुए।दृष्टिकोण से स्पष्ट है कि इन दोनों का विकास लगातार और अन्तर्संबंधित रूप से हुआ है।

(1) क्रमबद्ध भूगोल–

भौगोलिक अध्ययन के इस उपागम के अन्तर्गत अध्ययन क्षेत्र को एक पूर्ण इकाई मानकर उसके विभिन्न भौगोलिक तत्वों या प्रकरणों का क्रमिक रूप से अध्ययन किया जाता है। इसे विषयगत उपागम के नाम से भी जाना जाता है। क्रमबद्ध भूगोल में अध्ययन क्षेत्र की स्थिति एवं विस्तार, उच्चावच, संरचना, अपवाह, जलवायु, जलाशय, मिट्टी एवं खनिज, प्राकृतिक वनस्पति, जीवजन्तु आदि प्राकृतिक तत्वों तथा विविध मानवीय क्रियाओं आखेट, पशुपालन, कृषि, खनन, विनिर्माण उद्योग, व्यापार, परिवहन, विविध सेवाओं आदि के साथ ही जनसंख्या, मानव अधिवास आदि का क्रमशः अध्ययन किया जाता है। क्रमबद्ध विधि से किसी पूर्ण क्षेत्रीय इकाई के अन्तर्गत किसी भी एक विषय या विषय समूह का भी क्रमबद्ध अध्ययन किया जा सकता है। क्रमबद्ध भूगोल की मौलिक विशेषता यह है कि यह विषय या प्रकरण प्रधान होता है।

क्रमबद्ध रीति से भौगोलिक अध्ययन के लिए लघु, मध्यम अथवा दीर्घ किसी भी क्षेत्रीय इकाई का चयन आवश्यकता एवं सुविधानुसार किया जा सकता है क्योंकि इस उपागम पर सामान्यतः क्षेत्रीय इकाई की मापनी का कोई विशिष्ट प्रभाव नहीं होता है। भौगोलिक अध्ययन का क्षेत्र सम्पूर्ण भूमंडल (विश्व), महाद्वीप, देश अथवा कोई अन्य क्षेत्रीय इकाई हो सकता है किन्तु अध्ययन की विधि क्रमबद्ध ही होनी चाहिए। इसे उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

क्रमबद्ध भूगोल में प्रचलित क्रमबद्ध विज्ञानों से सार्वभौमिक एवं जननिक अवधारणाओं की खोज करने की प्रेरणा प्राप्त हुई और दूसरी ओर प्रादेशिक भूगोल कभी भी विशिष्ट अध्ययन की परिधि से बाहर न निकल सका। संक्षेप में कहाजा सकता है कि सामान्य या क्रमबद्ध भूगोल विश्व का एक इकाई के रूप में अध्ययन करता है फिर भी इसे भौतिक भूगोल तक सीमित रखा गया जिसे प्राकृतिक नियमों द्वारा प्रतिपादित किया जाता है। इसके विपरीत विशिष्ट भूगोल में मुख्यतः विशिष्ट देशों तथा विश्व–प्रदेशों के वर्णन कोनिर्दिष्ट किया जाता है। विशिष्ट भूगोल में नियमों को प्रतिपादित करना कठिन होता है क्योंकि इसमें मानव–समुदाय सम्मिलित होता है जिसके आचरण का पूर्वानुमान करना सम्भव नहीं होता है तथापि विशिष्ट भूगोल के अध्ययन से परिकल्पनाओं तथा संरचनात्मक विचारोंमें मिलती है।

(2) प्रादेशिक भूगोल–

यह भौगोलिक अध्ययन का एक प्रमुख उपागम (अध्ययन विधि) है जिसमें किसी सम्पूर्ण क्षेत्रीय इकाई के विभिन्न खण्डों या प्रदेशों का अध्ययन पृथक–पृथक किया जाता है। यह प्रदेशों (उपविभागों) का भूगोल है। उदाहरणार्थ, जब विश्व को विभिन्न प्रदेशों में विभक्त करके उनका अलग–अलग भौगोलिक अध्ययन किया जाता है, तब वह विश्व का प्रादेशिक भूगोल कहलाता है। इसी प्रकार किसी महाद्वीप यथा एशिया का भौगोलिक अध्ययन उसके विभिन्न प्रदेशों के अनुसार किये जाने पर वह एशिया का प्रादेशिक भूगोल होता है। सम्पूर्ण भारत को एक इकाई मानकर उसके विभिन्न उपादानों का क्रमशः अध्ययन भारत का क्रमबद्ध अध्ययन होता है किन्तु जब इसके विभिन्न प्रदेशों या राज्यों का अलग–अलग भौगोलिक अध्ययन किया जाता है तब उसे भारत का प्रादेशिक भूगोल कहते हैं। प्रादेशिक अध्ययन प्रदेशों के अनुसार किया जाता है, अतः प्रदेश के विषय में सम्यक् ज्ञान भी आवश्यक होता है। 'प्रदेश' एक क्षेत्रीय इकाई होता है जिसके अन्तर्गत कुछ या अधिकांश भौगोलिक उपादानों (विषयों) की समानता पायी जाती है। हार्टशोर्न के शब्दों में "प्रदेश एक ऐसा क्षेत्र होता है जिसकी विशिष्ट स्थिति होती है जो किसी प्रकार से दूसरे क्षेत्रों से भिन्न होता है तथा जो उतनी ही दूरी तक फैला होता है जितनी दूरी तक वह भिन्नता पायी जाती है।" मंकहाउस (भौगोलिक शब्दकोश) के अनुसार, "पृथ्वी तल का वह इकाई क्षेत्र जो अपने विशिष्ट अभिलक्षणों के कारण अपने समीपवर्ती अन्य इकाई क्षेत्रों से भिन्न समझा जाता है, प्रदेश कहलाता है।

प्रदेश का निर्धारण (सीमांकन) किसी एक उपादान (विषय), अथवा बहु उपादानों की समानता (समांगता) के आधार पर किया जा सकता है। इस आधार पर प्रदेश के चार वर्ग बन सकते हैं–

1. एकल विषयी प्रदेश जिसका निर्धारण किसी एक उपादान की समानता के आधार पर किया जाता है जैसे मृदा प्रदेश, कृषि प्रदेश, भाषा प्रदेश आदि। 2. बहुल विषयी प्रदेश जिसका निर्धारण कई संयुक्त तत्वों की समानता के

आधार पर किया जाता है जैसे प्राकृतिक प्रदेश, आर्थिक प्रदेश, सांस्कृतिक प्रदेश आदि। 3. सम्पूर्ण विषयी प्रदेश उसे कहते हैं जिसके समस्त भौगोलिक उपादानों की समानता मिलती हैं। विभिन्न भूभागों में स्थित ऐसे प्रदेशों में सभी तत्वों में एकरूपता पायी जाती हैं। 4. विशिष्ट प्रदेशको डी० ह्वीटलसी ने कम्पेज भूगोल में क्रमबद्ध और प्रादेशिक विश्लेषण का औचित्य भौगोलिक अध्ययन में क्रमबद्ध विधि और प्रादेशिक विधि के द्विभाजन को समझने के लिए भौगोलिक तत्व की प्रकृति पर विचार करना आवश्यक है। भूतल पर स्थित विभिन्न भौगोलिक तत्वों में स्थानिक और अंतर्स्थानिक सम्बंध पाया जाता है। कुछ तत्व घनिष्ट और निकट रूप से सम्बंधित होते हैं तो कुछ में अपेक्षाकृत् दूरवर्ती सम्बंध पाया जा सकता है। दोनों विधियों द्वारा अध्ययन के कुछ महत्वपूर्ण

तर्क निम्नलिखित हैं–

(1) उत्पत्ति एवं विकास की दृष्टि से अनेक तथ्य पूर्णतः अथवा अंशतः अंतर्सम्बंधित होते हैं जबकि कुछ अधिक स्वतंत्र भी हो सकते हैं। प्राकृतिक वनस्पति, मिट्टी, जीव जन्तु, कृषि उपज आदि का जलवायु से घनिष्ट संबंध होता है। इसी प्रकार मिट्टी और कृषि, प्राकृतिक वनस्पति और अर्थव्यवस्था, मिट्टी और खेत का सम्बंध अत्यंत निकट का होता है।

(2) पृथ्वी के सभी क्षेत्रों में कुछ न कुछ सम्बंध अवश्य पाया जाता है चाहे वह निकट का हो अथवा दूर का। इसी प्रकार एक क्षेत्र की दशाएं दूसरे प्रदेश से अन्तर्संबंधित होती हैं। अधिकांश तथ्य क्षेत्रीय या स्थानिक सम्बंधों पर अधिक निर्भर होते हैं। कुछ क्षेत्र अधिक आत्मनिर्भर होते हैं।

(3) लघु क्षेत्र के भौगोलिक विश्लेषण में कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं का विस्तृत विश्लेषण किया जाता है और बृहत् क्षेत्र के भौगोलिक विश्लेषण में हम प्रमुख विशेषताओं की स्थानिक भिन्नता का अध्ययन करते हैं। जहाँ एक ओर एक भूगोलवेत्ता समस्त विश्व के सम्बंध में ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। वहीं दूसरी ओर वह लघु क्षेत्र के विषय में विस्तृत जानकारी भी करना चाहता है।

(4) अध्ययन की क्षेत्रीय इकाई छोटी या बड़ी जो भी हो, क्षेत्रीय भिन्नता एवं क्षेत्रीय सम्बंध के विषय में अपेक्षित ज्ञान आवश्यक होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति क्रमबद्ध अध्ययनों के संकलन द्वारा नहीं बल्कि प्रादेशिक विधि द्वारा किया जा सकता है।

(5) सम्पूर्ण पृथ्वी एक पारिस्थितिक तंत्र है जिसके भीतर अनेक लघु एवं उपतंत्र विद्यमान हैं। इसकी तुलना मानव शरीर से की जा सकती है। मानव शरीर की रचना अनेक तंत्रों– हड्डियों, मांस पेशियों, तंत्रिकाओं, रक्त वाहिनी तंत्र, श्वसन तंत्र, पाचन तंत्र आदि द्वारा होती है। शरीर रचना विज्ञान में इन तंत्रों के साथ ही सिर, हाथों, पैरों, बाहों, टांगों, पेट आदि का भी अध्ययन किया जाता है। इसी प्रकार भूगोल में सम्पूर्ण पृथ्वी का क्रमबद्ध रीति से और उसके विभिन्न प्रदेशों का प्रादेशिक रीति से अध्ययन किया जाता है। विषय में अपेक्षित ज्ञान आवश्यक होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति क्रमबद्ध अध्ययन के बल्कि प्रादेशिक विधि द्वारा किया जा सकता है।

(6) यदि हम सम्पूर्ण विश्व की क्षेत्रीय भिन्नताओं का अध्ययन एक साथ करना चाहते हैं, तब हमें अपना अध्ययन कुछ सीमित तथ्यों तथा स्थूल विश्लेषण तक ही सीमित करना पड़ेगा। इस प्रकार का अध्ययन क्रमबद्ध भूगोल का विषय है। किन्तु धरातल के विभिन्न प्रदेशों के तथ्यों के सूक्ष्म अध्ययन के लिए प्रादेशिक विधि ही उपयोगी है।

(7) क्रमबद्ध विधि द्वारा सजातीय गुण सम्बंधी संकल्पनाओं तथा सामान्य सिद्धान्तों एवं नियमों का विकास किया जा सकता है। इन संकल्पनाओं, सिद्धान्तों एवं नियमों का परीक्षण व्यक्तिगत (लघु) क्षेत्रों पर किया जाता है जिसके अध्ययन हेतु प्रादेशिक विधि उपयोगी होती है।

(8) भौगोलिक अध्ययनों में क्रमबद्ध विधि और प्रादेशिक विधि दोनों की अपनी–अपनी उपयोगिता है। सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्र के संदर्भ में विभिन्न तथ्यों के स्थूल अध्ययन के लिए क्रमबद्ध विधि और लघु प्रदेशों के विस्तृत अध्ययन के लिए प्रादेशिक विधि का प्रयोग अधिक सार्थक और उपयोगी है।

क्रमबद्ध एवं प्रादेशिक भूगोल के अंतर्सम्बंध–

भौगोलिक अध्ययन की क्रमबद्ध विधि और प्रादेशिक विधि परस्पर घनिष्ट रूप से सम्बंधित तथा एक दूसरे की पूरक हैं। अधिकांश भौगोलिक अध्ययनों में दोनों ही विधियाँ प्रयुक्त होती हैं। भौगोलिक अध्ययन में तथ्यों के

सम्मिश्र को कम जटिल समूहों में और अध्ययन क्षेत्र को छोटे–छोटे समरूप उपक्षेत्रों (लघु क्षेत्रों) में विभक्त किया जाता है। इस प्रकार किसी सुसंगठित भौगोलिक अध्ययन में क्रमबद्ध और प्रादेशिक दोनों विधियों के पारस्परिक सम्बंध काफी महत्वपूर्ण होते हैं।

हेटनर का समर्थन करते हुए हार्टशोर्न ने क्रमबद्ध भूगोल तथा प्रादेशिक भूगोल के समन्वय को ही भौगोलिक अध्ययन की सर्वाधिक उपयुक्त विधि बताया है। उनके अनुसार क्रमबद्ध तथा प्रादेशिक भूगोल में केवल विषयों और प्रदेशों के चुनाव के तरीकों का ही अंतर है। एक बृहत् प्रदेश के पूर्ण क्रमबद्ध अध्ययनों के योग में वे सभी तथ्य और सम्बंध समाहित होते हैं जो उसके प्रादेशिक भूगोल में अंतर्लिप्त होते हैं। क्रमबद्ध भूगोल में सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्र को एक पूर्ण इकाई मानकर उसके विभिन्न तत्वों (विषयों) का अध्ययन किया जाता है। प्रादेशिक भूगोल में भी लगभग उन्हीं विषयों का अध्ययन किया जाता है किन्तु अंतर यह है कि इसमें इनका अध्ययन विभिन्न उपविभागों (उपक्षेत्रों या प्रदेशों) के अनुसार अलग–अलग किया जाता है। क्रमबद्ध भूगोल और प्रादेशिक भूगोल के अंतर्सम्बंध को अग्रांकित चार्ट में प्रदर्शित किया गया है।

विश्व के क्रमबद्ध भूगोल के अन्तर्गत विश्व की स्थिति एवं विस्तार से आरम्भ करके उसकी संरचना, उच्चावच, अपवाह, जलवायु, मिट्टी एवं खनिज, प्राकृतिक वनस्पति, जीवजन्तु, कृषि, उद्योग, व्यापार, परिवहन, जनसंख्या तथा अधिवास का क्रमशः अध्ययन किया जाता है। विश्व के प्रादेशिक भूगोल के अन्तर्गत पहले विश्व को समान विशेषताओं वाले प्रदेशों (यहाँ महाद्वीपों) में विभक्त किया जाता है और तदन्तर एक–एक प्रदेश (महाद्वीप) के विभिन्न भौगोलिक तत्वों (प्रकरणों) का अध्ययन किया जाता है यद्यपि इसमें प्रकरणों या उपादानों का वर्णन क्रमिक रूप में होना आवश्यक नहीं माना जाता है और उनके महत्व के अनुसार ऊपर–नीचे किया जा सकता है। इस प्रकार सभी उपक्षेत्रों का भौगोलिक अध्ययन पूरा हो जाने पर सम्पूर्ण विश्व का अध्ययन पूर्ण हो जाता है। इसी प्रकार यदि प्रत्येक उपक्षेत्र में उन सभी भौगोलिक उपादानों का अध्ययन अलग–अलग किया जाता है तो सभी उपक्षेत्रों (प्रदेशों) के अध्ययन सम्पन्न हो जाने के पश्चात् सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्र का भौगोलिक अध्ययन पूर्ण हो जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि क्रमबद्ध और प्रादेशिक भूगोल एक–दूसरे से भिन्न या प्रतियोगी नहीं बल्कि एक–दूसरे के पूरक और परस्पर घनिष्ट रूप से सम्बंधित हैं।

7.8 ऐतिहासिक भूगोल बनाम समसामयिक भूगोल

भूगोल में द्वैतवाद के अन्तर्गत ऐतिहासिक भूगोल बनाम समसामयिक भूगोल की ओर इतिहासकारों, भूगोलविदों तथा अन्य सामाजिक वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित हुआ। ऐतिहासिक भूगोल के अन्तर्गत किसी क्षेत्र, प्रदेश या विश्व के भूगोल का वर्णन किया जाता है जैसाकि वह भूतकाल में था। उदाहरण के लिए यदि मध्यकालीन भारत में शस्य प्रतिरूप तथा अधिवास वितरण का अध्ययन करना चाहते हैं तो इसे एतिहासिक भूगोल का विषय क्षेत्र कहा जायेगा। इस सम्बन्ध में प्रोफेसर एस० एम० अली ने ऐतिहासिक भूगोल के क्षेत्र में को लिखा। इसी प्रकार ब्राऊन ने स्पष्ट करने का प्रयास किया कि प्रत्येक प्रदेश की बसाव प्रक्रिया में संयुक्त राज्य के प्रारम्भ की क्या स्थिति थी। ईस्ट ने यूरोप के मानव भूगोल के सम्बन्ध में उसके विकास के विभिन्न सोपानों का वर्णन किया है जबकि अन्य भूगोलविदों ने पूर्व प्रदेशों के स्थान पर विभिन्न प्रकरणों का विवेचन किया है।

ऐतिहासिक भूगोल, यद्यपि भूगोल के ढांचे में बहुत सही बैठता है, फिर भी वर्तमान समय में भूगोल के साथ ही साथ इसका अस्तित्व पाया जाता है। समकालीन भूगोल के अन्तर्गत घटना या तत्वों के क्षेत्रीय विभेदन के विद्यमान प्रतिरूपों का अध्ययन किया जाता है। ऐतिहासिक भूगोल पर लिखी गई पुस्तकों की संख्या इतनी अधिक नहीं है जितनी अधिक संख्या समकालीन भूगोल पर लिखी गई पुस्तकों की पाई जाती है किन्तु ऐतिहासिक भूगोल में सामान्य और प्रादेशिक भूगोल को भी सम्मिलित किया जाता है। इसके अन्तर्गत भूगोल की लगभग सभी शाखाओं को सम्मिलित किया जाता है। यह भूगोल का भाग इस अर्थ में नहीं है जिस अर्थ में सामाजिक भूगोल है। यह पूर्ण एवं अलग अस्तित्व वाला विषय है। समय बीतने के साथ–साथ समकालीन भूगोल का स्वरूप ऐतिहासिक भूगोल के समान हो जाता है। ऐतिहासिक भूगोल और समकालीन भूगोल पारस्परिक रूप में एकान्तिकहोते हैं और तार्किक रूप में एक–दूसरे का समर्थन करते हुए विद्यमान रहते हैं। ऐतिहासिक भूगोल की प्रकृति तथा क्षेत्र के सम्बन्ध में कुछ अन्य दृष्टिकोण इस प्रकार हैं– 1. इतिहास में भौगोलिक कारकों का प्रचालन, 2. सांस्कृतिक भूदृश्यों का विकास, 3. प्राचीन भूगोल का निर्माण, और 4. ऐतिहासिक काल में भौगोलिक परिवर्तनों का अध्ययन।

1. भूगोल में ऐतिहासिक कारक–

उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध में ऐतिहासिक भूगोल को एक शाखा के रूप में माना गया जिसका सम्बन्ध किसी विशिष्ट काल या भूतकाल के भूगोल और इतिहास के ऊपर भौगोलिक कारकों के प्रभाव में स्थान के अन्तर्गत तत्वोंके अन्तर्सम्बन्ध से होता है। ह्विटलसी तथा ईस्ट ने बताया था कि इतिहास में भौगोलिक कारकों का तात्पर्य आवश्यक प्रसंग के अंग के रूप में प्राचीन भूगोल की पुनर्रचना करना है जिसमें ऐतिहासिक घटनाओं के प्रवाह को अच्छी तरह समझा जा सके। कुछ अन्य लोगों के लिए इसका अभिप्राय भूतकाल में या इतिहास पर तथा ऐतिहासिक घटनाओं में मानव क्रियाओं पर भौतिक पर्यावरण का नियंत्रण या परिणाम या प्रभाव होता है। यह संकल्पना नियतिवाद तथा सम्भववाद की ओर ले जाती है और कारणता की दृष्टि को सुझाती है जिसके द्वारा यह सोचा जाता है कि तत्वों का भलीभाँति अध्ययन तथा वर्गीकरण किया जा सके ताकि कारकों के विशेष समूह के प्रचालन तथा प्रभावों का अध्ययन , सूचीकरण और वर्गीकरण किया जा सके। प्रत्येक समूह अपना स्वयं का नियतिवाद , सामाजिक – आर्थिक नियतिवाद के विशेष प्रतिरूपों का निर्माण करता है। इस प्रकार यह भौगोलिक नियतिवाद के अगल – बगल स्थान लेता है। इस प्रकार के ऐतिहासिक भूगोल की आलोचना इस बिन्दु पर की जाती है कि यह इतिहास को स्पष्ट करता है न कि भूगोल को। अतः ऐतिहासिक भूगोल के लिए यही कहा जा सकता है कि यह इतिहासकारों के कार्य लुप्त पर्यावरणीय संकेतोंके योग के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

2. सांस्कृतिक भूदृश्यों का विकास–

ऐतिहासिक भूगोल के इस दृष्टिकोण में सांस्कृतिक भूदृश्यों का विकास निहित होता है जिसके अन्तर्गत इनका दिनों–दिन परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार ऐतिहासिक भूगोल के अन्तर्गत सांस्कृतिक भूदृश्यों के परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है। ऐतिहासिक भूगोल की अध्ययन पद्धति में यूरोपीय देशों की भूतकालीन सांस्कृतिक भूदृश्यों के पुनर्निमाण का मार्गदर्शन किया। ऐतिहासिक भूगोल का सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुण परिवर्तित सांस्कृतिक भूदृश्य के माध्यम से जननिक भूआकृति के साथ संतुलन स्थापित करना होता है। दोनों का सम्बन्ध भूदृश्यों की विशेषताओं के विकास से होता है। इस प्रकार भूगोल की आधारशिला स्थापित करने में सहायता करते हैं। यह अपेक्षाकृत हितकर है कि ऐतिहासिक अध्ययन के विवेचन की तुलना में भूदृश्य तत्वों को प्राचीन भूगोल के लिए अमूल्य साक्ष्य का स्रोत माना। प्राचीन भूगोल के सांस्कृतिक भूदृश्यों के अध्ययन करने के लिए अधिवास–वितरण, भवन–प्रकारों और खेतों के प्रतिरूप का सहारा लिया जा सकता है।

3. प्राचीन भूगोलों की पुनर्रचना –

ऐतिहासिक भूगोल के सम्बन्ध में सबसे अधिक रूढ़िवादी विचार यही है कि यह भूतकाल के भूगोल की पुनर्रचना के अध्ययन से सम्बन्ध रखता है। ऐतिहासिक भूगोल अनेक प्रकार के हो सकते हैं जैसे कृषि भूगोल, नगरीय भूगोल, औद्योगिक भूगोल, सामाजिक भूगोल और प्रादेशिकभूगोल। तत्वों के भूतकालीन और वर्तमान वितरण के बीच सम्बन्धों को स्थापित करने के लिए भूतकाल के भूगोल की पुनर्रचना का अध्ययन आवश्यक भी होता है। इसीलिए कहा जाता है कि किसी देश या प्रदेश के भूतकालीन भूगोल की पुनर्रचना का अध्ययन भी कठिन कार्य होता है।

4. समय द्वारा भौगोलिक परिवर्तन–

यह सर्वविदित तथ्य है कि भूगोलविदों के अध्ययन की रुचि स्थानों का विवेचन करना होता है। इसके लिए उनका उद्देश्य भूतकाल तथा वर्तमान काल की समानताओं तथा असमानताओं का अध्ययन करना होता है। समय तथा स्थान के संदर्भ में भौगोलिक कारकों में परिवर्तन होता रहता है। इसके फलस्वरूप प्रदेश की विशेषतायें भी परिवर्तित हो जाती हैं। समय के संदर्भ में इन भौगोलिक परिवर्तनों का अध्ययन ही भूगोलविदों का प्रमुख कार्य होना चाहिए। ऊपर के वर्णन से स्पष्ट हो गया है कि ऐतिहासिक भूगोल और समकालीन भूगोल लगभग एक होते हैं। वर्तमान भूगोल धीरे–धीरे समय के साथ ऐतिहासिक भूगोल में परिवर्तित होता जाता है। इस सम्बन्ध में मे किन्डर ने बताया है कि ऐतिहासिक वर्तमान का अध्ययन ही ऐतिहासिक भूगोल है। उन्हीं के शब्दों में भूगोलविद् को प्रयास करना चाहिए और उसे स्वयं को वर्तमान में रखना चाहिए जो विद्यमान था, हमें यह कहना चाहिए कि एक हजार या दो हजार वर्ष पूर्व से ही उसे

प्रयास करना चाहिए और पुनः प्रति स्थपित करना चाहिए।

7.9 हेटनर की कृतियां एवं संकल्पनाएँ

हेटनर को आधुनिक भूगोल के चिन्तन के विकास में प्रेरणा स्तम्भ कहा जा सकता है जर्मनी में भूगोल के नव चिन्तन के विकास में उनका महत्वपूर्ण स्थान है। इसका जन्म पश्चिमी जर्मनी में 1859 ई० में हुआ था। इसका प्रारम्भ से भूगोल में उच्च शिक्षा प्राप्त करने का उद्देश्य था। भूगोल मे उच्च शिक्षा हेतु हेले, बॉन तथा स्ट्रासवर्ग विश्वविद्यालयों से शिक्षण प्राप्त किया। सन् 1881 ई० में महान भूगोलविद् जरलैण्ड के निर्देशन में चिली तथा पैटागोनिया के जलवायु एवं भौमिकी विषय पर डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त किया। इसके पूर्व उसने भूगोल के चिन्तन एवं दर्शन पर कार्य किया। उसने कुछ समय रैटजेल के सानिध्य में भी बिताया किन्तु रिचथोपेन के विचारों से अधिक प्रभावित था। सन् 1881 से 1884 ई0 तक दक्षिणी अमेरिका में कोलम्बिया के एण्डीज की यात्रा किया। सन् 1884 में जर्मनी लौटकर लिपजिंग विश्वविद्यालय में भूगोल का अध्यापक नियुक्त हुआ। वहाँ वह 'सैक्सौनी प्रदेश की स्थलाकृति एवं भौमिकी' पर शोध प्रबन्ध लिखा। सन् 1888 में पुनः दक्षिणी अमेरिका के अगम्य प्रदेशों की विभिन्न प्रकार के उपलब्ध साधनों से यात्रा किया। सन् 1894–1897 तक पुनः लिपजिंग विश्वविद्यालय में अध्ययन कार्य किया जहाँ से पुनः एक बार साइबेरिया की यात्रा पर 1897ई0 में गया। सन् 1899 में जर्मनी लौटने पर उसे हीडलवर्ग विश्वविद्यालय में भूगोल विभाग में विभागाध्यक्ष नियुक्त किया गया जहाँ वह 1908 ई0 तक कार्य करता रहा।

हैटनर बीसवीं शताब्दी का अग्रगण्य रीति–विधायक माना है। उसने अपने समकालीन किसी भी अन्य भूगोलवेत्ता से अधिक मात्रा में भूगोल को दार्शनिक तथा वैज्ञानिक आधार पर स्थापित किया था। उसने भूगोल की एक प्रमुख अनुसंधान पत्रिका के प्रकाशन की स्थापना की, कई ग्रन्थ लिखे, जिनमें मुख्य ग्रन्थ भूगोल के विधि–तन्त्र और प्रादेशिक भूगोल पर थे। इसके अतिरिक्त हैटनर ने लगभग 30 व्यक्तियों को डॉक्ट्रेट की उपाधि के लिये अनुसंधान कराये थे। अलफ्रेड हैटनर की शिक्षा भूगोल में हुई थी। वह रेटजेल और रिचथोफन का शिष्य था। वह हाइडिलबर्ग यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर था। वह मुख्यतः भौतिक भूगोलवेत्ता और प्रादेशिक भूगोलवेत्ता था। उसने बहुत–सी भौगोलिक यात्रायें की थीं। भौतिक भूगोल पर उसके बहुत से शोधपत्र प्रकाशित हुए थे, जो चार खण्डों में 1919 से आगे के वर्षों में छपे थे। उसकी यूरोप के भूगोल की पुस्तक 1907 में प्रकाशित हुई थी, परन्तु इस पुस्तक का संशोधित संस्करण शेष संसार के भूगोल के साथ 1923 में प्रकाशित हुआ था।

हैटनर की विशेष ख्याति उसके भौगोलिक विधि–तन्त्र' पर लिखे गये ग्रन्थ द्वारा हुई थी, जो 1927 में प्रकाशित हुआ था। हैटनर ने अपने लेखों में काण्ट द्वारा बतलाई गई भूगोल की परिभाषा का पुनरावर्तन किया था, और उस ढाँचे के अन्दर हम्बोल्ट, पेशेल, रेटजेल के द्वारा लिखे गये क्रमबद्ध अध्ययन को तथा रिटर, मार्थे, रिचथोफेन के द्वारा लिखे गये प्रादेशिक अध्ययनों को परस्पर सम्मिलित करके उसने भूगोल को एक सम्बद्ध पूर्णविषय बना दिया था।

हेटनर की रचनायें

हेटनर ने अपने लम्बे शैक्षणिक जीवन में भूगोल के विभिन्न पक्षों पर अनेक लेखों और पुस्तकों को जर्मन भाषा में प्रकाशित किया था। हेटनर की प्रमुख रचनाएं निम्नांकित हैं–

(1) कोलम्बिया के एण्डीज क्षेत्र की यात्रा (1888)

(2) रूस का भूगोल (1905)

(3) यूरोप का प्रादेशिक भूगोल (1907)

(4) इंग्लैण्ड का विश्वव्यापी प्रभुत्व और युद्ध (1915)

(5) पृथ्वी के महाद्वीपों की स्थलाकृतियाँ (1921, 1928)

(6) प्रादेशिक भूगोल के आधार (1924) अल्फ्रेड हेटनर

(7) पृथ्वी पर संस्कृति का प्रसार (1928–29)

(8) तुलनात्मक प्रादेशिक भूगोल' ग्रंथमाला के चार खण्ड (1933–35)

(9) मानव भूगोल (मृत्यु के पश्चात् तीन खण्डों में प्रकाशित) हेटनर ने हाइडलबर्ग में 1895 में एक भौगोलिक पत्रिका की स्थापना की थी जिसका नाम था 'जिओग्राफिशे जाइशिफ्ट। इसका सम्पादन वे 1935 तक निरन्तर करते रहे। वे इस पत्रिका में भूगोल के सैद्धान्तिक पक्षों पर लगातार लेख लिखते रहे। हेटनर ने इस पत्रिका में भौगोलिक चिन्तन पर प्रकाशित अपने लेखों को एक पुस्तक 'भूगोल : इसका इतिहास, प्रकृति और अध्ययन पद्धति के रूप में 1927 में प्रकाशित किया था।

हेटनर की विचारधारा बीसवीं शताब्दी में भौगोलिक चिन्तन के प्रमुख विचारक और विधितंत्रवेत्ताथे। उनकी विचारधारा का संक्षिप्त विवेचन निम्नांकित है–

(1) क्षेत्रीय भिन्नता की संकल्पना–हार्टशोर्न के अनुसार क्षेत्रीय भिन्नता की संकल्पना को हम्बोल्ट और रिटर के विचारों का संश्लेषण करके रिचथोफेन ने पुनर्जीवित किया था और इसकी विशद विवेचना हेटनर की रचनाओं में किया गया है। हेटनर ने 1898 में लिखा था कि 'प्राचीनतम काल से आधुनिक काल तक भूगोल भू–क्षेत्रों के ज्ञान का विषय रहा है जो एक–दूसरे से भिन्न हैं।' उन्होंने 1905 में भूगोल को भू–विस्तारीय विज्ञानबताया जिसमें पृथ्वी के क्षेत्रों तथा स्थानों का अध्ययन उनकी भिन्नताओं तथा भूसंबंधों के संदर्भ में किया जाता है। दूसरे शब्दों में भूगोल भूतल का विज्ञान है जो उसकी प्रादेशिक भिन्नताओं का अध्ययन महाद्वीपों, देशों, जनपदों तथा स्थानों के संदर्भ में करता है। इस प्रकार भूगोल यह जानने का प्रयत्न करता है कि पृथ्वी की भिन्न–भिन्न क्षेत्रीय इकाइयाँ एक–दूसरे से किस प्रकार भिन्न हैं।

(2) भौतिक और मानव भूगोल की एकता –हेटनर भौगोलिक अध्ययन में भौतिक बनाम मानव भूगोल की द्वैधता को नहीं मानते थे। हेटनर ने जोर देकर कहा था कि क्षेत्रीय अध्ययन के रूप में भूगोल न तो प्राकृतिक विज्ञान है और न ही सामाजिक विज्ञान बल्कि यह एक साथ ही दोनों प्रकार का अध्ययन है। उनके विचार से मानव और प्रकृति दोनों ही भौगोलिक अध्ययन के समान महत्व वाले अनिवार्य पक्ष हैं। अतः इन दोनों को एक–दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता।

(3) सामान्य और विशिष्ट भूगोल–हेटनर के अनुसार अन्य विज्ञानों की भाँति भौगोलिक अध्ययन में सामान्य (क्रमबद्ध) और विशिष्ट(प्रादेशिक) दोनों ही अध्ययन के अनिवार्य पक्ष हैं। हेटनर की अधिकांश रचनाएं प्रादेशिक अध्ययन से सम्बंधित थीं किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे सामान्य भूगोल या सैद्धान्तिक अध्ययन को गौण समझते थे। उन्होंने अपने सैद्धान्तिक लेखों में दोनों पक्षों को समान महत्व दिया था।

7.10 सारांश

अध्ययन में द्वैतवाद की विचारधारा भूगोल के अंतर्गत उसके विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पृथ्वी से संबंध रखने वाले प्राकृतिक भूगोल ही समझा जाने लगा तो दूसरी और मानव शास्त्र, कृषिगत भूमि का उपयोग, व्यापार गमना गमन सहित मानव भूगोल का अध्ययन स्थलरूपों संबंध में होने लगा और प्रादेशिक अध्ययन तक सीमित रहा। द्वैतवाद की सार्थकता के अध्ययन से स्पष्ट है कि पृथ्वी तल को जीव मानव का परिवास माना जाए तो भी इसके गुंफित प्राकृतिक तत्व समुच्चय के अध्ययन हेतु एक सार्थक एवं आवश्यक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है प्रस्तुत अध्ययन में पृथ्वी तल एक अविभाज्य इकाई है किंतु इसका यह नहीं की भूगोल को सदैव उसकी संपूर्णता के दृ दृष्टिकोण से देखा जाए। इस विश्व व्यापी संपूर्णता के आविर्भाव एवं संरचना के विश्लेषण हेतु भूगोल तत्व के स्वरूप, घटक तत्वों से अंतरसंबंध एवं अंतर प्रक्रिया का संश्लेषण करता है, ताकि वास्तविक जगत में व्याप्त संपूर्णता का ज्ञान हो सके। क्रमबद्ध भूगोल में सार्वभौमिक नियमों और जननिक अवधारणा एवं अनिवार्य रूप से विश्लेषणात्मक अध्ययन होता है, जबकि प्रादेशिक भूगोल संश्लेषणात्मक होता है जिसमें विलक्षण स्थितियों तथा उनकी विशेषताओं का अध्ययन होता है। ऐतिहासिक भूगोल और समकालीन भूगोल लगभग एक होते हैं, वर्तमान धीरे–धीरे समय के साथ ऐतिहासिक भूगोल में परिवर्तित हो जाता है। प्रस्तुत अध्ययन में हेटनर द्वारा अति प्राचीन काल से लेकर आज तक भूगोल के उद्देश्य किसी क्षेत्र के विशिष्ट अध्ययन द्वारा पृथ्वी तल की विभिन्नताओं और संबंधों को स्पष्ट किया है।

7.11 स्व मूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

प्रश्न 1. किस विद्वान ने भौगोलिक पत्रिका 'जियोग्राफीशे जाइशिफ्ट' की स्थापना की थी?

(अ) रैटजेल (ब) कॉल रिटर

(स) अल्फ्रेड पेंक (द) अल्फ्रेड हेटनर

प्रशन 2 सामान्य भूगोल बाद में क्या कहलाया

(अ) मिश्रित भूगोल (ब) व्यवस्थित भूगोल

(स) विशिष्ट भूगोल (द) सभी

प्रशन 3– आधुनिक और भौतिक भूगोल कौन सी भूगोल में है

(अ) विशिष्ट भूगोल में (ब) आर्थिक भूगोल में

(स) व्यवस्थित भूगोल (द) कोई नहीं

प्रशन 4 रिटर ने कौन से भूगोल का वर्णन किया

(अ) सामाजिक भूगोल (ब) भौतिक भूगोल

(स) विशिष्ट भूगोल (द) प्रादेशिक भूगोल

प्रशन 5 भूगोल में निम्न में से किसे विशेष प्रधानता मिली है

(अ) भौतिक भूगोल बनाम मानव भूगोल

(ब) कर्म बन बनाम प्रादेशिक भूगोल

(स) विशिष्ट बनाम सामान्य भूगोल

(द) सभी

प्रश्न 6. प्राचीन क्रमबद्ध भूगोल के पिता माने जाते हैं?

(अ) इरेटोस्थनीज (ब) हंबोल्ट

(स) हिकेटियस (द) कार्ल रिटर

उत्तरमाला 1. (ब) 2. (ब)3. (स)4. (द) 5. (द)6. (अ)

7.12 संदर्भ–ग्रंथ–सूची

- Smith, D.M. (1973) %An alternative relevant professional rulesArea vol 3 PP 153- 157
- (1997)% Human GeographyA welfareApproach EdwardArnold, London
- (1954)% Geography and Social Justice Basil Blackwell, Oxford
- Tuan ,Yi-Fu. (1997)% Geography Phenomenology and the study of Human Nature the Canadian geography volume 15 PP 181- 192
- (1976)% Humanistic GeographyA.A.A.G volume 66 PP 266- 276
- (1977)% Space and Place the Perspective of Experienced, University of Minnesota press, Mineapolis
- Ullaman, E.L. (1941)%A Theory of location of citiesAmerican journal of Sociology volume 46 PP 853 -864
- Unstead, J.F. (1916) %Asynthetic method for determining geographical regions geographical journal volume 48 PP 230-249
- (1926)% Geographical reasons Illustrated by Iberian Peninsula Scottish Geographical magazine vol 42

PP 159- 170

- Walpert, J.(1964)% The decision process in Spatial contextA.A.A.G vol 54 PP 337- 358
- (1965)% BehaviouralAspects of the Decision to Image Papers and Proceedings of the Regional ScienceAssociation, vol 15 PP 159- 172
- Wright ,J.K. (1925)% The geographical lore at the time of crusades, New York
- The History of Geography a point of viewA.A.A.G vol 15 PP 200- 210

7.13 अभ्यास प्रश्न(सत्रांत परीक्षा की तैयारी)–

प्रश्न1–भूगोल में द्वैतवाद क्या है, भौतिक बनाम मानव भूगोल द्वैत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए?

प्रश्न 2– क्रमबद्ध भूगोल एवं प्रादेशिक भूगोल के अंतर का विश्लेषण कीजिए?

प्रश्न 3– भूगोल में द्वैतवाद की विचारधारा की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए

प्रश्न 4–ऐतिहासिक भूगोल बनाम समकालीन भूगोल तार्किक विश्लेषण कीजिए?

प्रश्न 5–रैटजेल की कृतियों एवं संकल्पनाओं का वर्णन कीजिए?

इकाई–8 भूगोल का फ्रांसीसी संप्रदाय–ब्लाश, ब्रुन्श एवं डिमांजिया की कृतियां एवं संकल्पनाएँ

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 भूगोल का फ्रांसीसी संप्रदाय

8.4 फ्रांस में भौगोलिक चिंतन का विकास एवं योगदान

8.4.1 भौतिक भूगोल

8.4.2 मानव भूगोल

8.5 फ्रांसीसी भौगोलिक विचारधाराएं

8.6 विडाइल डी ला ब्लाश

8.7 जीन ब्रूंश

8.8 अल्बर्ट डिमांजिया

8.9 सारांश

8.10 स्व–मूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

8.11 संदर्भ –ग्रंथ– सूची

8.12 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

8.1 प्रस्तावना

फ्रांस में नवीन भूगोल का आरम्भ 1870 के दशक से एलिस रेकलस के कार्यों से हुआ। यहाँ भूगोल का वास्तविक विकास बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में फ्रांस भौगोलिक अध्ययन तथा शोध का प्रमुख केन्द्र बन गया जहाँ भूगोल की कई शाखाओं विशेषरूप से मानव भूगोल और प्रादेशिक भूगोल में अधिक प्रगति हुई। इसके पहले जर्मनी में आधुनिक भूगोल का विकास कई महत्वपूर्ण विद्वान भूगोलवेत्ताओं (कांट, हम्बोल्ट, रिटर, रैटजेल, हेटनर आदि) द्वारा किया गया था किन्तु फ्रांस में आधुनिक भौगोलिक चिन्तन के विकास में एक ही विद्वान वाइडल डी ला ब्लाश की केन्द्रीय भूमिका थी। बीसवीं शताब्दी के मध्य तक फ्रांस के सभी विश्वविद्यालयों में भूगोल के प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष ब्लाश के शिष्य अथवा उनके शिष्यों के शिष्य थे जो मुख्यतः ब्लाश की विचारधाराओं के ही अनुगामी और पोषक थे। इस प्रकार ब्लाश की भौगोलिक विचारधारा ही फ्रांसीसी भूगोलवेत्ताओं की विचारधारा बन गयी थी। फ्रांस के अतिरिक्त अन्य किसी भी देश में भौगोलिक चिन्तन का इतिहास इतने उच्च स्तर तक एक ही विद्वान पर केन्द्रित नहीं रहा।

फ्रांस में उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक तक भूगोल विषय के शिक्षण का कार्य इतिहासवेत्ताओं, सैनिक अधिकारियों और अर्थशास्त्रियों द्वारा किया जाता था। भूगोल के अन्तर्गत मुख्यतःऐतिहासिक घटनाओं पर भौगोलिक पर्यावरण के प्रभावों का विश्लेषण किया जाता था। सन् 1870–71 में फ्रांस–प्रसायुद्ध में फ्रांस की हार हो जाने के पश्चात् फ्रांसीसी सरकार का ध्यान दक्षिण–पूर्व एशिया तथा अफ्रीका में फ्रांसीसी उपनिवेशों की स्थापना की ओर गया। उपनिवेशों की खोज और उनके प्राकृतिक संसाधनों तथा सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दशाओं की जानकारी उपलब्ध कराने के उद्देश्य से भूगोलवेत्ताओं के कार्यों का महत्व बहुत बढ़ गया। इसलिए भूगोल की शिक्षा तथा प्रशिक्षण को अधिक महत्व प्रदान किया गया। इसके लिए फ्रांस के विभिन्न विश्वविद्यालयों में भूगोल की शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की गयी और अनेक नगरों में भौगोलिक संस्थान स्थापित किये गये।

8.2 उद्देश्य

उत्तर – भौगोलिक चिन्तन के उद्‌भव और विकास में फ्रांसीसी भूगोलवेत्ताओं का योगदान आधुनिक युग में जर्मनी भूगोलवेत्ताओं के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण माना जाता है। मानव–वातावरण अन्तर्सम्बन्ध में मानव एवं उसके क्रियाकलाप की श्रेष्ठता को उजागर करना इसका प्रमुख ध्येय रहा है। अतएव, संभववाद की संकल्पना का विकास हुआ। फ्रांसीसी भूगोल पर औद्योगिक क्रांति, संचार साधनों के विकास और नगरीकरण का प्रभाव पड़ा। अतएव यहाँ मानव भूगोल का ही विकास मुख्य रूप से हुआ। पहले फ्रांसीसी भूगोलवेत्ता थे जिनकी पुस्तक काफी चर्चित रही, जिसकी तुलना रीटर की पुस्तक अर्डकुण्डे से की जाती है। वह प्रकृति की सुंदरता का पुजारी था। उनके विचार स्वच्छंद थे। उनकेविचार के कारण 1752 ई. में उन्हें फ्रांस से निर्वासित कर दिया गया। फ्रांस में भूगोल का वास्तविक विकास फ्रांस–पर्सिया युद्ध में फ्रांस की पराजय के बाद हुआ। सबसे पहले सारवान विश्वविद्यालय में 1809 ई. में भूगोल का प्रोफेसर पद सृजित किया गया। उसके बाद फ्रांस के कई विश्वविद्यालयों में भूगोल का अध्ययन प्रारंभ हुआ, वह वाइडल दी ला ब्लाश थे। जिन्हें मानव भूगोल का संस्थापक माना जाता है। उनके बाद के अधिकांश फ्रांसीसी भूगोलवेत्ता उनके ही शिष्य थे जिनमें अल्बर्ट डिमांजिया और ब्रूंश का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

8.3 भूगोल का फ्रांसीसी सम्प्रदाय

फ्रांस में भूगोल का विकास जर्मनी की अपेक्षा देर से हुआ। एलिस रेक्लस, जो रीटर के शिष्य थे, पहले फ्रांसीसी विद्वान थे जिन्होंने अपनी पुस्तक' नोवेल जियोग्रैफीक युनिवर्सल' 19 खण्डों में लिखी। यह पुस्तक रीटर की वृहत्त कृति 'अर्डकुण्डे' के समकक्ष है।पृथ्वी एवं उसके निवासी के नाम से 1882–95 के मध्य प्रकाशित हुआ। प्रधानतया विवरणात्मक होते हुए भी यह प्रादेशिक भूगोल की बेजोड़ पुस्तक है। रेक्ल्यू का वातावरण मानव के अन्तर्सम्बन्ध के प्रति बड़ा संतुलित दृदृष्टिकोण था। उनके अनुसार, 'मनुष्य अपने निवास्य क्षेत्र में अपने उद्देश्य के अनुसार परिवर्तन कर सकता है। यहाँ तक कि वह प्राकृतिक वातावरण पर विजय प्राप्त कर सकता है तथा पृथ्वी की ऊर्जा को अपने नियन्त्रण में कर सकता है। भूमि के स्वरूप में विभिन्न कालों में परिवर्तन होता रहता है। अतएव 'काल' भी एक महत्वपूर्ण कारक हैं।' इस प्रकार रेक्लस ने रीटर की सोद्देश्यवादीअवधारणा से मुक्त रहते हुए विश्व का भूगोल लिखा। वे मानव द्वारा पृथ्वी के संसाधनों के अत्यधिक शोषण के प्रति सचेत थे। रेक्ल्यू ने सदैव इस बात पर बल दिया कि किसी भी प्रकार का निर्माण कार्य करते समय अथवा संसाधनों का उपयोग करते समय, मनुष्य को भूदृश्य की सुन्दरता का ख्याल रखना चाहिये।

अपनी तथाकथित समाज विरोधी विचारों के कारण रेक्लस की 1852 ई० में ही फ्रांस से निर्वासित कर दिया गया था। निर्वासन के पश्चात पाँच वर्ष रेक्लस ने ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्तराज्य, मध्य अमेरिका तथा कोलम्बिया की यात्रा में बिताये। 1857 ई० में वे फ्राँस वापस लौटे परन्तु 1872 ई० में उन्हें पुनः निर्वासित कर दिया गया। 1894 से लेकर 1905 ई० में अपनी मृत्युं तक रेक्लस ब्रूंशेल्स में भूगोल संस्थान के निदेशक रहे। फ्रांस में भूगोल का वास्तविक प्रारम्भ फ्रांस–प्रशिया युद्ध (1870–71) में फ्रांस की हार के पश्चात ही हुआ। इस युद्ध में फ्रांस के लोरेन तथा अल्सास क्षेत्र पर जर्मनी का अधिकार हो गया। अब फ्रांस में भूगोल के अध्ययन के प्रति चेतना जागृत हुई। अभी तक यहाँ भूगोल का व्यवस्थित अध्ययन नहीं होता था। पेरिस के समूबॉन विश्वविद्यालय में 1809 ई० में ही एक भूगोल के प्रोफेसर का पद स्थापित किया गया था परन्तु इस पद पर इतिहास के विद्वान ही नियुक्त होते रहे। इस प्रकार भूगोल पर नाम मात्र ही ध्यान दिया जाता था। 1371 ई व के पश्चात फॉस का ध्यान यूरोप के बाहर साम्राज्यविस्तार की ओर गया। इसलिये भौगोलिक ज्ञान की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। 1992 ई व में औपनिवेशिक भूगोल के प्रोफेसर पद की स्थापना सारबॉन विश्वविद्यालय में हुई। इसके पश्चात 1899 ई० तक फ्रांस के कई विश्वविद्यालयों में भूगोल के प्रोफेसर पद की स्थापना हुई। इससे भूगोल के अध्ययन – अध्यापन में तीव्र प्रगति का मार्ग प्रशस्त हुआ।

8.4 फ्रान्स में भौगोलिक चिन्तन का विकास एवं योगदान

फ्रान्स में भूगोल का विकास जर्मनी की तुलना में अपेक्षाकृत देरी से हुआ। हम्बोल्ट के फ्रान्स में 20 वर्ष के प्रवास के दौरान तथा उसके ग्रंथों का फ्रेंच भाषा में अनुवाद के बाद भूगोल के प्रति लोगों में आकर्षण बढ़ने लगा।

अठारहवीं सदी के अन्तिम समय में सोरवोन (पेरिस) विश्वविद्यालय का भूगोल संस्थान ही भूगोल से सम्बन्धित सभी भौगोलिक गतिविधियों का केन्द्र रहा। अठारहवीं तथा उन्नीसवीं सदी में फ्रान्स में कदाचित् विश्व में प्रथम बार भूमि सर्वेक्षण में दक्षता प्राप्त किया जिसके आधार पर मानचित्रांकन किया गया। तत्सम्बन्ध में कैसिनी का प्रयास सराहनीय था। भूगणित एवं भूसर्वेक्षण द्वारा प्रधान संदर्भ बिन्दु तथा त्रिकोणमिति स्टेशन स्थापित करके 1:80,000 के मापनी पर सम्पूर्ण फ्रान्स का भूमि सर्वेक्षण कार्य 1890 ई० में पूरा कराया गया तथा उसका मानचित्र तैयार हुआ। सोरबोन विश्वविद्यालय में 1889ई0 में भूगोल में प्रोफेसर तथा विभागाध्यक्ष पद कायम किया गया। प्रारम्भ में भूगोल विभाग इतिहास के साथ संलग्न था किन्तु 1898 में ब्लाश द्वारा विभागाध्यक्ष पद ग्रहण करने के पूर्व तक इसमें इतिहास के विद्वानों की नियुक्ति होती रही। ब्लाश के पूर्व इस पर प्रोफेसर हिमले कार्यरत थे जिनकी :चि इतिहास में थी। उन्नीसवीं सदी में भूगोल के विकास में बुआशे, ली प्ले, ब्यूमाण्ट और रेक्लस ने पर्याप्त योगदान किया। ब्लाश ने उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध तथा बीसवीं सदी के पूवार्द्ध में प्रायः 40 वर्षों तक पेरिस विश्वविद्यालय के उत्तरदायी पद पर रहते हुए विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में शोध पत्रों के प्रकाशन, उनके सम्पादक तथा अध्यक्ष पद पर रहकर अपने प्रभाव से सम्पूर्ण फ्रान्स के विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा के लिये प्रोफेसर पद कायम कराते हुए भूगोल की सेवा किया। इनके प्रयासों से फ्रान्स में मानव, भौतिक, प्रादेशिक, औद्योगिक, औपनिवेशिक, मानचित्रांकन, प्रायोगिक, सांख्यिकीय आदि शाखाओं को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। इस कार्य में उन्हें ब्रूंश का पर्याप्त सहयोग प्राप्त हुआ। ब्लाश अपने पूर्ववर्ती भूगोलविदों जैसे हम्बोल्ट, रिटर, रिचथोफेन, रैटजेल तथा हेटनर के विचारों से प्रभावित हुए। मानव तथा प्रादेशिक भूगोल के क्षेत्र में ब्लाश का योगदान सराहनीय था। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व तक एक प्रकार से ब्लाश के चिन्तन के अनुसार फ्रान्स में भूगोल का विकास उसी की दिशा तथा निर्देश में चलता रहा। भूगोल के विकास में ब्लाश के शिष्यों, गेलोइस, ब्रूंश, डिमांजिया, सोरे, ब्लंचार्ड, जुलेस सायो, हेनरी बाउलिंग, बेलाक्स तथा मशेट का नाम उल्लेखनीय है।

द्वितीय महायुद्ध के बाद फ्रान्स में भूगोल का विकास विविध रूपी था। धीरे–धीरे ब्लाश अवधारणा पर आधारित शोध एवं व्याख्या गौण होती जा रही थी। भौतिक तथा मानव भूगोल के बीच का सामंजस्य धीरे–धीरे समाप्ति की ओर जा रहा था। सभी भूगोलविद्, एक ओर वैज्ञानिक आधार प्राप्त करने हेतु भूआकृति विज्ञान, मौसम विज्ञान आदि के अध्ययन की ओर बढ़ने लगे तो दूसरी ओर जैविक तथा सामाजिक भूगोल के तथ्यों को स्पष्ट करने हेतु सांस्कृतिक पक्ष की ओर झुकाव बना रहा। अब भूगोल की प्रत्येक शाखा में गणितीय विधियों का प्रवेश हो चुका था। इसके साथ–साथ भूगोल में ऐसी शाखाओं के विकास में 'भूगोल की एकता' जैसी अवधारणा के स्थान पर बहुआयामी विस्तार की ओर रूचि विकसित होने लगी। फ्रान्सीसी भूगोलविद् डिमांजिया के शिष्य गोटमान का फ्रेंच भौगोलिक चिन्तन पर गहरा प्रभाव है जो प्रसिद्ध सामाजिक भूगोलविद् हैं। उन्होंने विश्वव्यापी जनसंख्या विस्तार एवं खाद्यान्न समस्या, विभिन्न प्रजातियों के बेमेल सम्बन्धों में सुधार, आर्थिक संसाधन विकास तथा महानगरों के विकास जैसी समस्याओं की ओर ध्यान केन्द्रित किया है। फ्रान्स के भूगोलविदों का विभिन्न क्षेत्रों में दिया गया योगदान निम्न प्रकार है–

1. **भौतिक भूगोल–**फ्रान्स में द्वित्तीय विश्वयुद्ध के उपरान्त गार्नियरने भूआकृति विज्ञान पर महत्वपूर्ण कार्य किया। फ्रान्स में भूगोल पत्रिका 'जियोमार्फोलॉजी डायनामिक' के माध्यम से गणितीय विधियों तथा उपकरणों का उपयोग करके, भूकम्प विज्ञान, अपरदन चक्र, अपरदन एवं निक्षेपण प्रक्रिया, मरूसथलीय प्रदेशों में स्थलरूपों के विकास आदि पर विशेष कार्य किया गया। मृदा विज्ञान के अन्तर्गत मिट्टियों का अध्ययन किया गया जिसके लिये गेचोन के कार्य उल्लेखनीय हैं। फ्रांसीसी विद्वानों ने जलवायु को मिट्टी–निर्माण के लिये नियंत्रित कारक के रूप में स्वीकार नहीं किया अपितु इसके निर्माण में वनस्पति, जल उपलब्धता, रसायनिक प्रक्रिया, जीवीय भूमि उपयोग, विशिष्ट निक्षेपण प्रक्रिया जैसे कारकों को महत्व प्रदान किया। कृषि पद्धति के अन्तर्गत मानवीय क्रिया द्वारा भी धीरे–धीरे मिट्टी के गुणों में परिवर्तन होता रहता है। महासागरीय विज्ञान का अध्ययन पार्डे तथा पेग्यूनामक विद्वानों ने विशिष्ट शोध एवं जल संस्थानों के आँकड़ों का उपयोग करके निरन्तर आगे बढ़ाया। इसके फलस्वरूप वर्तमान में यह स्वतंत्र रूप में विकसित हो गया है। इसी के साथ जल विज्ञान का भी विकास विश्वविद्यालय तथा प्रशासन द्वारा विशेष आर्थिक सहायता से किया जा रहा है। नान्सी तथा पेरिस विश्वविद्यालयों में महासागरीय एवं जल विज्ञान का अध्ययन भूगोल संस्थान के अन्तर्गत किया जा रहा है।

2. **मानव भूगोल–** फ्रान्स के विद्वानों में भूगोल का अध्ययन मानव भूगोल से प्रारम्भ हुआ।भूगोल की इस शाखा में कार्य का प्रारम्भ ब्लाश द्वारा किया गया। इसके अन्तर्गत ग्रामीण भूदृश्य, मानवीय क्रियाकलाप

और प्रादेशिक भूगोल पर विशेष कार्य सम्पादित किये गये। ग्रामीण भूदृश्य पर वर्तमान में कार्य करने वाले विद्वानों में जुलियार्ड, फाउसर, गेचोन, डिमोन आदि विद्वानों का योगदान है। डिमोन तथा चेम्पीयर ने कृषि भूदृश्य के ऐतिहासिक विकास पर महत्वपूर्ण कार्य किया है जबकि फाउसर तथा गेचोन ने कृषक मनोवृत्ति तथा कृषि तकनीक पर व्याख्यात्मक शोध किया है। कुछ अन्य विद्वानों ने कृषि भूमि के विविध स्वरूपों को गणितीय विधि तथा उपकरणों की सहायता से कृषि भूदृश्यसे सम्बन्धित विशिष्ट प्रवृत्तियों तथा भावी विकास की रूपरेखा को निर्धारित करने का प्रयास किया है। किसी एक ग्रामीण इकाई क्षेत्र में भूमि के साथ निरन्तर मानव– सम्बन्धों के कारण उसकी विशेषताओं एवं लक्षणों में परिवर्तन होता रहता है। इन लोगों ने यह भी सिद्ध करने का प्रयास किया है कि भूमि के निरन्तर शोषण से मानव प्रवसन प्रभावित होता है।

8.5 फ्रांसीसी भौगोलिक विचारधाराएं

मानवीय क्रियाकलाप तथा उत्पादन प्रारम्भ से ही अविभाज्य रहते हुए मानव भूगोल के महत्वपूर्ण आधार हैं। वर्तमान में इसका अध्ययन सामाजिक भूगोल के अन्तर्गत किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत मानव समुदाय, जनसंख्या, नगरीय भूगोल, विविध प्रकार की औद्योगिक गतिविधियाँ, विभिन्न प्रकार के उद्यम आदि का अध्ययन किया जा रहा है। जनसंख्या भूगोल एवं जनांकिकी के ऊपर ए. सौवे , पी. जार्ज, जे0 गार्नियर आदि के शोध एवं कार्य विशेष महत्वपूर्ण रहे हैं। नगरीय भूगोल में चेबोट तथा गार्नियर ने विशेष योगदान किया है। फ्रान्स के सभी बड़े एवं महत्वपूर्ण नगरों तथा उनकी समस्याओं पर शोध लेख एवं प्रबन्ध लिखे जा चुके हैं। वर्तमान में नगरीय प्रदेश, नगरीकरण, नगरीय उद्योग एवं नगरीय समस्यायों, नगरीय प्रदूषण एवं निवारण, अपशिष्ट निस्तारण आदि विषयों पर विभिन्न केन्द्रों पर निरन्तर शोध कार्य किया जा रहा है। औद्योगिक भूगोल पर महत्वपूर्ण कार्य डी० :जियर्स का है जो पाँच खण्डों में प्रकाशित हुआ है। 1960ई0 के पश्चात् जे० चार्डोनेट और आरवगेन्डर्मने उद्योग, औद्योगिक प्रदेश एवं उनके विशिष्ट कार्य क्षेत्र तथा स्वरूप पर विस्तृत विवेचन किया है। डिकिन्सन ने इस सम्बन्ध में पी0 जार्ज, ए० एलिम्स तथा जे० ग्रेवियर के कार्यों की सराहना किया है।

प्रादेशिक भूगोल पर भी ब्लाश के समय से ही विशेष कार्य किया गया। फ्रान्स को प्रदेशों एवं लघु राजनीतिक इकाइयों में विभाजित करके उनका विवेचन किया जा रहा है। प्रारम्भ में ब्लाश, डिमांजियां तथा ब्लेंचार्ड अग्रणी रहे। द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त चोर्ले, मार्टोनी तथा दियां के नाम महत्वपूर्ण रहे। सन् 1937–54 के मध्य फ्रान्सीसी आल्पस को ग्यारह खण्डों में विभाजित करके प्रादेशिक वर्णन प्रस्तुत किया गया। फिलिप बुआचे प्रथम फ्रान्सीसी भूगोलविद् था जिसने 1775 ई० में प्रशासनिक इकाइयों में जनसंख्या, जनांकिकी तथा अन्य आर्थिक आंकड़ों के उपयोग करने के कार्यों की आलोचना किया। उसने यह तर्क प्रस्तुत किया कि भौगोलिक आँकड़ों को सही ढंग से किसी प्रादेशिक ढाँचें के अन्तर्गत प्रदर्शित किया जा सकता है। उसके अनुसार नदी बेसिन ही एक प्रमुख प्रकार का प्राकृतिक प्रदेश है। इसके पश्चात् बैरोन कोक्यूबर्ट, जो फ्रेंच स्टैटिस्टिकल आफिस (1796) के निदेशक थे, ने राष्ट्रीय क्षेत्र को प्रादेशिक प्रदेशों में विभाजित करने तथा प्रत्येक का विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयास किया था। इस प्रयास से फ्रान्स में प्रादेशिक भूगोल के अध्ययन में रूचि बढ़ने लगी। इस पद्धति की 1833 ई0 में ओमालियुस–डि–हेलोय द्वारा आलोचना की गई जिसने स्थलरूपों और मृदा तथा अधोशायी शैलों के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के लिए फ्रान्स का भौमिकीय मानचित्र तैयार कराया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि फ्रान्स में भूगोल का विकास ब्लाश से प्रारम्भ होता है जो 1960 के बाद उसके चिन्तन से हटकर नवीन स्वरूप में विकसित हो रहा है।

8.6 वाइडल डी ला ब्लाश

वाइडल डी ला ब्लाश (1845–1918) फ्रांस के सर्वप्रमुख भूगोलवेत्ता थे जिन्होंने लगभग चार दशकों (1877–1918) तक फ्रांसीसी भूगोलवेत्ताओं का मार्गदर्शन किया और भूगोल विशेष रूप से मानव भूगोल और प्रादेशिक भूगोल को प्रगति के उच्चतम शिखर तक पहुँचा दिया। ब्लाश फ्रांस की प्रमुख विचारधारा सम्भववाद के जन्मदाता और मानव भूगोल के संस्थापक थे। इतिहास और भूगोल विषयों में शिक्षा प्राप्त करने वाले ब्लाश ने इटली, यूनान तथा कई पूर्वी यूरोपीय देशों का भ्रमण भी किया था। ब्लाश का जन्म 1845 में पेरिस में हुआ था। स्थानीय विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् उन्होंने 1865 में पेरिस के एक शिक्षण संस्थान 'इकोल नार्मल सुपीरियर' से इतिहास और भूगोल विषय के साथ स्नातक उपाधि प्राप्त किया था। इसके बाद कुछ समय तक उन्होंने एथेन्स (यूनान) के फ्रांसीसी पुरातत्व कालेज में शिक्षक के रूप में कार्य किया और वहाँ से पुनः पेरिस लौट

आये। पेरिस लौटकर ब्लाश ने इतिहास विषय में अपना शोध कार्य पूरा किया और 1872 में पेरिस विश्वविद्यालय से डाक्ट्रेट की उपाधि प्राप्त की। इसके पश्चात् अगले पाँच वर्षों (1872–77) तक ब्लाश ने नान्सी विश्वविद्यालय में और 1877 से पेरिस के 'इकोल नार्मल सुपीरियर' नामक शिक्षण संस्थान में अध्यापन और शोध कार्य किया। ब्लाश ने 1891 में 'एनाल्स डी ज्योग्राफी' नामक भूगोल पत्रिका की स्थापना की और उसका सम्पादन करना आरंभ किया। इस पत्रिका में उनके अनेक विद्वतापूर्ण लेख प्रकाशित हुए। 1894 में उन्होंने 'एटलस जनरल वाइडल ला ब्लाश का प्रथम संस्करण प्रकाशित किया। 1898 में पेरिस के सारबोनविश्वविद्यालय में ब्लाश की नियुक्ति भूगोल के प्रोफेसर एवं अध्यक्ष पद पर हुई जहाँ वे मृत्यु पर्यंत (1918 तक) कार्यरत रहे। ब्लाश आजीवन भूगोल के प्रति समर्पित रहे और 36 वर्षों तक उच्च शिक्षण और शोधकार्यों से जुड़े वाइडल डी ला ब्लॉश रहे। फ्रान्स के विभिन्न भागों की यात्रा करके इन्होंने भौगोलिक पर्यावरण के अनुसार फ्रान्स का प्रथम बार प्रादेशिक विभाजन किया। इनके प्रादेशिक विभाजन का आधार ग्रामीण बस्तियाँ, भूमि राजस्व एवं ग्रामीण भूमि उपयोग, ग्रामीण स्वावलम्बी जीवन जैसे तत्व थे। इनके प्रयास से ही फ्रान्स के अन्य विश्वविद्यालयों में भूगोल का अध्ययन–अध्यापन प्रारम्भ हुआ। सन् 1894 में इन्होंने नाम की वार्षिक भूगोल पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया जिसका जीवनपर्यन्त सम्पादन किया। इसमें भूगोल की सभी शाखाओं जैसे भौमिकी, खनिज विज्ञान, ऐतिहासिक भूगोल आदि विषयों पर किये गये चिन्तन एवं शोधों का प्रकाशन किया गया। इन्होंने अन्य भाषाओं में रचित विषय की पुस्तकों का फ्रान्सीसी भाषा में अनुवाद भी कराया।

रचनायें–ब्लाश ने समय–समय पर शोध निबन्धों के अतिरिक्त कई पुस्तकों की रचना भी किया। उनकी उल्लेखनीय रचनायें इस प्रकार हैं–

1. यूरोप में राष्ट्र एवं राज्य (1889),
2. एटलस जनरल बाइबल लाब्लाश (1894),
3. फ्रांस का भूगोल1903),
4. पूर्वी फ्रान्स का भूगोल ,
5. मानव भूगोल –(1923) मरणोपरान्त उनके शिष्य एवं दामाद डी० मार्तोन के प्रयास से प्रकाशित,
6. सामाजिक तथ्यों की दशायें, विशिष्ट जीवन पद्धति और भूगोल की विशिष्टतायें (1902, 1911 तथा 1912), लेखों का प्रकाशन।

ब्लाश की विचारधारा

ब्लाश ने भूगोल के अध्ययन में कुछ संकल्पनाओं और सिद्धान्तों पर अधिक बल दिया जिनमें प्रमुख हैं(1) सम्भववाद की संकल्पना, (2) पार्थिव एकता का सिद्धान्त, (3) लघु प्रदेश या पेज की संकल्पना (4) विशिष्ट जीवन पद्धति की संकल्पना। इनका विवरण निम्नवत् है

(1) सम्भववाद की संकल्पना–

ब्लाश सम्भववाद के प्रतिपादक एवं प्रबल समर्थक और नियतिवादी जर्मन विचारधारा के कटु आलोचक थे। उन्होंने मानव की स्वतंत्रता तथा उसकी कार्यकुशलता पर बल दिया और मनुष्य पर प्रकृति का नियंत्रण बताने वाले नियतिवाद की कड़ी आलोचनाएं की। उनका विचार था कि मनुष्य पर्यावरण का एक शक्तिशाली कारक है जो अपने क्रिया–कलापों द्वारा प्राकृतिक भूदृश्य में परिवर्तन करता है और सांस्कृतिक भूदृश्य का निर्माण करता है। मनुष्य प्राकृतिक पर्यावरण से नियंत्रित नहीं है बल्कि इसने अपने विवेक और कार्यकुशलता से अनेक प्राकृतिक तत्वों पर विजय प्राप्त कर लिया है। मानवीय प्रयत्नों तथा क्रिया–कलाप को प्रधानता प्रदान करने वाली इस विचारधारा को सम्भववाद के नाम से जाना जाता है।

उन्होंने ब्लाश के मतानुसार मनुष्य स्वयं समस्या और हल दोनों है तथा प्रकृति उसकी उपदेशिका मात्र है। मनुष्य के विवेक, कौशल तथा क्रिया–कलापों को अधिक महत्वपूर्ण समझा और मानव शक्ति में पूर्ण आस्था व्यक्त की थी। उनका मत था कि प्रकृति ने कोई ऐसा निश्चित मार्ग नहीं बना रखा है जिस पर चलने के लिए मनुष्य को बाध्य होना पड़े बल्कि प्रकृति मनुष्य के सम्मुख अनेक साधन तथा संभावनाएं प्रस्तुत करती है जिसका प्रयोग करने के लिए मनुष्य स्वतंत्र है। ब्लाश के शब्दों में, मनुष्य के लिए प्रकृति का स्थान एक सलाहकार से अधिक नहीं हो

सकता। ब्लाश के मत का अनुसरण करते हुए ब्रूंश, डिमांजियां, ब्लांशार, डी मार्तोन आदि प्रमुख फ्रांसीसी भूगोलवेत्ताओं ने अपनी रचनाओं में संभववाद का समर्थन तथा प्रचार किया।

(2) पार्थिव एकता का सिद्धान्त–

ब्लाश पार्थिव एकता या अंतर्संबंधों के सिद्धान्त को मानव भूगोल का प्रमुख सिद्धान्त मानते थे। ब्लाश के अनुसार सभी भौगोलिक प्रगति में प्रमुख विचार पार्थिव एकता का है। उनके शब्दों में, 'मानव भूगोल के तत्व पार्थिव एकता से सम्बंधित हैं और केवल उसी के माध्यम से उनकी व्याख्या की जा सकती है।' पार्थिव एकता एक सार्वभौमिक सत्य है जो प्रत्येक देश–काल में विद्यमान होती है। जिस प्रकार ब्रह्मांड में विभिन्न आकाशीय पिण्ड (नक्षत्र) एक–दूसरे के गुरुत्वाकर्षण के कारण संतुलित रहते हैं उसी प्रकार भूतल पर भी विविध प्रकार के भौगोलिक तथ्य एक–दूसरे से प्रभावित तथा सम्बंधित होते हैं। वृश, डिमांजियां आदि फ्रांसीसी भूगोलवेत्ता भी इसी सिद्धान्त को मानते थे।

(3) लघु प्रदेश या पेज की संकल्पना–

ब्लाश प्रादेशिक आधार पर भौगोलिक अध्ययन को अधिक सार्थक और महत्वपूर्ण मानते थे। उनकी प्रेरणा और मार्ग दर्शन से फ्रांस में प्रादेशिक भूगोल पर अधिक संख्या में शोध प्रबंध (मोनोग्राफ) और ग्रंथ लिखे गये। ब्लाश ने 'पेज'संकल्पना को प्रतिपादित किया था। दीर्घकालिक विकास प्रक्रिया में एक समुदाय का उसके स्थानीय पर्यावरण (प्राकृतिक भूदृश्य) के साथ गहन सम्बंध विकसित हो जाते हैं और उनका अन्तर्संबंध इतना बढ़ जाता है कि एक की कल्पना दूसरे के बिना करना कठिन हो जाता है। इस प्रकार मानव–बसाव वाले प्रत्येक क्षेत्र की अपनी पृथक् पहचान बन जाती है और उसका विशिष्ट व्यक्तित्व प्रकट होता है। अलग–अलग स्थानीय सामाजिक–सांस्कृतिक समूहों वाले ऐसे निवास क्षेत्रों को ब्लाश ने 'पेज' की संज्ञा प्रदान की है। ब्लाश के अनुसार इस प्रकार की लघु क्षेत्रीय इकाइयों का सूक्ष्म विश्लेषण ही भौगोलिक अध्ययन का प्रमुख कार्य है। उनके विचार से भूगोल उन तत्वों के अध्ययन पर केन्द्रित है जो एक ही क्षेत्र में साथ–साथ उपस्थित और क्रियाशील हैं तथा पारस्परिक संबंधों के आधार पर प्रत्येक क्षेत्र को पृथक् पहचान प्रदान करते हैं। उन्होंने फ्रांस के ग्रामीण अंचलों में अलग–अलग सांस्कृतिक लक्षणों वाली और मुख्यतः आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था वाली छोटी–छोटी क्षेत्रीय इकाइयों को पेज कहा है। ब्लाश के अनुसार भिन्न–भिन्न क्षेत्रीय इकाइयों का अध्ययन भूगोल का केन्द्र बिन्दु है।

(4) विशिष्ट जीवन पद्धित या जेनरे द वी–

ब्लाश का निश्चित मत था कि एक ही प्रकार के पर्यावरण में निरन्तर कई पीढ़ी तक रहता चला आ रहा मानव समुदाय अपने सामूहिक प्रयास से सामाजिक और आर्थिक जीवन की एक विशिष्ट और प्रायः अद्वितीय जीवन पद्धति, संस्कार और मूल्य बोध विकसित कर लेता है जो उस समुदाय की मानसिकता का अभिन्न अंग बन जाता है। किसी क्षेत्र में दीर्घकाल में विकसित होने वाली विशिष्ट जीवन पद्धति और मूल्य बोध की इसी सम्मिलित मानसिकता को ब्लाश ने 'जेनरे द वी' की संज्ञा दी है। ब्लाश के अनुसार इस तथ्य का निर्धारण वंशानुगत गुण (संस्कृति) ही करते हैं कि किसी समुदाय द्वारा अपने क्षेत्रीय पर्यावरण में विद्यमान संसाधनों का उपयोग किस प्रकार और किस सीमा तक किया जायेगा। इस प्रकार 'जेनरे द वी' सांस्कृतिक भूदृश्य का परिचायक है जो किसी समुदाय या विशिष्ट सांस्कृतिक समूह की परम्परा, दृष्टिकोण, लक्ष्य, संस्थाओं, प्रौद्योगिकी आदि के रूप में परिलक्षित होता है।

(5) मानव भूगोल के तथ्य–

वाइडल डी ला ब्लाश को आधुनिक फ्रांसीसी मानव भूगोल का संस्थापक माना जाता है। मरणोपरान्त प्रकाशित उनकी पुस्तक 'मानव भूगोल के सिद्धान्त' में मानव भूगोल के तथ्यों को तीन मूल वर्गों में विभक्त किया गया है– (1)जनसंख्या, (2) सांस्कृतिक तत्व, और (3) यातायात के साधन। पुस्तक के अंत में परिशिष्ट के रूप में कुछ तथ्यों की विवेचना की गयी है। इसके अन्तर्गत (i) प्रजातियों का निर्माण, (ii) आविष्कारों के प्रकार, (iii) जीवन के प्रकार, (v) मानव सभ्यता, और (vi) नगरों के अध्ययन को सम्मिलित किया गया है।

8.7 जीन ब्रुंश

जीन ब्रूंश (1869–1930) ब्लाश के सबसे प्रथम एवं प्रिय शिष्य और फ्रांस के महान भूगोलवेत्ता थे। मानव भूगोल को एक स्वतंत्र वैज्ञानिक विषय के रूप में स्थापित करने में ब्रूंश की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। ब्रूंश का

जन्म 1869 में फ्रांस में ताउलाउसनामक स्थान पर हुआ था। उन्होंने पेरिस के 'इकोल नार्मल सुपीरियर' नामक शैक्षिक संस्थान से शिक्षा प्राप्त की थी। उस समय ब्लाश उस में इतिहास और भूगोल विषय के साथ 1892 में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। 1894 में उन्होंने स्पेन की यात्रा की और वहाँ के अनुभव पर आधारित सिंचाई पर एक शोध प्रबंध तैयार किया। 1896 में ब्रूंश की नियुक्ति स्विटजरलैण्ड के फ्राइबर्ग विश्वविद्यालय में भूगोल के प्रोफेसर के पद पर हुई जहाँ वे 1912 तक कार्य करते रहे। 1898 में फ्रांसीसी अकादमी ने विद्वतापूर्ण कार्य के लिए ब्रूंश को पुरस्कृत करके सम्मान प्रदान किया। इसी दौरान ब्रूंश ने फ्रांसीसी भाषा में मानव भूगोल नामक पुस्तक लिखा था जिसका प्रथम संस्करण 1910 में प्रकाशित हुआ। बाद में वंश के मित्र अमेरिकी भूगोलवेत्ता ईसा बोमैन की सहायता से ब्रूंश के इस महत्वपूर्ण कार्य के आधार जीन ब्रूंश पर उन्हें 'कालेज डी फ्रांस' में मानव भूगोल के प्रोफेसर पद पर नियुक्त कर लिया गया जहाँ वे मृत्यु पर्यंत (1930 तक) कार्य करते रहे।

रचनायें—ब्रूंश फ्रेंच, यूनानी तथा स्पेनिस भाषाओं के ज्ञाता थे। उन्हें जर्मन तथा अंग्रेजी भाषा का भी ज्ञान था। भूगोल के अतिरिक्त उनकी रूचि विधि, इतिहास तथा राजनीति शास्त्र में भी थी। 1891 से 1930 ई0 के बीच विभिन्न विषयों की रचनायें इस प्रकार हैं—

1. ब्रुंश ने 1891 से 1902 ई0 तक राजनीतिक तथा धार्मिक ग्रंथों का अनुवाद कियाजिसमें अरस्तु की मूल रचना काके नाम से अनुवाद किया। इसी के साथ 1898 ई० में पुस्तक से कुछ अंशों का अनुवाद किया।
2. भूगोल पर इनकी प्रसिद्ध रचना का प्रकाशन 1910 ई० में हुआ। यह तीन खण्डों में प्रकाशित हुई जिसका तीसरा खण्ड 1930 ई0 में पुनः प्रकाशित किया गया। इस पुस्तक का लघु संस्करण 1942 ई० में उनकी पुत्री डी ला मेरी द्वारा प्रकाशित किया गया। इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रसिद्ध अमेरिकी भूगोलविद् ईसा बोमेन द्वारा किया गया।
3. ब्रुंश ने फ्रांसीसी इतिहासविद् जी० हैनोटाक्स के अनुग्रह पर फ्रान्स का मानव तथा आर्थिक भूगोल, की रचना 1920ई0 तथा राजनीतिक तथा आर्थिक भूगोल की रचना 1926 ई0 में किया। इन्होंने ईसा बोमेन का अनुवाद फ्रेन्च में 1928 ई0 में किया।

ब्रूंश भूगोल को लोकप्रिय और जीवनोपयोगी विषय के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते थे। उन्होंने भौगोलिक अध्ययनों की गुणवत्ता में सुधार तथा इसे लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से स्कूल स्तरीय पाठ्य पुस्तकों तथा मानचित्रावली की रचनाओं को भी पर्याप्त प्रोत्साहन प्रदान किया।

ब्रुंश की विचारधारा —जीन ब्रूंश अपने विद्यार्थी जीवन में ही ब्लाश के विचारों से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से ब्लाश के विचारों को अधिक प्रभावशाली ढंग से प्रसारित करने का भारी उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य किया। ब्रूंश शुद्ध रूप से मानव भूगोलवेत्ता थे और उनका महत्वपूर्ण योगदान मानवभूगोल से सम्बंधित है। उन्होंने मानव भूगोल के विषय क्षेत्र (मानव भूगोल के तथ्यों) को निर्धारित करने का प्रयास किया और सम्भववाद का समर्थन तथा पुष्टि किया। ब्रूंश ने मानव भूगोल के दो आधारभूत सिद्धान्तों—

(1) पार्थिव एकता का सिद्धान्त और

(2) क्रियाशीलता या परिवर्तन का सिद्धान्त को अपने अध्ययन का आधार बनाया। इस प्रकार मानव भूगोल के विकास में आजीवन तत्पर जीन ब्रूंश के भौगोलिकदृदृष्टिकोण और विचार निम्नांकित हैं।

मानव भूगोल के तथ्य ब्रूंश की प्रसिद्ध पुस्तक 'मानव भूगोल' में मानव भूगोल के तथ्यों की विस्तृत विवेचना की गयी है। उन्होंने मानव भूगोल के तथ्यों को दो भिन्न ढंग से वर्गीकृत किया है—

(v) सभ्यता के विकास के आधार पर वर्गीकरण, और

(ब) यथार्थवादी वर्गीकरण।

(अ) सभ्यता के विकास के आधार पर वर्गीकरण—

ब्रूंश ने अपनी पुस्तक मानव भूगोल में सभ्यता के विकास को ध्यान में रखकर मानव भूगोल के तथ्यों को चार वर्गों में विभक्त करके विश्लेषण किया है जो इस प्रकार हैं—

(1) प्राथमिक आवश्यकता का भूगोल— इसके अन्तर्गत मानव की तीन मूलभूत (प्राथमिक) आवश्यकताओंभोजन, वस्त्र, और आश्रय को सम्मिलित किया गया है।

(2) भू–शोषण का भूगोलइसमें मानव की उन क्रियाओं तथा प्रयत्नों को सम्मिलित किया गया है जिनके द्वारा वह प्राकृतिक संसाधनों का शोषण करके अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इसके अन्तर्गत पशुपालन, कृषि, खनन, औद्योगीकरण आदि सम्मिलित किये गये हैं।

(3) सामाजिक भूगोल इसके अन्तर्गत मनुष्यों की अन्तर्निर्भरता, श्रम विभाजन, सहकारिता, नागरिक व्यवस्था आदि को सम्मिलित किया गया है।

(iv) राजनीतिक एवं ऐतिहासिक भूगोल इसके अन्तर्गत ब्रूंश ने राजनीतिक या प्रशासकीय तथ्यों तथा ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बंधित तथ्यों को सम्मिलित किया

है।

(ब) यथार्थवादी वर्गीकरण–

ब्रूंश का यथार्थवादी वर्गीकरण उनके उपर्युक्त वर्गीकरण से भिन्न है। इसके अन्तर्गत उन्होंने मानव भूगोल के तथ्यों को तीन प्रमुख वर्गों और छः आवश्यक तथ्यों में विभाजित किया है और प्रत्येक वर्ग में दो–दो आवश्यक तथ्यों को रखा है। ये प्रमुख वर्ग और आवश्यक तथ्य निम्नांकित हैं

(1) मिट्टी के अनुत्पादक व्यवसाय सम्बंधी तथ्य इसके दो आवश्यक तथ्य हैं–गृह और राजमार्ग। ब्रूंश के अनुसार गृहों और सड़कों के अन्तर्गत प्रयुक्त भूमि से कोई आर्थिक उत्पादन नहीं प्राप्त होता है। अतः उन्होंने इसे अनुत्पादक व्यवसाय की संज्ञा दी है।

(2) पौधों और पशुओं पर विजय सम्बंधी तथ्यइस वर्ग के दो आवश्यक तथ्य हैं कृषि और पशुपालन। ब्रूंश ने कृषि और पशुपालन को क्रमशः प्राकृतिक वनस्पतियों तथा जंगली पशुओं पर मनुष्य की विजय का प्रतीक माना है।

(3) विनाशकारी अर्थव्यवस्था सम्बंधी तथ्य –इस वर्ग के दो आवश्यक तथ्य हैं (1) खनिज सम्पत्ति का शोषण, और (2) पौधों तथा पशुओं का विनाश। मनुष्य प्रकृति द्वारा निर्मित खनिज भंडारों तथा पौधों एवं पशुओं का अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए अंधाधुंध शोषण करता है जबकि इस विनाश की क्षतिपूर्ति निकट भविष्य में संभव नहीं है। इसीलिए ब्रूंश ने इन विनाशकारी आर्थिक क्रियाओं को 'आर्थिक लुटेरीऔर इस प्रकार की अर्थव्यवस्था को लुटेरी अर्थव्यवस्था की संज्ञा प्रदान की है।

मानव भूगोल के तथ्यों के उपर्युक्त यथार्थवादी वर्गीकरण में बहुत से तथ्य समाहित नहीं हैं यहाँ तक कि ब्रूंश द्वारा सभ्यता के विकास के आधार पर किये गये वर्गीकरण में सम्मिलित सभी तथ्यों का समावेश इसमें नहीं हो पाया है। सम्भवतः इसी कमी को दूर करने के उद्देश्य से ब्रूंश ने तीन प्रमुख वर्गों तथा छः आवश्यक तथ्यों की व्याख्या के पश्चात् अपनी पुस्तक के अंत में एक परिशिष्ट के रूप में 'मानव भूगोल के कुछ विशेष अध्ययन' शीर्षक के अन्तर्गत इन तथ्यों की विवेचना की है (1) मानव भूगोल और प्रादेशिक भूगोल, (2) मानव जातियाँ, (3) सामाजिक भूगोल, और (4) राजनीतिक एवं ऐतिहासिक भूगोल।

1. सम्भववाद को समर्थन ब्रूंश सम्भववाद के प्रमुख समर्थकों में से एक थे। उन्होंने भौगोलिक अध्ययनों में मानवीय प्रयत्नों और कार्य–कलापों पर अधिक बल दिया। ब्रूंश मनुष्य और उसके कार्यों को ही प्रमुख मानते थे और प्रकृति को गौण। उनके विचार से मनुष्य एक निष्क्रिय प्राणी नहीं बल्कि एक क्रियाशील शक्ति है जो प्राकृतिक पर्यावरण को परिवर्तित करने में निरन्तर क्रियाशील रहती है।

2. पार्थिव एकता का सिद्धान्त ब्लाश की भाँति ब्रूंश भी पार्थिव एकता के सिद्धान्त को मानव भूगोल का प्रमुख सिद्धान्त मानते थे। ब्रूंश के अनुसार 'विभिन्न शक्तियाँ एक–दूसरे पर केवल निश्चित दशाओं में ही कार्य नहीं करती हैं और न ही वे केवल कुछ निश्चित दशाओं में पारस्परिक क्रिया का प्रयास करती हैं, बल्कि विभिन्न दशाओं के अंतहीन अंतर्सम्बंधों के कारण ये सभी शक्तियाँ परस्पर घनिष्ठरूप से बंधी हुई हैं।

3. क्रियाशीलता या परिवर्तन का सिद्धान्त इस सिद्धान्त के अनुसार पर्यावरण के सभी तथ्य चाहे वे जड़ हों या चेतन, प्राकृतिक हों या सांस्कृतिक (मानवीय) सभी परिवर्तनशील हैं और उनके स्वरूप में परिवर्तनकारी शक्तियाँ निरंतर क्रियाशील रहती हैं। ब्रूंश के शब्दों में, "हमसे सम्बन्धित प्रत्येक चीज परिवर्तित हो रही है, प्रत्येक चीज बढ़ रही है अथवा घट रही है, वास्तव में कुछ भी स्थिर या परिवर्तनरहित नहीं है। इस प्रकार वे परिवर्तन को प्रकृति का निश्चित नियम मानते थे और भौगोलिक तथ्यों के विश्लेषण में ऐतिहासिक विकास

प्रक्रिया को समझाने का प्रयास करते थे।

इन्होंने प्रारम्भ से ही भौगोलिक अध्ययन में मानवकृत तत्वों तथा तथ्यों पर बल दिया है। इसीलिए वे मानवीय तत्वों तथा तथ्यों को महत्वपूर्ण मानकर आगे चलते हैं जबकि प्राकृतिक तत्वों को गौण मानते हैं।

8.8 डिमांजियां (1872–1940)

ब्लाश तथा ब्रुंश के उपरान्त डिमांजिया फ्रांस के तीसरे प्रमुख मानव भूगोल शास्त्री थे। यह ब्लाश के शिष्य थे तथा दि मार्तोनी के समकालीन थे। सन् 1905 में उसने पिकार्डो के भूगोल का प्रकाशन किया था। अपने इस उत्कृष्ट प्रकाशन के कारण उन्हें लिले विश्वविद्यालय में स्थान प्राप्त हुआ जहाँ वह सन् 1911 तक रहे। लिले विश्वविद्यालय के कार्यकाल में उनके कई शोध लेख फ्रांस की पत्रिका में प्रकाशित हुए। सन् 1911 में उन्हें लिले विश्वविद्यालय से सोरबान विश्वविद्यालय बुला लिया गया, जहां सन् 1911 से 1940 तक कार्य करते रहे तथा इस अवधि में उन्होंने मानव भूगोल के विकास में शोध का अपना महान योगदान किया। मानव भूगोल के साथ–साथ आर्थिक भूगोल पर भी उन्होंने शोध लेख लिखे।

डिमांजियां अपने अध्ययन काल में मानव भूगोल पर ऐसा ग्रन्थ लिखना चाहते थे जो ब्रुन्श के ग्रन्थ की अपेक्षा अधिक संक्षिप्त, स्पष्ट अवं दार्शनिक हो तथा उनकी दूसरी प्रबल इच्छा फ्रांस के आर्थिक भूगोल को लिखने की थी, किन्तु अपने जीवनकाल में इन दोनों ग्रन्थों का प्रकाशन वह नहीं करा सके। उनकी मृत्यु के बाद सन् 1942 में उनके प्रमुख ग्रन्थ 'मानव भूगोल की समस्याएँ' का प्रकाशन हुआ तथा सन् 1946 से 1948 तक विश्व भूगोल ग्रन्थमाला में उनके द्वारा लिखित 'फ्रांस का आर्थिक भूगोल' प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ के प्रकाशित होने से पूर्व ब्रिटिश द्वीप तथा निचले देश नीदरलैण्ड तथा बेल्जियम के भूगोल का प्रकाशन इसी ग्रन्थमाला में हो चुका था। डिमांजियां ने अपना अधिकाँश समय वार्षिक ग्रन्थमाला के सम्पादन कार्य में दिया। इस पत्रिका में उनके 31 शोध निबन्ध तथा 89 टिप्पणियां प्रकाशित हुईं। डिमांजियां की फ्रांस की ग्रामीण बस्तियों के अध्ययन में विशेष रुचि थी। इस विषय पर सन् 1920 से 1939 की अवधि में इसी विषय पर कई पुस्तकें भी छपी थीं। उन्होंने ग्रामीण गृहों के बसाव में उनकी आन्तरिक रचना तथा कृषि कार्यों को आधारभूत कारक माना था। बस्तियों के अध्ययन में उन्होंने मानवीय निवासों के सकेन्द्रण तथा विकिरण का विशेष रूप से अध्ययन किया था।

डिमांजियाँ की रचनाएं–

डिमांजियाँ ने 1905 से 1940 के मध्य अनेक शोध लेख प्रकाशित किये। लिले विश्वविद्यालय में शिक्षण कार्य करते समय 'एनाल्स डी ज्योग्राफी' नामक पत्रिका में दो लेख प्रकाशित किए जिसमें एक मानव भूगोल से सम्बंधित था और दूसरा भौतिक भूगोल (अपरदन चक्र द्वारा भू आकृतियों का विकास) से। इसके पश्चात् डिमांजियाँ ने मानव भूगोल की समस्याओं के अध्ययन पर ध्यान केन्द्रित किया। डिमांजियां की प्रमुख रचनाओं का विवरण निम्नांकित हैं।

(1) पिकार्डी का प्रादेशिक भूगोल–डिमांजियां ने 1905 में 'ला पिकार्डी एटलेस रीजन्स वेसिनस' नामक शोध प्रबंध (मोनोग्राफ) प्रस्तुत किया था जिसे अत्यधिक सम्मान प्राप्त हुआ था।

(2) एनाल्स डी ज्योग्राफी नामक विख्यात भौगोलिक पत्रिका का डिमांजियां ने 1920 से 1936 तक सम्पादन किया और इस पत्रिका के लिए उन्होंने 31 लेख और 89 टिप्पणियाँ लिखा था। इस पत्रिका में प्रकाशित लगभग सभी लेख निवास गृहों के बसाव, ग्रामीण अधिवास, कृषि प्रणाली आदि मानवीय पक्षों से संबंधित थे।

(3) औपनिवेशिक भूगोल 1923 में प्रकाशित।

(4) पेरिस नगर का अध्ययन , 1923 में प्रकाशित।

(5) मानव भूगोल की समस्याएं यह डिमांजियाँ के सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक है जिसका प्रकाशन उनके मरणोपरांत 1942 में हुआ था।

(6) फ्रांस का आर्थिक भूगोल नामक पुस्तक उनकी मृत्यु के पश्चात् 1946 में प्रकाशित हुई थी।

डिमांजियाँ की विचारधारा–

डिमांजियाँ ब्लाश की विचारधारा के प्रबल समर्थक और अनुयायी थे। वे मानव भूगोल के सिद्धान्तों में पार्थिव एकता के सिद्धान्त और क्रियाशीलता या परिवर्तन के सिद्धान्त को प्रमुख मानते थे। डिमांजिया ने जर्मन विचारधारा नियतिवाद को पूर्णतया अस्वीकृत कर दिया था और सम्भववाद का जोरदार शब्दों में समर्थन किया। फ्रांस के ग्रामीण अधिवासों के अध्ययन में उनकी विशेष रुचि थी। उन्होंने फ्रांस के ग्रामों का अध्ययन किया और उनसे सम्बंधित अनेक विद्वतापूर्ण लेख तथा पुस्तकें लिखा। डिमांजियाँ ने लघु प्रदेशों के आधार पर मानव भूगोल के अध्ययन को उपयुक्त माना। 'मानव भूगोल की समस्याएं' नामक पुस्तक में मानव भूगोल के सम्बंध में डिमांजिया ने लिखा है कि 'मानव भूगोल मानव समूहों तथा समाजों का उनके प्राकृतिक पर्यावरण से पारस्परिक सम्बंधों का अध्ययन है। संचार साधनों द्वारा, पाताल तोड़ कुओं, नदियों के नियन्त्रण द्वारा मानवीय भोजन के लिए नए पौधों का विकास आदि मानवीय क्रियाओं द्वारा होने वाले वातावरण के परिवर्तन पर बल दिया।

उसके सम्पूर्ण अध्ययन को चार पक्षों में विभाजित किया जा सकता है––

1. विश्व के बृहत् प्राकृतिक प्रदेशां (चाहे वह जलवायु अथवा वनस्पति या मिट्टी प्रदेश हों) में जीवन के प्रकारों का अध्ययन।
2. प्रमुख ढंगों एवं विधियों के प्रकार, जिनके द्वारा मनुष्य भोजन एकत्र करने, आखेट,मत्स्य उद्योग, निर्माण उद्योग तथा व्यापार में कार्यरत हैं।
3. मानवीय बस्तियों का विवरण, घनत्व, सीमाएँ तथा मानवीय प्रवास का वितरण।
4. बस्तियों के प्रकार।

डिमांजियां के अनुसार– 'मानव भूगोल का अध्ययन भौतिक तथा प्रादेशिक क्षेत्रों केआधार पर ही होना चाहिए'।

8.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई में फ्राँसीसी भौगोलिक चिंतन के विकास का अध्ययन किया गया है साथ ही फ्राँसीसी विद्वानों जिसमे ब्लाश, ब्रुन्श एवं डिमांजिया की कृतियों, रचनाओं का एवं इनके भौगोलिक चिंतन के योगदान की व्याख्यान किया गया है' 20वीं शताब्दी के फ्रांसीसी भूगोलवेताओं ने भूगोल की सभी शाखाओं को विकसित करने का प्रयास किया लेकिन मानव भूगोल एवं प्रादेशिक भूगोल पर विशेष जोर दिया था। फ्रांस में मूलतः उच्च कोटि के मानव भूगोलवेता बड़ी संख्या में सामने उभरकर आये। फेब्रे, ब्लाश, लीप्ले, जीन ब्रुन्श, डिमांजिया, डि मार्तोन , चोर्ले जैसे नाम भूगोलवेताओं का उल्लेखनीय है। इसके उल्लेखनीय है। इसके अलावे गालो, ब्लेन्चार्ड, सीगफ्रायड भूगोलवेताओं राजनीतिक भूगोल के विकास में योगदान दिया। फ्रांसीसी भूगोलवेत्ताओं का भूगोल में योगदान जीन बूंश फ्रांसीसी भूगोलवेत्ता वाइडल डी ला ब्लाश फ्रांसीसी भूगोलवेत्ता अल्बर्ट डिमांजियाँ इमैनुअल डी मार्तोन फ्रांसीसी भूगोलवेत्ता फ्रांसीसी भूगोलवेत्ता जर्मनी की तुलना में यहाँ भूगोल का विकास देरी से हुआ। जर्मनी में जहाँ नियतिवाद का समर्थन करने वाले भूगोलवेता अधिक उभरे वहीं फ्रांस में संभव वहीं फ्रांस में संभववाद का समर्थन करने वाले भूगोलवेता उभरकर सामने आये।

भूगोलवेत्ताओ फ्रांसीसी भूगोलवेत्ताओं की व्यापक कल्पना शक्ति एवं दृष्टिः सुन्दर तथासाहित्यिक शैलीय समस्याओं के उपागमी की मौलिकता, बारीकियों पर ध्यान के साथ–साथ विशाल भौगोलिक कार्य और वह भी सीमित वित्तीय संसाधनों के साथ, जैसे दुर्लभ लक्षणों के कारण भूगोल का फ्रांसीसी स्कूल सम्पूर्ण संसार की प्रशंसा का पात्र रहा है।

8.10 स्वर मूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

प्रश्न1. निम्नलिखित में से कौन सी एक संकल्पना वाइडल डी ला ब्लाश से सम्बन्धित नहीं है?

(अ) भूदृश्य (लैण्डशाफ्ट) (ब)पार्थिव

(स)सम्भववाद (द) विशिष्ट जीवन पद्धति (जेनरे द वी)

प्रश्न2. निम्नलिखित में से कौन सी एक संकल्पना वाइडल डी ला ब्लाश से सम्बद्ध है?

(अ) नियतिवाद (ब) सम्भववाद

(स) पर्यावरणवाद (द) प्रसंभाव्यवाद

प्रश्न3. मानव भूगोल में क्रियाशीलता के सिद्धान्तको किसने सविस्तार प्रतिपादित कियाथा?

(अ) जीन बूँश ने (ब) वाइडल डी ला ब्लाश ने

(स) मैक्समिलें सोरे ने (द) अल्बर्ट डिमाजियाँ ने

प्रश्न4. 'सम्भववाद' की संकल्पना भूगोल के किस स्कूल (सम्प्रदाय) के साथ सम्बद्ध है?

(अ) जर्मन (ब) फ्रेन्च

(स) ब्रिटिश (द) अमेरिकन

प्रश्न5. निम्नलिखित में से कौन मानव भूगोल में 'जेनरे द वी' सिद्धान्त के प्रवर्तक थेः

(अ) वाइडल डी ला ब्लाश (ब) जीन बूंश

(स) ए० डिमाजियां (द) कार्ल सावर

उत्तरमाला 1. (अ) 2. (ब)3. (अ) 4. (ब)5. (अ)

8.11 संदर्भ –ग्रंथ– सूची

- Abler, R,Adams, J. S. and Gould, P. (1971) Spatial Organisation % The Geographer's View of the World, Englewood Cliffs.
- Abler, R.F. (1987) What shall we say ? To whom shall we speak ? (PresidentialAddress)Ann.Assoc.Am. Geogrs., 77(1), pp. 512 - 24.
- Ackerman, E.A. (1945) Geographical training, war time research and immediate professional objectives,Annals of theAssociation ofAmerican Geographers 35, pp. 121-143.
- Ackerman, E.A. (1963) Where is a research frontier ?Ann.Assoc.Am. Geogrs., 53, pp. 429 - 440.
- A garwal, Vasudevsharan (1945) Panini Kaleen Bharat, Benaras.
- Agnew, J. (1987) Place and Politics % The Geographical
- of State and Mediation Society, Boston, PP. 5-6.
- Ali, S. M. (1966) The Geography of Puranas, New Delhi,
- Anuchin V.A. (1973) Theory of Geography in Directions in Geography (ed) R. J. Chorley, London.
- Appleton, J. (1975) The Experience of Landscape, London.
- Arya Bhatta--Jyotish Siddhanta (Sanskrit).
- Atwood, W. W. (1940) The Physiographic Provinces of NorthAmerica, Boston.

8.12 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

प्रश्न 1 भूगोल के विभिन्न शाखाओं के विकास में फ्रांसीसी भूगोलवेत्ताओं के योगदान की समीक्षा कीजिए?

प्रश्न 2 फ्रांसीसी भूगोलवेत्ता के प्रादेशिक भूगोल विलक्षणता की विवेचना कीजिए?

प्रश्न 3 भौगोलिक चिंतन में किए गए विधि तंत्र में फ्रांसीसी योगदान के विशिष्ट लक्षण समझाइए?

प्रश्न 4 फ्रांसीसी भौगोलिक विचारधारा के विकास में विटाइल डी ला ब्लाश तथा डिमांजिया के योगदान का मूल्यांकन कीजिए?

प्रश्न 5 फ्रांस में भौगोलिक चिंतन का विकास एवं योगदान की व्याख्या कीजिए?

इकाई–9 आंग्ल अमेरिकी संप्रदाय – संयुक्त राज्य अमेरिका में भूगोल का प्रारंभ, डेविस की कृतियां एवं योगदान

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 आंग्ल अमेरिकी संप्रदाय

9.4 संयुक्त राज्य अमेरिका में भौगोलिक चिंतन का प्रारंभ

9.4.1. अंर्तमहायुद्ध काल

9.4.2. जीव भू विस्तार विज्ञान

9.4.3. ऐतिहासिक भूगोल

9.4.4. कार्यात्मक संगठन

9.5 युद्धोत्तर काल में भूगोल

9.6 विलियम मॉरिस डेविस की कृतियां एवं योगदान

9.7 अमेरिकी भूगोल के विविध आयाम

9.7.1. भौतिक भूगोल

9.7.2. मानव पारिस्थितिकी

9.7.3. ऐतिहासिक भूगोल

9.7.4. मानव भूगोल

9.7.5. सांस्कृतिक भूगोल

9.7.6. भौगोलिक चिंतन

9.7.7. राजनैतिक भूगोल

9.7.8. नगरीय भूगोल

9.7.9. जनसंख्या भूगोल

9.8 सारांश

9.9 स्व मूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

9.10 संदर्भ– ग्रंथ– सूची

9.11 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

9.1 प्रस्तावना

संयुक्त राज्य अमेरिका में भूगोल का वैज्ञानिक अध्ययन 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ब्रिटेन से भी पहले आरम्भ हो गया था। उस समय जर्मन भूगोलवेत्ताओं की 'वातावरण– निश्चयवाद की विचारधारा अमेरिका में भी फैली हुई थी परन्तु अमेरिका में कुछ भूगोलवेत्ता स्वतन्त्र विचारक भी थे, जो वातावरण के प्रभाव को बड़ा प्रबल

मानते हुए भी, मानव द्वारा वातावरण के रूपान्तर को भी देखते और परखते थे। उस स्वतन्त्र विचारक थे।अमेरिकी भूगोलवेत्ताओं में जॉर्ज पार्किन्स मार्श प्रमुख प्रकृति की प्रक्रियाओं और उनके प्रभावों का विशेष अन्वेषण और अध्ययन करने वाले अमेरिकन भूगोलवेत्ताओं में आरनोल्ड गायोट तथा विलियम मोरिस डेविस प्रमुख थे। 19वीं शताब्दी के अन्तिम तथा 20वीं शताब्दी के आरम्भिक काल में, जर्मन भूगोलवेत्ता रेटजेल की अमेरिकन शिष्या कुमारी सेम्पुल ने वातावरण–निश्चयवाद की विचारधारा पर बहुत बल दिया था, और मानव की लगभग प्रत्येक क्रिया पर वातावरण की छाप बतलाई थी। हंटिगटन ने भी वातावरण–निश्चयवाद के सिद्धान्त की पुष्टि की थी। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से मध्य तक, ईसा बोमेन नामक भूगोलवेत्ता का प्रमुख स्थान रहा, वे स्वतन्त्र विचारक थे। अमेरिका की वर्तमान विचारधारा पर सबसे अधिक प्रभाव बोमेन के विचारों और ग्रन्थों का रहा है। ग्रिफ्फिथ टेलर ने प्रादेशिक भूगोल के कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे थे जिनमें 'नव–वातावरणवाद' के सिद्धान्त को पुष्ट किया गया था, और मानव पर वातावरण प्रजाति सम्बन्धी राष्ट्रों थी। हंटिगटन ने के आरम्भ से मध्य तक, ईसा बोमेन नामक भूगोलवेत्ता का प्रमुख स्थान रहाय वे स्वतन्त्र विचारों विचारक थे। अमेरिका की वर्तमान विचारधारा पर सबसे अधिक प्रभाव बोमेन और ग्रन्थों का रहा है। ग्रिफिथ टेलर ने प्रादेशिक भूगोल के कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे थे जिनमें "नव–वातावरणवाद' के सिद्धान्त को पुष्ट किया गया था, और मानव पर वातावरण के प्रभावों को दर्शाया गया था। उसकी मानव प्रजाति सम्बन्धी, राष्ट्रों, नगरों. मानवीय सभ्यता और विश्व शान्ति सम्बन्धी विचारधाराएँ मौलिक और महत्वपूर्ण थीं। कार्ल सावर 'सम्भववाद' की विचारधारा को मानते हुये भी 'आधुनिक युग के निश्चयवाद' के अनुसार प्रकृति के साथ 'समायोजन' को प्रमुख मानता था। उसने ऐतिहासिक भूगोल, सांस्कृतिक भूगोल तथा प्रादेशिक भूगोल पर ग्रन्थ लिखे थे, और भौगोलिक शोध को प्रोत्साहन दिया था। बाद में जेम्स, जीन्स, ब्रोएक, हार्टशोर्न, हैरिस, बैरी, आदि भूगोलवेत्ताओं ने भूगोल की विभिन्न नई–नई शाखाओं के अध्ययनों का विकास करने में योग दिया है।

9.2 उद्देश्य

भौगोलिक चिन्तन एवं विधितन्त्र के इतिहास में मात्रात्मक क्रान्ति (1953) बड़ा परिवर्तन–बिन्दु तथा विषय की अस्थिरता के प्रारम्भ का समय है। इस परिवर्तन का प्रारम्भ ऐंग्लो–अमेरिका (यू०एस०ए० तथा कनाडा) में हुआ। वहीं मात्रात्मक क्रान्ति का भूगोल विकसित हुआ तथा उसके बाद के भूगोल की प्रकृति तथा दिशा मुख्यतः अमेरिका में निर्धारित हुई। 21वीं शताब्दी के दूसरे दशक में भूगोल की प्रकृति तथा विधितन्त्र अमेरिका एवं ब्रिटेन में उत्पन्न होती है तथा यूरोप सहित शेष विश्व में उसका अनुकरण होता है। आज अमेरिका भौगोलिक चिन्तन का अग्रणी देश है तथा आधुनिक तथा नवीनतम् भूगोल मुख्यतः अमेरिका की देन है। इसलिये पूर्व–मात्रात्मक क्रान्ति के प्रारम्भिक निर्माणरत भूगोल को ही अमेरिकी भूगोल में सम्मिलित किया गया है क्योंकि उसके बाद का अमेरिकी भूगोल वास्तव में सार्वभौमिक एवं वैश्विक भूगोल है।

ऐंग्लो अमेरिकी भूगोल के प्रारम्भिक निर्माण के मूल जर्मन तथा फ्रांसीसी भूगोल में थे। इस 'नई दुनिया' में विश्वविद्यालय प्रणाली का प्रारम्भ 1875 (जॉन्स हॉपकिन्स विश्वविद्यालय) से हुआ तथा भूगोल का पृथक् एवं पूर्ण विभाग 1903 में शिकागो विश्वविद्यालय में आर०डी० सैलिसबरी की अध्यक्षता में स्थापित हुआ। लेकिन कुछ विश्वविद्यालयों में भौतिक भूगोल, गणितीय भूगोल तथा ऐतिहासिक भूगोल के पाठ्यक्रम अन्य विभागों में उपलब्ध थे।

एक निश्चित संरचना,स्वरूप तथा उद्देश्य से युक्त संगठित इकाई के रूप में, पृथ्वी भूगोल का अध्ययन वस्तु है। प्राकृतिक भूगोल के सचेत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इस ग्रह के प्रमुख भौगोलिक अंग–ठोस भूमि, महासागर तथा वायुमण्डल–परस्पर निर्भर हैं। ये अनवरत क्रिया एवं प्रतिक्रिया द्वारा परस्पर सम्बद्ध हैं। इस प्रकार पृथ्वी एक आश्चर्यजनक मशीन है जिसके हर पुर्जे परस्पर जुड़कर काम करते हैं ताकि सर्वबुद्धिमान ईश्वर द्वारा निश्चित किये हुए उद्देश्यपूरे हो सकें।

9.3 आंग्ल–अमेरिकी सम्प्रदाय

संयुक्त राज्य अमेरिका में भूगोल का प्रारम्भ : 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जर्मनी से भूगोल का प्रसार अंग्रेजी भाषी क्षेत्रों, इंगलैंड और अमेरिका में हुआ। अमेरिका में भूगोल का प्रसार करने में आर्नाल्ड गोयोट, जो रीटर के शिष्य थे तथा लुई अगासीज की विशेष भूमिका थी। गोयोट का जन्म 1807 ई० में स्वीटजरलैंड में हुआ था। इन्होंने रीटर के निर्देशन में अध्ययन किया था। 1848 ई० में गुयट अमेरिका आये जहाँ इन्होंने हारवर्ड

विश्वविद्यालय में भूगोल पर भाषण दिये, जो 1849 ई० में एक पुस्तक के रूप में छपे। रीटर के विचारों का समर्थन करते हुए गोयोट ने क्षेत्र में प्रेक्षण तथा तुलनात्मक अध्ययन पर जोर दिया। ऊपर के उद्धरण में स्पष्ट रूप से रीटर की सोद्देश्यवादी संकल्पना ध्वनित होती है, एक दूसरे विद्वान, जार्ज पार्किन मार्श (1801–1882) हुए जो कभी भूगोल के विद्यार्थी नहीं रहे और न ही उन्होंने कभी अध्यापन कार्य किया। हुम्बोल्ड्ट रीटर तथा गोयोट के विचारों से परिचित होने के पश्चात इनकी अभिरूचि मनुष्य एवं पृथ्वी के सम्बन्धों के अध्ययन में बढ़ी।

मार्श ने भूमि के उपयोग द्वारा मनुष्य के विनाशकारी प्रभाव पर विशेष ध्यान दिया। वरमोन्ट में वनों के विनाश को देखकर, मार्श ने,अपना ध्यान विशेष रूप से प्रकृति पर मनुष्य के विनाशकारी प्रभाव के अध्ययन पर केन्द्रित किया। टर्की तथा इटली में (जहां वे 1861 से 1882 ई० में अपनी मृत्यु तक संयुक्त राज्य के राजदूत रहे) उन्हें अनेक ऐसे उदाहरण देखने को मिले जहां मनुष्य ने पृथ्वी के जैविक जैसे वन एवं अन्य जन्तु तथा अजैव जैसे मिट्टी, जल, आदितत्त्वों को क्षति पहुंचायी थी।

अपने अध्ययन को इन्होंने 1864 ई० में नामक पुस्तक में प्रकाशित किया। इस पुस्तक का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए मार्श ने लिखा– 'जिस ग्लोब पर निवास करते हैं उसकी प्राकृतिक दशाओं में मानव के कार्यों द्वारा हुए परिवर्तन की मात्रा तथा प्रकृति को इंगित करना, मानव के अविवेकपूर्ण कार्यों, जिनसे विश्व जगत के स्वतः व्यवस्थित जैव एवं अजैव तत्त्वों की क्रियाशीलता में बड़े पैमाने पर विघ्न उपस्थित होता है, के प्रति सचेत करना, मानव द्वारा छिन्न–भिन्न किये गये प्रकृति के संतुलन एवं सामञ्जस्य को पुनःव्यवस्थित करने के महत्व एवं सम्भावना पर विचार करना तथा वीरान एवं निर्जीव बनाये गये क्षेत्रों की दशा सुधारने के सुझाव देना और प्रसंगवशय इस सिद्धान्त को स्थापित करना कि मनुष्य उन सभी जीवों में, जो प्रकृति की भरपूर मेज से पोषक भोजन ग्रहण करते हैं, सर्वोच्च एवं सशक्त प्राणी है। स्पष्ट है कि मार्श ने उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में ही संसाधन संरक्षण के प्रति जागृति पैदा करने का प्रयत्न किया, जिसकी ओर अब बीसवीं शताब्दी के अन्त में जन–चेतना पैदा हो रही है। परन्तु, यूरोप की तरह अमेरिका में भी भूगोल के विकास को प्रोत्साहन तब मिला जब कई विश्वविद्यालयों में भूगोल के प्रोफेसर नियुक्त होने लगे। गुयेट 1848 ई० में प्राकृतिक इतिहास के प्रोफेसर नियुक्त हुए थे। इन्होंने भी जर्मनी में हुम्बोल्ड्ट एवं रीटर के विचार अमेरिका में फैलाने में मदद की। अगासीज ने प्रत्यक्षानुभव के आधार पर अध्ययन करने पर विशेष बल दिया। इन्होंने न्यू इंगलैंड में बालू और कंकण के जमाव को हिमयुग के पश्चात पिघलते हुए हिम के निक्षेप का परिणाम बताया न कि ईश्वर की देन। अगासीज के विद्यार्थी शेलर ने भी इस निष्कर्ष की पुष्टि की। अन्त में, अमेरिका में भूगोल के क्षेत्र में वैचारिक प्रगति का मार्ग तब प्रशस्त हुआ, जब शेलर के शिष्य विलियम मॉरिश डेविस 1885 ई० में हारवार्ड विश्वविद्यालय में सहायक प्रोफेसर नियुक्त हुए। इसके पूर्व भूगोल वेत्ता विभिन्न क्षेत्रों से हर प्रकार की सूचनायें एवं तथ्य एकत्र करना ही भूगोल का विषयक्षेत्र मानते थे

9.4 संयुक्त राज्य अमेरिका में भौगोलिक चिन्तन

संयुक्त राज्य अमेरिका में नवीन भूगोल का विकास उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ से हुआ। प्रारम्भ में यहाँ के चिन्तन पर रिटर तथा रैटजेल का प्रभाव था किन्तु कुछ दिनों के उपरान्त यहाँ के स्वतन्त्र चिन्तन के आधार पर भूगोल की विभिन्न शाखाओं का विकास हुआ। अमेरिकी भूगोल के अग्रगामी एवं महान भूगोलविद जार्ज पार्किन्स मार्श (1801–1882) थे जिन्होंने बुद्धिमतापूर्ण ढंग से भौतिक एवं जैविक तत्वों के बीच अन्तर्सम्बन्धों, उनके मानवीय सम्बन्धों तथा मानवीय क्रियाकलापों पर उनके प्रभाव का वर्णन किया है। यद्यपि इनके पूर्व फ्रैंकलिन, लुइस तथा इवान्स ने भी जलवायु विज्ञान, महासागरीय धाराओं का अध्ययन, उनका मानव पर प्रभाव, आदि विषयों पर महत्वपूर्ण कार्य किया किन्तु उनमें निरन्तरता एवं क्रमबद्धता का अभाव था। मार्श के पश्चात् उन्नीसवीं सदी में एम. एफ. मोरे नामक नौसैनिक अधिकारी ने वायुमण्डल की निचली परतों में वायु प्रवाह और अक्षांशों के अनुसार वायुदाब तथा वायु पेटियों का मॉडल प्रस्तुत किया। अमेरिका के भूगोल क्षितिज में गुयोट का नाम सम्मानपूर्वक लिया जाता है जिन्होंने 1854–85 ई0 के मध्य तीस वर्षों तक प्रिंस्टन (न्यूजर्सी) में भूविज्ञान तथा भूगोल के प्रोफेसर पद पर कार्य किया तथा 1850 ई0 में अमेरिकन ज्योग्राफिकल सोसाइटी की स्थापना किया। उसने अपरदन कार्य, उसके प्रभाव तथा स्थलरूपों के विकास पर प्रकाश डाला है। इनके ऊपर रिटर का प्रभाव दिखाई देता है। इस सम्बन्ध में जोसेफ हेनरी का नाम भी आता है जो मोरे के समकालीन थे किन्तु दोनों के बीच कार्य–विधि पर मतभेद थे।

उन्नीसवीं सदी में एक ओर अमेरिका में भूगोल की विभिन्न शाखाओं का विकास हो रहा था तो दूसरी ओर

अज्ञात प्रदेशों के सार्थक ज्ञान हेतु सर्वेक्षण कार्य भी हो रहा था। राष्ट्रपति जेफरसन के समय मध्य एवं पश्चिमी संयुक्त राज्य में लुइस एवं क्लार्क के नेतृत्व में 1803 ई0 में एक कार्यकारी दल का गठन किया गया जिसने इस क्षेत्र में नवीन अधिवासों, सम्भावित मार्गों, मूल निवासियों, वनस्पतियों का निर्धारण, सम्भावित खनिज क्षेत्रों, आदि का सर्वेक्षण करके मानचित्रांकन तथा सूचनाओं का संकलन किया। इसी प्रकार कई अन्य दल सन् 1868, 1872 तथा 1878 में भी गठित किये गये। उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशक में गिलबर्ट, पॉवेल, जॉनसन, आदि विद्वानों ने भूगोल की विभिन्न शाखाओं में स्थलाकृतिक विकास तथा अपरदन चक्र पर कार्य करते रहे। इसी कड़ी में डेविस ने भूआकृति विज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान किया और उन्हें विश्व प्रसिद्धि मिली। इन्होंने आर्द्र, शुष्क, अर्द्धशुष्क, आदि प्रदेशों में अपरदन चक्र संकल्पना को सफलतापूर्वक करते हुए व्याख्या किया। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में ही भूगोल के चिन्तन में स्वतंत्र विचारधारा का प्रचलन हो चुका था। यहाँ के विद्वानों ने विभिन्न सर्वेक्षण अभियान, मानचित्रांकन, भौतिकी तथा भौमिकी की नवीनतम खोजों, स्वतंत्र भौगोलिक चिन्तन, मानव तथा सामाजिक भूगोल के योगदान, भूमि उपयोग तथा। संसाधन विकास के विभिन्न पक्षा के अध्ययन जैसे कार्यों के आधार पर अमेरिका में नवीन भूगोल का विकास किया। इस समय अमेरिका में भौगोलिक चिन्तन के विकास में डेविस, कुमारी सेम्पुल, मार्क जैफरसन, एटवुड, हटिनाटन, ईसा बोमेन, सैलिसवरी, ग्रिफिथ टेलर, कार्ल सावर, रिचर्ड हार्टशोर्न, आदि का नाम उल्लेखनीय है। यहाँ बीसवीं सदी में भौगोलिक चिन्तन को दो काल अन्तर्महायुद्ध काल और युद्धोत्तर काल में विभाजित करके स्पष्ट हैं।

9.4.1. अन्तर्महायुद्ध काल—यह स्पष्ट किया जा चुका है कि बीसवीं सदी के प्रारम्भिक काल तक अमेरिकी भौगोलिक चिन्तन में प्राकृतिक भूगोल पर अधिक ध्यान था। इसीलिए अमेरिका में भूआकृति विज्ञान, जलवायु विज्ञान, मौसम विज्ञान पर अधिक कार्य हुए हैं, किन्तु चतुर्थ दशक के उपरान्त यहाँ के भौगोलिक चिन्तन में परिवर्तन दिखाई देने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि लोगों का ध्यान भौतिक पक्ष के अध्ययन से सामाजिक पक्ष की ओर केन्द्रित होने लगा। इस प्रकार अमेरिका के भूगोलविदों ने स्थानों तथा प्रदेशों के विलक्षण विशेषताओं का विवेचन प्रारम्भ किया और सामान्य संकल्पनाओं के प्रतिपादन की ओर कम ध्यान दिया। परिकल्पनाओं तथा मॉडल के प्रयोग तथा सूचनाओं की व्याख्या तथा विश्लेषण पर अधिक ध्यान दिया गया। यही कारण है कि सन् 1970 के दशक में प्रचलित अनेक सिद्धान्तों तथा विचारों का विकास इसी अन्तर्महायुद्ध काल में हुआ है। इस काल में सामाजिक डार्विनवाद की विचारधारा को अस्वीकार किया गया। प्रबल पर्यावरणवादी नियतिवाद संकल्पना से विश्वास हट गया और सामान्य कारण—कार्य सम्बन्धों को नकार दिया गया। इस काल में विकसित अध्ययन पद्धतियों में प्रमुख रूप से मानव पारिस्थितिकी, जीव भूविस्तार, विज्ञान—स्थानों तथा प्रदेशों का अध्ययन मात्र शैक्षणिक उद्देश्यों के स्थान से हटकर भौगोलिक अवधारणाओं और पद्धतियों का प्रयोग करते हुए व्यावसायिक रूप में आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक प्रश्नों के लिए किया जाने लगा। इसे दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि भूगोल का अध्ययन एक अनुप्रयुक्त विज्ञान के रूप में नियोजन कार्यों के लिए किया जाने लगा ताकि आर्थिक—सामाजिक तथा राजनैतिक समस्याओं का हल खोजा जा सके। अन्तर्महायुद्ध काल की प्रमुख प्रवृत्तियों का विवरण निम्न प्रकार है—

हारलान बैरोज थे जो शिकागो विश्वविद्यालय में प्रोफेसर सेलिसबरी के साथ 1907 ई0 से कार्य करते हुए 1914 ई0 में प्रोफेसर बने। इस अवधारणा को अमेरिकी भूगोलविदों की परिषद 1922 ई० में उन्होंने अपने अध्यक्षीय व्याख्यान में प्रकट किया। इस अवधारणा को मानव पारिस्थितिकी का नाम दिया। उन्होंने आह्वान किया कि भूआकृति विज्ञान, जलवायु विज्ञान तथा जीव भूगोल के क्षेत्र बहुत विस्तृत हैं जिसके कारण इन्हें त्याग देना चाहिए तथा तर्क प्रस्तुत करते हुए बताया कि भूगोल को एकीकृत विषयवस्तु के अध्ययन पर केन्द्रित होना चाहिए जिसे 'मानव पारिस्थितिकी' कह सकते हैं। इसकी व्याख्या करते हुए बताया कि पारिस्थितिकी के अन्तर्गत जीवों का पर्यावरण के साथ अन्तर्सम्बन्धों तथा समायोजन का अध्ययन होना चाहिए। दोनों के अन्तर्सम्बन्ध के इस अध्ययन में मानव तथा समायोजन के पक्ष से प्रारम्भ करना न कि पर्यावरण या प्राकृतिक तत्वों के प्रभावकारी पक्ष की ओर से प्रथम उपागम में मानवीय तत्वों को प्रभावित करने वाले कारकों के महत्व एवं भूमिका के मूल्यांकन करने की सम्भावना अधिक होती है जबकि द्वित्तीय उपागम में प्राकृतिक तत्वों का प्रभाव महत्वपूर्ण हो जाता है। उसने इस तर्क पर बल दिया कि मानव तथा पर्यावरण अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन नियतवादी अर्थ में नहीं होना चाहिए अपितु जीवन के जाल अथवा प्रकृति की अर्थव्यवस्था में स्थान देने के लिये मानव पारिस्थितिकी का उपयोग होना चाहिए। उसने मानव तथा उसके परिवास के पर्यावरण के बीच सम्बन्धों को महत्वपूर्ण बताया है और इनमें से किसी को अधिक महत्व प्रदान करने की ओर सचेत किया है कि भूगोल के लिये न मानवीय तत्व महत्वपूर्ण है न प्राकृतिक तत्व अपितु दोनों में व्याप्त अन्तर्सम्बन्ध महत्वपूर्ण है।

भूविस्तार किसी क्षेत्र में दृष्टव्य विशेषताओं का वर्णन करना है। सावर के अनुसार भूगोल के अन्तर्गत पृथ्वी तल के किसी स्थान या क्षेत्र में पाये जाने वाले तत्वों के बीच प्राकृतिक तथा सांस्कृतिक वैभिन्नताओं का अध्ययन किया जाता है। मानव अपनी संस्कृति के करते मानकानुसार व्यवहार हुए अपने प्राकृतिक परिवेश के भौतिक तथा जैविक लक्षणों पर कार्य सम्पादित करता है और उन्हें सांस्कृतिक भूदृश्यों में परिवर्तित करता है।

इस काल में नवीन पदावलियों का भी विकास किया गया। उदाहरण के लिए कोपेन ने अंग्रेजी शब्दों के आधार पर प्रतीक चिन्हों द्वारा विश्व जलवायु को स्पष्ट किया। इसके अतिरिक्त पर्यावरणीय नियतिवाद को अस्वीकार कर दिया गया और अवस्थितिक विश्लेषण के अध्ययन में उच्चावच, अपवाह, जलवायु, मृदाओं की अपेक्षा कच्चे माल, बाजारों, शक्ति–संसाधनों और श्रम पर अधिक बल दिया गया।

9.4.3. ऐतिहासिक भूगोल –इस काल में अमेरिकी भूगोलविदों ने निष्चेष्ठ प्राकृतिक पर्यावरण की अपेक्षा रचनात्मक मानव तथा समायोजन पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया। सावर ने मेक्सिको के प्रशान्त तट पर ऐतिहासिक काल के रेड–इंडियन्स के सीमान्त अधिवासों का अध्ययन किया। इन अध्ययनों से यह प्रकट होता है कि पर्यावरण के प्रति भिन्न विचार वाले लोगों के लिये भूमि का अर्थ भी भिन्न होता है, उसके उपयोग करने के उद्देश्य भी भिन्न होते हैं और उनका तकनीकी कौशल भी भिन्न होता है। उदाहरण के लिये किसी क्षेत्र में ढाल का अर्थ हस्तनिर्मित यंत्रों वाले लोगों के लिये उपयोग का ढंग शक्तिचालित यंत्र का उपयोग करने वाले से पूर्णतया भिन्न होता है। उसी प्रकार किसी समय भापचालित शक्ति के पूर्व जल विद्युत की उपयोगिता का अर्थ किसी उद्योग के लिये उपयोगी था किन्तु अन्य साधनों के आने के बाद जलविद्युत केन्द्र की निकटता का अर्थ अवस्थिति हेतु महत्वहीन हो गया। इसी काल में ह्विटलसी तथा हार्टशोर्न ने राजनीतिक भूगोल के लिये सैद्धान्तिक संरचना प्रस्तुत किया।

9.4.4. स्थानिक कार्यात्मक संगठन क्षेत्र एवं पद्धति का अध्ययन–संयुक्त राज्य अमेरिका में भूगोल का अध्ययन देर से प्रारम्भ हुआ। इस विषय की अनेक परिभाषायें दी गईं। हार्टशोर्न ने 'भूगोल को क्षेत्रीय विभेदीकरण का अध्ययन' बताया। उसके अनुसार 'भूगोल पृथ्वी तल के वैभिन्नतापूर्ण स्वरूप का पर्याप्त, यथार्थ, क्रमबद्ध एवं तर्कसंगत वितरण एवं विवेचन करता है विज्ञान के किसी क्षेत्र में अन्तर्सम्बन्धित तत्वों से निर्मित समाकलन का विश्लेषण तथा संश्लेषण सम्मिलित रहता है। उसने यह बलपूर्वक बताया कि कोई भी तत्व , चाहे वे प्रकृति से सम्बन्धित हो या मानव से, भूगोल में उतने ही महत्वपूर्ण होते हैं जितना कि एक ही स्थान के अन्य तत्वों के साथ अन्तर्सम्बन्ध रखने वाले अथवा अन्य स्थानों के तत्वों के साथ अन्तर्सम्बद्धता रखने वाले होते हैं, जो इन तत्वों की क्षेत्रीय वैभिन्नता को प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार क्षेत्रीय वैभिन्नताओं की पूर्णता को मानचित्र से देखा जाता है।

अन्तर्महायुद्ध काल में भूगोल के वस्तुपरक पद्धतियों तथा अवधारणाओं के सम्बन्ध में विचार–विमर्श प्रारम्भ कर दिया था। प्रादेशिक भूगोल, जनसंख्या एवं अधिवास भूगोल, जलवायु विज्ञान, क्षेत्र तकनीकों, कृषि भूगोल, यातायात भूगोल, भूआकृति विज्ञान, सैन्य भूगोल, आदि में नवीन अवधारणाओं को परिभाषित किया गया। इसी के साथ–साथ अनुप्रयोग भूगोल की उपयोगिता को रेखांकित करते हुए नियोजन प्रक्रिया को व्यावहारिक स्वरूप दिया। विषय को नूतन आयाम देने के उद्देश्य से भूमि वर्गीकरण, भूमि सामर्थ्य और आर्थिक सर्वेक्षण को सार्थक बनाया गया। इन सर्वेक्षणों का उद्देश्य भूमि तथा अन्य संसाधनों के विनाश को रोकना तथा उनके संरक्षण हेतु उपाय सुझाना था।

9.5 युद्धोत्तर काल में भूगोल

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद संयुक्त राज्य में भूगोल के संकल्पनात्मक ढांचे में अत्यधिक परिवर्तन हुए हैं। यहाँ के भूगोलविदों ने अनुभव किया कि भूगोल में अनुसंधान पक्ष तथा वैज्ञानिकता पक्ष, दोनों को मजबूती प्रदान करने हेतु प्रादेशिक भूगोल के संश्लेषणात्मक उपागम (संश्लिष्ट पद्धति) को छोड़ते हुए क्रमबद्ध क्षेत्रका विकास करना चाहिए जिसमें निपुणता प्राप्त किया जा सके। इस प्रकार अमेरिकी भूगोल में क्रमबद्ध विशिष्टीकरण को महत्व दिया जा रहा है जिसका अर्थ यह है कि पृथ्वी पर किसी विशेष तथ्य तथा उस प्रक्रिया का अध्ययन है जो उस स्थानिक व्यवस्थापन से सम्बन्धित होता है।

इस प्रकार उन लोगों का ध्यान पारितंत्र उपागम के साथ मानव–पर्यावरण तंत्र पर केन्द्रित हो रहा है। सन् 1960 के दशक में युवा भूगोलविदों का झुकाव मात्रात्मक क्रान्ति के साथ गणितीय एवं सांख्यिकीय उपयोग की ओर होने लगा जिसके कारण भौगोलिक वितरण तथा व्यवस्था में सांख्यिकीय उपकरण के साथ भौतिक तथा सामाजिक तथ्यों का विश्लेषण किया जाने लगा।

गणितीय अवधारणाओं यहाँ तक कि खगोल भौतिकी के नियमों का उपयोग नगरीय केन्द्रों के प्रकार्यों, आकार और दूरी निर्धारण और फसलों के वितरण के मापन तथा व्याख्या में किया जा रहा है। मात्रात्मक उपागम के अतिरिक्त अमेरिका में एक नूतन 'स्थानिक तंत्रों का विश्लेषण' के अध्ययन का प्रचलन बढ़ा है जिससे दो महत्वपूर्ण पक्षों को प्रकट किया जाता है। प्रथम पक्ष स्थानिक प्रत्यक्षीकरण का है जिसमें मानव तथा पर्यावरण के बीच सम्बन्धों के मूल्यांकन में समूह आचरण पर बल दिया जाता है और द्वित्तीय पक्ष प्रादेशिक विज्ञान का क्षेत्र है जिसमें मात्रात्मक तकनीकों की सहायता से सामाजिक समस्याओं तथा अनुसंधान की उपयोगिता का अध्ययन किया जाता है।

मानव पर्यावरण सम्बन्धों की व्याख्या के लिये अमेरिकन भूगोलविदों ने अन्तर्विषयी उपागम का उपयोग करना प्रारम्भ किया है। सांस्कृतिक भूगोल के अध्ययन पर बल दिया जा रहा है जिसमें मानव–संस्कृति के स्थानिक वितरण तथा स्थान सम्बन्धों को स्पष्ट रूप से प्रतिपादित करने हेतु प्रासंगिक मूर्त तथा अमूर्त तत्वों का अध्ययन किया जाता है। सांस्कृतिक भूगोलविद् पृथ्वी को मानव–गृह के रूप में मानते हैं जो संस्कृति के माध्यम से पृथ्वी के पारिस्थितिकी का अधिष्ठाता बन जाता है। सांस्कृतिक भूगोलविदों का एक उपागम संस्कृति के तत्वों या विशेषताओं के स्थानिक वितरण का अध्ययन करना है।

राजनैतिक भूगोल के क्षेत्र में भी अमेरिकी भूगोलविदों का ध्यान केन्द्रित हो रहा है। राजनैतिक भूगोल में भौगोलिक क्षेत्र तथा राजनैतिक प्रक्रियाओं के अन्योन्य क्रियाका अध्ययन किया जाता है। यह राजनैतिक प्रक्रियाओं के स्थानिक वितरण तथा स्थान सम्बन्धों का अध्ययन है। पृथ्वी के भू–भाग पर पाये जाने वाले राजनैतिक तंत्र, उपतंत्र अथवा तंत्रों के अध्ययन पर ध्यान केन्द्रित होता है। सामान्य राजनैतिक समस्याओं से ग्रसित क्षेत्रों की पहचान की जाती है। इसके अतिरिक्त अवस्थिति सिद्धान्त अध्ययन के क्षेत्र में भी अध्ययन किया जा रहा है।

अवस्थिति सिद्धान्त अध्ययनों में स्थानिक प्रतिरूप के स्थिर पक्षों के अध्ययन पर बल दिया जाता है जैसे अवस्थिति, प्रसार, घनत्व, ज्यामितिक सम्बन्ध, स्थानों के बीच प्रवाह संलग्नता , कालिक गतिकी, स्थानिक संरचना एवं स्थानिक तंत्र और मानकी मॉडल, जिनसे निपुणता समाधान खोजा जाता है। कम्प्यूटर तकनीक, वायु फोटोग्राफी के साथ–साथ दूर संवेदन तकनीक का भी प्रयोग किया जा रहा है। भूगोल को सामान्यतया प्रयोगशाला अध्ययन के साथ मानचित्र संकल्पना एवं मानचित्रांकन तथा मात्रात्मक तकनीकों के आधार पर मॉडलों तथा सिद्धान्तों का निर्माण किया जा रहा है।

9.6 विलियम मॉरिस डेविस (1850–1934)

डेविस भौतिक भूगोलवेत्ता था तथा हारवार्ड में 1887 से भौतिक भूविज्ञान का प्रोफेसर था। भौतिक भूगोल के बड़े संघटक भूआकृतिक विज्ञान के डेविस द्वारा विकास पर डार्विन के उद्विकास का प्रत्यक्ष प्रभाव बहुत स्पष्ट है। 19वीं शताब्दी के अन्तिम चौथे हिस्से में, जब विशेषीकृत प्राकृतिक विज्ञानों का प्रारम्भिक विकास हो रहा था, डेविस ने भूआकृतिक विज्ञान का प्रथम एवं बड़ा स्थलाकृति उद्विकास मॉडल भौगोलिक या सामान्य चक्र के नाम से पहली बार 'जाग्राफिकल जर्नल' 1889 में प्रकाशित करवाया। इसको सामान्यतः अपरदन चक्र के नाम से व्यक्त किया जाता है। यह भूगोल के बड़े मॉडलों में से एक है, जिसका आज भी उतना ही महत्व है, जितना प्रारम्भ में था। भौगोलिक चक्र के मॉडल ने स्थलाकृतियों को समझने के लिए एक ऐसा सैद्धान्तिक ढाँचादिया, जिसके संदर्भ में किसी भी स्थलाकृतिक दृश्यभूमि का विवरण एवं व्याख्या की जा सकती है। डेविस के विचार से यह मॉडल प्रत्येक स्थलाकृति की एक मानसिक प्रतिमूर्ति (स्थलाकृति जैसी ही मूर्ति) विकसित करता है इस प्रतिमूर्ति के संदर्भ में पर्यवेक्षित स्थलाकृति दृश्यभूमि का वर्णन किया जाता है, न कि सीधे पर्यवेक्षण का। डेविस के समय में डार्विन के उद्विकास सिद्धान्त (दीर्घकाल में क्रमिक परिवर्तनों से होने वाला विकास) को वैज्ञानिक अपने अनुसंधान कार्यों में आधारिक सिद्धान्त के रूप में प्रयोग कर रहे थे। इसलिए डेविस का मॉडल डार्विनवाद से प्रेरित है। उसने उद्विकास की शब्दावली युवावस्था, प्रौढ़ावस्था तथा वृद्धावस्था का प्रयोग भी किया है।

डेविस उद्विकास के आधार पर चिन्तन की क्षमता को समझता था। यह चिन्तन कई प्रकार के तथ्यों को अर्थपूर्ण सम्बन्ध में बाँधने में सक्षम था। उसका कहना था कि हम किसी भी भौगोलिक क्षेत्र के जीवन की कल्पना एक तेजी से बढ़ने वाले पौधे के जीवन से कर सकते हैं।

डेविस ने भूआकृतिक विज्ञान का यह सिद्धान्त विकसित किया कि स्थलाकृतियाँ संरचना, प्रक्रम तथा अवस्थाओं का फलन होती है। भौगोलिक चक्र अवस्थाओं से सम्बन्धित है। भौगोलिक चक्र को डेविस समय की वह अवधि बताता

है, जिसमें समुद्र तल से उत्थित भूखण्ड अर्थात् नया जन्म भूखण्ड, अपरदन के प्रक्रम से प्रभावित होकर युवावस्था, प्रौढ़ावस्था तथा वृद्धावस्थाओं गुजरते हुए एक समप्रायः मैदान (आकृतिविहीन निम्न मैदान) में रूपान्तरित होता है। इन्हीं अवस्थाओं के स्थलाकृतिक लक्षणों के संदर्भ में किसी भी भूखण्ड का स्थलाकृतिक वर्णन एवं व्याख्या की जा सकती है। हिमालय युवावस्था में है। इस अवस्था के सैद्धान्तिक स्थलाकृतिक लक्षणों के संदर्भ में एवं उनसे तुलना करके हिमालय की स्थलाकृतियों की काल के ढाँचे में सकारण तथा अर्थपूर्ण व्याख्या की जा सकती है। डेविस ने अपना यह मॉडल (i) ऐन्ट्रोपी (तन्त्र में अव्यवस्था) की निहित मान्यता, तथा (ii) स्थलखण्ड के त्वरित एवं लघुकालिक उत्थान की समाप्ति पर ही अपरदन–चक्र प्रारम्भ होता है इस मान्यता पर आधारित किया।

रचनायें–डेविस ने 1880 ई0 से शोध पत्रिकाओं में लिखना प्रारम्भ किया और अपने चिन्तन, संकल्पनाओं तथा सिद्धान्तों से जीवनपर्यन्त भूगोल, भूआकृतिविज्ञान तथा भौमिकी की सेवा करते रहे। इन्होंने 400 से अधिक शोधपत्रों, लेखों तथा पुस्तकों को प्रकाशित कराया। इन रचनाओं के अतिरिक्त अनल्स तथा अमेरिकन जियालाजिकल सोसाइटी तथा अन्य पत्रिकाओं में 1880–1934 तक निरन्तर शोधपत्र लिखते रहे।

दो वर्ष के लिये डेविस अमेरिका से (1908–1909) जर्मनी गया था, जहाँ उसने वलिन विश्वविद्यालय में भू–आकृतिविज्ञान पर वक्तव्य दिये थे। बर्लिन में डेविस ने जर्मन प्रोफेसर अल्फ्रेड पेंकके साथ मिलकर कार्य किया था। अमेरिका में डेविस का सबसे अधिक समीपवर्ती सहचर डी० डब्ल्यू० जोहन्सन था, जो 30 वर्ष से अधिक समय तक कोलम्बिया विश्वविद्यालय में भूविज्ञान का प्रोफेसर रहा था, और जिसने स्थल रूपों के अध्ययन को प्रगति दी थी।

भूगोल के विकास में डेविस का प्रभाव उसके व्यक्तित्व, उसकी रिसर्च की तकनीक के द्वारा, और विचारों के निरूपण द्वारा हुआ था। 1904 में 'अमेरिकन भूगोलवेत्ताओं के समुदाय ' की स्थापना द्वारा भी डेविस ने भूगोल के विकास में योग दिया था। यह समुदाय भूगोल की वार्षिक पत्रिका का प्रकाशन करती रही है। इस समुदाय का सर्वप्रथम प्रधान डेविस ही था, जो 1904 और 1905 में इसका प्रधान रहा था। इस प्रकार वर्तमान के विकास में डेविस भी एक प्रमुख योगदान था।

अतः स्पष्ट है कि जो डार्विन के लिए एक प्रक्रिया थी वह डेविस और उसके सहयोगियों की दृष्टि में समय के साथ होने वाले परिवर्तन का इतिहास मात्र बन कर रह गई। डेविस तथा अन्य अनेक भूगोलविदों की दृष्टि में 'विकास (इवोल्यूशन) की संकल्पना समय के साथ होने वाले परिवर्तन, संवर्द्धन और प्रगति के अतिरिक्त कुछ और नहीं थी और वास्तविकता के विपरीत, डार्विन को इस धारणा का जनक माना जाने लगा' (स्टार्ट,1966)। डेविस अमरीकी भूगोल में अपने समय के सबसे प्रतिष्ठित विद्वान थे। अतःस्वाभाविक था कि उनका ध्यान भौगोलिक शिक्षा की समस्याओं की ओर आकर्षित हो। अतः डेविस ने भूगोल की प्रकृति और उसकी अध्ययन पद्धति पर कई लेख लिखे। 1906 में प्रकाशित अपने "भूगोल की विषयवस्तु का आगमनात्मक अध्ययन (ऐन इंडक्टिव स्टडी ऑफ द कटिंट ऑफ जिओग्राफी) शीर्षक लेख में उन्होंने स्पष्ट किया था कि भौगोलिक अध्ययन के अध्येता का उद्देश्य वातावरण के कुछ अजैविक तत्वों और जीव संसार के भिन्न तत्वों के वितरण प्रारूप के बीच कार्य–कारण सम्बन्ध की पहचान करते हुए इनके आधार पर सामान्य सिद्धांतों का प्रतिपादन करना है। डेविस की मान्यता थी कि इस प्रकार के कार्य–कारण सम्बन्धों की खोज ही भौगोलिक चिंतन में समग्रता (एकात्मता) लाने का मुख्य सैद्धांतिक आधार है। मानव भूगोल के अध्ययन में डार्विन के विकासवादी सिद्धान्त के समावेश करने के पक्षधर विद्वानों में डेविस अग्रणी थे।

महत्वपूर्ण कृतियाँ डेविस ने 1880 ई० से प्रारम्भ करके अपने जीवन पर्यन्त सैकड़ों लेख लिखे। इनकी निम्न पुस्तकें उल्लेखनीय हैं–

(1) प्रारम्भिक मौसम विज्ञान (1894)

(2) भौतिक भूगोल (1898)

(3) लघु एण्टिलीस द्वीप समूह (1926)

(4) प्रवालभित्ति की समस्यायें (1928)

1909 ई० में इनके महत्त्वपूर्ण निबन्धों का संग्रह भौगोलिक निबन्ध प्रकाशित हुआ। इनके भौगोलिक विचार प्रमुखतया इसी संग्रह में संकलित हैं। इस निबन्ध संग्रह के दो भाग हैं। प्रथम, शैक्षिक निबन्ध तथा द्वितीय, भूस्वरूप सम्बन्धी निबन्ध। प्रथम भाग में इन्होंने भूगोल की प्रकृति और विभिन्न स्तरों पर इसकी शिक्षण पद्धति पर प्रकाश डाला है। दूसरे भाग में इनके भूस्वरूप से सम्बन्धित मौलिक निबन्ध हैं।

डेविस की भौगोलिक संकल्पना– डेविस ने संयुक्तराज्य अमेरिका में भूगोल को स्थापित करने में अभूतपूर्व योगदान किया। डेविस के पहले यद्यपि गुयट ने भूगोल के अध्ययन अध्यापन को मात्र असंख्य तथ्यों के संकलन से ऊपर उठाकर एक सैद्धान्तिक धरातल पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया था, तथापि उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली थी। डेविस ने भूगोल के अध्यापन में तथ्य संग्रह के स्थान पर ऐसे सिद्धान्त प्रतिपादित करने पर बल दिया जिससे तथ्यों का सैद्धान्तिक दृदृष्टिकोण से स्पष्टीकरण हो सके। इसके लिये इन्होंने एक कसौटी निर्धारित की। डेविस के अनुसार भूगोल में पृथ्वी के किसी अजैव तत्त्व तथा इस पर निवास करने वाले किसी जैव तत्व में अन्तर्सम्बन्ध अवश्य स्थापित होना चाहिये।

डेविस के शब्दों में कोई भी कथन भौगोलिक महत्त्व का है, यदि इसमें पृथ्वी, जिस पर हम रहते हैं, के किसी अजैव तत्त्व, जो नियन्त्रक का कार्य करता है, तथा उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप, पृथ्वी के निवासी किसी जैवतत्त्व के अस्तित्व, विकास, व्यवहार, अथवा वितरण के किसी पक्ष के मध्य तर्क संगत सम्बन्ध दर्शाता है। संक्षेप में, एक अजैव नियन्त्रक तत्त्व तथा किसी जैव तत्त्व की प्रतिक्रिया में किसी न किसी प्रकार सम्बन्ध स्थापित होना आवश्यक है।

भूगोल में योगदान–थार्नबरी ने डेविस के लिये लिखा है। इन्होंने अमेरिका में भूगोल के एक नये युग का सूत्रपात किया है। इनका सबसे अधिक योगदान भूआकृति विज्ञान के क्षेत्र में है। डेविस की परिकल्पनाओं एवं विधितंत्र का भूआकृति विज्ञान के लगभग सभी पहलुओं पर गहरा प्रभाव दिखाई देता है। उन्होंने अपने शोधों एवं विश्लेषण में न केवल नये तथ्यों, शब्दों तथा व्याख्यायों को स्पष्ट किया है वरन् स्थलरूपों के विश्लेषण में सजीवता भी प्रदान किया है। डेविस की सामान्य अपरदन चक्र संकल्पना, शुष्क प्रदेश, हिम प्रदेश तथा प्रवाल प्रदेश के लिये अपरदन चक्रों की संकल्पना की व्याख्या एवं विश्लेषण आनुभविक एवं तथ्यात्मक होने के कारण महत्वपूर्ण मानी जाती है। इसने भूआकृति विज्ञान के सभी पहलुओं पर इतनी सूक्ष्मता एवं सजगता से व्याख्यात्मक विश्लेषण किया है कि इस विज्ञान के सम्पूर्ण क्षितिज पर वह छा गया। यही कारण है कि उसकी मृत्यु के 78 वर्ष बीतने के उपरान्त भूआकृतिक विज्ञान में अभूतपूर्व विकास होने तथा मात्रात्मक विधियों के प्रयोग के बाद भी उसके कार्य प्रारम्भिक दशाओं एवं आधारभूत तथ्यों, लक्षणों एवं अवस्थाओं को समझने में आज भी सार्थक माने जाते हैं।

1. अपरदन चक्र संकल्पना–डेविस ने 1877ई0 में मोन्टाना में प्रेक्षण करते समय अपरदन चक्र के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसे 'अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल परिषद–1899 ई0' प्रस्तुत किया। इसे परिभाषित करते हुए लिखा है यह एक योजना है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक स्थलरूप की मनोगत प्रतिरूप अपरदन प्रक्रिया द्वारा अपने अवसंरचना के संदर्भ में विकसित होता है जो उसके ऊपर कार्यरत रहती हैं, और इस क्रिया द्वारा निर्मित अवस्थाओं के संदर्भ में भूपर्पटी के किसी भाग के प्रोत्थान या विरूपण होने से अपरदन चक्र के प्रारम्भ होने से उसके अन्त तक, जब अपरदन चक्र पूर्ण हो जाता है और यह अवलोकित भूभाग उसके दृष्टव्य स्वरूपों के आधार पर नहीं अपितु उसके अनुमानित आचरण प्रतिरूप के संदर्भ में किया जाता है। इस प्रकार की प्रक्रिया के फलस्वरूप भूदृश्यों अथवा स्थलाकृति का विकास होता है। इसीलिए इन्होंने कहा है कि 'कोई भूदृश्य संरचना, प्रक्रम और अवस्था का प्रतिफल होता है'। वास्तव में इनका यह भ्वाकृतिक सिद्धान्त कई सिद्धान्तों का एक समूह है जिसमें तीन सिद्धान्तों– सरिता चक्र के पूर्ण चक्र–1854 ई0, भौगोलिक चक्र–1899ई० और ढाल का विकास–1892ई0 के समन्वित स्वरूप द्वारा स्थलरूपों के क्रमबद्ध विकास की व्याख्या की गई है। इन्होंने प्रथम सिद्धान्त द्वारा अपरदनात्मक सरिता घाटी के प्रगामी विकास की चक्रीय संकल्पना और द्वित्तीय सिद्धान्त द्वारा स्थलरूपों के समग्र विकास की व्याख्या किया है। इस मॉडल की रचना इन्होंने आर्द्र शीतोष्ण प्रदेश में किसी भूखण्ड के अपेक्षाकृत त्वरित उत्थान के साथ किया है जहाँ समान प्रकार की प्रतिरोधित शैलों के ऊपर प्रवाही जल, अपक्षय तथा सामूहिक स्थानान्तरण जैसे प्रक्रमों के प्रभाव में था। इस प्रकार डेविस के अपरदन चक्र संकल्पना के अनुसार किसी स्थलखण्ड का कोई उत्थित भाग अपक्षय, अपरदन, आदि प्रक्रमों द्वारा अपरदित होकर कई अवस्थाओं से गुजरता हुआ अपने मूलरूप अथवा समतल रूप में परिवर्तित हो जाता है। इसे ही भौगोलिक चक्र कहा गया है जिसे परिभाषित करते हुए डेविस ने कहा है 'भौगोलिक चक्र समय की वह अवधि है जिसके अन्तर्गत एक उत्थित भूखण्ड अपरदन के प्रक्रम द्वारा एक आकृतिविहीन समतल मैदान में परिवर्तित हो जाता है' आगे चलकर उसके समर्थकों ने इसे सामान्य चक्र, अपरदन चक्र, भूआकृतिकचक्र तथा आर्द्र चक्र के नाम से भी सम्बोधित किया। इसकी व्याख्या के लिये उत्तरदायी तीन कारकों–संरचना, प्रक्रम एवं अवस्था की भूमिका का विश्लेषण किया।

2. समप्राय मैदान की संकल्पना–डेविस ने अपरदन चक्र की अन्तिम अवस्था के उपरान्त निर्मित भूदृश्य को पेनीप्लेन कहा। डेविस ने प्राचीनकाल के सम्भावित समप्राय मैदानों का अध्ययन करते हुए ऐसे भूदृश्य का वर्णन

किया है जो अपरदन चक्र की अन्तिम अवस्था के प्रतिफल होते हैं। ऐसे समप्राय मैदानों के भूआकृति लक्षणों की विशेषताओं को बतलाया है। इन्हीं विशेषताओं तथा लक्षणों के आधार पर वरसेस्टर तथा वान एन्जेलान ने क्रिटैशियस काल में भूपटल पर स्थलाकृति विकास की अन्तिम अवस्था तथा वुलरिज एवं मार्गन के अनुसार उत्तर प्रौढ़ावस्था में पहुँच चुकी थी। उत्तरी–पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका एवं स्कैण्डिनेविया और उत्तरी–पश्चिमी योरोप की स्थलाकृति को इसके अच्छे उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

समप्राय मैदानों के लक्षणों की चर्चा करते हुए डेविस ने बताया है कि पेनीप्लेन में भूपटल का उच्चावच प्रायः नगण्य हो जाता है, लम्बवत् अपरदन लगभग समाप्त हो जाता है, क्षैतिज अपरदन सक्रिय रहता है, शैलों की कठोरता एवं दृढ़ता न्यूनतम हो जाती है। इसके अपवाद केवल स्थानीय रूप में कहीं–कहीं कुछ कठोर स्थलखण्ड अवशिष्ट पहाड़ियों के रूप में यत्र–तत्र दिखाई देते हैं। इस प्रकार नदी की घाटी न्यूनतम ढाल की ओर विकसित होती है तथा चरम आधार तल की ओर अग्रसर होने लगती है। अवशिष्ट पहाड़ियों के लिये डेविस ने 'मोनैडनाक' शब्द का प्रयोग किया है। यह नामकरण संयुक्त राज्य में न्यूहैम्पशायर के मोनैडनाक पर्वत के आधार पर किया है। समप्राय मैदान की अवधारणा का आगे चलकर काट्न, वुलरिज एवं मार्गन, वरसेस्टर, थार्नबरी, वान एन्गेलान, आदि ने विस्तारपूर्वक व्याख्या किया है। वास्तविकता यह है कि डेविस का पेनीप्लेन कदाचित् ही किसी भौम्याकृति में अपना रूप ग्रहण कर पाता है क्योंकि यह अवस्था आने के पूर्व प्रादेशिक उत्थान होने से घाटी में पुनर्युवन होने से पुनः अपरदन चक्र की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। इस प्रकार समप्राय मैदान की अवस्था यत्र–तत्र पाई जाती है।

3. अन्य चक्र संकल्पनायें– डेविस ने अपरदन चक्र को तटीय चक्र के स्थल रूप विकास में उत्तरदायी बताया। इसके लिये पूर्व प्रेक्षणों तथा स्वयं के प्रेक्षणों का उपयोग करते हुए स्थलरूप विकास को सिद्ध करने का प्रयास करते हुए इस सम्बन्ध में निश्चित मत भी प्रस्तुत किया। उसने आधार तल अवधारणा तथा पसर्गे द्वारा प्रतिपादित इन्सेलवर्ग अवधारणा पर अपने विचार प्रकट किया। सागरीय तरंग द्वारा सम्पादित अपरदन के फलस्वरूप अप तटरोधिकाओं के विकास तथा उन्नमज्जन तथा निमज्जन द्वारा विकसित तटरेखाओं के विकास की सकारण व्याख्या प्रस्तुत किया। प्रवाल द्वीपों तथा अटाल के निर्माण एवं विकास के सम्बन्ध में अपनी नवीन अवधारणा 'प्रवाल भित्ति समस्या के सम्बन्ध में भौम्याकृति का अनुप्रयोग को प्रतिपादित किया। इसमें अवतलन एवं सागरतल में परिवर्तन, दोनों कारकों को स्थान विशेष की परिस्थितियों के अनुसार विश्लेषित करते हुए विवेचन किया गया है।

4. आधार तल संकल्पना–डेविस ने भूआकृति विज्ञान के क्षेत्र में अधिकांश समस्याओं को स्वयं के अनुभव तथा प्रेक्षण के आधार पर विश्लेषित करने का प्रयास किया है। इसमें एक आधारतल संकल्पना भी है। इसने सामान्य आधारतल, काल्पनिक ढालयुक्त सतह वाला आधारतल और स्थानीय तथा अस्थायी आधारतल की चर्चा किया है। किन्तु आगे चलकर दो आधार तल– सामान्य या स्थायी आधार तल और स्थानीय या अस्थायी आधार तल बताया।इसकी व्याख्या करते हुए बताया कि सागर तल को ही अपरदन की अन्तिम आधार तल या चरम आधार तल कहा जाता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि यह उस निम्नतम तल को कहा जाता है जहाँ तक किसी स्थलखण्ड को प्रवाही जल (सरिता) नीचे तक काट सकता है। स्थानीय या अस्थायी आधार उस अवस्था का परिचायक होता है जब कोई सरिता निम्र अपरदन द्वारा आधार तल को प्राप्त करते हुए क्रमबद्ध हो जाती है तो उसके समीप स्थल खण्ड का अन्तिम स्थल ही उसका आधार तल हो जाता है।

इसी प्रकार डेविस ने क्रमबद्ध सरिता की अवधारणा का विस्तृत विचार किया है। उसके अनुसार सरिता प्रायः भ्वाकृतिक चक्र के प्रारम्भिक चरण में उस ढाल या प्रवणता को प्राप्त करती है जो जल विसर्जन तथा नदी धारा विशेषताओं की विद्यमान दशाओं के अन्तर्गत उसके बोझ के परिवहन हेतु पर्याप्त होती है। ऐसी ही सरिता को 'क्रमबद्ध' या 'प्रवणित दशा की ओर' कहा जाता है।

5. सत्ता मीमांसा की अवधारणा– डेविस ने अपने बाद के लेखन में अपने अध्ययन का उद्देश्य परिवर्तित करते हुए बताया कि पृथ्वी पर मानव–अध्ययन को भौतिक पर्यावरण के तत्वों तक सीमित नहीं रखना चाहिए।पादप एवं प्राणि जगत की भाँति मानव समुदाय का पारिस्थितिकीय अध्ययन के अन्तर्गत प्राकृतिक पर्यावरण के तत्वों के साथ समायोजन के मूल्यांकन की अपेक्षा की जाती है। ऐसे ही अध्ययन को 'सत्ता–मीमांसा' की संज्ञा दिया है। यह विचार रैटजेल के साथ मेल खाता है तथा प्रवसन तथा पृथक्करण में भी व्यापक रूप से दिखाई देता है। उसके विचारों में यह परिवर्तन उसके प्रादेशिक भूगोल के विवेचन में मिलता है। उसकी मान्यता थी कि भूतल पर तथ्यों का प्रादेशीकरण तीन कारकों का परिणाम होता है– स्थान आधार, प्रवसन और साहचर्य। उसके अनुसार–

"प्रादेशिक भूगोल किसी क्षेत्र के भौगोलिक तथ्यों की परिपूर्णता में, जैसा कि वे साथ–साथ प्राकृतिक संयोजन तथा सहसम्बन्धों में पाये जाते हैं, वर्णन करने का प्रयास करता है। उन्होंने उपर्युक्त अवधारणा की चर्चा 1915 ई० में प्रकाशित प्रथम 'भौगोलिक विवरण के सिद्धान्त' में किया है जिसमें उन्होंने भूगोल का उद्देश्य भूतल के प्रदेशों का विवरण तीनों कारकों अर्थात् प्रादेशीकरण तत्वों की अवस्थिति तथा स्थानान्तरण एवं सहसम्बन्ध के आधार पर करने का प्रयास किया।

डेविस ने मानव भूगोलविदों की आलोचना किया। वह इस मत का था कि मानव भूगोलविद स्वयं को सर्वमुखी भूगोलविद् बनने के प्रयास में असफल रहते हैं और उनके अध्ययन सजातीय समरूप विवेचन के अभाव में सन्तुलित हो जाते हैं क्योंकि उनका सम्बन्ध वर्तमान में पाये जाने वाले भूदृश्यों से रहता है किन्तु उन विद्यमान स्थलरूपों के कालानुक्रम से कम रहता है। उसने बलपूर्वक बताया कि प्रादेशिक वर्णन सभी दृष्टि से समरूप होना चाहिए अर्थात् भूमि, जलवायु, वनस्पति, पशु तथा मानव को सभी प्रकार से महत्व दिया जाना चाहिए। उसने यह भी कहा कि मानव के भौगोलिक अध्ययन का उद्देश्य भौगोलिक विशेषताओं की व्याख्या के आधार पर विवेचनात्मक सामान्यीकरण की ओर ले जाता है। इस प्रकार वह अपने अन्तिम समय में पारिस्थितिकीविद् हो गया था। पारिस्थितिकी उपागम का तात्पर्य यह है कि भूगोलविद् पृथ्वी तल पर जैविक रूपों का स्थान–आधार से अनुकूलन, विशिष्ट तत्वों या विचारों का स्थानान्तरण और स्थानिक साहचर्य तथा पृथक्करण के संदर्भ में अध्ययन करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि डेविस का दृष्टिकोण भूगोल के दोनों विधाओं– नियतिवादी तथा पारिस्थितिकीय की ओर था। यद्यपि पेन्क ने डेविस के कार्यों की आलोचना किया किन्तु इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि वह भूआकृति विज्ञान के अग्रणी विचारकों में था जिसने भौमिकी तथा भूगोल के बीच अन्तर को कम करने का प्रयास किया।

9.7अमेरिकी भूगोल के विविध आयाम

संयुक्त राज्य अमेरिका में भूगोल का वास्तविक विकास बीसवीं शताब्दी में सम्भव हुआ। अमेरिकी भूगोलवेत्ताओं ने भूगोल की अनेक शाखाओं के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया है और साथ ही इसके सकल्पनात्मक विकास में भी उल्लेखनीय भूमिका निभायी है। यहाँ द्वितीय विश्वयुद्ध के समय तक भौतिक भूगोल, मानव पारिस्थितिकी, क्षेत्रवर्णनी विज्ञान के रूप में भूगोल, ऐतिहासिक भूगोल, क्षेत्रीय कार्यात्मक संगठन आदि पक्षों का अध्ययन अधिक महत्वपूर्ण था। किन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् बदली परिस्थितियों में भूगोल के नवीन उपागमों तथा नयी–नयी शाखाओं का विकास हुआ। अमेरिकी भूगोलवेत्ताओं ने भौगोलिक चिन्तन, नगरीय भूगोल, राजनीतिक भूगोल, सांस्कृतिक भूगोल, जनसंख्या भूगोल, सामाजिक भूगोल आदि शाखाओं के विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान किया है। संयुक्त राज्य अमेरिका में बीसवीं शताब्दी में विकसित भूगोल के प्रमुख पक्ष निम्नलिखित हैं। 1903 में शिकागो में संयुक्त राज्य के विश्वविद्यालय स्तर के भूगोल के अध्ययन अध्यापन के प्रथम विभाग की स्थापना हुई। इस विभाग की उत्तरी अमरीका में आधुनिक भौगोलिक चिंतन के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। बीसवीं सदी के प्रथम दशक के इस विभाग के कई विद्यार्थियों ने प्रथम विश्व युद्ध के बाद के वर्षों में उत्तरी अमरीका में भौगोलिक चिंतन के विकास को नई दिशा प्रदान की। इनमें कार्ल सोयर, वेलिंगडन जोन्स और चार्ल्स काल्बी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। बीसवीं सदी के प्रथम चतुर्थांश में संयुक्त राज्य में भौगोलिक अध्ययन के प्रचार–प्रसार में आशातीत प्रगति हुई। इस विकास की द्रुत प्रगति पर टिप्पणी करते हुए काल्बी (1955) ने इसके तीन प्रमुख कारण बताए थे स अमरीका के पश्चिमी क्षेत्रों के व्यापक सर्वेक्षण में अनेक भूगोलविद् भी कार्यरत थे। इस बात से भूगोल की सामाजिक उपादेयता सिद्ध हो गई और उसके प्रति आकर्षण बढ़ा इस दौर में संयुक्त राज्य अमरीका के विदेशी व्यापार एवं वाणिज्य में आशातीत वृद्धि हुई। विकास की इस गति को बनाए रखने के लिए देश में विश्व के भिन्न–भिन्न देशों के बारे में भौगोलिक ज्ञान का अध्ययन अध्यापन आवश्यक हो गया, नए आर्थिक संसाधनों, विशेषकर खनिज तेल के भाण्डारों का पता चलने के साथ ही संसाधन उपयोग में सतर्कता बरतने और संसाधनों के संरक्षण की ओर ध्यान गया। इससे भी भूगोल के अध्ययन अध्यापन को प्रोत्साहन मिला।

9.7.1 भौतिकभूगोल–

शिकागो विश्वविद्यालय में भूगोल के प्रोफेसर एवं अग्रणी अमेरिकी भूगोलवेत्ता सैलिसबरी ने 1907 में (भूआकृति विज्ञान) नामक पुस्तक प्रकाशित किया था जो दीर्घकाल तक संयुक्त राज्य में प्रतिष्ठित एवं लोकप्रिय पाठ्य पुस्तक के रूप में प्रचलित रही। विलियम मॉरिस डेविस एक महान भूआकृति विज्ञानी थे जिन्होंने 1899 में भूआकृतिक चक्र

(अपरदन चक्र) सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। उन्होंने भूआकृति विज्ञान के क्षेत्र में शोध तथा सैद्धान्तिक विवेचन सम्बंधी अनेक पुस्तकें और एक सौ से अधिक शोधपत्रों को प्रकाशित किया था। डेविस के विचार से 'कोई भी स्थलरूप संरचना , प्रक्रम और अवस्था का परिणाम होता है।' डेविस के भौगोलिक चक्र के अनुसार भूआकृतिक चक्र वह कालावधि या विकास श्रृंखला है जिससे होकर एक नवीन उत्थित भूपृष्ठ अपरदन द्वारा युवा, प्रौढ़ तथा जीर्णावस्था से गुजरता हुआ अंततः समतलप्राय मैदान (पेनीप्लेन) के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

9.7.2 मानव पारिस्थितिकी–

मानव पारिस्थितिकी का अर्थ ऐसे विज्ञान से है जिसके अन्तर्गत मानव द्वारा अपने पर्यावरण के साथ समायोजन का अध्ययन किया जाता है। प्रसिद्ध अमेरिकी भूगोलवेत्ता बैरोजको 'मानव पारिस्थितिकी' संकल्पना का प्रतिपादक (जन्मदाता) माना जाता है। बैरोज ने 1922 में अमेरिकी भूगोलवेत्ता संघ के वार्षिक अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में इस बात पर बल देकर कहा था कि भूगोल मानव पारिस्थितिकी का अध्ययन है। उनका दृढ़ मत था कि भूगोलवेत्ताओं को एकीकृत विषय पर कार्य करना चाहिए। इसी एकीकृत विषय के लिए उन्होंने 'मानव पारिस्थितिकी' शब्दावली का प्रयोग किया था। उनके अनुसार भौतिक दशाओं का अध्ययन केवल मानव के संदर्भ में नहीं बल्कि मानव और पर्यावरण के पारस्परिक सम्बंधों के संदर्भ में किया जाना चाहिए। मानव पारिस्थितिकी का अध्ययन नियतिवादी संदर्भ में नहीं बल्कि प्रकृति की व्यवस्था या जीवन के जाल में मानव के स्थान की व्याख्या के रूप में किया जाना चाहिए।

9.7.3 ऐतिहासिक भूगोल–

संयुक्त राज्य अमेरिका में ऐतिहासिक भूगोल के विकास में कार्ल सावरका महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने 1941 में 'ऐतिहासिक भूगोल की भूमिका' नामक पुस्तक प्रकाशित की थी। 1952 में प्रकाशित उनकी दूसरी पुस्तक 'कृषि का उद्‌गम और प्रसार' भी ऐतिहासिक संदर्भ में लिखी गयी है। उन्होंने अपनी 'सांस्कृतिक भूगोल' में भी ऐतिहासिक उपागम के अनुसार सांस्कृतिक तथ्यों का विवेचन किया है। 1929 में डी० ह्वीटलसी ने 'अधिभोग अनुक्रमश्की संकल्पना का प्रतिपादन किया और बताया कि किसी क्षेत्र का अध्ययन मानव बसाव के अनुक्रम के अनुसार किया जाना चाहिए। यह पर्यावरण नियतिवाद के विपरीत है।

9.7.4 मानव भूगोल –

एल्सवर्थ हंटिंगटन ने मानव भूगोल के विषय क्षेत्र (तत्वों) का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया और उसे एक चार्ट के रूप में भी दिखाया। उन्होंने मानव भूगोल के तत्वों को तीन प्रधान श्रेणियों – (1) भौतिक दशाएं, (2) जीवन के रूप, और (3) मानव प्रतिक्रियाएं में विभक्त किया है और मानव प्रतिक्रियाओं के अन्तर्गत कुल 22 तत्वों को समाहित किया है जो मानव भूगोल के वास्तविक अध्ययन तत्व हैं।

आंग्लभाषी देशों में नियतिवाद के प्रचार प्रसार में एलेन चर्चिल सेम्पुल का सर्वाधिक योगदान माना जाता है। उन्होंने अपने व्याख्यानों, लेखों तथा पुस्तकों के माध्यम से रैटजेल की जर्मन नियतिवादी विचारधारा को आंग्लभाषी देशों तक पहुँचाया। सेम्पुल ने रैटजेल की पुस्तक 'एन्थ्रोपोज्योग्राफी' के प्रथम खण्ड (1882) में व्यक्त नियतिवादी विचारधारा का अनुसरण किया जिसमें कठोर नियतिवाद की चर्चा की गयी है। ईसा बोमैन ने 'पुरोगामी उपांत'संकल्पना प्रतिपादित की थी जो मानव भूगोल को एक विशिष्ट देन है। कार्ल सावर ने सांस्कृतिक भूदृश्यकी विस्तृत व्याख्या की और उसे प्राकृतिक भूदृश्य से अलग किया। ग्रिफिथ टेलर ने नवनियतिवाद का प्रतिपादन किया जिसे उन्होंने ':को और जाओ नियतिवाद' की संज्ञा दी है।

9.7.5 सांस्कृतिक भूगोल –

सांस्कृतिक भूगोल के क्षेत्र में ग्रिफिथ टेलर का महत्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने 1919 में मानव प्रजातियों के उद्‌भव तथा विकास से सम्बंधित एक सिद्धान्त प्रस्तुत किया जिसे 'प्रवास कटिबंध सिद्धान्त' या कटिबंध एवं स्तर सिद्धान्तके नाम से जाना जाता है। इसमें उन्होंने मानव प्रजातियों की उत्पत्ति तथा विकास की व्याख्या काल और क्षेत्र के संदर्भ में किया है।

1931 में कार्ल सावर ने 'सांस्कृतिक भूगोल' नामक पुस्तक प्रकाशित की थी। उन्होंने सम्भववाद का समर्थन किया और बताया कि किसी प्रदेश के सांस्कृतिक भूदृश्य के विकास में मानव की सर्वाधिक सशक्त भूमिका होती है। उनके अनुसार सांस्कृतिक भूदृश्य निश्चित रूप से मानवीय कार्यों तथा प्रयत्नों का ही प्रतिफल है। कार्ल सावर ने

ही सर्वप्रथम 'सांस्कृतिक उद्‌गम स्थल' शब्दावली का प्रयोग किया था। प्राचीन काल में विश्व के जिन भागों में विशिष्ट मानव संस्कृति या संस्कृति समूह की उत्पत्ति हुई थी उसे सावर ने 'सांस्कृतिक उद्‌गम स्थल' की संज्ञा दी है और ऐसे प्रमुख स्थलों का भौगोलिक विवेचन किया है। स्पेन्सर एवं थामस ने 'सांस्कृतिक भूगोल की उच्च स्तरीय पुस्तक' प्रकाशित किया। उन्होंने इस पुस्तक में विश्व के सांस्कृतिक परिमण्डलों का निर्धारण किया और उनकी विशेषताओं का वर्णन किया है।

9.7.6 भौगोलिक चिन्तन–

बीसवीं सदी के भौगोलिक चिन्तन में अमेरिकी भूगोलवेत्ताओं का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। जर्मनी और फ्रांस में विकसित तथा क्रमशः जर्मन तथा फ्रांसीसी भाषा में लिखित भौगोलिक विचारधाराओं का कई अमेरिकी विद्वानों ने अंग्रेजी में अनुवाद किया अथवा उनका अपने ढंग से विश्लेषण किया। कुछ विद्वानों ने जर्मन तथा फ्रांसीसी विचारधाराओं की आलोचनात्मक समीक्षा किया और नवीन संकल्पनाओं तथा सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी किया। इस प्रकार जर्मन तथा फ्रांसीसी भूगोल को अमेरिका में नवीन रूप में प्रस्तुत किया गया। इसी कारण इसे 'नवीन भूगोल'की संज्ञा दी गयी। भौगोलिक चिन्तन के विकास में सेम्पुल, ईसा बोमैन, हंटिंगटन, कार्ल सावर,टेलर, हार्टशोर्न आदि विद्वानों का उल्लेखनीय योगदान है।

सेम्पुल ने नियतिवाद की विस्तृत व्याख्या किया और अंग्रेजी भाषी विश्व में रैटजेल के विचारों को प्रसारित किया। ईसा बोमैन ने पुरोगामी उपांत' की संकल्पना का प्रतिपादन किया। हंटिंगटन ने नियतिवाद का समर्थन किया और मानव भूगोल के विषय क्षेत्र की विवेचना किया। ग्रिफिथ टेलर ने 'रुको और जाओ नियतिवाद की संकल्पना का प्रतिपादन किया।

अमेरिकी भौगोलिक चिन्तन के विकास में हार्टशोर्न का सर्वाधिक योगदान माना जाता है। उन्होंने 1939 में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक(भूगोल की प्रकृति) को प्रकाशित किया जिसमें भूगोल की परिभाषा, विषय क्षेत्र, संकल्पनाओं, विधितंत्र आदि की विस्तृत समीक्षा की गयी है। यह भौगोलिक चिन्तन पर अत्यंत महत्वपूर्ण पुस्तक है। हार्टशोर्न ने 1959 में एक दूसरी पुस्तक भी प्रकाशित किया जिसका शीर्षक है– 'भूगोल की प्रकृति पर संदर्श ये दोनों पुस्तकें एक–दूसरे की पूरक हैं। हार्टशोर्न ने अपनी पुस्तकों में भूतल की संकल्पना, क्षेत्रीय भिन्नता की संकल्पना, भूदृश्य की संकल्पना, सम्भववाद, भूगोल में द्वैतवाद (क्रमबद्ध भूगोल तथा प्रादेशिक भूगोल और भौतिक भूगोल तथा मानव भूगोल) आदि विभिन्न संकल्पनात्मक पक्षों को सरल भाषा में उदाहरण सहित स्पष्ट करने का सार्थक प्रयास किया है।

9.7.7 नगरीय भूगोल–

संयुक्त राज्य में नगरीय भूगोल में अत्यंत उत्कृष्ट कार्य किये गये हैं जिनमें पुस्तकों का लेखन, शोध प्रबंध और शोध पत्रों का प्रकाशन सभी सम्मिलित हैं। नगरीय भूगोल के विकास में जिन अमेरिकी भूगोलवेत्ताओं का महत्वपूर्ण योगदान है उनमें मार्क जैफरसन , हैरोल्ड एम० मेयर , सी० एफ० कोहन , किंग्सले डेविस , जान अलेक्जैण्डर , सी० डी० हैरिस , होवार्ड जे० नेल्सन , होवार्ड एल० ग्रीन , एडवर्ड उलमैन , जॉन ब्रश, बी० जे०, एल० बेरी , विलियम गैरिसन, होमर होयट आदि प्रमुख हैं। नगरीय भूगोल का जितना विकास अमेरिका में हुआ उतना अन्य किसी देश में नहीं हुआ। नगरीय भूगोल की अनेक संकल्पनाओं को विकसित करने में अमेरिकी भूगोलवेत्ताओं का अत्यंत उत्कृष्ट योगदान है। अमेरिका में नगरों की आकारिकी – आंतरिक संरचना एवं कार्यात्मक क्षेत्र, नगरों के कार्यात्मक वर्गीकरण, नगरीय समस्याओं तथा नगर नियोजन आदि से सम्बंधित अध्ययन अधिक किये गये। होमर होयट , जान अलेक्जैण्डर , विक्टर रोटेरस , मटीला एवं थाम्पसन, उलमैन एवं डेसी ,अलेक्जेण्डर आदि के कार्य विशेष उल्लेखनीय हैं।

9.7.8 राजनीतिक भूगोल–

अमेरिका में राजनीतिक भूगोल के विकास में ईसा बोमैन तथा डी० ह्वीटलसी का योगदान अधिक महत्वपूर्ण है। 1921 में प्रकाशित बोमैन की पुस्तक 'नया संसार' राजनीतिक भूगोल की प्रतिष्ठित पुस्तक है। यह किसी अमेरिकी भूगोलवेत्ता द्वारा राजनीतिक भूगोल का प्रथम गंभीर अध्ययन था। इस पुस्तक में बोमैन ने विश्व की अनेक जटिल राजनीतिक समस्याओं का विस्तृत भौगोलिक विवेचन किया है। राजनीतिक भूगोल के विकास में डी० ह्वीटलसी का महत्वपूर्ण योगदान है। उनके द्वारा लिखित पुस्तक 'पृथ्वी और राज्य' राजनीतिक भूगोल की उत्कृष्ट रचना है। ह्वीटलसी ने इसमें अनुक्रम अधिभोग के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।

9.7.9 जनसंख्या भूगोल –

विसकांसिन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जी० टी० ट्रिवार्था ने संयुक्त राज्य अमेरिका में जनसंख्या भूगोल की नीव रखी थी। उन्होंने 1953 में अमेरिकी भूगोलवेत्ता संघ के वार्षिक अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में जनसंख्या भूगोल को एक स्वतंत्र शाखा के रूप में विकसित करने की आवश्यकता पर बल दिया और जनसंख्या भूगोल की रूपरेखा भी प्रस्तुत किया। इसके पश्चात् संयुक्त राज्य अमेरिका के कई विश्वविद्यालयों में जनसंख्या भूगोल के पठन–पाठन तथा शोध का कार्य आरम्भ हुआ। ट्रिवार्था ने जनसंख्या भूगोल की एक पुस्तक भी लिखा जिसका शीर्षक है –इसका प्रथम बार प्रकाशन 1969 में हुआ था। विल्वर जेलिन्सकी ने भी जनसंख्या भूगोल की एक पुस्तक 1966 प्रकाशित किया जिसका शीर शकजनसंख्या भूगोल का आधार)। जेलिन्सकी ने प्रवास के सम्बंध में गतिशीलता संक्रमण सिद्धान्त' का प्रतिपादन भी किया है जिसमें उन्होंने गतिशीलता संक्रमण की 5 अवस्थाओं का वर्णन किया है।

9.8 सारांश

प्रस्तुत इकाई में 1875 में जॉन हापकिन्स विश्वविद्यालय की स्थापना के साथ ही जर्मनी में प्रचलित पद्धति के अनुरूप संयुक्त राज्य अमरीका में भी स्वतंत्र चिंतन में लगे विद्वानों के समुदाय के रूप में विश्व विलय व्यवस्था की संकल्पना का शुभारम्भ हो गया था। यूरोप की भांति अमरीका में भी अब अलग–अलग विषयों का उच्च अध्ययन भिन्न–भिन्न विश्वविद्यालयों में प्रतिष्ठित विद्वानों के नेतृत्व में प्रारम्भ हो गया। उन्नीसवीं सदी में विश्वविद्यालयीय स्तर के विषय के रूप में भूगोल का अध्ययन सबसे पहले जर्मनी और फ्रांस में प्रारम्भ हुआ था। इसके फलस्वरूप भौगोलिक चिंतन को वैज्ञानिक अध्ययन की आधुनिक शाखा के रूप में पुनर्जीवन प्राप्त हुआ था। उत्तरी अमरीका में इस नई चिंतन धारा की आधार शिला रखने का कार्य विलियम मारिस डेविस ने प्रारम्भ किया। 1878 में डेविस हारवर्ड विश्वविद्यालय के भूगर्भशास्त्र विभाग में प्राकृतिक भूगोल के सहायक शिक्षक (इंस्ट्रक्टर) नियुक्त हुए थे। विश्वविद्यालय स्तर का भूगोल का प्रथम स्वतंत्र विभाग प्रसिद्ध भूगर्भशास्त्री रालिन डी. सैलिस्बरी की अध्यक्षता में शिकागो विश्वविद्यालय में 1903 में स्थापित हुआ था। अमरीकी विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में भूगोल का अध्ययन पहले से ही किया जाता रहा था। रिटर के स्विस मूल के विद्यार्थी आर्नल्ड गॉयट (1807–1884) 1848 में हारवर्ड विश्वविद्यालय के आमंत्रण पर 'नए भूगोल" पर एक व्याख्यान माला के सम्पादन के लिए अमरीका आए थे। अगले वर्ष ही उनकी यह व्याख्यान माला अर्थ एण्ड मैनः लेक्चर्स ऑन कम्पैरिटव फिजिकल जिओग्राफी इन रिलेशन टु द हिस्टरी ऑफ मैनकाइण्ड शीर्षक से प्रकाशित हुई और लम्बे अरसे तक अंग्रेजी भाषा में रिटर के भौगोलिक चिंतन पर एक मानक संदर्भ ग्रंथ के रूप में प्रतिष्ठित रही। इस दिशा में दूसरे प्रमुख मार्गदर्शक जार्ज पर्किन मार्श (1801–1882) थे जिन्होंने 1864 में फिजिकल जिओग्राफी ऐज माडिफाइड वाई ह्युमन ऐक्शन शीर्षक से एक महत्वपूर्ण पुस्तक का प्रकाशन किया था। इस पुस्तक के माध्यम से मार्श ने अमरीका में हम्बोल्ड, रिटर और मेरी सामरविले के भौगोलिक दर्शन के प्रचार का महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किया। पुस्तक की आधारभूत संकल्पना इन तीन महान भूगोलवेत्ताओं के इस मूलभूत विचार पर केन्द्रित थी कि भूगोल मानव और उसके प्राकृतिक पर्यावरण के अन्तरसम्बन्धों के अध्ययन पर केन्द्रित समग्र विज्ञान है।प्रस्तुत अध्ययन में अमेरिकी भूगोल के विविध आयाम को भी बताया गया है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में भूगोल का वास्तविक विकास बीसवीं शताब्दी में सम्भव हुआ। अमेरिकी भूगोलवेत्ताओं ने भूगोल की अनेक शाखाओं के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया है और साथ ही इसके सकल्पनात्मक विकास में भी उल्लेखनीय भूमिका निभायी है। यहाँ द्वितीय विश्वयुद्ध के समय तक भौतिक भूगोल, मानव पारिस्थितिकी, क्षेत्रवर्णनी विज्ञान के रूप में भूगोल, ऐतिहासिक भूगोल, क्षेत्री कार्यात्मक संगठन आदि पक्षों का अध्ययन अधिक महत्वपूर्ण था। किन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् बदली परिस्थितियों में भूगोल के नवीन उपागमों तथा नयी–नयी शाखाओं का विकास हुआ। अमेरिकी भूगोलवेत्ताओं ने भौगोलिक चिन्तन, नगरीय भूगोल, राजनीतिक भूगोल, सांस्कृतिक भूगोल, जनसंख्या भूगोल, सामाजिक भूगोल आदि शाखाओं के विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान किया है।

9.9 स्व मूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

प्रश्न 1. अमेरिका के पहले भूगोल के प्रोफेसर का नाम बताइये

(अ) अरनोल्ड ग्युयोट (ब) एम०एफ० मौरी

(स) मार्श (द) डेविस

प्रश्न 2. पार्किन्स मार्श ने संरक्षण की अवधारणा किस पुस्तक में प्रस्तुत की?

(अ) मैन एण्ड नेचर, 1871 (ब) फिजिकल जियोग्राफी एज मॉडिफाइड बाई मैन

(स) दोनों में (द) इनमें से किसी में नहीं

प्रश्न 3. भूगोल के शीर्ष कोटि के जर्नल ऐनाल्स का प्रकाशन करने वाली एसोसिएशन ऑफ अमेरिकन जियोग्राफर्स की 1904 में किसने स्थापना की?

(अ) मार्श (ब) जैफरसन

(स) डेविस (द) सैम्पल

प्रश्न 4. प्रमुख नगरकी अवधारणा किसकी देन है ?

(अ) ग्युयोट (ब) जैफरसन

(स) हंटिंगटन (द) इसाया बोमैन

प्रश्न 5. नई दुनिया के लेखक का नाम बताइये ?

(अ) जैफरसन (ब) इसाया बोमैन

(स) एंटवुड (द) सैम्पल

प्रश्न 6. द नेचर ऑफ जाग्राफी, 1939 किसकी रचना है ?

(अ) सॉर(ब) बैरोज(स) हार्टशोर्न(द) हिटलसी

प्रश्न 7. अपरदन चक्र संकल्पना का प्रतिपादन किया थाः

(अ) अल्ब्रैक्ट पेंक ने (ब) वाल्थर पेंक ने

(स) डब्ल्यू० एम० डेविस ने (द) जार्ज फार्स्टर ने

उत्तरमाला 1. (अ) 2. (अ)3.(स)4.(ब)5. (ब)6.(स) 7.(ब)

9.10 संदर्भ– ग्रंथ– सूची

- Berry, B. J L. (1967) Geography of Market Centres and Retail Distribution, London, pp. 10-13, p. 120.
- Berry, B. J. L. et al., (1963) Urban population densities Structure and change, Geographical Review, 53, pp. 389-405.
- BhaskarAcharya–-Jyotish Siddhanta (Sanskrit).
- Board, C., Chorley, R. J., Haggett, P., and Stoddart, R., Progress in Geography, London, 1969, Vol. II, 1970, and Vol. II, 1971.
- Bonngard, L. G. and IIyin, G. (1970)Ancient India, lnstitute of Oriental Studies,Academy of Sciences,

Moscow.

- Bowlby, S. et al., (1989) The geography of gender in Peet, R. and Thrift, N. (eds) New Models in Geography, London.
- Broek, J. O. M. (1965) Geography, Its Scope and Spirit, Columbus, Ohio.
- Broek, J. O. M. and Webb, J. W. (1968) The purpose of geography, inA Geography of Mankind, New York.
- Brunhes, J. (1912) Human Geography, New York, p. 359.
- Brunhes, J. and Lassell (1903) Life of Humboldt, Pp. 27 - 71.
- Brush, J. E. (1968) Spatial patterns of population in Indian cities, Geographical Review, 58(3), pp. 362 - 392. Bunbury, E. H. (1879)A History ofAncient Geography among the Greeks and Romans, London.

9.11 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

प्रश्न 1 मध्य–बीसवीं शताब्दी तक अमेरिकी भूगोल की प्रमुख प्रवृत्तियों की व्याख्या कीजिये

प्रश्न 2 संयुक्त राज्य अमेरिका में भौगोलिक चिंतन का विकास"की व्याख्या कीजिए?

प्रश्न 3 अमेरिकी की भूगोल के विविध आयाम की विस्तृत व्याख्या कीजिए?

प्रश्न 4 'आंग्ल अमेरिकी संप्रदाय' भौगोलिक समीक्षा कीजिए?

प्रश्न 5 भौगोलिक चिंतन में विलियम मॉरिस डेविस की संकल्पना एवं उनकी कृतियों तथा योगदान का विस्तृत वर्णन कीजिए?

इकाई–10 सेम्पुल–कृतियाँ एवं योगदान, हंटिगटन– कृतियां एवं योगदान

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 एलेन चर्चिल सेम्पुल

10.3.1. कृतियां एवं ग्रंथ

10.3.2. रचनाए

10.3.3. भूगोल में योगदान

10.3.4 सेम्पुल की विचारधारा –पर्यावरण नियतिवाद

10.4 हंटिंगटन

10.4.1. कृतियां एवं ग्रंथ

10.4.2. रचनाएं

10.4.3. भूगोल में योगदान तथा भौगोलिक चिंतन

10.4.3.1 भौगोलिक चिंतन

10.4.3.2 जलवायु प्रभाव

10.4.3.3 हंटिंगटन की विचारधारा–

10.4.3.4 मानव भूगोल के तत्व

10.4.3.5 नियतिवादी विचार

10.5 सारांश

10.6 स्व मूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

10.7 संदर्भ– ग्रंथ –सूची

10.8 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

10.1 प्रस्तावना

एलेन चर्चिल सेम्पुल ने यूरोप एवं अमेरिका के भौगोलिक विचारों में सेतु का कार्य किया। एक ओर ये रैटजेल के विचारों से प्रभावित थी तो दूसरी ओर डेविस की भूगोल की संकल्पनाओं का इन पर गहरा असर था। इन्होंने कई अमेरिकी एवं यूरोपीय विश्वविद्यालयों तथा परिषदों में भाषण दिये। अपने भाषणों से इन्होंने 20वीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में आंग्ल–अमेरिकीभूगोल सम्प्रदाय को बहुत प्रभावित किया। तत्व के सम्बन्ध को संकल्पनात्मक स्तर पर सेम्पुल ने डेविस द्वारा प्रतिपादित अजैव एवं जैव अपने ढंग से आगे बढ़ाया। अपने भौगोलिक वातावरण के प्रभाव नामक पुस्तक में सेम्पुल ने धरातलीय तत्वों तथा मानव के मध्य क्षेत्रीय सम्बन्ध स्थापित करने की अनवरत चेष्टा की। अपनी अध्ययन पद्धति के विषय में सेम्पुल ने इसी पुस्तक की प्रस्तावना में यह स्पष्ट किया कि वे एक ही भौगोलिक दशाओं में निवास करने वाली सभी मानव प्रजातियों एवं उनके सांस्कृतिक विकास की अवस्थाओं की तुलना करती है। यदि ये विभिन्न प्रजाति के लोग जो समान वातावरण में रहते हैं, समान या परस्पर सम्बन्धित सामाजिक आर्थिक, या ऐतिहासिक विकास दर्शाते हैं तो यह मानना संगत है कि ये समानतायें वातावरण की प्रतिफल है न कि प्रजाति की। इस प्रकार, विस्तृत तुलना द्वारा, दो अज्ञात कारकों (वातावरण एवं प्रजाति) में से प्रजाति कारक को व्यापक ऐतिहासिक एवं सामाजिक तत्वों के लिये निष्प्रभावी मान

लेती है' यही स्वर उनकी पहली पुस्तक अर्थात अमेरिकन (इतिहास एवं उसकी भौगोलिक दशायें का भी रहा।

हारवार्ड में डेविस का विद्यार्थी एल्सवर्थ हटिंगटन एक प्रसिद्ध भूवैज्ञानिक , भूगोलवेत्ता और जलवायु वैज्ञानिक था।उसने एशिया में विस्तृत यात्राएँ की थीं। अपने आरम्भिक व्यावसायिक वर्षों में वह भूवैज्ञानिक का कार्य करता था। 1904 में वह जलवायु–विज्ञान की ओर झुक गया। उसने मानव शरीर, मानवीय जीवन और क्रियाकलापों पर जलवायु के प्रभावों के प्रेक्षण और अध्ययन किये थे। उसने सभ्यताओं के विकास पर जलवायु के प्रभावों का अध्ययन किया था, और इस विशेषीकरण से वह समस्त संसार में विख्यात हो गया था। बाद में वह येल यूनिवर्सिटी में भूगोल के प्रोफेसर के पद पर कार्य करता रहा। उसके ग्रन्थों, निबन्धों तथा शोधपत्रों में प्रकाशित विचारधाराओं का प्रभाव अमेरिकन, ब्रिटिश तथा अन्य देशों के भूगोलवेत्ताओं पर बहुत गहरा था।

हटिंगटन ने मानव सभ्यताओं तथा इतिहास पर जलवायु के प्रभावों को सैद्धान्तिक स्तरतक पहुँचाया है। वह प्रचुर एवं उर्वर चिन्तनयुक्त लेखक था जो 50 से अधिक पुस्तकों तथा 180 रिसर्च पेपरों से स्पष्ट है। उसका लेखन विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों में लोकप्रिय था। हॅटिंगटन ने अपने भौगोलिक और जलवायु सम्बन्धी विचारों को कई ग्रन्थों में प्रकाशित किया।

10.2 उद्देश्य

सैम्पल के मानव–पर्यावरण सम्बन्ध के प्रतिपादित सिद्धान्त सम्भावनात्मक हैं निश्चयात्मक नहीं। वास्तव में मानव भूगोल जैसे सामाजिक विज्ञान में, ऐसे ही सिद्धान्त निर्मित किये जा सकते हैं, प्राकृतिक विज्ञानों की भाँति निश्चयात्मक नहीं। सैम्पल रैटजेल की ऐन्थ्रोपोजियोग्राफी के प्रथम खण्ड के अपरिपक्व निश्चयवाद को ही अमेरिका तक लाई, उसके द्वितीय खण्ड के मानव एवं उसके इतिहास (उपलब्धियों) के महत्व के विचार को नहीं। इसलिये अमेरिकी भूगोल के लिये रैटजेल एक कट्टर पर्यावरण निश्चयवादी ही रहा।

हंटिंगटन द्वारा प्रतिपादित भौगोलिक नियतिवादी नियमों एवं सिद्धान्तों को हंटिंगटन सिद्धान्त कहा जाता है। समय बीतने के साथ–साथ हंटिंगटन ने कुछ अन्य सिद्धान्तों का भी प्रतिपादन किया जिनके अनुसार चयनात्मक प्रवसन, चयनात्मक जीवन रक्षण और समान संस्कृति वाले मानव समुदायों में अन्तर्विवाह द्वारा मानव इतिहास को पर्याप्त रूप में निर्धारित किया गया। हटिंगटन हारवर्ड विश्वविद्यालय में डेविस के विद्यार्थी रह चुके थे। डेविस की भांति वे भी भूगोल को मूलतया मानव जीवन पर प्राकृतिक शक्तियों के प्रभाव के विश्लेषण पर केन्द्रित अध्ययन मानते थे। हंटिंगटन के अध्ययन का मुख्य विषय मानव जीवन पर जलवायु के प्रभाव का विश्लेषण था। इतिहास में अनावृष्टि की तिथियों और मध्य एशिया के जनजातीय कबीलों के देशांतरण गमन में कार्य–कारण सम्बन्ध स्थापित करते हुए उन्होंने यह संकल्पना प्रस्तुत की कि अनावृष्टि के कारण स्थानीय चारागाहों के सूख जाने के परिणामस्वरूप ही इन जातियों ने अपना मूल स्थान छोड़ कर चीन, भारत तथा पूर्वी यूरोप पर समय–समय पर आक्रमण किया करते थे।

10.3 ऐलन चर्चिल सैम्पल

ऐलन चर्चिल सैम्पल की शिक्षा समाजशास्त्र, इतिहास, अर्थशास्त्र और भूगोल में हुई थी। उत्तरी अमेरिका में वह सामाजिक विज्ञानों और भूगोल के क्षेत्र में अग्रणी विद्वान थी। वह प्रसिद्ध जर्मन भूगोलवेत्ता रैटजेल की शिष्या थीं। इतिहास में मास्टर्स डिग्री के बाद 1891–92 और दोबारा 1895 में उसने लीपजिग विश्वविद्यालय में जाकर रेटजेल के भूगोल विभाग में अध्ययन किया। 1897 में वह अमेरिका वापस आकर क्लार्क विश्वविद्यालय में भूगोल की प्रोफेसर हो गई। उसने क्लार्क विश्वविद्यालय में भूगोल के स्कूल की स्थापना की थी। सैम्पल रैटजेल के भूगोल के चिन्तन एवं विधितन्त्र को अमेरिका लाई तथा उसकी विचारधारा पर आधारित कई ग्रन्थ लिखे।

कुमारी सेम्पुल (1863–1932) प्रसिद्ध जर्मन और उनके नियतिवादी विचारों की प्रबल समर्थक थीं। मानव भूगोल के विकास में सेम्पुल का उत्कृष्ट योगदान रहा है। वे जर्मन और अंग्रेजी दोनों महत्वपूर्ण भाषाओं में समानरूप से पारंगत थीं। उन्होंने जर्मन भाषा में लिखित रैटजेल के विचारों को अंग्रेजी भाषा में अत्यंत रोचक और सरल ढंग से प्रस्तुत किया और उन्हें आंग्लभाषी देशों में प्रचारित किया। सेम्पुल के लेखन के माध्यम से रैटजेल की भौगोलिक विचारधारा का व्यापक प्रचार हुआ।

जीवन परिचय –

एलेन चर्चिल सेम्पुल का जन्म 1863 में संयुक्त राज्य अमेरिका के केन्टुकी राज्य के लुइसविले नामक स्थान पर

एक सम्भ्रांत परिवार में हुआ था। उन्होंने 1882 में वेसर कालेज से स्नातक उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् लुइसविले के एक विद्यालय में शिक्षिका के रूप में कार्य किया। उन्होंने वेसर कालेज से ही 1891 में इतिहास विषय में एम० ए० की उपाधि प्राप्त किया। भूगोल की उच्च शिक्षा के लिए वे 1891 में जर्मनी (लीपजिग विश्वविद्यालय) गयीं किन्तु उन्हें प्रवेश नहीं मिल पाया। किन्तु विशेष अनुरोध करने पर रैटजैल ने उन्हें अपनी कक्षा में व्याख्यान सुनने की अनुमति प्रदान कर दिया था। इस प्रकार दो वर्ष तक (1891 और 1892) सेम्पुल ने रैटजेल से मानव भूगोल की शिक्षा प्राप्त की। वे रैटजेल के विचारों से बहुत प्रभावित हुई और अमेरिका वापस लौटने के पश्चात् तीन वर्ष व्यतीत करके 1895 में वे पुनः जर्मनी गयीं तथा रैटजेल के निर्देशन में भूगोल का गहन अध्ययन किया।

सर्वप्रथम 1897 में सेम्पुल की नियुक्ति क्लार्क विश्वविद्यालय में प्राध्यापक के पद पर हुई। उन्होंने वहाँ पृथक् भूगोल विभाग की स्थापना किया। उनके व्याख्यान बहुत रोचक, सारगर्भित और प्रभावशाली होते थे। वे पूर्णतः लेखन कार्य में प्रवृत्त होना चाहती थीं जिसके कारण उन्होंने कुछ वर्ष पश्चात् अध्यापन कार्य छोड़ दिया और मानव भूगोल का लेखन कार्य प्रारम्भ किया। सेम्पुल ने 1911 में विश्व के भूमध्य सागरीय क्षेत्रों का अध्ययन करना आरम्भ किया और इसके लिए लगभग 20 वर्षों तक यूरोप, एशिया और अफ्रीका की कई बार यात्राएं किया और सर्वेक्षण द्वारा आवश्यक सामग्रियों को एकत्रित किया।

सेम्पुल ने संयुक्त राज्य अमेरिका के कई विश्वविद्यालयों में व्याख्यान दिया था। 1906 से लेकर 1924 तक उन्होंने शिकागो विश्वविद्यालय और आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में अनेक व्याख्यान दिये थे। उन्होंने दो वर्ष (1914 एवं 1915) आस्ट्रेलिया के एक महाविद्यालय (वेलेसली कालेज) में अध्यापन कार्य किया। सेम्पुल ने 1916 में कोलोरेडो विश्वविद्यालय में और 1925 में कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में भी अपनी सेवाएं प्रदान किया था। सेम्पुल 1921 में क्लार्क विश्वविद्यालय के ग्रेजुएट स्कूल आफ ज्योग्राफी' में भूगोल के प्रोफेसर पद पर नियुक्त हुईं जहाँ वे 1929 तक कार्यरत रहीं। उन्होंने 1921 में अमेरिकी भूगोलवेत्ता संघ के अध्यक्ष पद को भी सुशोभित किया था। क्लार्क विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्ति (1929) के पश्चात् सेम्पुल ने भूमध्य सागरीय प्रदेश पर पुस्तक लिखा जो उनकी मृत्यु के कुछ महीने पूर्व 1931 में प्रकाशित हो गयी थी।

10.3.1 कृतियां एवं ग्रंथ –सेम्पुल ने देश की भौगोलिक स्थिति के परिप्रेक्ष्य में अमेरिकी इतिहास की व्याख्या करने के उद्देश्य से 1903 में 'अमेरिकी इतिहास और इसकी भौगोलिक दशाएं शीर्षक से एक महत्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित किया जिसको विद्वत समाज में काफी मान्यता एवं प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

1911 में सेम्पुल की दूसरी पुस्तक 'भौगोलिक पर्यावरण के प्रभाव' प्रकाशित हुई। इसमें उन्होंने रैटजेल के प्रसिद्ध ग्रंथ 'एन्थ्रोपोज्योग्राफी' (मानव भूगोल) के प्रथम खण्ड (1882) में प्रतिपादित भौगोलिक विचारों तथा अध्ययन पद्धति का विश्लेषण लालित्यपूर्ण साहित्यिक भाषा और रोचक शैली में प्रस्तुत किया। इससे उन्होंने आंग्लभाषी देशों के समकालीन भूगोलवेत्ताओं और विद्यार्थियों में भौगोलिक अध्ययन के प्रति नवीन उत्साह उत्पन्न किया।

सेम्पुल की तीसरी पुस्तक 'भूमध्य सागरीय प्रदेशों का भूगोल इसका प्राचीन इतिहास से सम्बंध' का प्रकाशन उनकी मृत्यु से कुछ महीने पूर्व 1931 में हुआ था। इसमें भूमध्य सागरीय प्रदेशों के इतिहास पर भौगोलिक पर्यावरण के प्रभावों की विवेचना की गयी है। अपने उपर्युक्त तीन प्रमुख ग्रंथों के अतिरिक्त सेम्पुल ने अनेक शोधपत्र भी प्रकाशितकिया था जिनमें प्रमुख निम्नांकित हैं।

1. औपनिवेशिक इतिहास का अपलेशियन अवरोधक (1897),
2. पूर्वी केन्टुकी उच्च प्रदेश के निवासी (1901),
3. भूमध्यसागरीय बेसिन की अवरोधक सीमा एवं उसकी उत्तरी घातक दरारें (1915),
4. प्राचीन भूमध्यसागरीय प्रदेश के बंद अंतरीप (1927)।

10.3.2 रचनाएँ –सेम्पुल ने तीन महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं जो बहुत लोकप्रिय हुई।

1. अमेरिका का इतिहास एवं इसकी भौगोलिक दशायें (1903)
2. भौगोलिक वातावरण के प्रभाव (1911)
3. भूमध्यसागरीय प्रदेश का भूगोल (1931) सेम्पुल की दूसरी पुस्तक का भूगोल जगत में व्यापक प्रभाव पड़ा।

वास्तव में इस पुस्तक का आधार रैटजेल का 'मानव भूगोल था।

सर्वप्रथम, रैटजेल के निर्देश पर, सेन्पुल की योजना उनके 'मानव भूगोल' का अंग्रेजी अनुवाद करने की थी। परन्तु, एक तो उस पुस्तक का सटीक अनुवाद दुःह था और दूसरे सेम्पुल अपने निजी विचार भी प्रस्तुत करना चाहती थी। इसके अतिरिक्त वे रैटजेल की 'जैविक राज्य' की संकल्पना को शामिल नहीं करना चाहती थीं। अतएव उन्होंने स्वतंत्र पुस्तक लिखने का निर्णय किया। जो रैटजेल के मानव भूगोल के आधार पर ही लिखा गया हो। अन्ततः यह पुस्तक प्रकट हुई जिसमें रैटजेल की संकल्पनाओं के मूलभाव का समावेश है परन्तु उसकी अपेक्षा वृहत एवं अधिक विश्वसनीय तथ्यों पर आधारित है सेम्पुल की इसी पुस्तक में उनकी मूल भौगोलिक संकल्पनायें प्रकट हुई हैं। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ जो निम्नवत हैं, सेम्पुल को वातावरण निश्चयवाद अटूट विश्वास रखने वाली, सिद्ध करती हैं।

10.3.3 भूगोल में योगदान—यूरोपीय देशों में भौगोलिक चिन्तन में नियतिवाद के समर्थन में अनेक लोग थे। यूरोप के बाहर अमेरिका से सेम्पुल प्रथम अधिकारिक विद्वान हुईं जिन्होंने पूर्ण मनोयोग के साथ रैटजेल के चिन्तन को आगे बढ़ाया। इन्हें कठोर नियतिवाद का अग्रणी विद्वान कहा जाता है। उनका चिन्तन भौगोलिक एवं प्राकृतिक नियंत्रण की सीमा में विवेकपूर्ण एवं वैज्ञानिक ढंग से लिखे गये हैं। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'भौगोलिक पर्यावरण के प्रभाव' को लिखते हुए प्रथम पैरा का प्रारम्भ भी निम्न पंक्तियों से किया है जो नियतिवादियों में यंत्र की भाँति उच्चरित होने लगा। उन्हीं के शब्दों में " मानव पृथ्वी तल की उपज है। इसका अर्थ है कि न केवल वह पृथ्वी का बालक है, उसकी धूल का फूल है वरना यह कि पृथ्वी ने उसे मातृत्व प्रदान किया है। उसे पाला—पोसा है, उसे काम दिया है, उसके विचारों को दिशा प्रदान की है, उनके सामने बाधायें खड़ी की हैं, जिसने उसके शरीर को शक्ति दी है और उसकी बुद्धि को तीव्र बनाया है, उसको नौवहन अथवा सिंचाई की समस्यायें भी दी हैं और उसी समय उसके हल के लिए उसके कानों में फुसफुसाया भी है। उसने अस्थि तथा ऊतक और मस्तिष्क तथा आत्मा में प्रवेश किया है। पर्वतों के ढाल पर चढ़ने के लिये लोहे के पैर और माँस—पेशी दिये हैं, सागर तट के सहारे उसने इन्हें कमजोर तथा शिथिल बनाया है किन्तु यहाँ उसने इनके स्थान पर पैडल या चप्पू के उपयोग के लिए सीना तथा भुजाओं को सुस्वस्थ किया है। नदी घाटियों में उसे उपजाऊ भूमि प्रदान की है धर्म के विविध रूपी विकास में एकेश्वरवाद और द्वैतवाद में उनके तर्कों में पर्याप्त बल है।

उसके अनुसार धार्मिक चिन्तन के ऊपर भी प्रकृति का नियंत्रण परिलक्षित होता है। उन्होंने सटीक उदाहरण देते हुए बताया है कि गौतम बुद्ध का जन्म हिमालय के असहनीय आर्द्र पर्वतीय पाद प्रदेश में हुआ था। उन्होंने वहाँ की उष्णता एवं आर्द्रता से संघर्ष करते हुए अपने परिवास को ऐसा निर्वाण माना जहाँ व्यक्तिगत जीवन की सभी क्रियायें शान्त या मृत हो जाती हैं। एकेश्वरवाद के विकास पर उसने लिखा है, मरूसथली प्रदेशों में रेत तथा स्टेपी प्रदेशों में घास के अनियंत्रित विस्तार, जो चारों ओर बिना किसी परिवर्तन या बाधा के फैल रहे हैं, की भाँति ही अनुपम रूप में ईश्वर एकरूपीय हो जाता है)। इसी पृष्ठभूमि का उदाहरण देते हुए उसने सिद्ध किया कि कठिन एवं विपरीत पर्यावरणीय एवं कठोर पारिस्थितिकी दशाओं के कारण तीनों एकेश्वरवादी धर्मों (यहूदी, ईसाई तथा मुस्लिम) का जन्मस्थली यही प्रदेश रहे।

इसी प्रकार पर्वतीय प्रदेश के पर्यावरण दशाओं के प्रभाव को स्पष्ट करते हुए इन्होंने बताया है कि पर्वतीय प्रदेश के रहने वाले रूढ़िवादी होते हैं क्योंकि पर्वतीय परिवेश तथा अवरोध के कारण बाह्य पर्यावरण तत्वों का प्रभाव नगण्य होता है जिसके कारण नूतन विचारों के विरोधी होते हैं। इसके विपरीत मैदानी भाग में बसने वाले लोग चपल एवं उत्साही होते हैं जो पर्वतीय जनजातियों को शीघ्रता से अपने अधीन कर लेते हैं। तटवर्ती प्रदेश के निवासी विश्व के विभिन्न प्रदेश वालों से सम्पर्क में आते रहते हैं जिसके कारण रूढ़िवादिता एवं धर्मान्धता नहीं पाई जाती है। उनमें जाति बन्धन भी नहीं पाया जाता है। प्राकृतिक पर्यावरण के सभी तत्वों में जलवायु के महत्व को सबसे अधिक बताया है।

प्राकृतिक पर्यावरण की चर्चा करते हुए स्थान—स्थान पर जलवायु को सबसे अधिक प्रभावकारी तत्व के रूप में वर्णन किया है। मानव की आदतों, व्यवहार, आचार एवं विकार के ऊपर जलवायु को सबसे अधिक प्रभावकारी बताया। प्रजाति विकास में भी जलवायु की भूमिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती है। उन्होंने उत्तरी तथा दक्षिणी यूरोप के निवासियों के स्वभाव एवं क्षमताओं के बारे में लिखा है 'उत्तरी यूरोप के लोग भाव प्रधान की तुलना ओजस्वी, दूरदर्शी एवं मितव्ययी, गम्भीर, विवेकी होते हैं जबकि भूमध्यसागरी बेसिन में रहने वाले लोग आराम पसन्द तथा अदूरदर्शी होते हैं[६]। इसी प्रकार उष्ण प्रदेश के लोगों के बारे में कहा है कि वे लोग केवल आवश्यकता एवं दबाव में कार्य करते हैं, वे भावुक तथा कल्पनाशील होते हैं जैसाकि विषुवती पेटी में रहने वाले नीग्रो लोगों में

सभी चारित्रिक विशेषतायें मिलती हैं जिनके कारण इनमें जातीय गुण सदैव पैदा होते रहते हैं।

जलवायु के तत्वों का विवेचन करते हुए सेम्पुल ने बताया है कि उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में दक्षिणी अफ्रीका में यूरोपियन जातियों के प्रभुत्व का कारण वहाँ की जलवायु और यूरोप–भारत मार्ग पर उसकी महत्वपूर्ण स्थिति थी। इसके अतिरिक्त दक्षिणी अफ्रीका के मूल निवासी स्थानीय पर्यावरण के अर्न्तगत जलवायु के कारण अपनी आदतों एवं स्वभाव के अनुसार आराम पसन्द, कम आवश्यकताओं के गुजर–बसर करने वाले तथा पिछड़े थे जबकि वहाँ प्रवासित होने वाली यूरोपीय जातियाँ इसके विपरीत स्वभाव की थीं। जलवायु के कारण शीत प्रदेश के रहने वाले सबसे पहले समुद्र तटीय प्रदेशों पर बसना पसन्द किये और धीरे–धीरे आधिपत्य जमाते चले गये और वहाँ की बहमूल्य सम्पदा के स्वामी बन बैठे। इसी कारण अधिकांश लोग गुलाम, पिछड़े तथा गरीब हैं। सेम्पुल ने मानव को प्रकृति के सामने मोम या प्लास्टिक का पुतला कहा है जिसे वह (प्रकृति) अपनी इच्छानुसार ढालती है। यद्यपि उन्होंने अपनी पुस्तक के अन्तिम अध्यायों में उत्तरी अमरीका की तत्कालीन स्थिति देखकर स्वीकार किया कि ऐसी ही दशा सर्वत्र नहीं पाई जा सकती क्योंकि मानव विविध प्रकार के प्राकृतिक साधनों पर निर्भर अवश्य रहता है तथा प्रकृति से छुटकारा तो नहीं पा सकता परन्तु प्रकृति कहीं–कहीं लचीली अवश्य हो सकती है यदि वह अपने लाभ के लिए इच्छानुकूल सरलतापूर्वक उपयोग कर सकता है। इस प्रकार दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि यह सभ्यता के विकास पर निर्भर करता है कि प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम उपयोग किया जा सके जो पृथ्वी तथा उसके निवासियों के सहयोग पर निर्भर करेगा। इस प्रकार नियतिवाद की कट्टर समर्थक होते हुए भी मानव को प्रकृति की सभी दशाओं का गुलाम नहीं माना। सम्भवतया वह संयुक्त राज्य तथा यूरोप के देशों के चमत्कारी विकास से अछूती नहीं रह सकी। इस प्रकार यही कहा जा सकता है कि इनकी नियतिवाद के सम्बन्ध में प्रारम्भिक कुछ कठोर उदाहरणों को छोड़ दिया जाय तो इनकी अवधारणा वर्तमान में नव–नियतिवाद के पर्याप्त निकट प्रतीत होती है।

सेम्पुल ने प्राकृतिक पर्यावरण के तत्वों के प्रभाव को सभी दृष्टिकोण से समझने का प्रयास किया है जिन्हें चार वर्गों में रखा जा सकता है जो मानसिक प्रभाव, शारीरिक प्रभाव, आर्थिक एवं सामाजिक प्रभाव और स्थानान्तरण के प्रभाव हैं। जलवायु के प्रभाव स्थायी होते हैं तथा उसका नियंत्रण निष्ठुर होता है। शुष्क प्रदेशों में कृषि पर निर्भर स्थायी जीवन सामान्य तौर पर सिंचाई के ऊपर निर्भर होता है। मिस्र की सभ्यता का आधार सिंचाई थी जिसका अन्तिम आधार नील नदी का जल था। प्राचीनकाल में मिस्र के कारीगरों का प्रभाव अभियन्ता वर्ग में देखने को प्राप्त हुआ। आर्कटिक प्रदेश तथा दक्षिणी ध्रुव की खोज करने वालों को भी उसी जलवायु के निवासियों के अनुसार अपने सामाजिक जीवन को परिवर्तित करना पड़ा। इन्हीं लोगों के समान भोजन, वस्त्र एवं परिवास की व्यवस्था करनी पड़ी, तभी उन्हें अपने कार्यों में सफलता मिल सकी। साइबेरिया के शून्य अंश सें० तापक्रम के नीचे वाले प्रदेशों में स्थानीय तथा रूसी विकास, दोनों को प्रभावित किया। यहाँ तक कि श्वेत जनसंख्या के प्रवसन के होते हुए भी कठोर जलवायु के कारण संसाधनों तथा जीवन शैली, दोनों प्रभावित हुई। कनाडा के ध्रुवीय प्रदेशों में लगभग यही दशायें मिलती है। इसी प्रकार उष्ण कटिबन्धी प्रदेशों में आर्द्रता, उष्णता तथा वनस्पति–सघनता के कारण मानव निर्बल होता जाता है जो वहाँ के निवासियों में आर्थिक अकुशलता तथा अक्षमता का कारण है। ऐसे पर्यावरण में वे लोग ही उत्तरजीविता प्रदान कर पाते हैं जो स्थानीय पर्यावरण दशाओं के अनुकूल स्वयं को ढाल लेते हैं। इस प्रकार नये आने वाले लोगों को आत्मसात् करना उष्णकटिबन्धीय उपनिवेशवाद समस्या का एकमात्र हल है।

इसी प्रकार विश्व के विशाल मरूस्थलों तथा स्टेप प्रदेश का उदाहरण देकर बताया है कि यहाँ ऐतिहासिक एकरूपता का असाधारण रूप दिखाई देता है। प्राचीन काल से इस क्षेत्र ने खानाबदोश प्रकृति की जातियों को जन्म दिया है जिनमें स्कीथियन्स, इन्डो–आर्यन, हूण, तातार, तुर्क आदि हैं। ये लोग चलवासी तथा लुटेरे तथा आक्रमणकारी रहे हैं। इस शुष्क घास प्रदेश का पर्यावरण आज भी उसी जीवन पद्धति तथा सामाजिक संगठन का पोषक है जो आज से तीन हजार वर्ष पूर्व था। ग्रीष्मकाल में अवर्षण के समय चरागाह समाप्त हो जाते हैं, जल स्रोत सूख जाते हैं तो ये जातियाँ उन क्षेत्रों में आक्रमण को प्रेरित होती हैं जहाँ उनके पड़ोसी कृषि प्रधान भूमि, अधिक जल सुविधा तथा सम्पन्न होते हैं। हांगहो, सिन्धु, गंगा, दजला–फरात, नील, बोल्गा, नीपर और डेन्यूब की उपजाऊ घाटियाँ इन घुमक्कड़ निरंकुश जातियों का प्रायः शिकार होती रही हैं। इसी प्रकार अफ्रीका में नाइजर तथा नील घाटी में कुदाली कृषकों को भी अफ्रीका के घास–मैदान में जीवन व्यतीत करने वाले घुमक्कड़ी पशुचारकों ने लूटा एवं जीता। इस प्रकार प्रजाति तथा अनपेक्ष हिक्सास अथवा काफिर इन वर्षाविहीन क्षेत्रों में अपने इतिहास को दोहराता है और सीमान्त प्रदेश में जनजातीय प्रवसन होता है।

10.3.4 सेम्पुल की विचारधारा – पर्यावरण नियतिवाद–

सेम्पुल जर्मन भूगोलवेत्ता रैटजेल के नियतिवादी चिन्तन से बहुत प्रभावित थीं। उन्होंने अपने व्याख्यानों, लेखों और पुस्तकों के माध्यम से रैटजेल की नियतिवादी विचारधारा को आंग्ल भाषी देशों और भूगोलवेत्ताओं तक खूब प्रचारित किया। सेम्पुल रैटजेल की विचारधारा और अध्ययन पद्धति की प्रमुख प्रचारिका के रूप में विख्यात हैं। सेम्पुल ने भौगोलिक पर्यावरण के प्रभाव' में यह संदेश देने का प्रयास किया है कि पृथ्वी के तल पर मानव जीवन के सभी पक्ष (शारीरिक रचना, व्यवसाय, विचार, विश्वास आदि) उसके प्राकृतिक पर्यावरण के परिणाम हैं। आंग्ल भाषी विश्व में रैटजेल के विचारों को पहुंचाने का श्रेय कुमारी सेल्पुल को ही जाता है।

सेम्पुल कठोर नियतिवाद की अनुयायी थीं और उन्होंने इस विचारधारा को अपने प्रभावशाली लेखन शैली के द्वारा उच्चतम स्तर तक पहुँचा दिया। उनकी भौगोलिक पर्यावरण के प्रभाव' नामक सम्पूर्ण पुस्तक नियतिवादी विचारों से ओत–प्रोत है जिसमें रोचक उदाहरणों द्वारा मनुष्य पर प्रकृति के प्रभावों को समझाने का प्रयास किया गया है। इस पुस्तक का प्रथम अनुच्छेद सम्पूर्ण पुस्तक की लेखन शैली और उसके मौलिक संदेश को प्रकट कर देता है। पुस्तक के आरंभ में ही सेम्पुल ने लिखा है" मनुष्य भूतल की उपज है। इसका अभिप्राय केवल इतना ही नहीं है कि वह पृथ्वी का बच्चा है, उसकी मिट्टी की धूल है बल्कि यह भी है कि पृथ्वी माता ने उसे जन्म दिया है, उसका पालन–पोषण किया है, उसके लिए कार्य निर्धारित किया है, उसके विचारों को दिशा प्रदान की है, उसके सम्मुख कठिनाइयां उपस्थित की है जिन्होंने उसके शरीर को शक्तिशाली और बुद्धि को तीव्र बनाया है, उसको सिंचाई और नौकायन की समस्याएं उपस्थित किया है और उसके साथ ही उनके समाधान के लिए धीरे से संकेतित कर दियाहै। वह उसकी मिट्टी और मांस में, उसके मस्तिष्क और आत्मा में प्रविष्ट हो गयी है ' इसी प्रकार के वक्तव्य सम्पूर्ण पुस्तक में भरे पड़े हैं। सेम्पुल ने लिखा है कि पर्वतों पर रहने वाले लोगों को प्रकृति ने मजबूत पैर दिये हैं जिससे वह ढालों पर चढ़ सके। इस प्रकार सेम्पुल ने मनुष्य के शारीरिक गठन, कार्यकुशलता तथा उसके सम्पूर्ण क्रिया–कलापों को प्राकृतिक पर्यावरण का परिणाम सिद्ध करने का प्रयास किया है। तत्कालीन परिस्थिति में सेम्पुल की विचारधारा समसामयिक थी और भूगोल जगत पर उनकी विद्वता का व्यापक प्रभाव पड़ा था।

उल्लेखनीय है कि सेम्पुल ने रैटजेल की पुस्तक एन्थ्रोपोज्योग्राफी के प्रथम खण्ड (1882) में प्रयुक्त अध्ययन पद्धति का अनुसरण किया जिसमें कठोर नियतिवाद की चर्चा की गयी है। उन्होंने इस पुस्तक के दूसरे खण्ड (1891) की अध्ययन पद्धति पर ध्यान नहीं दिया जिसमें रैटजेल ने मानव पर प्राकृतिक पर्यावरण के प्रभाव के साथ ही इस बात पर भी बल दिया है कि मानवीय विकास में ऐतिहासिक संस्कारों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। बाद के वर्षों में सेम्पुल भी मानव के प्रभावों को स्वीकार करने लगीं थी। भूमध्यसागरीय प्रदेशों के भौगोलिक विवेचन में उन्होंने प्राकृतिक पर्यावरण के साथ ही मानवीय क्रिया–कलापों के प्रभावों की भी समीक्षा की है।

10.4 एलिसवर्थ हन्टिंग्टन (1876–1947)

हटिग्टन का जन्म इलिनाय राज्य के गालेस वर्ग में 1876 ई० में हुआ था। 1897 ई० में इन्होंने स्नातक उपाधि प्राप्त की। ये डेविस के शिष्य थे। 1897 ई० में इन्हें टर्की में हारपुट महाविद्यालय में सहायक प्राध्यापक के पद पर नियुक्ति मिली। वहाँ इन्होंने विस्तृत भ्रमण किये तथा अपनी यात्राओं का विस्तृत विवरण लिखते रहे। इन्होंने दजला नदी के मध्य(गार्ज) से होकर यात्रा की थी। 1901 में डेविस के निर्देशन में इन्होंने एम० ए० की उपाधि प्राप्त की। 1903–1904 ई० में मध्य एशिया की खोज यात्रा पर जाने वाले रैकल पम्पले अभियान दल में शामिल हुए। 1905–06 ई० में हटिंग्टन ने भारत की यात्रा की तथा तत्पश्चात के रास्ते साईबेरिया होते हुए वापस लौटे।

1907 ई० में येल विश्वविद्यालय में भौमिकी में प्रशिक्षक नियुक्त हुए तथा वहीं से 1909 ई० पी० एच–डी० की उपाधि प्राप्त की। वहीं 1910 ई० में सहायक प्रोफेसर नियुक्त हुए। 1915 ई० में इन्होंने येल विश्वविद्यालय से त्याग पत्र दे दिया। 1918–19 ई० में इन्होंने सेना में गुप्तचर का कार्य किया। तत्पश्चात येल वापस आये और वहीं से 1945 ई० में अवकाश ग्रहण किया। 1917 ई० में हटिंग्टन अमेरिकी पारिस्थितिकी परिषद के अध्यक्ष तथा 1923 ई० में अमेरिकी भूगोलवेत्ता परिषद के अध्यक्ष भी चुन गये थे। डिकिन्सन के अनुसार हटिंग्टन के वयस्क जीवन को चार चरणों में विभक्त किया एल्सवर्थ हंटिंगटन (1876–1947) एक भूवैज्ञानिक, भूगोलवेत्ता और जलवायु विज्ञानी के रूप में प्रसिद्ध हैं।

10.4.1 कृतिया एवं ग्रन्थ–

इन्होंने भौमिकी, मानव भूगोल, ऐतिहासिक भूगोल, राजनीतिक भूगोल तथा सामाजिक भूगोल पर लेखक तथा सहलेखक के रूप में 29 ग्रंथ लिखा तथा आंशिक लेखक के रूप में 27 ग्रन्थ तथा शोधपत्र, लेखों तथा शोधप्रबंधों की संख्या 180 से अधिक है। उनकी उल्लेखनीय रचनायें इस प्रकार हैं–

1. एशिया का स्पन्दन (1907),
2. पैलेस्टाइन और उसकी गत्यात्मकता (1911),
3. जलवायु एक कारण– शुष्क अमेरिका का एक उदाहरण (1914),
4. सभ्यता एवं जलवायु (1920),
5. जलवायु परिवर्तन, उसके स्वरूप एवं कारण (1922),
6. पृथ्वी एवं सूर्य ,
7. प्रजातियों के लक्षण (1924),
8. मानव परिवास (1945),
9. आर्थिक और सामाजिक भूगोल (1953),
10. मानव भूगोल के सिद्धान्त (1933),
11. जन्म की ऋतु ,
12. सभ्यता के प्रधान स्रोत (1945)

इन सभी पुस्तकों में नियतिवादी विचारधारा की पुष्टि होती है।

10.4.3 भूगोल में योगदान तथा भौगोलिक चिंतन–

हटिग्टन की अभिरुचि, प्रमुखतया मानव भूगोल के क्षेत्र में थी। इनकी पुस्तकें न सिर्फ भूगोल, वरन् समाज शास्त्र, इतिहास आदि अन्य सामाजिक विज्ञानो में भी लोकप्रिय हुई। मानव भूगोल की परिभाषा देते हुए इन्होंने लिखा कि मानव भूगोल, भौगोलिक वातावरण तथा मानव के क्रिया–कलाप एवं गुणों के मध्य सम्बन्धों की प्रकृति एवं उनके वितरण का अध्ययन है' हटिंग्टन ने इस सम्बन्ध की प्रकृति स्पष्ट करने के लिये मानव भूगोल के विभिन्न तथ्यों तथा प्राकृतिक वातारण के तथ्यों मध्य निम्न चार्ट द्वारा अन्तर्सम्बन्ध, दर्शाये।

भूगोल में योगदान तथा भौगोलिक चिन्तन में रैटजेल की भाँति हंटिंगटन ने भी प्राकृतिक पर्यावरण के तत्वों का तकनीकी दृष्टिकोण से एक भूगोलविद् के रूप में अध्ययन करते हुए मानवीय क्रियाकलापों पर चारों ओर से पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया। इन्होंने यात्री के रूप में कई यात्रायें किया था। अतएव व्यवहारिक भूगोलविद् की भाँति विवेचन किया है। यद्यपि इनका वैचारिक झुकाव नियतिवाद की ओर था किन्तु मानव कौशल तथा क्रियाविधि को कभी नहीं नकारा।

10.4.3.1 भौगोलिक चिन्तन–हंटिंगटन ने अपने भौगोलिक चिन्तन में सदैव वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखा और सदैव विश्वव्यापी दृष्टिकोण से सार्वभौमिक प्रवृत्तियों तथा सर्वव्यापी अर्न्तसम्बन्धों को खोजने का प्रयास किया। ऐसा करने के लिये अधिकाधिक उपलब्ध आँकड़ों तथा सूचनाओं का उपयोग करते थे। इन सभी ज्ञात स्रोतों के आधार पर मानचित्रांकन करने के उपरान्त एक सामान्य अन्तर्सम्बन्धों की रूपरेखा प्रस्तुत करते थे। इस पद्धति से उन्होंने कई सिद्धान्तों, माडलों तथा सूत्रों का प्रतिपादन किया जिनके द्वारा उनकी नियतिवादी संकल्पना की अभिव्यक्ति होती है।

ऐसे सूत्रों एवं सिद्धान्तों का विवेचन निम्न प्रकार किया गया है–

1. पृथ्वी के अनन्तकालीन इतिहास में अनेक बार जलवायु परिवर्तन हुए हैं। इन जलवायुविक परिवर्तनों का सभ्यता एवं इतिहास पर गहरा प्रभाव पड़ा है।
2. जलवायुविक परिवर्तन चक्रानुसार न होकर अनियमित रूप में हुए हैं,
3. जलवायु परिवर्तनों के प्रमुख कारण सूर्य में होने वाले परिवर्तन हैं,

4. पृथ्वी तल पर जलवायुविक परिवर्तन एवं जलवायु का प्रभाव मानव, मानव–संस्कृति तथा अन्य जैविक तत्वों और भौमिकीय प्रक्रमों के ऊपर पड़ा है,
5. विश्व में विकसित मानव संस्कृति का विभिन्न स्तर पर जलवायु के साथ अन्तर्सम्बन्ध दिखाई देता है,
6. कृषिगत उत्पादन हेतु अनुकूल ताप तथा पर्याप्त वर्षा के साथ ऋतुवत् एवं परिवर्तनशील जलवायु दशा में मानसिक कार्य एवं विकास को प्रेरणा मिलती है,
7. मानव संस्कृति के विकास के साथ सभ्यता क्रोड धीरे–धीरे शीतल प्रदेशों की ओर खिसकते गये,
8. संस्कृति एवं सभ्यता के अक्षांशीय खिसकाव के साथ शस्य उत्पादन, उत्पादकता तथा जीव नस्लों में सुधार होता गया,
9. जलवायु के अस्थायी एवं अनियमित परिवर्तन से मानव की ऊर्जा, स्वास्थ्य तथा आयु, मानसिक प्रवृत्ति और उपलब्धियां भी प्रभावित होती हैं और
10. चक्रवात जनित मौसमी परिवर्तन मानव में ऊर्जा एवं स्फूर्ति उत्पन्न करते हैं।

इनके सिद्धान्त अधिकतर जलवायुगत परिवर्तन तथा उसका इतिहास, मानव कीकार्यक्षमता एवं सभ्यता पर प्रभाव से सम्बन्धित हैं। इनके अनुसार, जलवायु में अक्सर परिवर्तन होते रहे हैं। इस परिवर्तन में कोई नियमित प्रवृत्ति नहीं मिल जलवायुगत परिवर्तन न तो चक्रवत हुए हैं और न क्रमश, वरन् अनियमित हुए हैं। जलवायु में परिवर्तन का मुख्य कारण सूर्य में परिवर्तन रहा है। जलबायु में परिवर्तन का गहरा प्रभाव मनुष्य उसकी संस्कृति, मौमिकीय प्रक्रम तथा अन्य जीवों पर पड़ा है। मौसम में फेर–बदल का भी अगर मनुष्य की ऊर्जा, स्वास्थ्य, आयु. उसकी प्रवृत्ति तथा उसकी सफलताओं पर पड़ता है। इसीलिये, विभिन्न स्तर (निम्न से उच्च) की सभ्यतायें, विभिन्न प्रकार के जलवायु प्रदेशों से सम्बन्धित मिलती हैं। ऐसी जलवायु जिसमें पर्याप्त उष्णता एवं वर्षा होती है जिससे कृषि उत्पादन सम्भव हो तथा साथ ही स्पष्ट ऋतुर्ये मिलती हैं जिनमें प्रायः मौसम बदलता रहता है, मानसिक कार्य तथा विकास के लिये अनुकूल होती है।

10.4.3.2 जलवायु का प्रभाव–हंटिंगटन ने नियतिवादी चिन्तन में जलवायु को सबसे प्रभावशाली कारक माना है। उसने अपनी पुस्तक 'मानव भूगोल के सिद्धान्त' में लिखा है, " (मानव का भौगोलिक वितरण किसी अन्य कारकों की अपेक्षा जलवायु तथा मौसम पर निर्भर होता है)। इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर लिखा है कि विश्व में वर्तमान उच्च सभ्यता वाले केन्द्रों का विकास प्रायः अनुकूल जलवायु प्रदेशों में हुआ है। भूतकाल में भी उच्चस्तरीय सभ्यता का विकास वहीं हुआ था जहाँ अनुकूल जलवायु थी। जलवायु प्रतिकूल होने के उपरान्त वे सभ्यतायें काल–कवलित हो गईं। विश्व सभ्यता के विकास पर जलवायु के विविध प्रभाव की व्याख्या उनकी इसी पुस्तक में पूर्ण भाषा सौष्ठव के साथ की गई है जिसका हिन्दी पाठान्तर इस प्रकार है,"हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि उत्तेजक जलवायु ही सभ्यता के विकास में एकमात्र सहायक दशा है। सम्पूर्ण विश्व तल एक कैनवास के समान है जिस पर विविध कलाकारों द्वारा सभ्यता का अलग–अलग विधि से रंगीन चित्र बनाया जाता है जिसमें जलवायु भी एक कलाकार है। ऐसे रंगों का उपयोग उसकी विभिन्न आभाओं के विविध सम्मिश्रणों में होता रहा है। कहीं यह रंग पूर्ण प्रभावकारी, अच्छे अन्यत्र भद्दे, अरुचिपूर्ण या धुंधले दिखाई देते हैं। प्रजाति का रंग कभी बुरा तो कभी अनुकूल और इसी भाँति बीमारी, भोजन, धर्म, आदि की अपनी विशेष (रंगों एवं सम्मिश्रणों की) आभा होती है। ऐसी सभी आभायें मिलकर विश्व में जहाँ कहीं अनुकूल रंगों का प्रभावकारी संगम बना देती है, वही स्थल या प्रदेश उच्च सभ्यता वाले होंगे।

हंटिंगटन की सभी विवेचना से स्पष्ट है कि वे पूर्ण नियतिवादी हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक "जन्म की ऋतु" में सिद्ध करने का प्रयास किया है कि जलवायु मानव जीवन का ही नहीं वरन् उससे दो कदम आगे बढ़कर इसके जन्म को भी प्रभावित करती है। उन्होंने भौतिक तत्वों, जैविक तत्वों तथा मानव अनुक्रियाओं के मध्य घनिष्ठ अन्तर्सम्बन्ध और कार्य–कारण कड़ी को स्थापित करके उपयुक्त तीनों तत्वों के विशिष्ट स्थान को निर्धारित करने का प्रयास किया। इस प्रकार उनके ऊपर डेविस का प्रभाव झलकता है। उन्होंने भूगोल को सुसंगठित तथा नियम प्रतिपादक विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित किया। इसके साथ यह भी ध्यान रखना पड़ेगा कि अपने इस सिद्धान्त की व्याख्या करते समय सभ्यता के विकास के साथ–साथ मानव द्वारा सृजित विशिष्ट सुविधाओं की उपेक्षा नहीं किया। इसीलिए अपनी अन्तिम पुस्तक 'सभ्यता के प्रधान स्रोत' में आहार तथा भरण–पोषण विधि को भी सभ्यता के विकास में महत्वपूर्ण स्थान दिया। ऐसे सभी प्रगतिशील कारकों को औद्योगिक विकास एवं प्रदेशों के आर्थिक

विकास में घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित बताया। हंटिंगटन के जलवायु के प्रकरण पर डी० एच० के० ली नामक विद्वान के कथन उल्लेखनीय हैं, "हंटिंगटन का ऐसे विस्तृत विस्तार वाले सम्बन्धों को प्रतिपादित करते हुए जलवायु का प्रतिभासम्पन्न व्यापीकरण दो कारणों से पठनीय योग्य हैं–प्रथम वे विचारोत्तेजक हैं तथा उनमें से सभी का खण्डन भी नहीं किया जा सकता, और द्वित्तीय प्रभावशाली प्रस्तुतीकरण के रूप में अद्वितीय हैं।

सभ्यता वाले क्रोड़ क्रमशः गर्म से ठंढी जलवायु की ओर खिसकते गये हैं। इसी प्रकार, पौधों एवं पशुओं में भी ठंढी जलवायु में गुणवत्ता में वृद्धि दिखाई देती है। उदाहरण देते हुए इंटिग्टन कहते हैं– 'मौसम दशाओं में दैनिक परिवर्तन मानव की कार्यशीलता में वृद्धि का सबसे बड़ा प्रेरक है। उपोष्ण कटिबन्धों में जिस ऋतु में वर्षा होती है तथा तूफान अधिक आते हैं उस ऋतु में लोगों में अधिक ऊर्जा तथा स्फूर्तिरहती है। यही कारण है कि यूनान, इजराईल, मिश्र, मेसोपोटामिया तथा ईरान के लोग भूतकाल में आज की अपेक्षा अधिक स्फूति वाले थे। आज के युग में मनुष्य उन चक्रवात वाले क्षेत्रों में जहाँ औसत वार्षिक तापमान 50°के आस–पास रहता है अधिक प्रगतिशील दिखाई पड़ते हैं। यही तापमान न्यूयार्क, शिकागो, लन्दन, पेरिस तथा बर्लिन में मिलता है। दूसरी ओर, अधिकांश प्राचीन सभ्यतायें उपोष्ण कटिबन्धीय जलवायु में विकसित हुई थी सभ्यता के केन्द्र विगत 5 हजार वर्षों में क्रमशःपरन्तु अनियमित रूप से ठंढे क्षेत्रों की ओर खिसकते गये हैं। अतएव जितनी ही उच्च स्तर की सभ्यता है, उतने ही ठंढी जलवायु मिलती है। इसके लिये वे चार कारण बताते हैं–

1. सभ्यता में विकास के साथ मानव कम तापमान से उत्पन्न कठिनाइयों का निवारण करने में सक्षम हुआ है।
2. पुरानी सभ्यतायें पिछड़े वर्ग की कृषि एवं उपकरणों पर आधारित थी। दीर्घ अनुभव एवं लोहे के औजारों के प्रयोग से मनुष्य ने ठंढी जलवायु का उपयोग करना सीख लिया है।
3. उसी प्रकार दीर्घ अनुभव एवं कुशलता से मनुष्य ने ठंढे, तर जलवायु में स्वस्थ तथा स्फूर्त रहना सीख लिया है।
4. सभ्यता के केन्द्र का मेसोपोटामिया और मिश्र से यूनान तथा रोम और फिर उत्तर सागर के तटवर्ती यूरोप एवं अमेरिका की ओर खिसकना, मनुष्य की शारीरिक एवं मानसिक कार्यशीलता पर मौसम के अनुकूल प्रभाव के कारण सम्भव हुआ है।

अतएव, हंटिग्टन ने इतिहास को भलीभांति समझने के लिये भूगोल का अध्ययन, विशेषतया जलवायुगत परिवर्तनों का अध्ययन आवश्यक माना। इन्होंने अपनी पुस्तक 'सभ्यता के मुख्य स्रोत में' अनेक मानवीय एवं प्राकृतिक तत्त्वों का समन्वयन एवं विस्तार करते हुए यह सिद्धान्त स्थापित किया कि इतिहास की धारा जैविक विरासत तथा प्राकृतिक वातावरण से बहुत प्रभावित हुई है। चयनित प्रव्रजन चयनित जीवन शक्ति तथा लगभग समान संस्कृति वाले लोगों में अंतर्विवाह ने इतिहास को प्रभावित किया है। साथ ही जलवायु में सूक्ष्म से सूक्ष्म परिवर्तन से भी इतिहास प्रभावित हुआ है। इस प्रकार हार्टशोर्न के शब्दों में 'इंटिग्टन के कार्य में इतिहास एवं भूगोल का समागम है। उन्होंने प्राकृतिक वातावरण का मानव के कार्य–कलाप तथा ऐतिहासिक विकास पर प्रभाव सूक्ष्म स्तर पर मापने का प्रयत्न किया।

10.4.3.3 हंटिंगटन की विचारधारा–

हंटिंगटन भूगोल को मानव जीवन पर प्राकृतिक पर्यावरण के प्रभाव के विश्लेषण पर केन्द्रित अध्ययन मानते थे। वे प्राकृतिक पर्यावरण के तत्वों में जलवायु को सर्वशक्तिमान और प्रभावशाली मानते थे। उन्होंने मानव भूगोल के विषय क्षेत्र की तार्किक व्याख्या की थी और वे नियतिवाद के पक्के समर्थक थे। हांटिंगटन के मौलिक विचार निम्नांकित हैं–

10.4.3.4 मानव भूगोल के तत्व–

हंटिंगटन ने मानव भूगोल के तत्वों को एक चार्ट द्वारा प्रदर्शित किया है और उन्हें तीन प्रधान श्रेणियों में विभक्त किया है जो इस प्रकार हैं(i) भौतिक दशाएं , (ii) जीवन के प्रकार , और (iii) मानव प्रतिक्रियाएं।उन्होंने इन तीनों प्रकार के तत्वों के पारस्परिक सम्बंधों की विस्तृत व्याख्या की है। उन्होंने सर्वप्रथम यह दर्शाया है कि भौतिक तत्व किस प्रकार एक–दूसरे को प्रभावित करते हुए अंतर्संबंधित हैं। इनका सामूहिक प्रभाव जैविक रूपों (वनस्पति, जीव–जन्तु और मनुष्य) पर होता है जबकि विभिन्न जैविक रूप भी आपस में एक–दूसरे से सम्बंधित हैं। भौतिक दशाओं, पौधों तथा पशुओं से मानव की क्रिया–प्रतिक्रिया होती है जिसके परिणामस्वरूप मानव प्रतिक्रियाओं की

उत्पत्ति होती है। हंटिंगटन के अनुसार मानव प्रतिक्रियाएं मानव भूगोल के प्रमुख तत्व हैं। उन्होंने समस्त मानव प्रतिक्रियाओं को निम्नांकित चार वर्गों और 22 उपवर्गों में विभक्त किया है

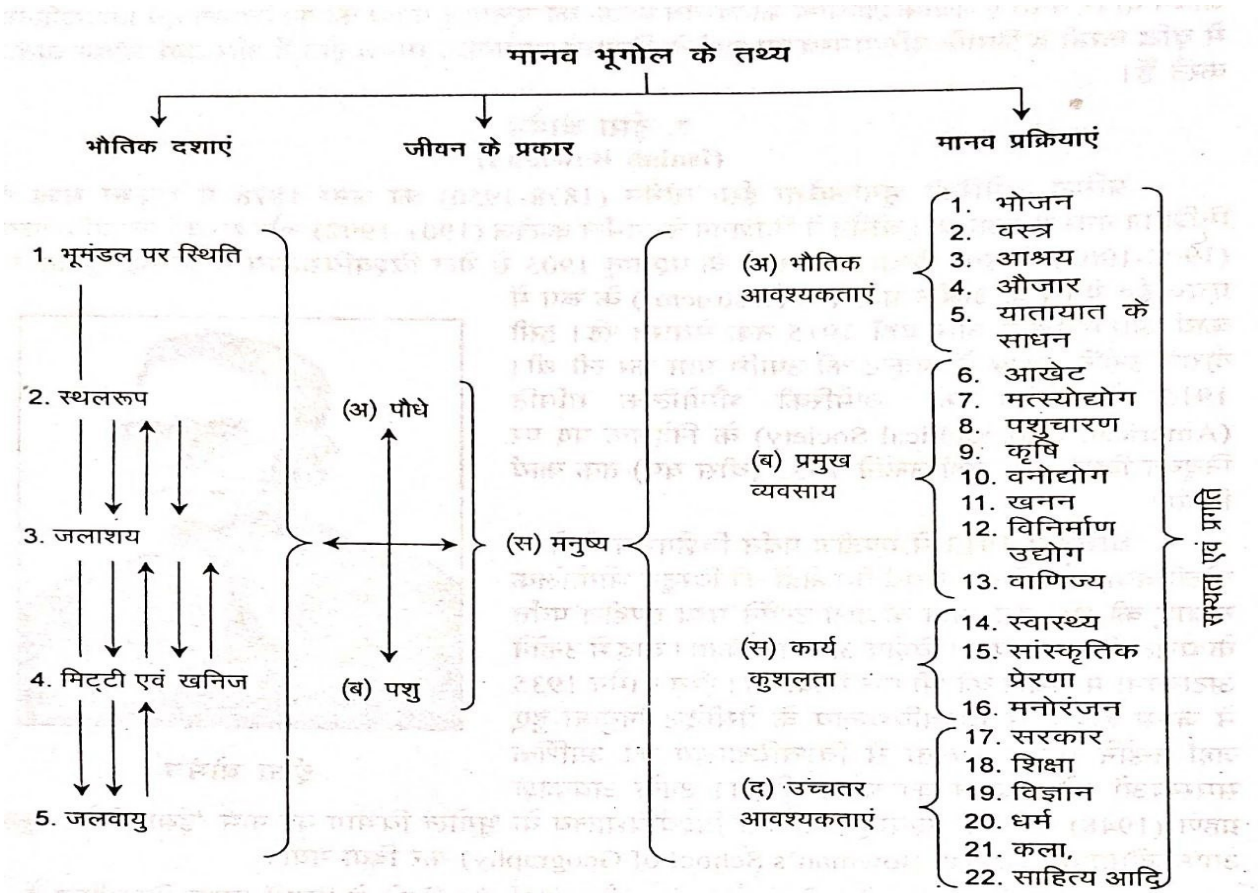
(अ) भौतिक आवश्यकताएं (1) भोजन, (2) वस्त्र, (3) आश्रय, (4) औजार, और (5) यातायात के साधन।

(ब) मौलिक व्यवसाय (6) आखेट, (7) मत्स्याखेट, (8) पशुचारण, (9) कृषि, (10) वनोद्योग, (11) खनन, (12) विनिर्माण, और (13) वाणिज्य।

(स) कार्यकुशलता (14) स्वास्थ्य, (15) सांस्कृतिक प्रेरणा, और (16) मनोरंजन।

(द) उच्चतर आवश्यकताएं (17) प्रशासन या सरकार, (18) शिक्षा, (19) विज्ञान, (20) धर्म, (21) कला, और (22) साहित्य।

हंटिंगटन से पूर्ववर्ती भूगोलवेत्ता मानव प्रतिक्रियाओं के प्रथम दो वर्गों भौतिक आवश्यकताओं और मौलिक व्यवसायों को ही मानव भूगोल का तत्व मानते थे। हंटिंगटन ने इसमें कार्यकुशलता और उच्चतर आवश्यकताओं से सम्बंधित तत्वों को सम्मिलित करके मानव भूगोल के क्षेत्र को अधिक पूर्ण और व्यापक बना दिया है। इस प्रकार हंटिंगटन द्वारा किया गया मानव भूगोल के तत्वों का वर्गीकरण निश्चितरूप से सुबोध, सार्थक तथा तार्किक है यद्यपि इससे मानव भूगोल का विषय–क्षेत्र अपरिमित हो जाता है।



चित्र .1 हंटिंगटन के अनुसार मानव भूगोल के तत्व

10.4.3.5 नियतिवादी विचार–

हंटिंगटन पर्यावरण नियतिवाद के प्रबल समर्थक थे। उनके अनुसार किसी प्रदेश के मानव समूह के क्रिया–कलापों, गुण एवं सांस्कृतिक विकास के निर्धारण में प्राकृतिक तत्वों की प्रमुख भूमिका होती है। वे प्राकृतिक तत्वों में जलवायु को सर्वोपरिमानते थे। उन्होंने अपनी पुस्तक 'सभ्यता और जलवायु (1915) में उत्तरी–पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका, पश्चिमी यूरोप और पूर्वी एशिया की समशीतोष्ण जलवायु को मानवीय प्रगति के लिए सर्वोत्तम और

सर्वाधिक उपयुक्त बताया था। उन्होंने 'मानव भूगोल के सिद्धान्त' (1920) में लिखा है कि 'मानव का भौगोलिक वितरण किसी अन्य तत्व की तुलना में जलवायु और मौसम पर अधिक निर्भर होता है।

हंटिंगटन ने मानव इतिहास और मानव सभ्यता के विकास पर भौतिक तत्वों विशेषतःजलवायु के प्रभावों की विस्तृत विवेचना की है। उन्होंने लिखा है कि उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में अधिक गर्मी पड़ने कारण वहाँ के मनुष्यों की कार्यक्षमता कम हो जाती है जिससे वहाँ के लोग सामान्यतः निर्धनता में निम्न जीवन यापन करते हैं जबकि शीतोष्ण कटिबंधीय प्रदेशों की जलवायु मनुष्य की कार्यक्षमता एवं क्रियाशीलता में वृद्धि करती है जिसके परिणामस्वरूप वहाँ के निवासी सामान्यतः सम्पन्न होते हैं और उच्च जीवन व्यतीत करते हैं।

जहाँ तक उनकी नियतिवादी संकल्पना में जलवायु जैसे कारक के सर्वव्यापी प्रभाव को प्रतिपादित करने वाले सिद्धान्त की तथ्यपरकता, सत्यता एवं सार्थकता के आधार पर पर्याप्त आलोचना हुई किन्तु इससे उनकी विद्वता, लौकिक चिन्तन, वैज्ञानिक तटस्थता, विषय के प्रति निष्ठा तथा विषय को सुसंगठित करने के उत्साह के प्रति संदेह नहीं किया जा सकता। इसीलिए स्पेट ने उनकी पुस्तक 'सभ्यता के प्रधान स्रोत' की तुलना अर्नाल्ड टोयान्बी की पुस्तक 'इतिहास का अध्ययन' से करते हुए निम्न टिप्पणी किया है–

1.हंटिंगटन का नियतिवाद इतिहास का निर्माण करने वाले अत्यधिक जटिल कारक 'संश्लिष्ट के एक अंश मात्र के विवेचना का परिणाम है जिससे वे अनभिज्ञ नहीं थे। उन्होंने मानव सभ्यता के प्रादेशिक वैभिन्नताओं का विवेचन मात्र कुछ प्राकृतिक एवं जैविक कारकों के आंशिक विश्लेषण के आधार सीमित रखा, 2. हंटिंगटन सदैव सांख्यिकीय किन्तु मूल्य सापेक्ष मापदण्ड के आधार पर सभ्यता का आंकलन करते रहे, अतएव उनके मानक सर्वथा व्यक्तिनिष्ठ थे। सांख्यिकीय आंकड़े सर्वदा विश्वसनीय नहीं होते हैं जिसके कारण उन्हें मानव की शारीरिक एवं मानसिक स्फूर्ति प्रेरक मौसम दशाओं तथा सभ्यता स्तर के बीच पर्याप्त क्षेत्रीय सहअस्तित्व स्थापित करने में कठिनाई प्रतीत नहीं हुई। यद्यपि उन्होंने सभ्यता के निर्धारण में उसके अनेक तत्वों जैसे आनुवंशिकता, सांस्कृतिक उत्थान, आदि के साथ जलवायु को मात्र एक कारक माना है जिसके विवेचन पर अपना ध्यान अधिक केन्द्रित किया और 3. हंटिंगटन के विवेचन में त्रुटि इस तथ्य में पायी जाती है कि उन्होंने अपनी वैज्ञानिक तटस्थता की प्रवृत्ति तथा सभ्यता विशेष की विशिष्टताओं के प्रति पूर्णरूपेण अस्पष्ट रहे। वे सभ्यता के प्रत्येक पक्ष का आंकलन सांख्यिकीय के माध्यम से करना चाहते थे किन्तु वैसे आंकड़ों का मिलना सर्वथा कठिन था क्योंकि आदर्शवादी आन्तनिर्भरता, निष्ठा, कलात्मक अभिरुचि, आदि जैसे सभ्यता बोध के आंकड़ों को प्राप्त करना कठिन होता है। इस कार्य को पूरा करने के लिए किसी प्रकार साक्षरता तथा पुस्तकालय उपयोग जैसे आँकड़ों का प्रयोग किया जिसके कारण विश्व के धर्मों को श्रेणीबद्ध या पदानुक्रमिक करने का उनका प्रयास सफल सिद्ध नहीं हुआ।

10.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन में सेम्पुल तथा हंटिंगटन कृतियों रचनाओं एवं भूगोल में उनके योगदान उनकी भौगोलिक चिंतन विचारधाराओं का अध्ययन किया गया है। सेम्पुल की आधारभूत मान्यता यह थी कि प्राकृतिक शक्तियांमानव जीवन को प्रभावित करती हैं परिणाम स्वरूप बहुधा एक प्रकार के वातावरण में निवास करने वालों की व्यवहार पद्धति एक जैसी होती है, परन्तु इस बारे में कोई सामान्य नियम नहीं बनाया जा सकता। समान वातावरण में रहने के उपरान्त भी कुछ सामाजिक ईकाइयां औरों से भिन्न प्रकार का व्यवहार कर सकती हैं। इस दृष्टि से सेम्पुल का भौगोलिक चिंतन घोर नियतिवादी न होकर सम्भावनावादी चिंतन था।

अपनी संकल्पनात्मक स्तर पर कमियों के बावजूद सेम्पुल ने अमेरिका में भूगोल को दिशा निर्देश देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इसका यह कारण था कि उन्होंने इंगलैंड में ऑक्सफोर्ड एवं लन्दन के अतिरिक्त अमेरिका के विभिन्न विश्वविद्यालयों, कोलोरेडो, कोलम्बिया, तथा शिकागो एवं अमेरिकी भूगोल परिषद्, न्यूयार्क में अनेक ब्याख्यान दिये। सेम्पुल ने जापान, चीन, अपनी तीसरी पुस्तक फिलीपिन्स, जावा, तथा भारत का भी भ्रमण किया था।

इन्होंने भूमध्यसागरीय देशों में भ्रमण तथा अध्ययन किया था।ये अमेरिकी भूगोलवेत्ता संघ के संस्था– पाकसदस्यों में से थीं। इन्हें विभिन्न भौगोलिक परिषदों ने सम्मानित किये थे। सेम्पुल ने प्राकृतिक वातावरण का नियन्त्रण केवल मनुष्य के भोजन, वस्त्र, मकान और आर्थिक व्यवसाय पर ही नहीं, वरन् उसके विचारों, भावनाओं, धार्मिक विश्वासों और सामाजिक संगठनों पर भी बतलाया था। हंटिंगटन ने मानव कार्य–कलाप तथा मौसम चक्र के मध्य कई सटीक सहसम्बन्ध दर्शाये तथापि उनके वक्तव्यों में कई भ्रामक धारणायें, संदिग्ध मान्यतायें, नगण्य तथ्यों तथा

आँकड़ों के अविवेकपूर्ण उपयोग के कारण उनके निष्कर्ष सही साबित नहीं हुए। हंटिंगटन ने प्राकृतिक कारकों को अत्यधिक तथा समाज के स्वतःविकास को अत्यल्प महत्त्व दिया। फिर भी, उन्होंने जलवायु के शारीरिक मनोवैज्ञानिक प्रभाव दर्शाने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया।

हंटिंगटन की पुस्तकें भूगोल के विद्यार्थियों के अतिरिक्त इतिहासकारों, समाजशास्त्रिया तथा आयुर्वेज्ञानिकों में बहुत लोकप्रिय हुईं। परन्तु जिस समय हंटिंगटन सभ्यता के विकास में जलवायुवीय प्रभावों के उद्घाटन में लगे थे अमरीकी भौगोलिक चिंतन नियतिवादी दर्शन से द्रुत गति से अलग होता जा रहा था।

10.7 स्व मूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

प्रश्न 1 कुमारी सेम्पल किसकी शिष्य थी?

(अ) मार्क जेफरसन (ब) फ्रेडरिक रैटजेल

(स) अर्नाल्ट गुयोट (द) कॉल सावर

प्रश्न 2 रैटजेल की सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ का नाम क्या है?

(अ) एंथ्रोपोज्योयोग्राफी (ब) नया संसार

(स) सांस्कृतिक भूगोल (द) अदृश्य की आकिरकी

प्रश्न 3अल्सवर्थ हंटिंगटन किस वैज्ञानिक के रूप में प्रसिद्ध है?

(अ) भू वैज्ञानिक एवं जलवायु विज्ञानी (ब) मानव शास्त्री

(स) जीव विज्ञानी (द)समाजशास्त्री

प्रश्न 4हंटिंगटन किस विचारधारा के समर्थक थे?

(अ) संभववाद (ब) नियतिवाद

(स) नव निश्चयवाद (द) प्रसंभववाद

उत्तरमाला1. (ब) 2.(अ) 3.(अ)4.(ब)

10.8 संदर्भ– ग्रंथ –सूची

- Burgess, E. W. (1923) The determination of gradients in the growth of the city,American Sociological Society Publications, 18, pp. 85 - 89 (1927) 27, pp. 178 - 184.
- E. W. (1929) The Growth of City Chicago. English Translation.
- Atwood. W. W. (1945) The Rocky Mountains, New York.
- Baker, J. N. L. (1955) Geography and its history.Advancement of Science 12.
- Baker. J. N. L. (1963) The History of Geography, New York.
- Barrows, H. H. (1923) Geography as human ecology,Ann.Assoc.Am. Geogrs, 13, pp. 1 - 14.

10.9 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

प्रश्न 1 कुमारी सैंपल भौगोलिक चिंतन में योगदान की व्याख्या कीजिए?

प्रश्न 2 भौगोलिक चिंतन के विकास में हंटिंगटन के योगदान की विस्तृत व्याख्या कीजिए?

इकाई–11 ग्रेट ब्रिटेन में भूगोल– हेल्फोर्ड जॉन मैकिण्डर एवं स्टाम्प, रूस में भूगोल की प्रगति

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 ग्रेट ब्रिटेन में भूगोल

11.4 ग्रेट ब्रिटेन में भूगोल के विकास

- 11.4.1 ब्रिटिश भौगोलिक चिंतन का योगदान
- 11.4.2 ब्रिटिश भूगोलवेत्ता

11.5 हेल्फोर्ड जॉन मैकिण्डर

- 11.5.1 रचनाएं
- 11.5.2 मैकिण्डर के भौगोलिक विचार
- 11.5.3 भूगोल में योगदान
- 11.5.3.1. ऐतिहासिक भूगोल
- 11.5.3.2. राजनैतिक भूगोल
- 11.5.4. हृदय स्थल सिद्धांत की संकल्पना
- 11.5.4.1 आलोचनाएं–

11.6 सर लारेंस डडले स्टाम्प

- 11.6.1. कृतियां एवं ग्रंथ
- 11.6.2. भौगोलिक कल्पनाएं

11.7 रूस (सोवियत संघ) में भूगोलकी प्रगति

- 11.7.1. रूसी भूगोल के विकास
- 11.7.2. भौगोलिक ग्रंथों एवं मानचित्रावलीयों का प्रकाशन

11.8 रूस के प्रमुख भूगोलवेत्ता तथा उनके योगदान

- 11.8.1. लिमोनोसिव
- 11.8.2. वोइकोव
- 11.8.3. क्रोपोटकिन
- 11.8.4. डोकुचायेव
- 11.8.5. जेरासिमोव
- 11.8.6.बारान्स्की

11.9 रूसी भौगोलिक चिंतन की दिशा

- 11.9.1. समग्र विज्ञान के रूप में भूगोल

11.9.2. मार्क्सवादी भूगोल

11.9.3. भौतिक भूगोल

11.9.4. आर्थिक भूगोल

11.9.5. पारिस्थितिकीयभूगोल

11.9.6. प्रादेशिक भूगोल

11.9.7. व्यवहारिक भूगोल

11.10 सारांश

11.11 स्व मूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

11.12 संदर्भ– ग्रंथ –सूची

11.13 अभ्यास प्रश्न(सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

11.1 प्रस्तावना

ग्रेट ब्रिटेन में आधुनिक भूगोल का प्रारम्भ वस्तुतःबीसवीं शताब्दी में ही हुआ। 1884 ई० तक भूगोल का अध्यापन विद्यालयों तक ही सीमित – रॉयल ज्योग्राफिकल सोसाइटी ने 1884 ई० में अपने सचिव जॉन स्कॉट केल्टी को ग्रेट ब्रिटेन में, यूरोप के अन्य देशों की तुलना में, भूगोल की स्थिति पर एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निर्देश दिया। फेल्टी की आख्या के अनुसार, यूरोप एवं अमेरिका की तुलना में भूगोल की स्थिति बहुत दयनीय थी क्योंकि ग्रेट ब्रिटेन में भूगोल के प्रोफेसर का कोई पद सृजित नहीं था जबकि अन्य देशों में कई प्रोफेसर नियुक्त थे। इसी आख्या के आधार पर रॉयल ज्यॉग्राफिकल सोसाईटी ने ऑक्सफोर्ड तथा केम्ब्रिज विश्वविद्यालयों को आवश्यक कदम उठाने का अनुरोध किया। परिणामस्वरूप, ऑक्सफोर्ड में 1887 ई० में तथा केम्ब्रिज में 1888 ई० में भूगोल वेत्ताओं की नियुक्ति हुई। 1887 ई० में ऑक्सफोर्ड में मैकिंडर की भूगोल में रीडर पद पर नियुक्ति के साथ, ग्रेट ब्रिटेन में विश्व– विद्यालय स्तर पर एक स्वतंत्र विषय के रूप में भूगोल का अध्ययन अध्ययापन प्रारम्भ हुआ। फ्रांस की भांति ब्रिटेन में भी उन्नीसवीं सदी में भूगोल का अध्ययन अध्यापन का स्तर दयनीय अवस्था में था। विद्यालयों में भूगोल का शिक्षण बहुत ही अरुचिकर और उबाऊ था। विद्यार्थियों को असम्बद्ध रूप में एकत्र की गई सूचनाओं को बिना समझे कंठस्थ करना पड़ता था। विश्वविद्यालय स्तर पर भूगोल की शिक्षा भौतिक विज्ञान संकाय में भूगर्भशास्त्रियों द्वारा तथा सामाजिक विज्ञान संकाय में इतिहासकों द्वारा दी जाती थी।

अतः भूगोल की परिभाषा और उसके विषय क्षेत्र के बारे में अनिश्चय का वातावरण व्याप्त था। इस भ्रान्तिपूर्ण वातावरण में मेरी सामरविले (1780–1872) एक प्रकाशमान् सितारे की तरह उदित हुईं और उनके प्रयास से भौगोलिक चिंतन और उसके शिक्षण को नई दिशा मिली। धीरे–धीरे भूगोल एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित होने लगा। भौतिक भूगोल (फिजिकल जिओग्राफी) शीर्षक से 1848 में प्रकाशित उनकी पुस्तक ने भूगोल के वैज्ञानिक अध्ययन को बहुत बढ़ावा दिया। अगले तीस वर्षों में इसके सात संस्करण प्रकाशित हुए और यह पुस्तक दीर्घकाल तक एक महत्वपूर्ण सन्दर्भ ग्रंथ के रूप में स्थापित रही।

प्रारम्भ में पृथ्वी की सतह के भौतिक स्वरूप का वर्णन था। इसके अंतर्गत महाद्वीपों, महासागरों, वायुमण्डल, वनस्पति और प्राणि जीवन आदि का विवरण प्रस्तुत था। लेखिका ने मनुष्य को भौतिक भूदृश्य में परिलक्षित होने वाली परिवर्तनशीलता के एक कारक के रूप में प्रस्तुत किया। रूसी साम्राज्य का विशाल भौगोलिक आकार उस देश में भौगोलिक ज्ञान के सर्वांगीण विकास का एक मुख्य कारण था। 1682 से 1725 तक रूस के सम्राट रहे पीटर महान ने महसूस किया कि साम्राज्य के पूर्व दिशा में विस्तार करने के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि इस क्षेत्र के बारे में सविस्तार भौगोलिक ज्ञान का विकास किया जाए। अतः केन्द्रीय शासन ने इन क्षेत्रों के सर्वेक्षण के लिए अन्वेषणात्मक अभियानों का प्रबन्ध किया। अनेक खोजी दल उत्तरी और पूर्वी क्षेत्रों के लिए भेजे गए और उनके द्वारा एकत्र की गई सूचनाओं के मानचित्रीकरण के लिए समुचित राष्ट्रीय कोष की

व्यवस्था की गई।

11.2 उद्देश्य

ब्रिटिश स्कूल ऑफ भूगोल पर भौगोलिक जानकारी भूगोल की ब्रिटिश स्कूल पर भौगोलिक जानकारी भूगोल, मानव जिज्ञासा के सबसे पुराने क्षेत्रों में से एक, 19 वीं शताब्दी के मध्य तक ब्रिटेन में बहुत कम ध्यान आकर्षित किया। नई भूमि की खोज, यात्रा और यात्राओं का वर्णन, नई खोजी गई भूमि का वर्णन और उनके लोगों को भौगोलिक अध्ययन के क्षेत्र माना गया। भूगोल को बहुत देर के चरण में शैक्षिक संस्थानों में पेश किया गया था स्कूलों और कॉलेजों में, तथ्यों की याद, स्थानों के नाम, पहाड़ और नदियाँ इतिहासकारों और भूवैज्ञानिकों द्वारा सिखाए जाते थे। इस समय तक, अंग्रेजों के लिए भूगोल कुछ नहीं था, बल्कि जानकारी का एक विश्वकोश था। 19 वीं शताब्दी के मध्य में, शिक्षाविद थे। दुनिया के नए खोजे गए स्थानों के बारे में तथ्यों और जानकारी को संचित करने में व्यस्त। 1859 में, डार्विन ने अपनी उत्पत्ति की प्रजाति प्रकाशित की जिसमें जीवविज्ञानी, भूवैज्ञानिकों और समाजशास्त्रियों का ध्यान आकर्षित किया गया।

गतिशील व्यक्तित्व के विद्वान और एक व्यक्ति जो जटिल विचारों को सरल अभिव्यक्ति दे सकता है, उसे मैकिण्डर , ब्रिटिश स्कूल ऑफ भूगोल के संस्थापक के रूप में जाना जाता है। वह माउंट पर चढ़ने वाला पहला रिकॉर्डेड व्यक्ति था। केन्या। भूराजनीति पर उनके लेखन के लिए जाने जाने से पहले, मैकिण्डर अपने भूगोल के दृष्टिकोण पर देश भर के दर्शकों को व्याख्यान देने में सक्रिय थे। अपने विचारों के बल पर उन्हें ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में एक पद पर नियुक्त किया गया, जो अकादमिक भूगोलवेत्ताओं की नई पीढ़ी के पहले और भौगोलिक शिक्षा के मुखर समर्थक थे। जानकारी के एक मात्र शरीर के बजाय एक अनुशासन बनने के लिए, विषय को प्राकृतिक विज्ञान और मानविकी को पाटना और इसके मूल रूप में लेना चाहिए 'समाज में मनुष्य की बातचीत और पर्यावरण का इतना स्थानीय रूप से भिन्न होता है। शिक्षकों, वैज्ञानिकों, राजनेताओं और व्यापारियों के लिए समान रूप से विषय की उपयोगिता पर बल देते हुए, भौगोलिक प्रयोग के मैकिन्दर के संस्करण ने विकासवादी परिप्रेक्ष्य में भौतिक और मानव भूगोल को एक साथ रखा।

मैकिण्डर पहला भूगोलवेत्ता है जिसने व्यवस्थित ढंग से भूमण्डल में रणनीतिक महत्व के क्षेत्र की पहचान अपनी भौगोलिक धुरी (1904), हृदयस्थल (1919) तथा मिडलैण्ड बेसिन (1943) अवधारणाओं में की। यद्यपि स्टैम्प का उद्देश्य भूगोल के प्रादेशिक चिन्तनफलक के अन्तर्गत भूगोल में मुख्य योगदान करते रहे लेकिन उन्होंने अपने समय में भूगोल की प्रासंगिकता तथा अनुप्रयोग के दृष्टिकोण का नया विकास किया। सोवियत संघ में सदैव भूगोल का आधार एवं स्वरूप इसके व्यावहारिक उपयोग पर आश्रित रहा है। भूगोल का अध्ययन राष्ट्र के संसाधनों के समुचित उपयोग के उद्देश्य से हुआ है।

11.3 ग्रेट ब्रिटेन में भूगोल

ब्रिटेन में 19वीं शताब्दी के आरम्भ तक केवल समुद्री और थलीय यात्राओं के द्वारा नये देशों की खोजों , तथा अन्वेषणों से भौगोलिक ज्ञान की प्राप्ति होती रही थी। उस समय तक ब्रिटेन में कहीं भी कॉलिज या विश्वविद्यालय स्तर पर भूगोल का अध्ययन–अध्यापन नहीं होता था। केवल स्कूलों में इतिहास और भूगोल दोनों एक विषय के अन्तर्गत पढ़ाये जाते थे। जर्मनी और फ्रांस की तुलना में ग्रेट ब्रिटेन में भूगोल का विकास काफी देर से हुआ। ग्रेट ब्रिटेन में उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक भूगोल में किसी संकल्पनात्मक क्रांति का उदय नहीं हो पाया था। उन्नीसवीं सदी में ब्रिटेन में भूगोल के अध्ययन–अध्यापन का स्तर अत्यंत निम्न एवं पिछड़ा हुआ था और विद्यालयों में भूगोल की शिक्षण पद्धति तथ्यों को रटा कर कण्ठस्थ कराने वाली तथा अरुचिकर थी। विद्यार्थियों को असम्बद्ध रूप से एकत्रित की गयी सूचनाओं को ठीक प्रकार से समझे बिना ही कण्ठस्थ करना पड़ता था।

अभी तक ब्रिटिश विश्वविद्यालयों में भूगोल के पृथक् विभाग नहीं होते थे। भूगोल विषय की शिक्षा भौतिक विज्ञान संकाय में भूवैज्ञानिकों द्वारा और समाज विज्ञान एवं कला संकाय में इतिहासवेत्ताओं द्वारा दी जाती थी। इस कारण से भूगोल की परिभाषा और विषय क्षेत्र का सही निर्धारण तक नहीं हो पाया था। इस अनिश्चयपूर्ण स्थिति में उन्नीसवीं सदी के मध्य में एक दीप्यमान सितारे के रूप में मेरी सामरविले (1780–1872) का उदय हुआ जिन्होंने 'भौतिक भूगोल'नामक पाठ्य पुस्तक लिखी जो प्रथम बार 1848 में प्रकाशित हुई। यह पुस्तक अगले 30–40 वर्षों तक भूगोल के महत्वपूर्ण संदर्भ ग्रंथ तथा पाठ्यपुस्तक के रूप में प्रतिष्ठित रही। लेखिका ने इस पुस्तक में महाद्वीपों, महासागरों, वायुमंडल, प्राकृतिक वनस्पति और प्राणि जगत् का विवरण प्रस्तुत किया था। ज्ञान के क्रमिक

विकास के साथ–साथ लेखिका ने पुस्तक में कई बार परिमार्जन तथा संबर्द्धन भी किया था। मेरी सामरविले की भौगोलिक संकल्पना पार्थिव एकता के सिद्धान्त पर आधारित थी और यह भूगोल की एक समग्र संकल्पना थी। सामरविले की पुस्तक की लेखन शैली वर्णनात्मक तथा रोचक थी किन्तु भौगोलिक चिन्तन के क्षेत्र में इसके द्वारा किसी प्रकार की वैचारिक क्रांति का सूत्रपात नहीं हो पाया था।

11.4 ग्रेट ब्रिटेन में भूगोल के विकास

ब्रिटेन में भूगोल के विकास में 'रॉयल ज्योग्राफिकल सोसाइटी' का महत्वपूर्ण योगदान है। इस सोसाइटी की स्थापना 1830 में हुई थी। इसका उद्देश्य भूगोल को ज्ञान की सर्वाधिक महत्वपूर्ण और मनोरंजक शाखा के रूप में विकसित करना था। इसके लिए उपयोगी तथा रुचिकर भौगोलिक तथ्यों तथा खोजों के वर्णनों को सस्ते मूल्य पर प्रकाशित करने, उत्तम पुस्तकों से ब्रिटेन में भूगोल का विकास 19वीं शताब्दी में, 'रॉयल ज्योग्राफिकल सोसायटी' (1830) की स्थापना से प्रारम्भ हुआ था। इस सोसायटी का उद्देश्य – (1) रुचिकर और उपयोगी तथ्यों तथा खोजोंको एकत्रित करके उसके वर्णनों को सस्ते मूल्य पर छापना, (2) भूगोल की सर्वोत्तम पुस्तकों को इकट्ठा करके पुस्तकालय स्थापित करना, (3) मानचित्रों और चार्टी का आरम्भिक काल से उस समय तक का पूर्ण संग्रह करना, (4) भौगोलिक यात्रा की आवश्यकताओं के अनुसार सर्वोत्तम यन्त्रों को प्राप्त करना, (5) भौगोलिक यात्राओं पर जाने वाले व्यक्तियों के लिए संक्षिप्त अनुदेश तैयार करके यात्रा और अन्वेषणों की विधियाँ बतलाना, और (6) विदेशी भूगोलवेत्ताओं से सम्पर्क स्थापित करना था। इस रॉयल ज्योग्राफिकल सोसायटी के संस्थापकों ने भूगोल को ज्ञान की सबसे अधिक महत्वपूर्ण और मनोरंजक शाखा बतलाया था।) रॉयल ज्योग्राफिकल सोसायटी के सम्मानीय विदेशी सदस्यों में जर्मन भूगोलवेत्ता हम्बोल्ट तथा रिटरके नाम थे। सोसायटी की सभाओं में भौगोलिक विषयों पर पत्र पढ़े जाते थे, जिनके माध्यम से भौगोलिक ज्ञान का प्रसार होता था। इस सोसायटी से बहुत से विद्वानों को अफ्रीका के अज्ञात प्रदेशों में जाकर वहाँ का भौगोलिक अध्ययन करने का प्रोत्साहन मिला था। अन्टार्कटिक महाद्वीप की खोज के लिए भी इस सोसायटी ने कुछ यात्रियों को पदक तथा सहायता प्रदान की थी।

इस सोसायटी से को अफ्रीका के अज्ञात प्रदेशों में जाकर वहाँ का भौगोलिक अध्ययन करने का प्रोत्साहन मिला। अन्टार्कटिक महाद्वीप की खोज के लिए भी इस सोसायटी ने कुछ यात्रियों को पदक तथा सहायता प्रदान की। मैकिण्डर रॉयल ज्योग्राफिकल सोसाइटी के सचिव जान स्काट कैल्टी ने 1884 में प्रस्तुत अपने एक प्रतिवेदन में बताया कि ब्रिटेन में भौगोलिक शिक्षण का स्तर जर्मनी, फ्रांस और संयुक्त राज्य अमेरिका की तुलना में बहुत दयनीय और चिन्ताजनक है। केल्टी की संस्तुति पर रॉयल ज्योग्राफिकल सोसाइटी ने भौगोलिक शिक्षा के उत्थान के लिए विशेष अनुदान की व्यवस्था किया और 1887 में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में भूगोल के नये विभाग की स्थापना किया तथा हाफोर्ड मैकिण्डर को उसका रीडर एवं संस्थापक अध्यक्ष नियुक्त किया। अगले वर्ष (1888) कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में भी भूगोल का नया विभाग स्थागित किया गया जिसके अध्यक्ष फ्रांसिस हेनरी हिल गुइलार्ड (1852–1953) थे। उल्लेखनीय है कि जर्मनी और फ्रांस की भाँति ब्रिटेन में भी तत्कालीन ब्रिटिश सरकार के साम्राज्य विस्तार के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु रॉयल ज्याग्राफिकल सोसाइटी ने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये। सोसाइटी ने देश के साम्राज्यवादी हितों की सुरक्षा के लिए अनेक आवश्यक उपाय बताये और निर्देश भी दिये। रॉयल ज्योग्राफिकल सोसाइटी के प्रयास से बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक से लगभग सभी विश्वविद्यालयों में भूगोल के स्वतंत्र विभाग स्थापित हो गये थे।

11.4.1 ब्रिटिश का भौगोलिक चिंतन में योगदान–

प्रथम विश्वयुद्ध के पूर्व तक ब्रिटेन में भूगोल के ऊपर मानव–प्रकृति सम्बन्धों पर विशेष ध्यान दिया गया। इसी के साथ विश्व के प्राकृतिक प्रदेशों का सीमांकन किया गया। फ्रेंच भूगोलविदों द्वारा किये गये वर्गीकरण को इन लोगों ने अस्वीकार करते हुए आलोचना किया कि वह ग्राह्य नहीं है। इसके परिणामस्वरूप भौतिक भूगोल पर अधिक ध्यान दिया गया। इसी समय फोर्ड (1935ई0) ने हैबिटाट इकॉनॉमि एंड सोसाइटी' नामक पुस्तक लिखा जिसमें आदिम में समाज के लोगों की जीवन पद्धति और जीविका पर पर्यावरण का स्पष्ट प्रभाव की तुलना संस्कृति तथा।ांस्कृतिक प्रभाव की अधिक चर्चा किया है। इन अध्ययनों में चयन तथा व्याख्या के प्रमुख प्रकरणों में पर्यावरण नियतिवाद के सिद्धान्त को स्पष्ट रूप में अस्वीकार कर दिया गया। प्रथम महायुद्ध के बाद ब्रिटेन में ऐतिहासिक भूगोल के अध्ययन का भी विशेष महत्व था।

भूगोल की इस शाखा की नींव मैकिण्डर द्वारा रखी गयी थी। उसने बलपूर्वक कहा था कि भूगोलविदों को भूतकालीन भूगोल का पुनर्निर्माण करना चाहिए और दिखाना चाहिए कि किस प्रकार परिवर्तन प्रक्रिया के अनुक्रम

में वर्तमान भूदृश्यों का निर्माण होता है अन्यथा भूगोल मात्र सम–सामयिक दृश्यों का वर्णन मात्र रह जायेगा। इस प्रकार कहा गया कि ऐतिहासिक भूगोल समय के संदर्भ में मानव–प्रकृति के बीच गत्यात्मक अन्तर्सम्बन्धों का मूल्यांकन करता है। इस काल में महत्वपूर्ण भूगोलविदों में एम० आई० न्यूविगिन, ई०जी०आर० टेलर, ई0डब्ल्यू० गिलबर्ट और एच०सी०डार्बी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

बीसवीं सदी के प्रारम्भ में प्रथम विश्व महायुद्ध के बाद जर्जर अर्थतन्त्र को सुधारने के लिए भूगोल के क्षेत्र में कृषि भूगोल पर भूगोलविदों का ध्यान केन्द्रित हुआ जिसके कारण कृषि भूगोल में भौगोलिक अनुसंधान एक महत्वपूर्ण क्षेत्र हो गया। इसी दृदृष्टिकोण से भूमि उपयोग का अध्ययन प्रारम्भ हुआ। 1920 ई० में डडले स्टाम्प ने ब्रिटेन का भू–उपयोग मानचित्र तैयार कराया जिनका उपयोग विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए किया गया। युद्धकाल में आपतिक फसल विस्तार नियोजन में इन चित्रों का उपयोग किया गया जो भूमि उपयोग के क्षेत्र में ग्रेट ब्रिटेन का पुनर्निर्माण का आधार बना। सन् 1965 ई0 में इस योगदान के लिए स्टाम्प को सर की उपाधि प्रदान की गई जिसके उपरान्त वे सर डडले स्टाम्प कहलाने लगे। अन्तर्युद्ध काल में ग्रामीण भूगोल के क्षेत्र में विशेष प्रगति हुई। इसकी तुलना में नगरीय भूगोल पीछे रहा। फ्ल्यूरे ने समय तथा स्थान के संदर्भ में मानवीय क्रियाकलापों के तीन लक्ष्य निर्धारित किये जिनमें पोषण, पुनर्उत्पादन एवं कल्याण अभिवृद्धि थे। इस आधार पर उसने विश्व को सात प्रदेशोंकृमें विभक्त किया। क्षेत्रीय विभाजन में जे0 एफ0 अनस्टेड ने भी प्रयास किया जिसने क्षेत्र विभाजन में इकाई क्षेत्रों में प्राकृतिक तथा मानवीय पर्यावरण की 'सकल सहायता पर बल दिया। वास्तव में प्रदेशों का तथ्यात्मक बोध 1960ई0 के दशक से विशिष्ट रूप में पहचान में आया। रोजर मिंसुल ने प्रादेशिक भूगोल पर और भूगोल की परिवर्तनशील प्रकृति पर कई पुस्तकों की रचना किया।

ग्रेट ब्रिटेन में पिछले चार दशकों में भूगोल के अध्ययन क्षेत्र में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ है। यह परिवर्तन मुख्यतःमात्रात्मक क्रांति के रूप में आया। रिचर्ड शोर्ले तथा पीटर हैगेट जैसे विद्वानों ने परिष्कृत सांख्यिकीय तकनीकों का प्रयोग करते हुए मानव एवं सामाजिक भूगोल के क्षेत्र में माडलों तथा सिद्धान्तों का प्रचलन किया। युद्धोत्तर काल में ब्रिटेन में भूगोल को एक स्थानिक विज्ञान के रूप में मान्यता प्राप्त हुई जिसे अब भूतल के परिवर्तनशील स्वरूप का यथातथ्य, व्यवस्थित तथा बुद्धिसंगत वर्णन उपलब्ध कराने से सम्बन्धित विषय माना जाता है। मात्रात्मक क्रान्ति का श्रीगणेश संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ जिसका शीघ्रता से प्रचार– प्रसार ब्रिटेन में हुआ। इसी के परिणामस्वरूप ब्रिटिश भूगोलविदों ने अपनी व्याख्या एवं विश्लेषण में प्रमापीकरण , बहुचरी विश्लेषण, प्रतिरूपों का सांख्यिकीय विवेचन तथा परिकल्पनाओं के सूक्ष्म परीक्षण पर ध्यान दिया। इस सम्बन्ध में हैगेट एवं शोर्ले ने कई पुस्तकों की रचना किया जिनमें माडलों की सहायता से स्थान सम्बन्ध और अवस्थितिक विश्लेषण की व्याख्या की गई है। उनकी कुछ पुस्तकों में प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य विषयों पर भी ब्रिटिश भूगोलविदों ने ध्यान दिया। इन विषयों में अन्तरप्रादेशिकऔर अन्तरप्रादेशिक असमानतायें, पर्यावरण अध्ययन, पारिस्थितिकी ह्रास और पर्यावरण प्रबन्धन हैं। इसके अतिरिक्त लोककल्याण, सामाजिक सुविधायें, चिकित्सा भूगोल और भूदृश्य पारिस्थितिकी से सम्बन्धित विषय भी हैं जिन पर ब्रिटेन में कार्य किया जा रहा है। इसी के साथ भौतिक, प्रादेशिक, ऐतिहासिक, आर्थिक, यातायात, कृषि तथा राजनैतिक भूगोल की संकल्पनाओं के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान किया गया है। कुछ अभिनव अवधारणाओं पर भी कार्य हो रहा है जिनमें प्रत्यक्षवाद, अस्तित्ववाद, उद्देश्यवाद, आदर्शवाद, यथार्थवाद आदि प्रमुख हैं।

11.4.2 ब्रिटिश भूगोलवेत्ता–

ब्रिटेन में भूगोल का शिक्षण कार्य सर्वप्रथम 1833 में लन्दन के यूनिवर्सिटी कालेज में आरंभ हुआ जहाँ कैप्टन मैकोनोची को भूगोल का प्राध्यापक नियुक्त किया गया था। ब्रिटेन में भौगोलिक चिन्तन का वास्तविक आरंभ हाफोर्ड मैकिण्डर ने 1887 में किया। रॉयल ज्योग्राफिकल सोसाइटी ने आंशिक अनुदान देकर 1887 में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में भूगोल विभाग की स्थापना की और मैकिण्डर को सर्वप्रथम रीडर नियुक्त कराया। 1893 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में ओल्दम को भूगोल में रीडर नियुक्त किया गया। 1899 में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में 'स्कूल आफ ज्याग्राफी' की स्थापना हुई और मैकिण्डर को भूगोल का प्रोफेसर और संस्थापक अध्यक्ष के पद पर नियुक्त किया गया। हरबर्टसन जो मैकिण्डर के सहयोगी थे 1910 में भूगोल के प्रोफेसर नियुक्त हुए जहाँ वे 5 वर्षों तक कार्यरत रहे। मैकिण्डर और हरबर्टसन ब्रिटेन के अग्रणीय भूगोलवेत्ता थे। इनके अतिरिक्त बीसवीं शताब्दी के ब्रिटिश भूगोलवेत्ताओं में पैट्रिक गेडिस , जोन्स , फासेट, चिशोल्म , राक्सबी , वूलरिज , फ्ल्यूर, डडले स्टाम्प , चोर्ले , पीटर हैगेट आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

11.5 हल्फोर्ड जे. मैकिण्डर (1861–1947)

मैकिण्डर (1861–1947) का जन्म लंकाशायर (इंग्लैण्ड) में हुआ था। उन्होंने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से 1883 में प्राकृतिक विज्ञान में आनर्स और 1884 में इतिहास में स्नातक उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् कानून की शिक्षा ग्रहण की और 1886 से वकालत करने लगे। भूगोल में उनकी विशेष रुचि थी। मैकिण्डर ने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से 1883 में प्राकृतिक विज्ञान में आनर्स उपाधि प्राप्त कर दूसरे ही वर्ष इतिहास में स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की थी। तत्पश्चात उन्होंने कानून की पढ़ाई करके 1886 में वकालत प्रारम्भ की। वे आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के ज्ञान–प्रसार आन्दोलन (एक्स्टेंशन मूवमेण्ट) के संस्थापकों में से एक थे। इस आन्दोलन का उद्देश्य विश्वविद्यालय स्तरीय शिक्षण को जनता तक पहुंचाना था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विभिन्न विभागों के अध्यापक अपने–अपने विषय का ज्ञान देश के भिन्न–भिन्न स्थानों पर जाकर अपने लोकप्रिय भाषणों के माध्यम से सामान्य नागरिकों तक पहुंचाने का प्रयास कर रहे थे। इसी क्रम में मैकिंडर ने स्वयं कुछ ही वर्षों के दौरान अनेक नगरों में 'नया भूगोल' विषय पर कुल 600 भाषण दिए। उनके इन भाषणों से प्रभावित होकर रॉयल जिओग्राफिकल सोसायटी ने 1887 में उन्हें "भूगोल की अध्ययन पद्धति और उसका विषय क्षेत्र" पर एक भाषण देने के लिए आमंत्रित किया। उनकी वक्तत्व प्रवणता और विद्वत्ता से प्रभावित होकर संस्था ने उन्हें आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में रीडर के पद पर नियुक्त कर उन्हें वहां भूगोल का एक स्वतंत्र विभाग स्थापित करने का उत्तरदायित्व सौंपा। यह देश में विश्वविद्यालय स्तर पर भूगोल का पहला स्वायत्त शिक्षण विभाग था। मैकिंडर इस पद पर 1905 तक बने रहे थे। आक्सफोर्ड में रहते हुए वे लंदन स्कूल ऑफ इकनामिक्स में भी अल्पकालिक शिक्षण करते रहे और 1903 में उस संस्था के निदेशक पद पर नियुक्त हुए और इस पद पर वे 1908 तक सुशोभित रहे।

इतिहास के उच्च ज्ञाता के रूप में मैकिंडर यह बात भली–भांति समझते थे कि पृथ्वी पर सब कुछ अनिवार्यतः एक निश्चित समय और एक निश्चित स्थान पर घटित होता है अतः इतिहास (समय केन्द्रित परिदृष्टि) और भूगोल (स्थान केन्द्रित परिदृष्टि) परस्पर परिपूरक अन्तर्दृष्टियां हैं और उनके बीच किसी प्रकार की वैचारिक दीवार के होने का प्रश्न नहीं उठना चाहिए। 1887 में रॉयल जिओग्राफिकल सोसायटी के सम्मुख प्रस्तुत अपने भाषण में मैकिंडर ने स्पष्ट किया था कि भूगोल अध्ययन की वह शाखा है जो मानव और प्राकृतिक परिवेश की पारस्परिकता के उद्घाटन पर केन्द्रित है। उनके विचार में भूगोल के अध्ययन में मानव और प्रकृति के अन्तरसम्बन्धों के रहस्योद्घाटन हेतु भिन्न–भिन्न स्थानों का गहन प्रादेशिक अध्ययन करने की अपेक्षाकृत विश्व स्तर पर इन दोनों के अन्तरसम्बन्धों के कार्य–कारण स्वरूप का वैज्ञानिक अनुशीलन करना अधिक महत्वपूर्ण है।

11.5.1 रचनायें–मैकिण्डर भूगोल के जाने–माने विद्वान माने जाते हैं। इन्होंने कई सिद्धान्त प्रस्तुत किया और शोध पत्रों को प्रकाशित कराया। मैकिण्डर की रचनाएं–

1. ब्रिटेन और ब्रिटिश सागर, 1902
2. इतिहास की भौगोलिक धुरी, 1904
3. लोकतांत्रिक आदर्श एवं यथार्थ, 1919
4. राष्ट्र और आधुनिक विश्व, 1924
5. गोल विश्व एवं शांति की विजय, 1943

11.5.2 मैकिण्डर के भौगोलिक विचार–मैकिण्डर ने भूगोल को ऐसा विषय बताया था जो 'मनुष्य तथा उसके प्राकृतिक वातावरण में अर्न्तप्रक्रिया का अनुशीलन करता है। इन्होंने यह विचार प्रकट किया था कि बिना भूगोल के इतिहास मात्र विवरण बन कर रह जाता है। प्रत्येक घटना किसी स्थान तथा किसी समय पर घटित होती है। अतएव इतिहास एवं भूगोल, जो क्रमशः काल तथा स्थान का विवेचन करते हैं, एक दूसरे से अलग नहीं हो सकते। इसी प्रकार, कोई तर्कसंगत राजनीतिक भूगोल, प्राकृतिक भूगोल के सन्दर्भ में ही सार्थक हो सकता है। इसीलिये, मैकिण्डर भूगोल को सामाजिक विज्ञान तथा प्राकृतिक विज्ञान, जैसे इतिहास तथा भौमिकी, के मध्य की खाई को पाटने वाला सेतु मानते थे। अपनी इन संकल्पनाओं के आधार पर मैकिण्डर ने विश्व की राजनीतिक घटनाओं की व्याख्या प्रस्तुत की। वे एक विद्वान के साथ साथ व्यावहारिक व्यक्ति भी थे। 1910 से 1920 के बीच संसद सदस्य होने के नाते उन्होंने कई संसदीय समितियों की अध्यक्षता भी की थी। अतएव, मानव–प्राकृतिक

वातावरण के विशद विवेचन की अपेक्षा, उनकी रूचि विश्व व्यापी घटनाओं की भौगोलिक व्याख्या में अधिक श्री। प्रारम्भ में इतिहास का विद्यार्थी होने के नाते भी उनकी सहज अभिरूचि विश्व की राजनैतिक–ऐतिहासिक घटनाओं की व्याख्या प्राकृतिक वातावरण के सन्दर्भ में करने में थी।

मैकिण्डर जर्मन भूगोलवेत्ता रिचथोफेन और रैटजेल के विचारों से बहुत प्रभावित थे। वे नियतिवाद के समर्थक थे और उन्होंने ब्रिटेन में नियतिवादी विचारधारा का प्रचार किया। उनके विचार से किसी स्थान के पर्यावरण के विषय में बिना समझे वहाँ की ऐतिहासिक घटनाओं का अध्ययन नहीं किया जा सकता। उनके अनुसार किसी स्थान के राजनीतिक भूगोल का निर्माण वहाँ के भौतिक पर्यावरण या भौतिक भूगोल पर आधारित होता है। मैकिण्डर की विशेष रुचि ऐतिहासिक और राजनीतिक भूगोल में थी और इसीलिए उन्होंने इसी क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य किया। वे पक्के देशभक्त थे और ब्रिटेन को विश्व में सर्वोच्च स्थान दिलाना चाहते थे।

11.5.3 मैकिण्डर का भूगोल में योगदान–मैकिण्डर सक्रिय व्यक्तित्व का विद्वान था। यह ऐसा व्यक्ति था जो कठिन एवं विषम विषयों को भी सरल ढंग से प्रस्तुत करने की क्षमता रखता था। इस प्रकार वह एक कल्पनाशील व्यक्ति था जिसने ब्रिटिश भूगोल को एक नई दिशा एवं दृष्टि किया। भौतिक भूगोल तथा मानव भूगोल के सम्बन्ध में उसका विचार था कि दोनों को एक साथ रखा जाना चाहिए। दोनों ही मानचित्र तथा मस्तिष्क के विषय में विभिन्न प्राकृतिक तथा मानवीय तत्वों के प्रादेशिक जटिल समुच्चयों के रूप में मार्गदर्शन करते हुए प्रभावित करते हैं। उसने भूगोल को मानविकी तथा प्राकृतिक विज्ञानों और इतिहास तथा भौमिकी के बीच एक सेतु कहा। उसने कई भूगोल अवधारणाओं को विश्व के राजनैतिक समस्याओं के हल करने हेतु व्याख्या सहित विश्लेषित करने का प्रयास किया। भूगोल में किये गये उसके योगदान निम्न प्रकार हैं–

11.5.3.1.ऐतिहासिक भूगोल–मैकिण्डर की प्रारम्भिक शिक्षा इतिहास के साथ हुई थी क्योंकि उस समय भूगोल को इतिहास की एक शाखा माना जाता था। इसीलिए भूगोल को एक स्वतंत्र विषय के रूप में उभारने के लिए उन्होंने ऐतिहासिक भूगोल का सृजन किया और कहा कि भूगोल के अभाव में इतिहास का ज्ञान अधूरा होता है। इतिहास और भूगोल में क्रमशः समय तथा स्थान का अध्ययन होता है, अतएव स्थानों के स्वरूप एवं पृष्ठभूमि के ज्ञान के अभाव में उन स्थानों की घटनाओं को नहीं समझा जा सकता। इसीलिए ऐतिहासिक घटनायें भूगोल से जुड़ी हुई होती हैं। इन्होंने ऐतिहासिक भूगोल के स्वरूप एवं चिन्तन को भी विश्लेषित करने का प्रयास किया। इस प्रकार वह रिटर तथा ब्लाश के विचारों से प्रभावित रहे।

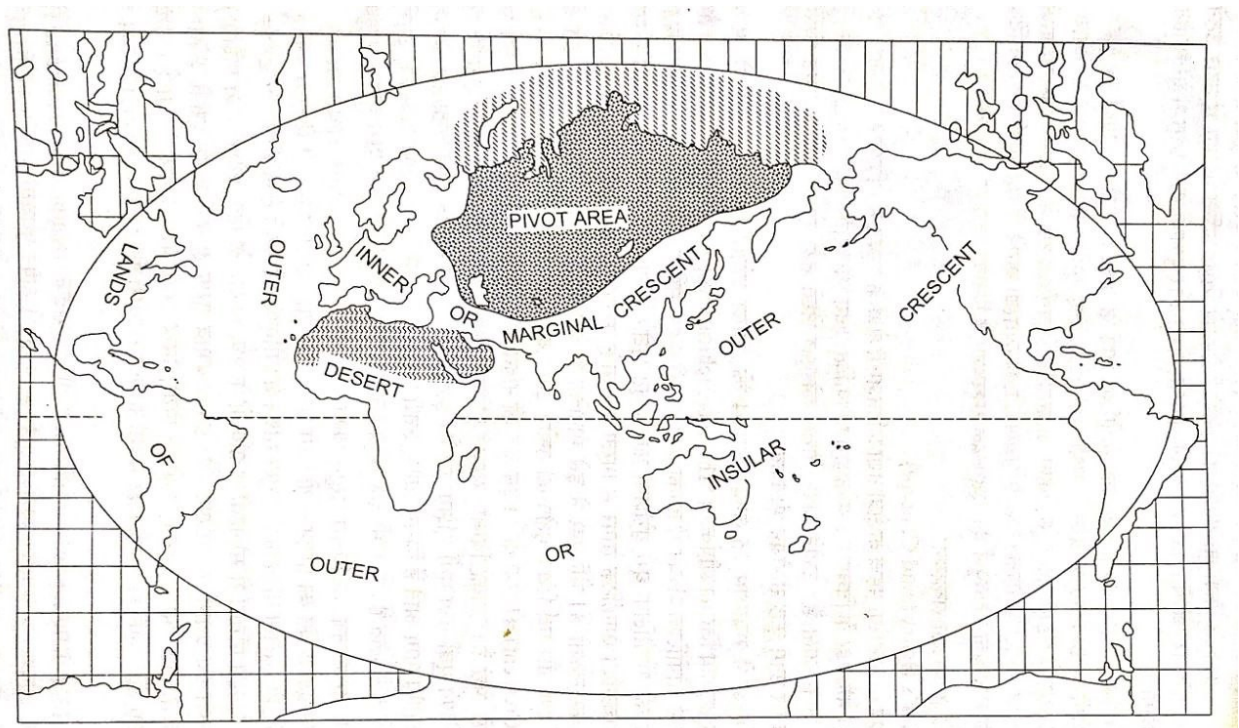
11.5.3.2. राजनैतिक भूगोल–मैकिण्डर की ख्याति राजनीतिक भूगोल के कारण हुई। 1904 ई० में इन्होंने रॉयल ज्योग्राफिकल सोसाइटी के तत्वाधान में एक शोध पत्र पढ़ा जिसका शीर्षक 'जीयोग्राफीकल पीवोट ऑफ हिस्ट्री' था। इस लेख में पहली बार 'धुरी' तथा 'हृदयस्थल' सिद्धान्त की व्याख्या की गई। इस लेख को राजनीतिक भूगोल का संक्षिप्त संस्करण कहा जाता है। इसमें राष्ट्रों के विश्वव्यापी स्वार्थ, पुरानी दुनिया का विशेष स्थान, मानव– प्रसार एवं संवेदन स्थल जैसी मनोवृत्तियों का पुरानी दुनिया पर प्रभाव का विवेचन किया गया है। प्रथम विश्व युद्ध की विभीषिका के बाद उन्होंने अपना दूसरा व्याख्यान 'डेमो क्रैटिक इडअल्स ऐंड रियलिटी' शीर्षक से दिया जिसमें विश्व की बड़ी शक्तियों के बदलते पैंतरे, उनका सामरिक महत्व, आपसी टकराव आदि पर प्रकाश डाला गया था।

11.5.4 मैकिण्डर का हृदयस्थल सिद्धान्त (अन्तरूसथल सिद्धान्त) –राजनीतिक भूगोल में भूमण्डलीय रणनीतिक दृष्टिकोण सबसे पहले 19वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में ए०टी० माहन (1914) द्वारा समुद्री शक्ति के रूप में व्यक्त की गई। लेकिन मैकिण्डर पहला भूगोलवेत्ता है जिसने व्यवस्थित ढंग से भूमण्डल में रणनीतिक महत्व के क्षेत्र की पहचान अपनी भौगोलिक धुरी (1904), हृदयस्थल (1919) तथा मिडलैण्ड बेसिन (1943) अवधारणाओं में की। परिवहन साधनों की बदलती दुनिया में ऐसे तार्किक विचारों का इसके बाद एक क्रम चल पड़ा। मैकिण्डर ने अपनी पुस्तक जियोग्राफिकल पीवोट ऑफ हिस्ट्री, 1904 में यह विचार व्यक्त किया कि परिवहन साधनों के विकास से 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में विश्व को एक इकाई के रूप में देखा जा सकता है तथा विश्व इतिहास को भौगोलिक मैकिण्डर का धुरी–क्षेत्र (1904) तथा प्रसारित हृदय–स्थल (1919)

1. धुरी क्षेत्र हृदय–स्थल, 2. आन्तरिक या सीमान्त क्रीसेण्टकृदृआंशिक स्थलीय–आंशिक महासागरीय, 3. बाह्य या द्वीपीय क्रीसैण्टदृपूर्णतः महासागरीय कारकों के प्रभाव रूप में समझाया जा सकता है। मैकिण्डर ने पृथ्वी की सतह के करीब 1/4 स्थलीय सतह के लगभग 2/3 जिसमें 7/8 जनसंख्या रहती है, 'विश्व द्वीप' एशिया, यूरोप तथा यूरोप से संलग्न सहारा के उत्तर का अफ्रीका) के रूप में तथा शेष 1/3 स्थल को अलग–थलग महाद्वीपों उत्तरी

अमेरिका, आस्ट्रेलिया, ब्रिटेन, जापान के रूप में देखा। इस बाहरी पेटी को उसने 'बाह्य या द्वीपीय भूमि क्रीसैण्ट'बताया। विश्व द्वीप के समुद्री किनारे वाले बाह्य भाग को 'आन्तरिक या सीमान्त क्रीसैण्ट' तथा विश्व द्वीप के अन्तरूसथल को 'धुरी क्षेत्र' नाम दिया। उसकी परिकल्पना थी कि इसी धुरी क्षेत्र के पक्ष में विश्व का शक्ति सन्तुलन रहेगा और इस पर आधिपत्य रखने वाला देश चारों ओर अपना प्रसार करके विश्व–साम्राज्य की स्थापना करेगा। क्योंकि अपने धुरी क्षेत्र सिद्धान्त के विकास के समय धुरी क्षेत्र पर आधिपत्य वाले देश रूस को मैकिण्डर कमजोर मानता था इसलिये विश्व–साम्राज्य बनने की उसने दो दशायें बताई या तो शक्तिशाली जर्मनी रूस के साथ मित्रता करे अथवा जापान की सहायता से चीन रूस को हराकर उस पर अधिकार कर ले।

इस निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले उसने मध्य युग के यूरेशिया के इतिहास को मध्य एशिया (स्टैपी क्षेत्र) से चारों ओर होने वाले आक्रमणों के रूप में समझा, विशेष रूप से यूरोप पर हुये आक्रमणों को। इसके लिये यूरोप तथा धुरी क्षेत्र की भौगोलिक दशाओं पर आधारित तर्कों का निर्माण किया। धुरी क्षेत्र की मानसिक तस्वीर एक प्राकृतिक किले के रूप में की जो आन्तरिक क्रीसैण्ट की ओर ऊँचे पर्वतों से घिरा है तथा उत्तर में हिमाच्छादित समुद्र से। इस प्राकृतिक किले में स्थल परिवहन–घुड़सवारोंऊँटसवारों से प्रवेश नहीं किया जा सकता। लेकिन इस प्राकृतिक किले वाले धुरी क्षेत्र से दक्षिणी यूराल तथा कैस्पियन के मध्य स्टैपी घास के मैदानों से घुड़सवार आक्रमण कर सकते हैं। मैकिण्डर ने यह भी बताया कि ब्रिटेन एवं अन्य तटीय देशों की नौसैन्य शक्ति का उदय लम्बे समय तक जीवित नहीं रहेगा। धुरी क्षेत्रों में रेलवे के विकास, भारी मात्रा में प्राकृतिक संसाधन तथा बड़ी जनसंख्या उसको शक्तिशाली बनायेंगे। ऐसी चुनौती के विरुद्ध, समुद्रपारीय शक्तियों को अपने पुल–पदाधार सैन्य मोरचे फ्रांस, इटली, मिस्र, भारत और कोरिया में बनाये रखने चाहिये, जो धुरीय मित्रों को अपनी स्थलीय शक्तियों का विकास करने पर बाध्य करेंगे और उनको महासागरीय बेड़े रखने पर ध्यान केन्द्रित करने से रोकेंगे। मैकिण्डर के धुरी क्षेत्र की विचारधारा का विकसित रूप अपनी पुस्तक डेमोक्रेटिक आइडियल्स एण्ड रियलिटी में प्रथम महायुद्ध के पश्चात् 1919 में प्रकाशित हुआ और 'धुरी क्षेत्र' के स्थान पर हृदय–स्थल का प्रयोग किया।



चित्र 1मैकिण्डर का हृदयस्थल सिद्धांत

मैकिण्डर ने देखा कि प्रथम महायुद्ध की उत्पत्ति इस कारण से हुई थी, कि जर्मनी ने रूसी हृदय–स्थल को संसार पर प्रभुत्वजमाने के उद्देश्य से, प्रयोग करने का प्रयत्न किया था। क्योंकि जर्मन थल–शक्ति ने दुश्मन मित्र राष्ट्रोंके जहाजी बेड़ों को बाल्टिक सागर तथा काला सागर में आने से रोक दिया था, इसलिये उसे यह विश्वास हुआ कि जल शक्ति, जितना उसने 1904 में सोचा था, उससे कम क्षेत्र पर प्रभुत्व रखने की क्षमता रखती है। इसलिए

मैकिण्डर ने अपने हृदय–स्थल के क्षेत्र को बढ़ाकर उस में पूर्वी यूरोप, तिब्बत तथा मंगोलिया को भी सम्मिलित कर लिया था। यह उसका संसार द्वीप का हृदय–स्थल था। उसने एशिया, यूरोप तथा अफ्रीका के सम्मिलित महाद्वीप यूरेअफ्रेशिया को संसार–द्वीप का नाम दिया था। इस संसार द्वीप के हृदय–स्थल पर पहुँच का एकमात्र प्रवेश द्वार दक्षिण–पश्चिम स्टैपी मैदान थे जिनसे 1917 में जर्मन सेनाओं ने रूस में प्रवेश किया था। मित्र राष्ट्रों को जर्मन प्रसारवादी महत्वाकांक्षा की चेतावनी देने के लिये मैकिण्डर ने अपने सिद्धान्त को संक्षेपतः इन शब्दों में व्यक्त किया–

जो पूर्वी यूरोप पर शासन करता है, वह हृदयस्थल पर प्रभुत्व रखता है,

जो हृदयस्थल पर शासन करता है, वह विश्वद्वीप पर प्रभुत्व रखता है,

जो विश्व द्वीप पर शासन करता है, वह विश्व को नियंत्रित करता है।

मैकिण्डर का विचार था कि पूर्वी यूरोप (जर्मनी और स्लाव क्षेत्र) पहले हृदय स्थल पर, उसके पश्चात् विश्वद्वीप पर और अंततः सम्पूर्ण विश्व पर नियंत्रण स्थापित करेगा। यहाँ उन्होंने विश्वद्वीप का प्रयोग आंतरिक सीमांत अर्द्धचन्द्राकार मेखला के लिए ही किया है। मैकिण्डर ने हृदयस्थल को पूर्णतया अभेद्य या आक्रमणों से पूर्णतया सुरक्षित नहीं माना था। उनके मतानुसार जो भी शक्ति हृदयस्थल पर अधिकार करना चाहेगी वह पश्चिम से ही प्रवेश कर सकती है क्योंकि हृदयस्थल सभी ओर से प्राकृतिक अवरोधों के कारण अजेय दुर्ग की भाँति है। इस क्षेत्र में केवल बाल्टिक सागर और कार्पेथियन पर्वत के मध्य स्थलीय क्षेत्र से होकर ही प्रवेश सम्भव है।

मैकिण्डर के हृदयस्थल सिद्धान्त के प्रकाशन के पश्चात् जर्मनी और रूस के मध्य उभय राज्य के रूप में स्लाविक राज्यों का गठन अधिक शीघ्रता से हुआ। इसके परिणामस्वरूप पोलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया, आस्ट्रिया, रोमानिया और हंगरी राज्यों का गठन हुआ। यह राजनीतिक संगठन मैकिण्डर के विचार के अनुकूल था। मैकिण्डर के मत की पुष्टि का दूसरा तथ्य यह है कि 1917 में जब जर्मन सेना ने रूस पर आक्रमण किया था, वे अधिक अंदर तक प्रवेश नहीं कर पायी थीं। यही परिणाम नैपोलियन के आक्रमण (1911–12) के समय भी हुआ था।

मैकिण्डर ने अपने विचारों में परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल समय–समय पर परिवर्तन भी किया था। उन्होंने 1904 में प्रकाशित अपने विचारों में उल्लेखनीय संशोधन करते हुए 1919 हृदयस्थल सिद्धान्त प्रस्तुत किया और 24 वर्ष पश्चात् द्वितीय विश्वयुद्ध की अवधि (1943) में एक लेख के द्वारा पूर्वोक्त 'हृदयस्थल' की सीमाओं में कुछ परिवर्तन किया। अबकी बार उन्होंने एनेसी नदी के पूर्व में स्थित कोणधारी वन क्षेत्र को हृदयस्थल से अलग कर दिया और उसे लीना भूमिकी संज्ञा दिया। मैकिण्डर ने इस लेख में उत्तरी अटलांटिक, पश्चिमी यूरोप और पूर्वी संयुक्त राज्य के सम्मिलित क्षेत्र के लिए 'मध्य क्षेत्र बेसिन' शब्द का प्रयोग किया। उनके अनुसार हृदयस्थल और मध्य क्षेत्र बेसिन (मिड लैंड बेसिन) के मध्य अनेक मरुस्थल एवं असमान भूभाग स्थित हैं।

11.5.4.1 आलोचनाए–मैकिण्डर की भौगोलिक धुरी और हृदयस्थल की संकल्पना प्रारंभ से ही अत्यधिक विवाद का विषय रही है। तार्किक तथा राजनीतिक आधार पर की गयी इसकी प्रमुख आलोचनाएं निम्नांकित हैं–

1. मैकिण्डर ने हृदयस्थल सिद्धान्त का प्रतिपादन तत्कालीन प्रौद्योगिकी और साधनों के आधार पर प्रस्तुत किया था। वर्तमान समय के वायु परिवहन युग मेंहृदयस्थल सिद्धान्त का महत्व समाप्त हो गया है। वर्तमान समय में हिमाच्छादित आर्कटिक क्षेत्र 'नया हृदयस्थल' बन गया है।
2. स्पाइक मैन ने 'रिमलैण्ड संकल्पना प्रतिपादन करते हुए मैकिण्डर के हृदयस्थल को शक्ति का केन्द्र न मानकर उनके द्वारा व्यक्त आंतरिक अर्द्धचन्द्राकार पेटी को शक्ति का केन्द्र माना जो वास्तविकता के अधिक निकट है क्योंकि इस पेटी में जनसंख्या अधिक है, संसाधनों की प्रचुरता है और सागरीय मार्ग से पहुँच की सुविधा है।
3. मैकिण्डर द्वारा निर्धारित हृदयस्थल का अधिकांश भाग जनसंख्या विहीन या अत्यल्प जनसंख्या घनत्व वाला क्षेत्र है जो विश्व शक्ति के रूप में स्थापित नहीं हो सकता।
4. मैकिण्डर का हृदयस्थल सामुद्रिक आक्रमण से सुरक्षित हो सकता है किन्तु वर्तमान हवाई युग में वह सुरक्षित नहीं हो सकता। अधिक दूर तक मार करने वाले प्रक्षेपास्त्रों के प्रयोग से आंतरिक भाग भी सुरक्षित नहीं रह गये हैं। वायु शक्ति के संदर्भ में मैकिण्डर का हृदयस्थल 'दुर्बल क्षेत्र' बन गया है।
5. मैकिण्डर ने आर्कटिक क्षेत्र को हिमाच्छादित होने के कारण जल परिवहन के लिए अनुपयुक्त बताया किन्तु

वायु परिवहन के विकास से यह क्षेत्र उत्तरी अमेरिका (कनाडा एवं संयुक्त राज्य) के बहुत निकट और सम्मुख (आर्कटिक मार्ग से) आ गया है जो सामरिक दृष्टि से सुरक्षित नहीं हो सकता।

उपर्युक्त आलोचनाओं का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि मैकिण्डर के विचार महत्वहीन हैं बल्कि उनके विचारों का आज भी काफी महत्व है भले ही वे पहले जितना यथार्थ नहीं रह गये हैं। यह परिवर्तनशील परिस्थितियों के कारण है। आज वायु परिवहन के विकास तथा नवीन प्रक्षेपास्त्रों के प्रयोग के युग में भी मैकिण्डर का हृदयस्थल क्षेत्र सामरिक दृष्टिकोण से अन्य भागों से अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित है।

11.6 लारेन्स डडले स्टाम्प

सर डडले स्टाम्प (1898–1967) का जन्म लन्दन में हुआ था। इन्होंने भूगोल और भूगर्भशास्त्र में उच्च शिक्षा प्राप्त किया था। उन्होंने प्रथम और द्वितीय विश्व युद्धों तथा शान्ति काल में भी देश की उत्कृष्ट सेवा की थी जिसके कारण ब्रिटिश सरकार ने उन्हें 'सर' की उपाधि से विभूषित किया था। उन्होंने भारत, श्रीलंका, म्यांमार, दक्षिण–पूर्वी एशिया तथा अफ्रीका आदि अनेक देशों एवं प्रदेशों की शोध यात्राएं किया था। यद्यपि स्टैम्प मुख्यतः भूगोल के प्रादेशिक चिन्तनफलक के अन्तर्गत भूगोल में मुख्य योगदान करते रहे लेकिन उन्होंने अपने समय में भूगोल की प्रासंगिकता तथा अनुप्रयोग के दृष्टिकोण का नया विकास किया। उसकी विशिष्ट पहचान ब्रिटेन के 1930 के दशक के भूमि उपयोग सर्वेक्षण के कारण है जिसके राष्ट्रीय महत्व के कारण उसे 'सर' का प्रतिष्ठित सम्मान मिला। प्रारम्भ में भारतीय भूगोल ब्रिटिश भूगोल से ही विकसित हुआ था। स्टैम्प 1923–1926 तक रंगून (तत्कालीन भारत के अन्तर्गत) विश्वविद्यालय में रहे, इसलिये भारतीय भूगोल पर उसका विशिष्ट प्रभाव रहा।

स्टैम्प की शिक्षा भूविज्ञान और भूगोल दोनों में हुई तथा वह 1926 से 1965 तक लन्दन विश्वविद्यालय में भूगोल के प्रोफेसर सहित विभिन्न पदों पर कार्यरत रहा। क्लार्क, एडिनबरा, स्टाकहोम, बारसा आदि कई विश्वविद्यालयों ने उसे ऑनरेरी डॉक्टरेट की उपाधियों से सम्मानित किया था। स्टैम्प के ग्रन्थ एवं भौगोलिक कार्य– स्टैम्प अत्यन्त प्रतिभावान अध्यवसायी भूगोलवेत्ता थे। उन्होंने भूगोल पर लगभग 50 पुस्तकें लिखीं तथा सम्पादित की थीं। उन्होंने 'प्रादेशिक भूगोल', आर्थिक एवं वाणिज्य भूगोल, व्यावहारिक भूगोल एवं स्वास्थ्य भूगोल पर मुख्य रूप से मौलिक पुस्तकों की रचना की है। वैसे भूगोल के प्रत्येक पक्ष पर उन्होंने कुछ न कुछ कार्य अवश्य किया है। शोध कार्यरत भूगोलवेत्ताओं को अमूल्य परामर्श देते हुए उत्साहित किया तथा स्वयं ही जीवनपर्यन्त भूगोल के विकास एवं शोधकार्य में रत रहे। उनके द्वारा लिखित निम्नांकित महत्वपूर्ण ग्रन्थ भूगोल जगत में अन्यन्त अधिक लोकप्रिय हुए।

11.6.1 कृतियों एवं ग्रन्थ

(1) एशिया– प्रादेशिक एवं आर्थिक भूगोल ,

(2) ब्रिटिश द्वीप समूह भौगोलिक एवं आर्थिक सर्वे ,

(3) अफ्रीका उष्ण कटिबन्धीय विकास का एक अध्ययन,

(4) भौतिक भूगोल एवं भौमिकी ,

(5) वाणिज्य भूगोल ,

(6) भौगोलिक शब्दों की अर्थ सहित सूची,

(7) कल के लिए भूमि–अविकसित विश्व ,

(8) ब्रिटेन की भूमि– उसका सदुपयोग एवं दुरुपयोग,

(9) शुष्क प्रदेशों के भूमि उपयोग का इतिहास,

(10) हमारा विकासशील विश्व (1950),

(11) व्यावहारिक भूगोल,

(12) जीवन एवं मृत्यु का भूगोल ,

(13) स्वास्थ्य भूगोल के कुछ रूप,

(14) भूगोल का शब्दकोष

(15) ब्रिटेन की संरचना एवं भौम्याकार

क्षेत्र में किया गया यह अद्वितीय कार्य उनकी भूगोल की मूल संकल्पनाओं से भौगोलिक संकल्पनायें : सर डडले स्टाम्प का ब्यावहारिक भूगोल के क्षेत्र में किया गया यह अद्वितीय कार्य उनकी भूगोल की मूल संकल्पनाओं से प्रेरित था। उन्होंने अपनी इन संकल्पनाओं को 1960 ई० में प्रकाशित अपनी पुस्तक व्यावहारिक भूगोल में अभिव्यक्त किया है। इनके अनुसार मानव और उसके वातावरण में घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा (भूगोल के अतिरिक्त) कोई दूसरा विषय इन सम्बन्धों की क्षेत्रीय तथा कालिक परिप्रेक्ष्य में समग्र ब्याख्या नहीं करता अर्थात 'भूगोल, मान–वातावरण के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध की क्षेत्र एवं काल के सन्दर्भ में सर्वांगीण व्याख्या करता है इस मानव–वातावरण सम्बन्ध को वे मानव पारिस्थैतिकी कहते हैं तथा इसकी समग्र दृष्टि से अर्थात एक विहंगम दृष्टि से सभी तत्वों की सापेक्षिक स्थिति एवं परस्पर सम्बन्ध पर नजर रखते हुए, ब्याख्या करने पर बल देते हैं। मानव–वातावरण की समग्र विस्तृत ब्याख्या हेतु स्टाम्प, वातावरण के प्रमुख कारकों एवं उनके अन्तर्सम्बन्ध को समझने पर जोर देते हैं।

11.6.2 संकल्पनाएँ–

वे वातावरण के निम्न घटकों को महत्वपूर्ण मानते हैं। 1–अवस्थिति , 2–भूआकृति 3–भौमिकीय संरचना 4–मौसम एवं जलवायु. 5–प्राकृतिक वनस्पति तथा 6– जीव–जन्तुस ये सभी तत्व मानव को प्रभावित करते हैं तथा मानव से प्रभावित होते हैं। सर डडले स्टाम्प वातावरण निश्चयवाद के समर्थक नहीं वरन् मानव एवं वातावरण के परस्पर प्रभाव की बात स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार' कुल मिलाकर, ये सभी (ऊपर बताये गये छः) वातावरण के कारक हैं जो अलग–अलग तथा समवेत, मानव जीवन पर न्यूनाधिक प्रभाव डालते हैं।

भूतकाल में, भौगोलिक नियन्त्रण शब्द का प्रयोग किया गया है तथा कुछ अतिशयतावादी जैसे हंटिग्टन इस बात पर जोर देते हैं कि यह नियन्त्रण इतना सशक्त होता है कि इससे मानव का सम्पूर्ण अस्तित्व प्रतिरूप निर्धारित हुआ है। नियतिवाद, ऐतिहासिक घटनाओं के लिये जिन्होंने प्राय महत्वपूर्ण भूमिका (मानव जीवन में) निभायी है, कोई गुंजायश नहीं छोड़ता। यह शब्द (नियतिवाद) मानव की प्राकृतिक वातावरण से लड़ने तथा उसके द्वारा प्रस्तुत ब्यवधानों को दूर करने की शक्ति को कोई महत्व नहीं देता। (परन्तु) यदि हम वातावरण के कारकों के प्रभाव के साथ, मनुष्य द्वारा इन कारकों की सक्रियता को प्रभावित करने की प्रतिक्रियात्मक प्रभाव की बात करें तो श्रेयस्कर होगा। यह प्रतिक्रियात्मक प्रभाव, कभी–कभी वातावरण के कारकों को नितान्त प्रभाव– हीन भी कर देता है। दूसरी ओर, स्टाम्प इस अवधारणा से सहमत नहीं हैं कि प्राविधिक के विकास ने वातावरण के कारकों का महत्व कम कर दिया है। इनके अनुसार स्थिति इसके विलोम है। जब परिवहन एवं संचार के साधन उपलब्ध नहीं थे, तो प्रत्येक क्षेत्र के निवासियों को अपनी आवश्यकता की वस्तुओं का उत्पादन विपरीत परिस्थितियों में भी करना पड़ता था। अब, यदि कृत्रिम अवरोध जैसे सीमा शुल्क) न उत्पन्न किये जांय तो मानव उपयोग की प्रत्येक वस्तु वहीं उत्पादित की जायेगी जहाँ उसके लिये सर्वोत्तम उपयुक्त परिस्थितियां है। स्टैम्प, मानव–वातावरण सम्बन्ध को गत्यात्मक अर्थात समयानुसार परिवर्तनशील मानते थे। अतएव सिर्फ वर्तमान मानव वातावरण सम्बन्ध को देखकर कोई निष्कर्ष निकालना उचित नहीं है। वर्तमान को क्रम विकास के एक चरण के रूप में देखना चाहिये। इसीलिये ऐतिहासिक भूगोल में, भूतकाल में किसी विशेष अवधि अथवा प्रारम्भ से अब तक के मानव वातावरण सम्बन्ध का अध्ययन करना चाहिये।

व्यावहारिक भूगोल का विषय क्षेत्र निःर्पित करते हुए स्टाम्प बताते हैं कि भूगोल की विश्लेषण पद्धतियाँ जो विगत 50 वर्षों में विकसित की गई हैं का उपयोग करते हुए, आधुनिक विश्व की विशेषताओं का विश्लेषण करना तथा भूमि पर जनसंख्या का बढता दबाव, अविकसित क्षेत्रों का विकास, तथा जीवन की दशाओं में सुधार जैसी समस्याओं का हल ढूंढ़ना व्यावहारिक भूगोल का विषय क्षेत्र है। समग्र विश्लेषण पद्धति भूगोलवेत्ताओं की विशिष्ट पद्धति है। इसके अन्तर्गत क्षेत्र सर्वेक्षण, आंकड़ों का सिलसिलेवार एवं निरपेक्ष भाव से संकलन एवं मानचित्रण तथा दूसरे विशेषज्ञों द्वारा प्राप्त परिणामों का उपयोग सम्मिलित हैं।

11.7 रूस (सोवियत संघ) में भूगोल की प्रगति

सोवियत संघ में भूगोल की प्रगति के विषय में बहुत विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं है। इसका प्रधान कारण

भाषा एवं लिपि की कठिनाई है। पश्चिमी, आंग्ल भाषी भूगोलवेत्ताओं ने इसी कारण सोवियत संघ में भौगोलिक चिन्तन की प्रगति पर कोई प्रकाश नहीं डाला है। प्रमुख सोवियत भूगोलविद लोवरोव के अनुसार दुर्भाग्यवश पश्चिमी जगत अभी तक सोवियत भूगोल–विज्ञान की संकल्पनाओं तथा उपलब्धियों से प्रर्याप्त परिचित नहीं हुआ है। मात्र एक जेम्स की पुस्तक में महान अक्टूबर क्रांति के पश्चात सोवियत संघ में हुई भूगोल की प्रगति पर एक अध्याय लिखा गया है जिसमें हमारे देश में गुणात्मक विकास हेतु सामाजिक परिवर्तनों के महत्व तथा इसके आधार स्वरूप मार्क्सवादी दर्शन का महत्व इंगित किया गया है। दूसरी ओर, सोवियत भूगोलवेत्ताओं द्वारा अंग्रेजी भाषा में लिखे गये निबन्ध, सोवियत संघ में भूगोल की वर्तमान स्थिति तो दर्शाते हैं परन्तु भूगोल के क्रम विकास पर अधिक प्रकाश नहीं डालते।

रूसी भूगोल की प्रकृति तथा दिशा भी देश, काल एवं सामाजिक आवश्यकताओं के संदर्भ में विकसित हुई। अन्य यूरोपीय देशों से भिन्न रूस अति विशाल क्षेत्र का साम्राज्य था। स्वयं इस साम्राज्य की भूमि एवं संसाधनों की खोज ने प्रारम्भ में भौतिक भूगोल के विकास में रुचि उत्पन्न की। रूस के विशाल क्षेत्र के कारण उसकी कोई औपनिवेशिक महत्वाकांक्षा एवं आवश्यकता भी नहीं थी जो कि 17वीं एवं 18वीं शताब्दी के शेष यूरोपीय भूगोल का स्वरूप बनाने का बड़ा कारक था। अक्तूबर 1917 की प्रसिद्ध रूसी क्रान्ति ने रूस के शासन एवं समाज में आमूलचूल परिवर्तन कर दिये। प्राकृतिक संसाधन सम्पन्न रूस में किसान मजदूरों के विशाल जनसमुदाय की भुखमरी, आर्थिक दुर्दशा तथा शासक सम्राट जार की इस समुदाय की उपेक्षा ने जार एवं उसके परिवार के वध को प्रेरित किया। इसने रूसी भूगोलवेत्ताओं में पर्यावरण निश्चयवाद की अवधारणा की अस्वीकृति तथा आर्थिक निश्चयवाद को प्रबल बनाया। रूसी क्रान्ति से पूर्व एवं उसके पश्चात भौगोलिक चिन्तन में भी विशाल अन्तर पाया जाता है।

क्रान्ति के बाद (1917 के बाद) का भूगोल उत्तर–सोवियत (सोवियत 'यूनाइटेड सोवियत सोशलिस्ट रिपब्लिक' यू०एस० एस०आर० के राज्योंको कहते थे) तथा उससे पूर्व का भूगोल पूर्व–सोवियत भूगोल है। क्योंकि उत्तर–सोवियत काल में स्वतन्त्र चिन्तन पर भीषण रोक थी तथा चिन्तन केवल मार्क्स–ऐंजल–लैनिन के विचारों के अनुरूप ही किया जा सकता था, इसलिये 1917 के बाद के सोवियत भूगोल में अवधारणात्मक विकास का अंश बहुत कम पाया जाता है। इस काल का भूगोल सोवियत संघ के निर्माण में मुख्यतः अनुप्रयुक्त भूगोल बन गया। आर्थिक भूगोल तथा उसमें मुख्यतः संसाधन मूल्यांकन, संसाधन उपयोग, क्षेत्रीय उत्पादन संश्लिष्टतथा औद्योगिक संश्लिष्टों की सफल अवस्थिति खोजना प्रमुख विषय बन गये।

1917 के पूर्व सोवियत संघ में भूगोल–

प्रारम्भिक काल – जेरासीमोव के अनुसार सोवियत संघ में भूगोल की अध्ययन परम्परा 50 वर्ष पुरानी है। 1479 ई० में 'चार्टऑफ मुस्कोविटे लैंडस' नामक मानचित्र से इस परम्परा का प्रारम्भ होता है। सर्वप्रथम, रूसी अन्वेषकों ने रूस के अज्ञात क्षेत्रों, विशेषकर साईबेरिया की अन्वेषण यात्रायें कीं। यह कार्य 11 वीं शताब्दी के अन्त अथवा 12 वीं शदी के प्रारम्भ से शुरू हुआ रूस में यह स्वतन्त्र भौगोलिक चिन्तन का काल था तथा यूरोपीय रूस में भूगोल का व्यावसायिक विकास (रशियन एकेडेमी ऑफ साइन्सेज, मोस्को के भूगोल विभाग का अध्यक्ष एम०वी० लिमोनोसोव 1758 में बना जो संसार में प्रथम भूगोल विभाग अध्यक्ष था) जर्मनी से भी 60 वर्ष पहले का है।

इस काल के रूसी भूगोल में प्रारम्भिक कार्य अन्वेषण, सर्वेक्षण एवं मानचित्रण के रहे। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों तक भौगोलिक जानकारी को प्रदेशों में संगठित करने के विचार को स्पष्ट स्वीकृति थी तथा भूगोल प्राकृतिक तथा सामाजिक (मानव सम्बन्धी) तत्वों के समन्वितसत्य के रूप में ही समझा जाता था, विशेषीकृत खण्डों एवं शाखाओं के रूप में नहीं। इस काल के प्रमुख भूगोलवेत्ता सेमेनव, वोइकव, क्रोपोटकिन, डोकुचेव तथा अनुचिन थे। इन्होंने भौतिक भूगोलवेत्ताओं के रूप में अपने–अपने काल में ख्याति प्राप्त की।

11.7.1 रूसी भूगोल के विकास–

रूसी साम्राज्य का विशाल भौगोलिक आकार उस देश में भौगोलिक ज्ञान के सर्वांगीण विकास का एक मुख्य कारण था। 1682 से 1725 तक रूस के सम्राट रहे पीटर महान ने महसूस किया कि साम्राज्य के पूर्व दिशा में विस्तार करने के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि इस क्षेत्र के बारे में सविस्तार भौगोलिक ज्ञान का विकास किया जाए। अतः केन्द्रीय शासन ने इन क्षेत्रों के सर्वेक्षण के लिए अन्वेषणात्मक अभियानों का प्रबन्ध किया। अनेक खोजी दल उत्तरी और पूर्वी क्षेत्रों के लिए भेजे गए और उनके द्वारा एकत्र की गई सूचनाओं के मानचित्रीकरण के लिए समुचित राष्ट्रीय कोष की व्यवस्था की गई।

भौगोलिक यात्राएँ और अन्वेषण रूस में 9वीं शताब्दी तक भौगोलिक ज्ञान के विकास के मुख्य साधन, यात्रा और अन्वेषण थे। 9वीं शताब्दी से 11वीं शताब्दी तक रूस में रहने वाले स्लाव (Slavs) लोगों के व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध पश्चिमी यूरोप तथा एशिया के लोगों के साथ स्थापित हो चुके थे। उनको कालासागर प्रदेश और कास्पियन सागर के तटवर्ती क्षेत्रों का अच्छा ज्ञान था। 12वीं शताब्दी के रूसी इतिहास में इस बात के लेख मौजूद हैं कि उस समय रूस के अन्य देशों को जाने वाले यात्रा–मार्गों में, बहुत प्रयुक्त मार्ग भी थे, विशेषतः बाल्टिक सागर, रोम, उत्तरी अफ्रीका, एशिया माइनर, अरब, फारस और भारत को यात्रा मार्ग प्रयोग में थे। 14वीं और 15वीं शताब्दियों में सोवियत रूस से बहुत से अन्वेषक साइबेरिया के विभिन्न क्षेत्रों में और पश्चिमी यूरोप को गये थे।

11.7.2 भौगोलिक ग्रन्थों तथा मानचित्रावलियों का प्रकाशन–

18वीं शताब्दी में रूसी भूगोलवेत्ताओं ने भौगोलिक वर्णनों के साथ–साथ मानचित्र भी बनाने आरम्भ कर दिये थे। 1701 में रेमजोव ने साइबेरिया की प्रथम रूसी मानचित्रावली तैयार की थी। चिरिकोव ने 1746 में प्रशान्त महासागर में रूसी भौगोलिक खोजों का सामान्य मानचित्र बनाया था। 18वीं शताब्दी में और 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में रूसी अन्वेषकों ने साइबेरिया के उत्तरी–पूर्वी क्षेत्र में महासागरीय तट पर पहुँचने के बाद, आगे बढ़कर बेरिंग जलडमरुमध्य को पार करके, उत्तरी अमेरिका में पहुँचकर एलास्का की खोज की। किरिलोव ने रूस के प्रादेशिक भूगोल की एक पुस्तक लिखी जिसका शीर्षक 'द फ्लरिशिंग स्टेज ऑफ ऑल द एशियन ऐम्पायर' था। 18वीं शताब्दी में रूस में विज्ञान अकादमी की स्थापना हो गई थी। किरिलोव ने 1734 में रूसी साम्राज्य की प्रथम मानचित्रावली तैयार की। उसके बाद 1745 में विज्ञान अकादमी ने भी रूसी साम्राज्य की मानचित्रावली प्रकाशित की। जर्मन भूगोलवेत्ता बुशिंग (सैण्ट पीटरबर्ग में पादरी, 1761–65) की 'न्यू जाग्राफी ' के रूसी विवरण के भाग का रूसी अनुवाद किया

11.8 रूस के प्रमुख भूगोलवेत्ता तथा उनके योगदान

11.8.1. लिमोनोसोव (1711–1765)–प्रथम भूआकृति–वैज्ञानिक तथा रूस की एकेडेमी ऑफ साइन्सेज में भूगोल विभाग का अध्यक्ष था (1758)। विश्व में भूगोल विभाग था। उसको का पहला अध्यक्ष लिमोनोसोव का कार्य महत्वपूर्ण आधुनिक रूसी भूविज्ञान का जन्मदाता कहा जाता है। स्वयं उसकी शिक्षा भूविज्ञानमें हुई थी। उसने भूगर्भ के स्तरों का अध्ययन किया था। भूविज्ञान के इतिहास में उसने प्रथम बार यह विचार दिया था कि स्थल–रूपोंके निर्माण में पृथ्वी की अन्तर्जनिक और बहिर्जनिक दोनों प्रकार की शक्तियों का सम्मिलित योगदान होता है। लिमोनोसोव की भोगोलिक यात्राओं में भी गहरी रुचि थी। उसकी प्रेरणा से एक रूसी खोज–यात्रा दल उसके साथ आर्कटिक महासागर के क्षेत्रों में गया। उसने इस आर्कटिक अन्वेषण का भौगोलिक वर्णन भी लिखा। लिमोनोसोव की विचारधारा प्रसिद्ध जर्मन भूगोलवेत्ता हम्बोल्ट की पूर्ववर्ती थी जिसमें दो संकल्पनाओं की प्रमुखता थी–

(1) वह पृथ्वीतल पर होने वाली विकास की प्रक्रियाओं में सार्वभौमिकता को मानता था।

(2) वह प्राकृतिक घटनाओं में कार्य–कारण सम्बन्धों की विवेचना पर बल देता है। भौगोलिक अध्ययनों में वह तुलनात्मक विधि का प्रयोग करता था। उसने बताया कि पृथ्वी पर दिखाई देने वाली भौतिक वस्तुएँ और समस्त संसार ही, सृष्टि के आरम्भ से लेकर लगातार बदलते रहे हैं। पृथ्वी के अभ्यंतर में होने वाली प्रक्रियाओं के द्वारा निर्माण किये गये उच्चावच रूपों के दीर्घकालीन विकास का वर्णन किया। पर्यावरण में शक्तिशाली लम्बवत् गतियोंकी उपस्थिति का और सागर के द्वारा जलवायु पर सन्तुलनकारी प्रभावों का वर्णन किया। हिम पर्वतों की उत्पत्ति पर विचार व्यक्त करते हुए, प्लावी–हिम की उत्पत्ति थल पर होने का सिद्धान्त सबसे प्रथम बार लिमोनोसोव ने ही प्रतिपादित किया था। उसने ही सर्वप्रथम 'आर्थिक भूगोल' शब्दों का प्रयोग संसार के समक्ष रखा था और सोवियत रूस के आर्थिक भूगोल के विस्तृत अध्ययन को आरम्भ कराया था।

11.8.2. ए० आई० वोईकोव–रूसी क्रांति (1917) से पूर्ववर्ती रूसी भूगोलवेत्ताओं में ए० आई० वोईकोव (1842–1916) का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने प्रारंभिक शिक्षा रूस में और उच्च शिक्षा जर्मनी के गाटिंगन और हाइडेलबर्ग विश्वविद्यालयों से प्राप्त किया था। वे पहले सेंटपीटर्सबर्ग में भूगोल के प्राध्यापक थे जो प्रोन्नत होकर 1887 में प्रोफेसर बन गये थे। वोईकोव एक भौतिक भूगोलवेत्ता थे जो मूलतः जलवायु विज्ञान के विशेषज्ञ थे। उन्होंने पृथ्वी की ऊष्मा संतुलन और जल संतुलन पर महत्वपूर्ण कार्य किया था। उन्होंने विश्व जलवायु पर एक पुस्तक भी लिखा था। हिम विज्ञान में उनका महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है। उन्होंने तुर्किस्तान, यूक्रेन तथा

काला सागर के पूर्ववर्ती भूभाग पर क्रमशः कपास, गेहूँ और चाय की फसलों पर जलवायु के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन किया था। उनके सुझाव पर यूक्रेन में गेहूँ की, जार्जिया में चाय की और तुर्किस्तान में कपास की खेती प्रारंभ की गई थी।

वोईकोव ने बर्फ की गहराई मापने की विधि पर प्रकाश डाला और हिम विज्ञान की आधारशिला रखी थी। उन्होंने अपनी 'रूसी तुर्किस्तान' नामक पुस्तक में पर्यावरण ओर मानवीय क्रिया का विवरण दिया है। उनकी तीसरी महत्वपूर्ण रचना है : 'पृथ्वीपर जनसंख्या का वितरण' जिसमें धरातलीय दशा एवं मानवीय क्रियाओं के मध्य सम्बंधों का विवरण है। ए. आई. वोईकोव वाईकोव ने जोर देकर कहा था कि सिंचन सुविधाओं में वृद्धि करके अर्द्ध शुष्क भूमि की उत्पादकता में सफलतापूर्वक वृद्धि की जा सकती है। इसी प्रकार उन्होंने स्टेपी प्रदेश में अवनलिका अपरदन के लिए अतिचारण को उत्तरदायी बताया था।

11.8.3.क्रोपॉटकिन (1842–1921)–अक्टूबर, 1917 की रूसी क्रान्ति के पूर्व रूस में जन्मे क्रोपॉटकिन के भौगोलिक चिन्तन पर मध्य–1970 के बाद ध्यान दिया गया जब भूगोल में सामाजिक सरोकारों को महत्व दिया जाने लगा। उसका पारस्परिक सहयोग का सिद्धान्त, प्रकृतिका अलग दृष्टिकोण तथा भूगोल को सामाजिक पारिस्थिति की बताना उसके चिन्तन के उल्लेखनीय संघटक हैं। रूसी उच्च कुलीन शासक वर्ग में जन्मे क्रोपॉटकिन को प्रशासकीय सेवा के लिये शिक्षित किया गया। उसने साइबेरिया में यह सेवा की। इसी समय प्रकृति के सम्पर्क ने उसके प्रकृति के बारे में अलग विचार दाले। शीघ्र ही इससे असन्तुष्ट क्रोपॉटकिन ने सैण्ट पीटरसबर्ग में भूगोल का अध्ययन किया, भौतिक भूगोल में ख्याति प्राप्त की तथा रशियन जियोग्राफिकल सोसाइटी के लिये भी कार्य किया। 1860 तथा 1870 के दशकों में रूसी किसानों तथा समाज की दुर्दशा ने उसकी रुचि वैज्ञानिक भौतिक भूगोल से हटाकर सामाजिक समस्याओं की ओर बदली। वह अराजकतावादी (शासन–व्यवस्था में अविश्वास) बना क्योंकि सामाजिक दुर्दशा शासन की समाज के लिये घोर उपेक्षा का परिणाम तथा दिखावा मात्र समझा। फलस्वरूपरूस और बाद में फ्रांस में गिरफ्तार होने तथा 1886 तक सजा भुगतने के बाद उस वर्ष ब्रिटेन चला गया जहाँ उसने रोयल जियोग्राफिकल सोसाइटी, लन्दन में सेवा की। वह रूसी क्रान्ति की सफलता के बाद 1917 में 75 वर्ष की आयु में रूस लौटा। उसके प्रकृति , समाज तथा भूगोल पर विचार उस समय उपेक्षित रहे। ये विचार प्रचलित यूरोपीय औपनिवेशिक विचारधारा से बेमेल थे।

उसके भूगोल को सामाजिक को सामाजिक पारिस्थितिकी (अर्थात् सामाजिक भूगोल) के विचार अराजकतावाद के दर्शन से बने हैं। अराजकतावाद समाज की परस्पर समन्वय की क्षमता से, बिना आधिकारिक व्यवस्था के व्यवस्थित रहने तथा स्वतन्त्र रहने में विश्वास रखता है। स्वतन्त्रता सामाजिक विविधता में एकता, व्यक्तियों की परस्पर अन्तर्निर्भरता, सामूहिक कार्यों को करने तथा विविधता एवं वैचारिक भिन्नता को व्यक्त करने के अवसरों की उपस्थिति है। 1 साइबेरिया में प्रकृति को निकटता से देखने के फलस्वरूप यह विचार बना स क्रोपॉटकिन ने प्रकृति के विषय में तीन विचार प्रस्तुत किये–

(i) प्रकृति जैव–सम्पूर्ण है जो उसके संघटक अवयवों से बड़ी होती है, (ii) वह ऐतिहासिक है जो समय एवं कालिक घटनाओं का परिणाम है तथा (iii) वह स्वाभाविक है।

प्रकृति के जैव–सम्पूर्ण की अवधारणा से उसने प्रकृति में परस्पर सहायता का सिद्धान्त इसी नाम की पुस्तक में दिया। प्रकृति में परस्पर सहायता अर्थात् सहयोग भी में होता है जैसे कि पशु समुदाय में, न कि केवल प्रतिस्पर्धा होती है। सामाजिक डार्विनवाद केवल प्रतिस्पर्धा प्रस्तावित करता है। उसने स्पष्ट किया कि मानव समुदाय प्रकृति एवं पशु समुदाय की ही भाँति है जिसमें प्रतिस्पर्धा तथा सहयोग साथ–साथ चलते हैं। मानव संस्कृति के विकास में इस पारस्परिक सहयोग की बड़ी भूमिका रही है। भूगोल को वह सामाजिक पारिस्थितिक बताता है जो कि उसके पारस्परिक सहायता के सिद्धान्त से ही विकसित हुआ है। वह प्रकृति एवं सामाजिक समूहों को जैव–सम्पूर्ण बताता है जिसमें एक भाग की क्रिया सम्पूर्ण के प्रत्येक भाग की प्रभावित करती है। मानव समुदायों को प्राकृतिक नियमों को समझकर आचरण करना चाहिये तथा प्रकृति (पर्यावरण) में किसी भी प्रकार का असन्तुलन उत्पन्न नहीं करना चाहिये। क्रोपॉटकिन ने भूगोल को समाज के लिये प्रासंगिक बनाने का प्रस्ताव किया। अपने पेपर में उसने बताया कि भूगोल विभिन्न सामाजिक शक्तियों को समझने, विभिन्न मानव समुदायों तथा देशों को समझकर उनके लिये सम्मान तथा स्वयं को नकारात्मक प्रभावों से बचाने की शिक्षा के बड़े उद्देश्य को पूरा करने के लिये सबसे उपयुक्त विषय है। उसने भूगोल में आमूल परिवर्तन करने के प्रयास किये ताकि भूगोल का प्रयोग शोषणात्मक साम्राज्यवादी आकांक्षाओं के लिये न होकर मानव समुदायों में परस्पर सहयोग के लिये हो।

11.8.4. वी० वी० डोकुचायेव (1846–1903)–डोकुचायेव मृदा भूगोल के विशेषज्ञ थे। उन्होंने सन् 1883 में 'रूस की चरनोजम मिट्टी' (काली मिट्टी) पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया तथा सन् 1885 में सेन्टपीटर्सबर्ग में भूगोल के प्रोफेसर नियुक्त हुए। सन् 1889 में डोकुचायेव ने 'सोवियत रूस की मिट्टियाँ' नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया, जो तीन खण्डों में था, जिसमें उन्होंने मिट्टी निर्माण प्रक्रिया की संकल्पना प्रस्तुत की तथा जलवायु के आधार पर मिट्टियों के प्राकृतिक प्रखण्ड निश्चित किये। मृदा अध्ययन से सम्बन्धित नई विधियों एवं नई पद्धतियों को प्रारम्भ किया। तत्कालीन जर्मनी, फ्रांस एवं ग्रेट ब्रिटेन के भूगोलवेत्ता मिट्टी को भूगर्भिक क्रियाओं द्वारा निर्मित मानते थे, इसीलिए उन लोगों ने मिट्टी का नामकरण विभिन्न भौमिकीय युगों के नाम के आधार पर किया। लेकिन डोकुचायेव ने यूरोपीय रूस के मैदानी भाग के विस्तृत अध्ययन के आधार पर कहा कि मिट्टी का केवल मूल तत्व ही शैलों या चट्टानों के द्वारा प्राप्त होता है। उन्होंने बताया कि विभिन्न प्रकार की मिट्टियों को उनकी परतों को देखकर पहचाना जा सकता है, क्योंकि प्रत्येक मिट्टी में निर्माण की प्रक्रिया अलग–अलग होती है। डोकुचायेव के अनुसार मिट्टी की रचना जल के द्वारा घुलनशील पदार्थों के पृथ्वी तल पर प्रवाहित करने से होती है जिसमें अनेक प्रकार के खनिज तत्व मिले होते हैं। इसके अतिरिक्त मिट्टी की रचना में अनेक जैविक तत्वों यथा– पेड़–पौधे तथा जीव–जन्तु, आदि के अवशेष भी सम्मिलित होते हैं। इस तरह मिट्टी की रचना मिट्टी के मूल पदार्थों, जलवायु तथा जैविक तत्वों के संश्लेषण तथा उनकी अन्तर्प्रक्रिया से होती है। उन्होंने बताया कि जिस मिट्टी में यह अन्तर्प्रक्रिया दीर्घकाल तक चलती रहती है, वह अपनी मूल चट्टान की विशेषताओं की अपेक्षा जलवायु एवं वनस्पति के स्वरूप पर अधिक आश्रित होती है।

डोकुचायेव ने 'समाकलित प्राकृतिक सम्मिश्रों की पेटियों में वितरण के नियम की खोज की थी जो भौगोलिक विज्ञान को डोकुचायेव की महत्वपूर्ण देन थी। उन्होंने इस नियम को मृदाओं की पेटियोंपर लागू किया था। डोकुचायेव के विचारों का पश्चिमी यूरोप के विद्वानों पर अपेक्षाकृत कम प्रभाव पड़ा, क्योंकि रूसी भाषा में होने के कारण उनकी पुस्तकें पश्चिमी यूरोप के देशों में कम पढ़ी गयीं। इसके अतिरिक्त पश्चिमी यूरोप के देशों में उनके द्वारा अध्ययन की गयी मिट्टी की उपलब्धता भी कम थी। डोकुचायेव के अनेक शिष्यों ने इनके विचारों का प्रचार–प्रसार किया।डोकुचायेव की कटिबन्धीय मिट्टी के प्रकार की संकल्पना का प्रचार–प्रसार रूस से बाहर के देशों में हुआ। सन् 1914 में एक जर्मन विद्वान द्वारा इसका अनुवाद रूसी भाषा से जर्मन भाषा में किया गया तथा सन् 1927 ई० में अमेरिकी मृदा वैज्ञानिक सी0 एफ0 मारबुत ने इसका अनुवाद अंग्रजी भाषा में किया। डोकुचायेव के मिट्टी सम्बन्धी विचारों का अध्ययन अमेरिका में उत्साहपूर्वक किया गया, जहां पश्चिमी यूरोप के विपरीत विस्तृत मैदान पाये जाते हैं, जिस पर कटिबन्धीय मिट्टियां प्रसरित है। डोकुचायेव ने भी वाईकोव की ही भांति मनुष्य को पृथ्वी तल पर परिवर्तन करने वाला सर्वप्रमुख कारक माना तथा जैव जगत एवं मनुष्य के बीच की अन्तर्प्रक्रिया को समझाने का प्रयास के किया था। उन्होंने मिट्टियों की विशिष्टताओं को जलवायु के संदर्भ में समझाया तथा इन्हें कृषि (मानव के कार्य) से अन्तर्सम्बन्धित किया। उन्हीं के नाम पर सोवियत रूस का डोकुचायेव मृदा संस्थान स्थापित किया गया है। यह संस्थान रूसी विज्ञान अकादमी के तत्वाधान में कार्यरत है।

11.8.5. जेरासिमोव–बीसवीं शताब्दी के प्रमुख रूसी भूगोलवेत्ता जेरासिमोव (1905–1985) का रूस में भौगोलिक चिन्तन के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। भूतकालीन सोवियत संघ के वर्तमान भूगोलवेत्ताओं में सर्वप्रथम स्थान इन्नोकेन्ती पी० जेरासिमोव का है, जो वहाँ की विज्ञान अकादमीके अन्तर्गत भौगोलिक संस्थान के डायरेक्टर के पद पर लगभग 40 वर्षों तक कार्य करते रहे। अकादेमिशियन जेरासिमोव सोवियत संघ की भौगोलिक सोसायटी के चेयरमैन भी रह चुके हैं, तथा भूगोलवेत्ताओं की कई समितियों के प्रधान रहे हैं। जेरासिमोव के निर्देशन में सोवियत भौगोलिक संस्थान के भूगोलवेत्ताओं द्वारा भूगोल की सभी शाखाओं और उपशाखाओं पर गहन तथा व्यापक शोध कार्य हुए हैं और उनके प्रकाशन किये गये हैं। जेरासिमोव के निर्देशन में 300 सोवियत भूगोलवेत्ताओं ने लगभग 50 उपविषयों पर शोध, विचार–गोष्ठियाँ, वैज्ञानिक सम्मेलन और प्रकाशन–कार्य किये हैं। सोवियत संघ में सभी विश्वविद्यालयों में भूगोल के स्नातकोत्तरीय और डॉक्टोरल स्तरके अध्ययन होते अध्ययन होते हैं, जिनमें मॉस्को विश्वविद्यालय, लेनिनग्राद विश्वविद्यालय, तबिलिसी विश्वविद्यालय, कीव, खारकोव, रोस्तोव, वॉल्गोग्राद, ताशकन्द जैसे विश्वविद्यालयों के भूगोल विभागों से प्रोफेसर जेरासिमोव का घनिष्ठ सम्पर्क रहा और पारस्परिक प्रेरणाओं द्वारा सोवियत संघ में भूगोल विज्ञान का उल्लेखनीय विकास हुआ है। वह अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक संघ के अध्यक्ष (1972 से 1976 तक) रहे, और 1976 के ग्रीष्मकालीन अन्तर्राष्ट्रीय कार्टोग्राफिकल काँग्रेस का अधिवेशन सोवियत संघ में हुआ था, उसके अधिशासी अध्यक्ष जेरासिमोव थे।

जेरासिमोव ने भौगोलिक अन्वेषणों और अनुसन्धानों में महत्वपूर्ण कार्य किया है। उन्होंने लगभग 500 अनुसंधान

लेख–पत्रतथा 12 पुस्तकें लिखी हैं। सोवियत जियोग्राफी एकम्पलिशमेन्ट्स एण्ड टास्कस् (1962) का सम्पादन किया है। उनकी प्रमुख देन भौगोलिक विचारधारा के विकास के क्षेत्र में है, जो संश्लिष्ट समाकल प्रदेश की विचारधारा है। उन्होंने भौतिक और मानवीय तथ्यों पर आधारित पृथ्वीतल के विभिन्न क्षेत्रों को 'सम्मिश्र–समाकल–प्रदेश' के रूप में अध्ययन और वर्णन करने की विधि का प्रतिपादन किया है।

11.8.6. बारान्स्की (1881–1963)– बारान्स्की को सोवियत रूस में आर्थिक भूगोल का संस्थापक माना जाता है। इन्होंने अपने विद्यार्थी जीवन में रूस के जार शासन के विरोध में भूमिगत क्रियाओं का संचालन किया था जिसके कारण उन्हें कई बार जेल भी जाना पड़ा था। रूसी क्रांति (1917) के समय तक वे महान क्रांतिकारी नेता के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। बारान्स्की लेनिन के घनिष्ट मित्र और उत्कृष्ट सामाजिक विचारक थे। वे एक भूगोलवेत्ता के साथ–साथ राजनीतिज्ञ और अर्थशास्त्री भी थे। रूसी क्रांति के पश्चात् देश में भूगोल विशेषतः आर्थिक भूगोल के विकास में बारान्स्की का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

निकोलाई बारान्स्की साम्यवादी सरकार की स्थापना के पश्चात् 1921 में बारान्स्की को स्वर्डलोवस्क कम्युनिष्टिक यूनिवर्सिटी में आर्थिक भूगोल का प्रोफेसर नियुक्त किया गया। सोवियत सरकार द्वारा 1923 में मास्को में स्थापित भूगोल के वैज्ञानिक अनुसंधान संस्थान को 1929 में दो भागों में विभक्त कर दिया गया भौतिक भूगोल विभाग और आर्थिक भूगोल विभाग। बारान्स्की को आर्थिक भूगोल का प्रोफेसर और अध्यक्ष नियुक्त किया गया। बारान्स्की के प्रयास से रूस के विश्वविद्यालयों में आर्थिक भूगोल के स्नातकोत्तर स्तरीय अध्ययन आरम्भ किये गये।

बारान्स्की ने सोवियत रूस के आर्थिक प्रादेशीकरण पर महत्वपूर्ण कार्य किया था। उन्होंने प्राकृतिक पर्यावरण को आर्थिक विकास की प्रमुख समस्या बताया और आर्थिक प्रदेशों की पहचान के लिए आर्थिक भूगोल का प्रादेशिक उपागम प्रस्तुत किया। बारान्स्की ने अपने लेख के माध्यम से श्रम के भौगोलिक विभाजन को श्रम का सामाजिक विभाजन बताते हुए उसे ही आर्थिक भूगोल का आधार बताया। वे भौतिक और आर्थिक अवस्थितियों को अलग–अलग मानते थे। उनके अनुसार भौतिक भौगोलिक अवस्थिति स्थिर प्रकृति की होती है जबकि आर्थिक भौगोलिक अवस्थिति की प्रकृति गतिशील होती है।

बारान्स्की का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान आर्थिक भूगोल के क्षेत्र में है। उन्होंने अपने शिष्यों तथा समकालीन भूगोलवेत्ताओं को आर्थिक भूगोल का अध्ययन प्रादेशिक स्तर पर करने के लिए प्रेरित किया। उनका विचार था कि प्रादेशिक स्तर पर किया गया आर्थिक अध्ययन देश के आर्थिक विकास में अत्यन्त उपयोगी साधन सिद्ध होगा। अपने इसी मत के अनुसार उन्होंने आर्थिक प्रदेशों के सीमांकन और उनके अनुसार ऊर्जा तथा उत्पादन संश्लिष्ट के निर्माण पर बल दिया। बारान्स्की ने आर्थिक भूगोल से सम्बंधित कई लेख प्रकाशित किये थे। उन्होंने दो पुस्तकों को प्रकाशित किया था जो इस प्रकार हैं–

(1) भूगोल की समस्याएं , और

(2) सोवियत रूस का आर्थिक भूगोल।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व रूस में भूगोल को एक प्रतिष्ठित विज्ञान के रूप में स्थापित करने में बारान्स्की का महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है। वे 1927–1930 की अवधि में मास्को विश्वविद्यालय में कार्यरत रहते हुए वहाँ आर्थिक भूगोल के अध्ययन का मार्ग प्रशस्त किया।

11.9 रूसी भौगोलिक चिन्तन की दिशा

रूस में भूगोल के विकास पर सरकारी नीतियों (साम्यवादी नीतियों) का अत्यधिक प्रभाव देखा जा सकता है। रूसी क्रांति (1917) के पश्चात् साम्यवादी शासन में भौतिक पर्यावरण तथा संसाधनों के सर्वेक्षण एवं मूल्यांकन और उनके आर्थिक उपयोग की सम्भावनाओं एवं विधियों की खोज और अन्वेषण पर अधिक बल दिया गया। इसके परिणामस्वरूप भूगोल के जिन पक्षों का विकास हुआ उनमें प्रमुख हैं भौतिक भूगोल, सामान्य भूगोल, प्रादेशिक भूगोल और आर्थिक भूगोल।

11.9.1. समग्र विज्ञान के रूप में भूगोल– रूस में भूगोल का विकास एक समग्र विज्ञान के रूप में हुआ। रूस में कभी भी प्राकृतिक बनाम मानव भूगोल अथवा क्रमबद्ध बनाम प्रादेशिक भूगोल सम्बंधी द्वैधता की समस्या नहीं उत्पन्न हुई और भूगोल सदैव एक पूर्ण विज्ञान के रूप में बना रहा। भूगोल के समग्र स्वरूप को बनाये रखने के उद्देश्य से ही 1845 में 'इम्पीरियल रूसी भौगोलिक समिति'की स्थापना की गयी थी। इस संस्था के अन्तर्गत ही

भूगोल, भूविज्ञान, मौसम विज्ञान, जल विज्ञान, मानवशास्त्र और पुरातत्व विज्ञान के विभाग बनाये गये थे और इन समस्त विषयों की समष्टि को भौगोलिक विज्ञानकी संज्ञा दी गयी। अनुचित एकीकृत भूगोल के कट्टर समर्थक थे।

11.9.2. मार्क्सवादी भूगोल—रूसी क्रांति (1917) के पश्चात् सोवियत रूस में साम्यवादी (मार्क्सवादी) सरकार स्थापित हुई और जीवन के अन्य पक्षों की भाँति भौगोलिक चिन्तन धारा पर भी साम्यवादी चिन्तन का अवश्यंभावी प्रभाव पड़ा। नवीन सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्था में जीवन के सभी पक्षों में अंतिम सत्य की खोज मार्क्सवादी पद्धति और विचारों के अनुसार किया जाने लगा। इस प्रकार समस्त सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा भौगोलिक समस्याओं का समाधान मार्क्सवादी मान्यताओं के अनुसार खोजा जाने लगा। मार्क्सवादी चिन्तन की मूल मान्यता है कि समस्त सामाजिक सम्बन्ध आर्थिक व्यवस्था द्वारा निर्धारित होते हैं। इस प्रकार रूस में भौगोलिक चिन्तन का मूलाधार और मार्गदर्शक मार्क्सवादी (साम्यवादी) चिन्तन और विचारधारा रही है।

11.9.3. भौतिक भूगोल—रूस में भौतिक भूगोल का पर्याप्त विकास हुआ और इसकी विभिन्न शाखाओं– भूआकृति विज्ञान, जलवायु विज्ञान, समुद्र विज्ञान, हिमनद विज्ञान, पादप भूगोल, जन्तु भूगोल आदि के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य सम्पन्न हुए। भौतिक भूगोल का उल्लेखनीय विकास रूसी क्रांति के पहले भी हुआ था और बाद में इसमें और तीव्रता आ गयी। लोमोनोसोव, वोईकोव, डोकुचायेव, अनुचिन आदि भूगोलवेत्ताओं ने भौतिक भूगोल में महत्वपूर्ण कार्य किया था।

11.9.4. आर्थिक भूगोल—यह रूसी भूगोल का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है। साम्यवाद के अनुयायी रूसी भूगोलवेत्ता सभी सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याओं की जड़ अर्थव्यवस्था को मानते हैं। अतः भौगोलिक अध्ययन की परिदृष्टि आर्थिक व्यवस्था तथा संसाधनों के सर्वेक्षण, मूल्यांकन, उपयोग, संरक्षण, आदि से सम्बद्ध रही है। रूस में अधिवासों (नगरों) और जनसंख्या के वितरण आदि की व्याख्या भी आर्थिक दृष्टिकोण से की जाती रही है। अतः रूसी भौगोलिक चिन्तन में आर्थिक परिदृष्टि का विशेष महत्व है। इस प्रकार रूस में नगरीय भूगोल, जनसंख्या भूगोल, औद्योगिक भूगोल, परिवहन भूगोल, वाणिज्य भूगोल आदि को आर्थिक भूगोल की शाखाओं के रूप में व्यवहृत किया गया है। सर्वप्रथम लोमोनोसोव ने सोवियत रूस में आर्थिक भूगोल के विस्तृत अध्ययन को आरंभ कराया था।

11.9.5. पारिस्थितिकीय भूगोल—वर्तमान रूसी भूगोलवेत्ता पर्यावरणीय समस्याओं पर अधिक ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं और वे समाज तथा प्रकृति के मध्य सद्भावनापूर्ण सम्बंध संगठित करने के प्रभावकारी साधन खोजने में प्रयत्नशील हैं। वहाँ नगरीकरण के दुष्प्रभावों को कम करने के उद्देश्य से बड़े नगरों के समीप मनोरंजन क्षेत्र की स्थापना और विकास को नगर नियोजन का अंग माना जा रहा है। रूसी भूगोलवेत्ता इस बात पर बल दे रहे हैं कि आर्थिक विकास के लिए प्रयुक्त नवीन तकनीक के प्रयोग से प्राकृतिक प्रक्रिया को भंग नहीं किया जाना चाहिए। वे पारिस्थितिकीय संतुलन को बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील हैं। क्रोपोत्किन ने सामाजिक पारिस्थितिकीके अध्ययन को भौगोलिक अध्ययन का प्रमुख पक्ष माना था।

11.9.6 प्रादेशिक भूगोल—प्रादेशिक भूगोल रूसी भौगोलिक चिन्तन का प्रमुख पक्ष है। रूस में आर्थिक विकास के उद्देश्य से आर्थिक प्रादेशीकरण पर अधिक बल दिया गया और इसके लिए प्रादेशिक नियोजन को महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में प्रयोग किया गया। प्रदेशों के निर्धारण में प्राकृतिक तथा मानवीय दोनों प्रकार की समानताओं पर ध्यान दिया जाता है। यद्यपि रूस में क्रमबद्ध और प्रादेशिक विधियों के प्रयोग सम्बंधी विवाद समान्यतःकभी नहीं रहे किन्तु सामाजिक, आर्थिक तथा पारिस्थितिकीय समस्याओं को भली प्रकार समझने तथा उनके निराकरण के लिए लघु प्रदेशों को अध्ययन इकाई के रूप में चयन को उपयुक्त माना गया है।

11.9.7 व्यावहारिक भूगोल—रूस में भूगोल का आधार सामान्यतः कभी भी सैद्धान्तिक नहीं रहा और सदैव व्यावहारिक पक्षों के अध्ययन को ही महत्व प्रदान किया गया। इस कारण से रूस में संकल्पनात्मक विवाद की स्थिति बहुत कम उत्पन्न हुई। रूस में भूगोल को केवल ज्ञानार्जन का विषय कभी नहीं माना गया बल्कि इसे देश के स्थानों, क्षेत्रों तथा संसाधनों के ज्ञान और उनके समुचित उपयोग का विषय माना गया। वर्तमान रूसी भूगोलवेत्ता नगर नियोजन, प्रादेशिक नियोजन, जल एवं मृदा संसाधनों के प्रबंधन, जल संतुलन, मौसम के पूर्वानुमान, पर्यटन एवं मनोरंजन सुविधाओं के विकास, भूमि उपयोग, सेवाओं की आपूर्ति आदि विषयों के अध्ययन पर विशेष बल दे रहे हैं और विभिन्न समस्याओं के आवश्यक व्यावहारिक समाधान के उपाय ढूढ़ने के प्रयास में संलग्न हैं।

11.10 सारांश

प्रस्तुत इकाई में ग्रेट ब्रिटेन में भौगोलिक अध्ययन के क्षेत्र में विकास एवं योगदान की विस्तृत व्याख्या की गई है और ब्रिटिश भूगोल वेत्ताओं का भी संक्षिप्त विवरण एवं उनकी रचनाओं का उल्लेख किया गया है मुख्य ब्रिटिश भूगोलवेत्ता हल्फोर्ड जॉन मैकिण्डर एवं सर लारेंस डडले स्टांपग्रेट ब्रिटेन भौगोलिक योगदान की व्याख्याकी गई है।ब्रिटेन में 19वीं शताब्दी के आरम्भ तक केवल समुद्री और स्थलीय यात्राओं के द्वारा नये देशों की खोजों तथा अन्वेषणों से भौगोलिक ज्ञान की प्राप्ति होती रही लेकिन उस समय तक ब्रिटेन में कहीं भी कॉलेज या विश्वविद्यालय स्तर पर भूगोल का अध्ययन–अध्यापन नहीं होता था। केवल स्कूलों में इतिहास और भूगोल दोनों एक विषय के अन्तर्गत पढ़ाये जाते थे जिसकी विषय–सामग्री अव्यवस्थित थी।

जर्मनी और फ्रांस की भांति ब्रिटेन में भी भौगोलिक अध्ययन और चिंतन के विकास में देश के साम्राज्यवादी विस्तार के उद्देश्यों की निर्णायक भूमिका थी। अपने एक स्मृतिपत्र में रॉयल जिओग्राफिकल सोसायटी ने 1879 में ब्रिटेन की सरकार का ध्यान भौगोलिक ज्ञान के प्रचार और प्रसार की आवश्यकता की ओर आकर्षित करते हुए लिखा था कि चूंकि इंग्लैण्ड की उपनिवेशीय इकाईयां, उसका वाणिज्य व्यापार, उसके नागरिकों का बहिर्गमन, उसके युद्ध, उसके धर्म प्रचारक और उसके वैज्ञानिक अन्वेषणकर्ता उसको विश्व के भिन्न–भिन्न भागों के सम्पर्क में लाते हैं, अतः साम्राज्यवादी हितों की सुरक्षा की दृष्टि से यह नितांत आवश्यक है कि देश की युवा पीढ़ी को भौगोलिक ज्ञान की शिक्षा प्रदान करने के लिए हर सम्भव प्रयास किए जाएं।

रूसी भूगोलविदों का समूह सामाजिक शक्ति से जुड़कर प्रादेशिक नियोजन, नगर नियोजन, जल–प्रबन्ध, उत्पादन उपक्रमों के विस्तार, कृषि योजनाओं का संगठन, मौसम पूर्वानुमान, जल–संतुलन, भूमि अपरदन सेवाओं की समस्या, पंक प्रवाह, भूस्खलन, अवर्षण, राजमार्ग निर्माण, उत्तम स्थानों का चयन, में विकास, मनोरंजन तथा पर्यटन सुविधायें, आश्रम–व्यवस्था, स्वास्थ्य–सुधार, आदि में रचनात्मक भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं। इस प्रकार प्राकृतिक संसाधनों के न्यायपूर्ण उपयोग एवं संरक्षण द्वारा समाज को अधिक सुविधायें प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान कर रहे हैं।

11.11 स्व मूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

प्रश्न 1 दि जिओग्राफी आफ लाइफ एण्ड डेथ के लेखक हैं ?

(अ) ए० जे० फ्ल्यूर(ब) पीटर हैगेट(स) एल० डी० स्टाम्प (द) आर० ई० डिकिन्सन

प्रश्न 2. ब्रिटेन में कॉलेज एवं विश्वविद्यालय स्तर पर भूगोल का अध्यापन किस वर्ष प्रारम्भ हुआ ?

(अ) 1836 (ब) 1834(स) 1833 (द) 1835

प्रश्न 3. राउण्ड वर्ल्ड एण्ड विनिंग ऑफ पीस (1943) के लेखक का नाम बताइय ?

(अ) चिशोल्म(ब) मैकिण्डर(स) डडले स्टैम्प(द) मैकोनोशी

प्रश्न 4. लैंड फॉरटुमारोद अन्डर डेवेलोपेड वर्ल्ड के लेखक का नाम बताइये ?

(अ) फॉसेट(ब) सॉमरविये (स) रॉक्सबी(द) डडले स्टैम्प

प्रश्न 5. ह्रदय स्थल सिद्धांत किस विद्वान प्रतिपादित किया–

(अ)मेकिंडर(ब)फ्रिमैन(स)हार्टशोर्न(द) कांट

प्रश्न 6. परस्पर सहायता का सिद्धान्त किसकी देन है ?

(अ) पैत्रोविच (ब) क्रोपॉटकिन (स) शाँसकी (द) डोकुचेव

उत्तरमाला– 1. (स)2. (स)3. (ब)4. (द) 5. (अ) 6. (ब)

11.12 संदर्भ– ग्रंथ –सूची

- Bonngard, L. G. and IIyin, G. (1970)Ancient India, lnstitute of Oriental Studies,Academy of Sciences, Moscow.
- Bowlby, S. et al., (1989) The geography of gender in Peet, R. and Thrift, N. (eds) New Models in Geography, London.
- Broek, J. O. M. (1965) Geography, Its Scope and Spirit, Columbus, Ohio.
- Broek, J. O. M. and Webb, J. W. (1968) The purpose of geography, inA Geography of Mankind, New York.
- Brunhes, J. (1912) Human Geography, New York, p. 359.
- Brunhes, J. and Lassell (1903) Life of Humboldt, Pp. 27 - 71.
- Brush, J. E. (1968) Spatial patterns of population in Indian cities, Geographical Review, 58(3), pp. 362 - 392.
- Bunbury, E. H. (1879)A History ofAncient Geography among the Greeks and Romans, London.
- Anuchin V.A. (1973) Theory of Geography in Directions in Geography (ed) R. J. Chorley, London.
- Appleton, J. (1975) The Experience of Landscape, London.
- Arya Bhatta--Jyotish Siddhanta (Sanskrit).
- Atwood, W. W. (1940) The Physiographic Provinces of NorthAmerica, Boston.
- Atwood, W. W. (1945) The Rocky Mountains, New York.

11.13 अभ्यास प्रश्न(सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

प्रश्न 1 ग्रेट ब्रिटेन में भौगोलिक चिंतन के विकास एवं योगदान की व्याख्या कीजिए?

प्रश्न 2 हृदयस्थल सिद्धांत का परीक्षण कीजिए तथा उसके गुण – दोषों का आकलन कीजिए?

प्रश्न 3 डेडले स्टैम्प का भूगोल के चिंतन एवं विधि तंत्र में किए गए योगदान व्याख्या कीजिए?

प्रश्न 4 भौगोलिक चिंतन में जॉन मै किंडर योगदान सहित उनकी आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए?

प्रश्न 5 रूसी भूगोल की प्रकृति को स्पष्ट कीजिये। रूसी भूगोल के विकास के सन्दर्भ में अपना उत्तर दीजिये।

इकाई–12 भारत में भूगोल की प्रगति–पृष्ठभूमि, शिक्षण विस्तार, भौगोलिक शोध

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 भारत में भूगोल की प्रगति

12.4 स्वतंत्रता पूर्व औपनिवेशिक काल में भूगोल कीप्रगति

12.5 पृष्ठ भूमि

12.6 भूगोल के शिक्षण में विस्तार

12.7 भारत में भौगोलिक शोध

12.8 भारत में भौगोलिक विकास के चरण

12.9 भारत में भूगोल की विभिन्न शाखाओं का विकास

12.9.1 आर्थिक एवं संसाधन भूगोल

12.9.1.1. कृषि भूगोल

12.9.1.2. औद्योगिक भूगोल

12.9.1.3. परिवहन भूगोल

12.9.1.4. विपणन भूगोल

12.9.1.5. संसाधन भूगोल

12.9.2 अधिवास व नगरीय भूगोल

12.9.3 जनसंख्या भूगोल

12.9.4 राजनीतिक भूगोल

12.9.5 प्रादेशिक भूगोल

12.9.6 भौतिक भूगोल

12.9.7 सामाजिक भूगोल

12.9.8 तत्वगत मानचित्र

12.10 भारतीय भौगोलिक परिषदों का योगदान

12.11 भारत में भूगोल के संस्थापक

12.12 अभिनव प्रवृत्ति

12.13 सारांश

12.14 स्व मूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

12.15 संदर्भ– ग्रंथ –सूची

12.16अभ्यास प्रश्न(सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

12.1 प्रस्तावना

भारत में आधुनिक भूगोल का विकास 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक भारत में भूगोल का क्षेत्र केवल स्कूलों तक ही सीमित था जिसे इतिहास व नागरिक शास्त्र के साथ मिलकर पढ़ाया जाता था। इस काल में केवल देहरादून स्थित 'सर्वे ऑफ इण्डिया' (1767 में स्थापित) ही एकमात्र संस्था थी जहाँ भौगोलिक जानकारी के लिए भू–पत्रक तथा मान चित्रावली बनायी जाती थी। प्रथम विश्व युद्ध के उपरान्त भूगोल का अध्ययन सामाजिक अध्ययन के रूप में हाई स्कूल स्तर पर कराया जाने लगा। महाविद्यालय स्तर पर भूगोल का अध्ययन सन् 1920 में लाहौर में आरम्भ हुआ। यह स्वतन्त्र विषय बना। स्नातकोत्तर स्तर पर भूगोल शिक्षा का श्रीगणेश सन् 1931 में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में आरम्भ हुआ। यहाँ प्रथम विभागाध्यक्ष प्रो. इनादुर्रहमान खाँ थे। सन् 1936 में यहाँ स्नातकोत्तर अध्ययन के साथ शिक्षक प्रशिक्षण कार्यों में भी भूगोल विषय आरम्भ हुआ। सन् 1932 में मद्रास (चेन्नई) में प्रो. एन. सुब्रह्मण्यम के निर्देशन में पहले शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय में तथा बाद में स्नातक स्तर पर भूगोल का अध्ययन आरम्भ हुआ। इस प्रकार सन् 1950 से पूर्व तक भारत में आगरा, कलकत्ता (कोलकाता), बम्बई (मुम्बई), मद्रास (चेन्नई), बड़ौदा, मैसूर, हैदराबाद, राँची, वाराणसी, इलाहाबाद, नागपुर, उदयपुर, जोधपुर, गोहाटी आदि स्थानों पर महाविद्यालयों में स्नातक स्तर पर भूगोल का अध्ययन आरम्भ हुआ।

इस काल में केवल देहरादून स्थित 'सर्वे ऑफ इण्डिया' (1767 में स्थापित) ही एकमात्र संस्था थी जहाँ भौगोलिक जानकारी के लिए भू–पत्रक तथा मान चित्रावली बनायी जाती थी। प्रथम विश्व युद्ध के उपरान्त भूगोल का अध्ययन सामाजिक अध्ययन के रूप में हाई स्कूल स्तर पर कराया जाने लगा। महाविद्यालय स्तर पर भूगोल का अध्ययन सन् 1920 में लाहौर में आरम्भ हुआ। यह स्वतन्त्र विषय बना। स्नातकोत्तर स्तर पर भूगोल शिक्षा का श्रीगणेश सन् 1931 में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में आरम्भ हुआ। यहाँ प्रथम विभागाध्यक्ष प्रो. इनादुर्रहमान खाँ थे। सन् 1936 में यहाँ स्नातकोत्तर अध्ययन के साथ शिक्षक प्रशिक्षण कार्यों में भी भूगोल विषय आरम्भ हुआ। सन् 1932 में मद्रास (चेन्नई) में प्रो. एन. सुब्रह्मण्यम के निर्देशन में पहले शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय में तथा बाद में स्नातक स्तर पर भूगोल का अध्ययन आरम्भ हुआ। इस प्रकार सन् 1950 से पूर्व तक भारत में आगरा, कलकत्ता (कोलकाता), बम्बई (मुम्बई), मद्रास (चेन्नई), बड़ौदा, मैसूर, हैदराबाद, राँची, वाराणसी, इलाहाबाद, नागपुर, उदयपुर, जोधपुर, गोहाटी आदि स्थानों पर महाविद्यालयों में स्नातक स्तर पर भूगोल का अध्ययन आरम्भ हुआ।

सन 1960–70 के दशक में भारतीय भूगोल पर प्रसिद्ध ब्रिटिश भूगोलवेत्ता डडले स्टेम्प का प्रभाव रहा जिनके निर्देशन में प्रो. मो. शफी द्वारा भूमि उपयोग का कार्य किया गया था। इसी दौरान सागर विश्वविद्यालय में प्रो. मुजफ्फर अली ने 'सामान्य एवं व्यावहारिक भूगोल विभाग' की स्थापना की। इस दौरान प्रो. अली का 'पौराणिक भूगोल', डी.पी. सक्सेना का 'वैदिक भारत का भूगोल' ऐतिहासिक भूगोल के विकास में महत्त्वपूर्ण कार्य थे। सन् 1970–80 के दशक में भारतीय भूगोल में विविधता आने लगी थी। भारतीय भूगोल में अभी भी पाश्चात्य देशों का अंधानुकरण किया गया। इस दशक में मानव भूगोल पर अधिक बल दिया गया।

12.2 उद्देश्य

आधुनिक भूगोल का तात्पर्य भूगोल की उस परम्परा से है जिसका विकास आधुनिक काल में यूरोपीय देशों मुख्यतः जर्मनी, फ्रांस और ग्रेट ब्रिटेन में हुआ है। ब्रिटिश काल में भारत में उच्च शिक्षा पर बहुत कम ध्यान दिया जाता था और शिक्षा सम्बंधी योजनाएं ब्रिटिश शासन की आवश्यकता तथा ब्रिटिश नीति के अनुसार बनायी जाती थीं। बीसवीं सदी के द्वितीय दशक तक भारत में उच्च शिक्षा का सर्वथा अभाव था। इस सदी के आरंभिक दशकों में भूगोल का शिक्षण सर्वप्रथम विद्यालय स्तर पर आरम्भ हुआ। आरंभिक दशकों में भूगोल के अन्तर्गत स्थानों तथा देशों की स्थिति, विस्तार, स्थलाकृति (पर्वत, पठार, मैदान, घाटी आदि), उत्पादन, व्यापार, यातायात आदि का विवरणात्मक अध्ययन–अध्यापन किया जाता था। ब्रिटिश काल में देश के विभिन्न भागों की धरातलीय बनावट (स्थलाकृति), मिट्टी, खनिज संसाधन, मौसमी दशाओं आदि के विषय में सूचना उपलब्ध कराने के उद्देश्य से सर्वे आफ इण्डिया, भौमिकी सर्वेक्षण विभाग और भारतीय मौसम विज्ञान विभाग को स्थापित किया गया था।

12.3 भारत में भूगोल की प्रगति

भूमिका सर्वेक्षण विभाग आर भारतीय मौसम विज्ञान विभाग की स्थापना भारत की शिक्षा प्रणाली मौलिक रूप से ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली से संचालित थी। ज्ञातव्य है कि ब्रिटेन में व्यावसायिक भूगोल का विकास जर्मनी, फ्रांस

और यहाँ तक कि संयुक्त राज्य अमेरिका से भी बाद में हुआ। अतः भारत में भी आधुनिक भूगोल का उच्च स्तरीय अध्ययन–अध्यापन देर से आरंभ हो पाया। भारत में स्नातक स्तरीय भूगोल के शिक्षण का आरम्भ तीसरे दशक में कुछ विश्वविद्यालयों अथवा उनसे सम्बद्ध महाविद्यालयों में आरंभ हुआ। सर्वप्रथम लाहौर स्थित पंजाब विश्वविद्यालय के एक महाविद्यालय में स्नातक स्तरीय कक्षा में भूगोल के शिक्षण का श्रीगणेश (शुभारम्भ) किया गया। इसके पश्चात् 1927 में पटना विश्वविद्यालय के एक कालेज में और 1928 में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में स्नातक स्तरीय भूगोल विभाग की स्थापना हुई। चौथे और पाँचवें दशक में आगरा, इलाहाबाद, कलकत्ता, मैसूर, हैदराबाद, वाराणसी, राँची, उदयपुर, जोधपुर, गोहाटी और मद्रास स्थित विश्वविद्यालयों तथा उनसे सम्बद्ध अनेक महाविद्यालयों में भूगोल का पठन–पाठन आरंभ हुआ।

भारतीय विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर भूगोल विभाग की स्थापना का आरंभ 1935 के पश्चात् हुआ। सर्वप्रथम 1936 में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में भूगोल का स्नातकोत्तर विभाग स्थापित हुआ। इसके पश्चात् कलकत्ता विश्वविद्यालय (1941), बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (1946), इलाहाबाद विश्वविद्यालय (1946), मद्रास विश्वविद्यालय (1948) और पटना विश्वविद्यालय (1949) में भूगोल के स्नातकोत्तर विभाग स्थापित हुए। 1950 तक भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों में स्थापित भूगोल विभाग के सभी संस्थापक अध्यक्षों ने विदेशी विश्वविद्यालयों – लंदन और पेरिस से डाक्ट्रेट की उपाधि प्राप्त किया था। तब तक भारत में भूगोल की उच्च शिक्षा और शोध कार्य की सुविधा उपलब्ध नहीं थी। भारत में भौगोलिक अध्ययन–अध्यापन का वास्तविक विकास स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् ही सम्भव हुआ।

सन् 1950 से पूर्व का काल इस दिशा में प्रारम्भिक काल कहलाता है। इसके उपरान्त सन् 1950–60 का दशक रचनाकाल के नाम से जाना जाता है। इसी दौरान सर्वप्रथम आस्ट्रेलियाई भूगोलवेत्ता ओ.एच. के. स्पेट ने सन् 1950 में भारत एवं पाकिस्तान के भौगोलिक कार्यों का सर्वेक्षण कर एक पुस्तक 'इंडिया –पाकिस्तान ' लिखी। इसके बाद सन् 1964 से 1973 तक प्रो. एच.डी. चटर्जी ने भारत में भूगोल की प्रगति से सम्बन्धित लेख लिखे थे। सन् 1956 में भारतीय भूगोल में निम्नांकित प्रमुख कार्य सम्पन्न हुए।

1. भारतीय राष्ट्रीय एटलस संस्थान की स्थापना।
2. अलीगढ़ में अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल संगोष्ठी सम्पन्न।
3. भारतीय भूगोलवेत्ता परिषद् का राष्ट्रीय स्तर पर संगठन।
4. भारतीय सांख्यिकीय प्रादेशिक सर्वेक्षण के भूगोल विभाग की स्थापना।

12.4 स्वतन्त्रता से पूर्व औपनिवेशिक काल में भारतीय भूगोल की प्रगति

लाहौर के बाद अलीगढ़ (1924) तथा पटना (1927) में स्नातक स्तरीय भूगोल विभाग स्थापित हुये। भूगोल में स्नातकोत्तर स्तर का शिक्षण सबसे पहले अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालयमें 1931 में प्रारम्भ हुआ। 1950 तक अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय सहित कुल 8 विश्वविद्यालयों कलकत्ता, इलाहाबाद, बनारस, आगरा, पंजाब (चण्डीगढ़), मद्रास तथा पटना में स्नातकोत्तर स्तरीय भौगोलिक अध्ययन प्रारम्भ हुये। यह 1940 के दशक में स्थापित हुये। इन प्रारम्भिक विभागों में अधिकांश प्रोफेसर लन्दन विश्वविद्यालय के पी–एच०डी० रिसर्च डिग्री धारक थे। आई०आर० खान (अलीगढ़), एस०पी० चटर्जी (कलकत्ता), एच०एल० छिब्बर (बनारस), जॉर्ज कुरियन (मद्रास), एस०सी० चटर्जी (पटना), एस०एम० अली (सागर, म० प्र०), जी०एस० गोसल, विसकॉन्सिन विश्वविद्यालय से पी–एच०डी० (चण्डीगढ़) तथा आर०एन० दुबे पेरिस विश्वविद्यालय से पी–एच०डी० (इलाहाबाद) प्रारम्भिक भूगोल विभाग के संस्थापक थे। ये भूगोलवेत्ता लन्दन विश्वविद्यालय की उच्च स्तरीय भौगोलिक अध्ययन एवं अनुसंधान परम्परा को उपर्युक्त भारतीय विश्वविद्यालयों में सुदृढ़ता से स्थापित कर सके। इनके अध्ययन के प्रमुख क्षेत्र प्रादेशिक भूगोल, ऐतिहासिक भूगोल, आर्थिक भूगोल तथा चिकित्सा भूगोल थे।

इन भौगोलिक अध्ययनों की परम्परा के लिये उनके विभाग जाने जाते थे। एस०पी० चटर्जी का भारत का भौताकृतिक प्रादेशीकरण आज भी सर्वाधिक स्वीकृत है। एस०एम० अली के भारत का पुराणों का भूगोल को विशेष ख्याति प्राप्त हुई है। यह ऐतिहासिक भूगोल की उत्कृष्ट रचना है। आर०एन० दुबे की आर्थिक एवं व्यापारिक भूगोल में रुचि थी तथा जॉर्ज कुरियन ने प्रादेशिक भूगोल तथा चिकित्सा भूगोल में प्रसिद्धि प्राप्त की। कॉलेज भूगोल में भी इस काल में सीमित प्रगति हुई। स्वतन्त्रता से पूर्व 14 कॉलेजों में स्नातक स्तरीय तथा 7 कॉलेजों में स्नातकोत्तर भूगोल का शिक्षण हो पाया। 1950 तक कॉलेज भूगोल विभाग के आगरा, कानपुर, मुरादाबाद, कलकत्ता

तथा अमरावती (महाराष्ट्र) कॉलेज प्रमुख थे। इन प्रारम्भिक भौगोलिक अध्ययन के केन्द्रों पर प्रारम्भिक भूगोलवेत्ताओं के योग्य एवं समर्पित देख–रेख में भौगोलिक शिक्षण एवं अनुसंधान के लिये योग्य प्रोफेसर तैयार हुये जिन्होंने बढ़ते हुये नये पदों पर सफलतापूर्वक कार्य सम्भाला।

12.5 पृष्ठ भूमि

भारत में, एक उच्चस्तरीय शिक्षण विषय के रूप में, की शुरूआत यूरोपीय देशों की अपेक्षा बहुत बाद में हुई। ब्रिटिश अधिपत्य में होने के कारण विदेशों में भूगोल के क्षेत्र में जो भी प्रगति हुई उसका प्रभाव भारत में तत्काल नहीं पड़ा। 19वीं शताब्दी एवं बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जर्मनी, फ्रांस तथा अमेरिका में भूगोल के क्षेत्र में जो प्रगति हुई उससे भारत अछूता रहा। एक तो भारत में शिक्षा का बहुत कम प्रसार था। दूसरे, विदेशी शासन में होने के कारण भारतवासियों को देश के विभिन्न भागों की समस्याओं की जानकारी हासिल करने तथा देश के विकास के विषय में सोचने का कोई अवसर नहीं था। 1947 ई० के पूर्व, बीसवीं शताब्दी में, देश के प्रबुद्ध वर्ग का सारा ध्यान देश की स्वतन्त्रता हासिल करने की ओर लगा था। अंग्रेजों के शासन काल में विद्यालयों में जो शिक्षा दी जाती थी, उसका उद्देश्य प्रशासन चलाने हेतु क्लर्क एवं निम्न स्तर के अधिकारी पैदा करना होता था न कि विचारक।

अतएव, भूगोल का अध्यापन मात्र विश्व का संक्षिप्त भौगोलिक परिचय कराने तक सीमित था। वस्तुतः 1859 (हुम्बोल्डट एवं रीटर के देहान्त का वर्ष) से 1950 ई० के बीच ही भूगोल की वैचारिक पृष्ठभूमि, यूरोप के देशों एवं अमेरिका में बनी। परन्तु इसी अवधि (1857 से 1947 तक) में भारत विदेशी सरकार के शोषण एवं अत्याचार में पिसता तथा स्वतन्त्रता संग्राम में जूझता रहा। इस अवधि में गिने–चुने साधन सम्पन्न एवं प्रतिभाशाली व्यक्ति ही इंग्लैंड जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अवसर पा सके। जो इग्लैंड शिक्षा प्राप्त करने गये उनमें अधिकांश कानून या अंग्रेजी का अध्ययन करने की ओर झुके। भारत में अंग्रेजी ही विदेशी ज्ञान प्राप्त करने का माध्यम थी। अतएव विद्यालय स्तर पर जो भूगोल की शिक्षा दी जाती थी वह भी इंग्लैंड में प्रचलित भूगोल की होती थी। उस स्तर पर सिर्फ विश्व का भौगोलिक परिचय प्राप्त करना ही पर्याप्त था। इसमें डडले स्टाम्प द्वारा लिखित विश्व भूगोल ही भौगोलिक ज्ञान का एकमात्र स्रोत था।

12.6 भूगोल के शिक्षण में विस्तार

भारत में आधुनिक भूगोल का इतिहास बहुत संक्षिप्त है। विश्वविद्यालय स्तर पर भूगोल का 50 वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ। 1931 ई० में अलीगढ़ अध्ययन अध्यापन लगभग मुस्लिम विश्वविद्यालय से भुगोल का विश्वविद्यालय स्तर पर अध्ययन प्रारम्भ हुआ। 1950 तक अलीगढ के अतिरिक्त मात्र छः अन्य विश्वविद्यालयों (कलकत्ता 1941, बनारस 1946, इलाहाबाद 1947, पंजाब 1944, मद्रास 1948, तथा पटना 1949) में भूगोल का अध्यापन हो रहा था। 1950 के दशक में पंद्रह अन्य विश्वविद्यालयों में भूगोल का अध्यापन प्रारम्भ हो चुका था। 1960 के पश्चात भूगोल का अध्यापन करने वाले विश्वविद्यालयों की संख्या तीव्र गति से बढ़ी और सम्प्रति लगभग 50 विश्वविद्यालयों में इस विषय का स्नातकोत्तर स्तर पर अध्यापन हो रहा है। विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त अनेक महाविद्यालयों में भी स्नातकोत्तर स्तरीय भूगोल पाठ्यक्रम का अध्यापन हो रहा है। क्षेत्रीय दृष्टिकोण से वृहत मैदान में ही भूगोल का अध्यापन करने वाले विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों का केन्द्रीकरण है। इसका एक प्रधान कारण यह है कि मद्रास के अतिरिक्त भूगोल का अध्यापन प्रारम्भ करने वाले सभी विश्वविद्यालय मैदानी भाग में ही स्थापित हुए। भूगोल का अध्यापन करने वाले महाविद्यालयों तथा उनमें अध्ययनरत भूगोल के छात्रों की संख्या की दृष्टि से भी मैदानी भाग, विशेषतया उत्तर प्रदेश, अग्रणी है। पठारी भाग, विशेषकर दक्षिणी भारत में, भूगोल का अध्यापन करने वाले विश्वविद्यालयों की संख्या तथा उनमें अध्ययनरत भूगोल के छात्रों की संख्या अत्यल्प है परन्तु अब इस क्षेत्र में भी तीव्र प्रगति दृष्टिगत हो रही है।

12.7 भारत में भौगोलिक शोध–

स्वतन्त्रता पूर्व भारतीय भूगोल के विषय एवं अनुसंधान रुचि की झलक इण्डियन साइन्स काँग्रेस एसोसिएशन के 1963 में 'भारत में विज्ञान की प्रगति' के पचास वर्षों (1910–1960) का पुनरावलोकन 'भारत में विज्ञान के पचासवर्षों से प्राप्त होती है। उसमें भूगोल की प्रगति का भी अवलोकन किया गया था। भारत में इस काल में प्रकाशित हुए भूगोल के लगभग 1,400 रिसर्च–पत्रों तथा कुछ पुस्तकों का रिव्यू 9 उपभागों में प्रस्तुत किया गया

था। इन प्रकाशनों में सबसे अधिक संख्या (लगभग 1,200) उन रिसर्च–पत्रों की थी जो भौतिक भूगोल, मानव भूगोल और आर्थिक भूगोल के क्षेत्र में थे।

भारत में भौगोलिक शोध भूगोल में शोध की दृष्टि से भी 1950 ई० के पूर्व देशों स्थापित विश्वविद्यालयों, विशेषकर कलकत्ता, बनारस तथा अलीगढ़ एवं मद्रास की विशेष उपलब्धि रही है। इन सभी विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध भौगोलिक पत्रिकाओं–क्रमशः द जाग्राफिकलरिव्यु ऑफ इंडिया द जाग्राफिकल नेशनलजॉर्नल ऑफ इंडिया, द जाग्राफर इंडियन जाग्राफिकल जॉर्नल, का नियमित प्रकाशन होता है जिनमें भारतीय भूगोल शोधकर्ताओं के शोध–निबन्ध प्रकाशित होते हैं। यद्यपि इन सबमें भूगोल की हर शाखा एवं विधा से सम्बन्धित शोध–निबन्धों का प्रकाशन होता है, तथापि इनमें प्रथम तीन में क्रमशः प्राकृतिक भूगोल, नगरीय एवं अधिवास भूगोल तथा भूमि उपयोग के प्रति विशेष रूझान रही है जो इन विश्वविद्यालयों में सम्बन्धित शाखाओं में विशेषीकरण के प्रतीक हैं। तथापि, 1970 के पश्चात इन सभी शोध–पत्रिकाओं में अधिक विविधता का समाबेश हुआ है जिससे इन केन्द्रों तथा देश में शोधकर्ताओं की बढ़ती संख्या के साथ विशेषीकरण में अभिवृद्धि तथा विविधता की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। 1960 के पश्चात देश में भूगोल अध्यापन एवं शोध केन्द्रों की संख्या में वृद्धि के साथ भूगोल विषयक शोध पत्रिकाओं की संख्या में वृद्धि हुई है और अधिसंख्य विश्वविद्यालय केन्द्रों के सम्बन्धित भूगोल विभाग से सम्बद्ध अथवा स्वतन्त्र शोध–पत्रिकाओं का प्रकाशन होता है। इनमें डेकान् जाग्राफर (सिकन्दराबाद), नेशनल जॉग्राफिककल औट्लूक (राची) बॉम्बे (इलाहाबाद) में जॉग्राफिककल मेगजिन (बंबई) इंडियन जॉग्राफिककल स्टडीज भारत भूगोल पत्रिका (गोरखपुर), (पटना) तथा उत्तर अन्तिम शोध–पत्रिका इस अर्थ इनमें उल्लेखनीय द्विभाषी है कि इसमें शोध निबन्ध हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनों भाषाओं में प्रकाशित होते हैं तथा प्रत्येक निबन्ध का प्रकारान्तर अंग्रेजी अथवा हिन्दी सारांश भी मिलता है।

उल्लेखनीय है कि ब्रिटेन, फ्रांस अथवा अमेरिका की भांति सम्पूर्ण देश के भूगोलवेत्ताओं का एक संगठन तथा उसकी प्रतिनिधि शोध–पत्रिका का भारत में अभाव रहा है। प्रारम्भ में भूगोलवेत्ता भारतीय विज्ञान कांग्रेस के भौमिकी एवं भूगोल खण्ड के तत्वाधान में एक मंच पर एकत्र होकर विचार– विमर्श करते रहे। तत्पश्चात 1968 में इंडियन कौंसिल ऑफ जाग्राफर्स की स्थापना हुई, जिसका वार्षिक अधिवेशन भारतीय विज्ञान कांग्रेस के साथ ही हुआ करता है। इसके द्वारा एक शोध–पत्रिका ट्रांजैक्शन, इंडियन कौंसिल ऑफ जाग्राफर्स का प्रकाशन होता है। देश के सभी भूगोलवेत्ताओं को एक मंच पर एकत्र करने में यह संगठन अभी तक बहुत प्रभावकारी सिद्ध नहीं हो पाया है। इस दिशा में एक दूसरा प्रयास 1980 में हुआ जब नेशनल एसोसियेशन ऑफ जाग्राफर्स नेगी का गठन हुआ तथा इसका प्रथम अधिवेशन चण्डीगढ़ में हुआ। इस संगठन द्वारा प्रकाशित पत्रिका अंनलास ऑफ द नेशनल एसोसियेशन ऑफ जाग्राफर्सय इंडिया का पहला अंक (1981) प्रकाशित हुआ। ट्रांजैक्शन, इंस्टिटूट ऑफ इंडियन जाग्राफर्स (पूना 1979 से प्रारम्म) तथा पॉपुलेशन जाग्राफी (चंडीगढ़ 1979 से प्रारम्भ) नयी भौगोलिक शोध–पत्रिकाओं में उल्लेखनीय भौगोलिक शोध के प्रचार–प्रसार एवं प्रोत्साहन में कुछ अन्तविषयक शोध–पत्रिकाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान है। इनमें ऐसे भौगोलिक निबन्धों का, जिनका नगर एवं प्रादेशिक नियोजन से घनिष्ठ सम्बन्ध है, प्रकाशन अर्बन एंड रूरल प्लानिंग थौट (दिल्ली 1958 से प्रारम्भ) तथा इंडियन जॉर्नल ऑफ रिजनल साइंस (खड्गपुर 1969 से प्रारम्भ) विशेष उल्लेखनीय हैं।

12.8 भारत में भौगोलिक विकास के चरण

भारत में स्नातक स्तरीय भूगोल का अध्ययन सर्वप्रथम 1920 में लाहौर स्थित पंजाब विश्वविद्यालय एक कालेज में आरंभ हुआ था और प्रथम स्नातकोत्तर भूगोल विभाग की स्थापना 1936 में अलीगढ़ विश्वविद्यालय में हुई थी।

भौगोलिक अध्ययन–चिन्तन की दिशा–भारत में स्नातकोत्तर स्तर पर पढ़ाये जाने वाले पाठ्यक्रम तथा भूगोल वेत्ताओंके प्रकाशित शोध–प्रपत्रों एवं ग्रन्थों से अध्ययन–चिन्तन की दिशा का आभास मिलता है। इस दृष्टि से भारत में भौगोलिक अध्ययन–चिन्तन को तीन काल खण्डों में विभक्त किया जा सकता है। इनकी सीमाओं को संकीर्ण अर्थ में अलोचक नहीं मानना चाहिए क्योंकि अध्ययन–चिन्तन की दिशा में परिवर्तन आकस्मिक नहीं वरन् क्रमशः होते हैं। अतएव प्रत्येक कालखण्ड का एक दूसरे से संक्रमण की पर्याप्त दीर्घ (लगभग 5 वर्ष) अवधि का होना स्वाभाविक है। भारत में भौगोलिक अध्ययन–अध्यापन तथा चिन्तन का विकास मुख्यतः तीन चरणों में हुआ है जो इस प्रकार हैं–

(1) प्रारम्भिक काल (1930–1960) इस प्रारम्भिक अवधि में भारत से भुगोल के परास्नातक स्तर पर अध्यापन का संगठन हुआ। इस काल से भारतीय विश्वविद्यालयों में भूगोल में शोधकार्य नाम मात्र का था। इस अवधि में देश के

विभिन्न विश्वविद्यालयों में भूगोल विभाग की स्थापना करने वाले अगुआ विद्वानों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की स्पष्ट छाप थी। इनमें प्रो. शिवप्रसाद चटर्जी का नाम सर्वोपरि है। प्रो० चटर्जी ने 1941 ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय में भुगोल विभाग की स्थापना के समय से इसका अध्यक्ष पद सम्भाला तथा 1967 ई० तक वे इस पद पर कार्यरत रहे। सिर्फ कलकत्ता में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारत में भूगोल के स्नातकोत्तर स्तर पर अध्यापन को प्रोत्साहित करने में प्रो० चटर्जी का अमूल्य योगदान रहा है। प्रो० चटर्जी की शिक्षा भौमिकी में हुई थी। स्वाभाविक था कि उनकी विशेष अभिरुचिआकृति विज्ञान तथा प्राकृतिक भूगोल में थी। यही कारण है कि उनके नेतृत्व में कलकता में प्राकृतिक भूगोल के अध्यापन का सुदृढ़ आधार बना। तथापि प्रो० चटर्जी का भौगोलिक क्षितिज अतिव्यापक था। उन्होंने मानव भूगोल एवं प्रादेशिक भूगोल के अध्ययनको भी उतना ही प्रश्रय दिया। उनके शिष्य प्रो० रामलोचन सिंह तथा प्रकाश राव ने मानव भूगोल एवं प्रादेशिक नियोजन के विभिन्न पक्षों को पर्याप्त सबल बनाया। स्वयं प्रो० चटर्जी ने मेघालय का उत्कृष्ट प्रादेशिक भूगोल प्रस्तुत किया था। स्पष्ट है कि प्रो० चटर्जी भूगोल के समग्र विकास हेतु सतत प्रयत्नशील थे। प्रो० शिवप्रसाद चटर्जी की भांति प्रो० एच० एल० छिब्बर भी, जिन्होंने वाराणसी में भूगोल विभाग के संस्थापक अध्यक्ष के रूप में 1946 से 1955 तक कार्य किया, मुख्यतया भूगर्भ शास्त्री थे तथा उन्होंने स्वयं भूआकृति विज्ञान में मौलिक शोध प्रस्तुत किये।

इसी प्रकार प्रो० एस० सी० चटर्जी ने पटना में, प्राकृतिक भूगोल के अध्ययन अध्यापन हेतु एक सुदृढ़ आधार स्थापित किया।

उक्त तीन विभागों के विपरीत इलाहाबाद तथा मद्रास के संस्थापक अध्यक्ष कमशः प्रो० रामनाथ दुबे तथा प्रो० जार्ज कुरियन की विशेषज्ञता आर्थिक भूगोल में थी। अतएव इन विभागों में इस अवधि में आर्थिक भूगोल को विशेष प्रश्रय मिला। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि इन विभागों में प्राकृतिक भूगोल के अध्यापन की उपेक्षा होती थी। इसका आशय यह है कि भौगोलिक ज्ञान के विस्तार के स्तर पर भूगोल के आर्थिक पक्ष पर इन विभागों में विशेष बल था। प्रो० कुरियन के इस दशक में प्रकाशित लेख प्रायः विभिन्न फसलों के भौगोलिक अध्ययन से सम्बन्धित हैं। प्रो० दूबे ने आर्थिक भूगोल की एक स्नाकोत्तर पाठ्य पुस्तक का प्रणयन किया। अलीगढ़ विश्वविद्यालय में प्रो० ताहीर रिजवी तथा प्रो० मुजफ्फर अली के नेतृत्व में क्रमशः संसाधन भूगोल तथा कार्टोग्राफी पर विशेष कार्य हुए।

इस काल में स्नातकोत्तर स्तर पर भूगोल का पाठ्यक्रम ब्रिटेन में प्रचलित परम्परा के अनुरूप था। प्राकृतिक भूगोल के अतिरिक्त एक सामान्य मानव एवं आर्थिक भूगोल तथा विभिन्न महाद्वीपों अथवा देशों के प्रादेशिक भूगोल के अध्ययन पर बल दिया जाता था। यह 'प्रादेशिक समाकलन' को भूगोल का मर्म मानने वाली तत्कालीन प्रचलित संकल्पना के सर्वथा अनुरूप था। प्रादेशिक भूगोल में मानव–वातावरण अन्तर्सम्बन्ध पर विशेष ध्यान दिया जाता था। यूरोपीय विद्वानों द्वारा विभिन्न महाद्वीपों तथा भारत के प्रादेशिक स्वरूप को निरूपित करने वाली पाठ्यपुस्तकों का प्रचलन था। प्राकृतिक भूगोल के क्षेत्र में भी अधिकतर ब्रिटिश अमेरिकी विद्वानों यथा डेविस, होम्स, वल्ड्रीज, स्टीअर्स, आदि द्वारा प्रणीत पुस्तकों का अध्ययन किया जाता था। डेविस के अपरदन चक्र के सन्दर्भ में भूआकृति के विकास का विशेष अध्ययन होता था। मानव एवं आर्थिक भूगोल में ब्लाश, ब्रुन्श तथा हंटिन्गटन एवं जोन्स की पुस्तकें जिनमें नियतिवादी अथवा सम्भववादी दृष्टिकोण से मानव–वातावरण अन्तर्सम्बन्ध के प्रसंग में मानवीय कार्य कलाप को प्रस्तुत किया गया है, प्रमुख पाठ्यपुस्तकें थीं। भौगोलिक चिन्तन की प्रवृत्तियों एवं प्रवाहों के प्रति जागरूकता का अभाव था।

इस अवधि में भारतीय भूगोलवेत्ताओं द्वारा प्राकृतिक भूगोल के अन्तर्गत प्रकाशित शोध निबन्धों में विभिन्न क्षेत्रों की भूआकारिकी का संरचना, प्रक्रम, अवस्था' में सूत्रबद्ध विवरण तथा जलवायु एवं मिट्टी की क्षेत्रीय विशेषताओं का निरूपण प्रमुख था। मानव एवं आर्थिक भूगोल के क्षेत्र में तत्कालीन प्रमुख समस्याओं जैसे बाढ़ के प्रकोप तथा सिंचाई की समस्या ने भूगोलवेत्ताओं का ध्यान आकर्षित किया था। तथापि, अधिक जोर जनसंख्या वृद्धि के परिप्रेक्ष्य में खाद्य आपूर्ति एवं विभिन्न फसलों के वितरण उत्पादन के भौगोलिक अध्ययन पर था। देश के विभाजन के पश्चात चावल, गेहू', कपास, जूट जैसी फसलों के, पाकिस्तान बन जाने के कारण, क्षेत्रीय वितरण में उत्पन्न विसंगति तथा प्रथम पंचवर्षीय योजना में खाद्य आपूर्ति में वृद्धि एवं कृषि के उन्नयन हेतु सिंचाई क्षमता में बहुउद्देश्यीय योजनाओं के माध्यम से अभिवृद्धि की आवश्यकता ने इस प्रकार के अध्ययनों को तात्कालिक महत्व प्रदान किया था। इस अवधि में कुछ भारतीय भूगोलवेत्ताओं द्वारा लन्दन में शोध उपाधि हेतु भारत में कृषि एवं भूमिउपयोग से सम्बन्धित विषयों पर शोध प्रबन्ध का प्रस्तुत किया जाना (जैसे प्रो० दयाल, प्रो० शफी प्रो० आद्याशरण एवं श्रीमती सेन गुप्ता) भीतत्कालीन ज्वलन्त समस्याओं के निराकरण में भूगोलवेत्ताओं द्वारा योगदान करने के प्रति उत्साह का परिचायक है। दूसरे, इनमें से प्रायः शफी ने लन्दन स्कूल ऑफ एकोनामिक्स से शोध

उपाधि प्रो० स्टाम्प अथवा उनके सहयोगियों के निर्देशन में प्राप्त की थी। वहाँ स्टाम्प द्वारा ब्रिटेन के भूमि उपयोग सर्वेक्षण का इन पर विशेष प्रभाव था। प्रादेशिक भूगोल के क्षेत्र में किसी प्रदेश के समग्र अध्ययन से सम्बन्धित कार्य अत्यल्प हुए। प्रो० चटर्जी द्वारा मेघालय के प्रादेशिक अध्ययन के अतिरिक्त देशपाण्डेय का पश्चिमी भारत का प्रादेशिक भूगोल तथा (1948) उनका निबन्ध द टेकनीक् ऑफ रिजनल जाग्राफी विथ रेफरेंस टू इंडिया (1953) इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। वी० एल० एस० प्रकाश रात्र ने इस अवधि (1949–50) में प्रादेशिक नियोजन की दृष्टि से प्रशासकीय इकाईयों के समायोजन की आवश्यकता पर जोर देते हुए राष्ट्रीय नियोजन के प्रादेशिकरण की रूपरेखा प्रस्तुत की थी।

(2) द्वितीय चरण 1960–61– पिछली कालावधि के अन्तिम चरण (1955) से विभिन्न विभागों का संचालन क्रमशः दूसरी पीढ़ी के भूगोलवेत्ताओं हाथ में आने लगा जिसमें अधिकतर ने लन्दन से शोध उपाधि प्राप्त की थी। इनमें प्रो० रामलोचन सिंह (वाराणसी), प्रो० परमेश्वरदयाल (पटना) प्रो० मुहम्मद शफी (अलीगढ़) प्रो० इनायत अहमद (राँची) प्रो० रामप्रवेश सिंह (बोधगया) प्रो० मुज्जफर अली (सागर) के नाम उल्लेखनीय हैं। इन विद्वानों के नेतृत्व में उनकी विशेषज्ञता के अनुसार सम्बन्धित विभागों से भूगोल की विभिन्न शाखाओं में शोध कार्य पर विशेष जोर दिया जाने लगा। फलस्वरूप वाराणसी में अधिवास, विशेषतया नगरीय भूगोल, अलीगढ में कृषिभूगोल एवं भूमिउपयोग, पटना में आर्थिक भूगोल, गया एवं रांची में भूआकृति विज्ञान तथा सागर में कार्टोग्राफी के क्षेत्र में शोधकार्य होने लगे। कलकत्ता में भी प्राकृतिक भूगोल के अतिरिक्त नगरीय भूगोल के क्षेत्र में प्रो० मुज्जफर, प्रो० ए० बी० चटर्जी तथा मीरा गुहा के निर्देशन में शोध कार्य ने जोर पकड़ा। 1956 ई० में प्रो० चटर्जी के निर्देशन में स्थापित नेशनल एटलस आर्गेनाईजेशन के तत्वाधान में मानचित्र निर्माण से सम्बन्धित शोध एवं मानचित्र निर्माण कार्य में भी तीव्र प्रगति होने लगी। पंजाब विश्वविद्यालय में जिसका प्रांगण 1960 ई में चण्डीगढ़ में स्थापित हुआ प्रो० गोसल के नेतृत्व में जनसंख्या भूगोल के क्षेत्र में शोध कार्य ने गति पकड़ी। इस प्रकार भारत में यह अवधि वस्तुतः भूगोल के उत्कर्ष की अवधि थी।

इसमें मानव एवं आर्थिक भूगोल के विभिन्न पक्षों पर शोध कार्य होने लगे। साथ ही, भौगोलिक चिन्तन एवं संकल्पना एवं विधितन्त्र के प्रति भी इस अवधि में विशेष जागरूकता दृष्टव्य है। इस अवधि के आरम्भ में ही प्रो० रामलोचन सिंह, प्रो० गोसल, प्रो० ए० बी० मिश्र ने भौगोलिक चिन्तन एवं विधितन्त्र पर प्रकाश डाले। क्रमशः विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में भौगोलिक विचार एवं विधितन्त्र के अध्ययन का समावेश किया गया। साथ ही, विभिन्न महाद्वीपों तथा देशों के सामान्य प्रादेशिक भूगोल के स्थान पर क्रमबद्ध भूगोल, विशेषतया आर्थिक भूगोल की विभिन्न शाखाओं, के विशेष अध्ययन पर जोर दिया गया। प्राकृतिक भूगोल पर अपेक्षाकृत कम बल दिया जाने लगा तथा देश में प्राकृतिक भूगोल के क्षेत्र में शोध करने वालों की संख्या बहुत कम रह गयी। इसका प्रधान कारण यह था कि देश में आर्थिक विकास की आवश्यकतानुसार कृषि, उद्योग, परिवहन, विद्युत सिचाई, खनिज आदि से सम्बन्धित समस्यायें ज्वलन्त थीं। दूसरी ओर, जनसंख्या की समस्या तथा नगर एवं प्रादेशिक नियोजन की आवश्यकतायें भी अधिक ध्यानाकर्षक थी। स्वाभाविक था कि भूगोलवेत्ता इन समस्याओं के निराकरण हेतु भौगोलिक दृष्टि से इनका विशेष अध्ययन करने में संलग्न हो गये। प्रादेशिक विषमता एवं उसके निराकरण हेतु विभिन्न नियोजन पदेशों की आवश्यकता ने देश में विभिन्न दृष्टिकोण से प्रादेशिकरण तथा विभिन्न स्तरीय प्रदेशों के स्वरूप निरूपण की ओर भी भूगोल वेत्ताओं का ध्यान आकर्षित किया। स्पष्ट है कि इस अवधि में भारत में भूगोल का सर्वाधिक विकास एवं विस्तार हुआ। भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान परिषद ने भूगोल में हुए शोध का सर्वेक्षण करके भूगोल की विभिन्न शाखाओं के विकास सम्बन्धी निम्न निष्कर्ष प्रस्तुत किए।

(3) भूगोल के विकास का तृतीय चरणः (1975 के पश्चात)—1975 के पश्चात् भारत के अधिकांश विश्वविद्यालयों में भूगोल विभाग स्थापित हो चुके थे। 1990 तक सामान्यतः तृतीय पीढ़ी के भूगोलवेत्ता प्रोफेसर तथा भूगोल विभागाध्यक्ष थे। इस काल में भूगोल में अति तीव्र गति से विशिष्टीकरण आरंभ हुआ और भूगोल की अनेक नयी–नयी शाखाएं विकसित हुईं। इस काल के भूगोलवेत्ताओं तथा शोधकर्ताओं के अध्यापन, शोध तथा लेखन से भूगोल की विभिन्न शाखाओं का उल्लेखनीय विकास हुआ है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों के प्राध्यापकों के लिए पी०एच० डी० अथवा एम० फिल० की उपाधि को अनिवार्य योग्यता में सम्मिलित किये जाने के परिणामस्वरूप शोधकार्य में अत्यधिक प्रगति हुई। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने कार्यरत प्राध्यापकों को शोधकार्य के लिए वेतन सहित अवकाश प्रदान करने का प्रावधान करके शोधकार्य को प्रोत्साहित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। इस प्रकार भूगोल की विभिन्न शाखाओं और प्रशाखाओं में बड़ी संख्या में शोधकार्य किये गये। 1975 से 1990 तक शोध तथा लेखन द्वारा भूगोल केविकास में सक्रिय योगदान देने वाले

भूगोलवेत्ताओं में एस० एल० कायस्थ, के० एन० सिंह (वाराणसी), मुनीस रजा, आर० सी० शर्मा (नई दिल्ली), सी० डी० देशपाण्डे (बम्बई), बी० एन० सिन्हा (भुवनेश्वर), एस० चक्रवर्ती (बर्दवान), आर० डी० दीक्षित (पटियाला), उजागिर सिंह, जगदीश सिंह (गोरखपुर), आर० एल० द्विवेदी, लेखराज सिंह, सविन्द्र सिंह (इलाहाबाद) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

12.9 भारत में भूगोल की विभिन्न शाखाओं का विकास

भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद्ने सर्वप्रथम 1972 में शीर्षक से एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी जिसमें 1960 तक विभिन्न शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित शोध पत्रों की समीक्षा की गयी थी। इसके पश्चात् इस प्रकार की शोध रिपोर्ट 1979, 1983 और 1984 में प्रकाशित हुई। प्रथम रिपोर्ट (1972) के सम्पादक प्रो० प्रकाश राव , द्वितीय रिपोर्ट (1979) के सम्पादक प्रो० मुनीस रजा , तृतीय रिपोर्ट (1983) के सम्पादक प्रो० सी० डी० देशपाण्डे और चतुर्थ रिपोर्ट के सम्पादक प्रो० एस० एम० अली थे। इन रिपोर्टों में भौगोलिक शोध पत्रों का वर्गीकरण भूगोल की विभिन्न शाखाओं के अनुसार किया गया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में विकसित होने वाली भूगोल की प्रमुख शाखाओं का विवरण निम्नांकित है।

12.9.1. आर्थिक एवं संसाधन भूगोल

12.9.1.1 कृषि भूगोल –1930 से 1942 तक दक्षिणी भारत के कुछ भूगोलवेत्ताओं ने प्रादेशिक कृषि के विषय में वर्णनात्मक विवरण दिया था। उत्तरी भारत में बी० एन० मुकर्जी (1942) ने उत्तर प्रदेश की और पी० दयाल (1950) ने बिहार की कृषि विशेषताओं का विवरण देते हुए उनको कृषि प्रदेशों में वर्गीकृत किया था। 1950 के पश्चात् भारत में कृषि भूगोल की विषय सामग्री, उपागम और विधितंत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलता है। कृषि भूगोल का वास्तविक विकास उत्तरी भारत के भूगोलवेत्ताओं द्वारा हुआ जिनमें एस० पी० चटर्जी (1952), मोहम्मद शफी (1960, 1965), एस० एन० मुखर्जी (1968), वी० एस० नेगी (1972), जसवीर सिंह (1972, 1984), बी० बी० सिंह, सुरेन्द्र सिंह (1997) आदि के योगदान विशेष उल्लेखनीय हैं। भारतीय भूगोलवेत्ताओं ने जनसंख्या एवं खाद्य समस्या, फसल प्रतिरूप में परिवर्तन, कृषि गहनता एवं उत्पादकता, शस्य संयोजन, फसलों के संकेन्द्रण एवं विशाखन , कृषि नियोजन, कृषि एवं पोषाहार आदि विषयों पर महत्वपूर्ण शोधकार्य किया है। कृषि अध्ययनों में गुणात्मक के साथ–साथ परिमाणात्मक तकनीकों के प्रयोग की प्रवृत्ति में वृद्धि पायी गयी है। कृषि भूगोल के अन्तर्गत शोध में चार प्रमुख पक्षों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है–

(1) प्रदेश विशेष में कृषि का स्वरूप (2) खाद्य एवं व्यापारिक फसलें (3) कृषिगत समस्यायें एवं नियोजन तथा (4) खाद्य आपूर्ति एवं जनसंख्या। कृषि के प्रादेशिक स्वरूप के अन्तर्गत किसी प्रदेश या राज्य में फसलों के क्षेत्रीय वितरण तथा कृषि की विधि पर प्राकृतिक वातावरण को प्रभाव दर्शाया गया। किसी फसल विशेष के व्यापक क्षेत्रीय वितरण तथा फसल साहचर्य प्रदेशों के निरूपण पर भी ध्यान दिया गया। कृषिगत समस्याओं एवं नियोजन के अध्ययन में कृषि के व्यवस्था पक्ष तथा कृषि– अवस्थापना तत्त्व जैसे सिंचाई की भूमिका पर विशेष बल दिया गया। कृषिगत–कुशलता में क्षेत्रीय विषमता का भी अध्ययन हुआ। इनकी तुलना में जनसंख्या एवं पोषण तत्व के सन्दर्भ में खाद्य आपूर्ति से सम्बन्धित शोध बहुत कम हुए।

12.9.1.2 औद्योगिक भूगोल–तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961–65) में नवीन औद्योगिक नीति को क्रियान्वित करने के पश्चात भारत में औद्योगिक गतिविधियाँ तेज हो गयीं। इसके पश्चात् भारतीय भूगोलवेत्ताओं ने औद्योगिक भूगोल के अध्ययन में रुचि दिखाई। औद्योगिक भूगोल पर शोध स्तरीय सर्वप्रथम कार्य अलीगढ़ विश्वविद्यालय में आरम्भ हुआ। पी०एच० डी० उपाधि के लिए इन्द्रपाल (1956) ने 'उत्तर प्रदेश का औद्योगिक नियोजन' विषय पर और सिकन्दर आलम (1968) ने 'निचली सोन घाटी में औद्योगिक अवस्थिति' विषय पर अलीगढ़ विश्वविद्यालय में शोध प्रबंध प्रस्तुत किये। 1965 के पश्चात् विशिष्ट उद्योगों तथा विशिष्ट औद्योगिक केन्द्रों के अध्ययन में मात्रात्मक, समस्यामूलक और सामाजिक तथ्यों को प्राथमिकता के आधार पर सम्मिलित किया जाने लगा। 1964 में प्रकाशित अपने एक लेख में पी० दयाल ने दक्षिण भारत में लोहा इस्पात और सीमेन्ट उद्योग के स्थानीकरण के लिए उपयुक्त परिस्थितियों का विवेचन किया था। एम० पी० करन ने 1964 में भारतीय उद्योगों की अवस्थिति में परिवर्तन पर प्रकाश डाला था। सर्वप्रथम 1971 में वी० एन० सिन्हा की 'औद्योगिक भूगोल' पर एक पाठ्य पुस्तक प्रकाशित हुई जिसमें भारतीय उद्योगों का विस्तृत विवेचन किया गया है। एम० आर० चौधरी ने 1971 में भारत में औद्योगीकरण के इतिहास तथा औद्योगिक अवस्थिति के सिद्धान्तों की आलोचनात्मक समीक्षा प्रस्तुत किया और 1975 में लोहा–इस्पात उद्योग के स्थानीकरण और विकास पर एक

शोध ग्रंथ प्रकाशित किया। रामनाथ तिवारी ने आगरा विश्वविद्यालय में डी० लिट० उपाधि के लिए औद्योगिक भूगोल पर शोध ग्रंथ प्रस्तुत किया था। कुल मिलाकर औद्योगिक भूगोल पर अधिक कार्य नहीं हुए हैं।

उद्योगों का क्षेत्रीय वितरण, उनकी अवस्थिति के भौगोलिक कारक तथा औद्योगिक भूदृश्य के कुछ पक्षों का विश्लेषण, भूगोल से सम्बन्धित शोध में उल्लेखनीय रहा। औद्योगिक भूगोल में शोध प्रादेशिक स्तर पर तथा उद्योग विशेष के सन्दर्भ में भी हुए। प्रादेशिक स्तर पर न उद्योगों के संकेन्द्रण तथा विखराव पर विशेष ध्यान दिया गया। आलोच्य अवधि में कुल्टी, बनंपुर तथा दुर्गापुर औद्योगिक संश्लिष्टों का भी विवेचन किया गया।

12.9.1.3 परिवहन भूगोल–परिवहन भूगोल पर अध्ययन अपेक्षाकृत कम हुए हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश में सड़क, रेल तथा वायु परिवहन में तीव्र वृद्धि हुई और इससे सम्बंधित नवीन समस्याएं उत्पन्न हुईं। अतः 1960 के पश्चात् परिवहन भूगोल पर कुछ भूगोलवेत्ताओं ने शोध कार्य किया। अधिकांश अध्ययन प्रादेशिक स्तर पर किये गये। जगदीश सिंह (1962) ने दक्षिणी बिहार, डी० एन० सिंह (1969) ने उत्तरी बिहार, वी० एल० अग्रवाल (1967) ने मध्य प्रदेश और आर० बी० सिंह ने उत्तर प्रदेश के परिवहन भूगोल को अपने शोध का विषय बनाया और पी०एच० डी० की उपाधि प्राप्त किया। भारत के परिवहन भूगोल से सम्बंधित एक अध्ययन 1986 में प्रो० मुनीस रजा ने भी प्रस्तुत किया। इस क्षेत्र में प्रादेशिक स्तर पर परिवहन जालों द्वारा प्राप्त गम्यतातथा यातायात प्रवाह एवं सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन किया गया।

12.9.1.4 विपणन भूगोल–विपणन भूगोल आर्थिक भूगोल की एक नवीन शाखा के रूप में विकसित हुआ है यद्यपि 1941 में सी० डी० देशपाण्डे ने बम्बई और कर्नाटक प्रदेश में विपणन केन्द्रों का अध्ययन प्रस्तुत किया था। 1957 में ए० बी० मुकर्जी ने मोदी नगर के द्वि–साप्ताहिक बाजारों का अध्ययन किया था। एम० एस० विश्वनाथन द्वारा 1972 में किया गया ग्रामीण एवं नगरीय विपणन केन्द्रों का अध्ययन अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। आर० एस० दीक्षित ने विपणन भूगोल पर अपना शोध प्रबंध (1981) प्रस्तुत किया था। उन्होंने 1992 में विपणन भूगोल से सम्बंधित भारतीय विद्वानों द्वारा किये गये शोधकार्यों की समीक्षा प्रस्तुत किया। गोरखपुर विश्वविद्यालय के पूर्व भूगोल विभागाध्यक्ष प्रो० वी० के० श्रीवास्तव ने बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक मेंनामक परिषद् की स्थापना किया और नामक शोध पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया जिससे विपणन भूगोल के विकास को नवीन दिशा एवं गति प्राप्त हुई। विपणन भूगोल के विकास में प्रो० श्रीवास्तव का विशिष्ट योगदान रहा है। नगरीय बाजारों की संरचना तथा बाजार केन्द्र एवं उनके सम्पूरक क्षेत्र के अन्तर्सम्बन्धों की ओर भी ध्यान दिया गया।

12.9.1.5 संसाधन भूगोल–इस क्षेत्र में कृषि, जन्तु, मत्स्यय जल, मिट्टी तथा खनिज संसाधनों के सन्दर्भ में अनवरत शोध की प्रवृत्ति मिलती है। तथापि, अधिकतर अध्ययन विवरणात्मक तथा संसाधनों के क्षेत्रीय वितरण एवं सुलभता सम्बन्धी प्राथमिक आँकड़ों के प्रस्तुतीकरण तक सीमित रहे। संसाधन संरक्षण पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। इस दिशा में मोहम्मद शफी ने अग्रणीय कार्य किया है। उन्होंने 1950 में 'राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में वन' की भूमिका से सम्बंधित अध्ययन प्रस्तुत किया था। संसाधन भूगोल के विकास में एस० एल० कायस्थ (वाराणसी) का विशेष महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होंने मृदा संसाधन, जल संसाधन, जनसंख्या एवं खाद्य संसाधन, विश्व में जल संसाधन समस्या, भारत में संसाधन मूल्यांकन आदि से सम्बंधित अनेक शोध लेख प्रकाशित करके संसाधन भूगोल के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया। इस संदर्भ में ए० रमेश द्वारा 1984 में प्रकाशित सम्पादित ग्रंथ 'संसाधन भूगोल– भारतीय भूगोलवेत्ताओं का योगदान' का भी महत्वपूर्ण योगदान है। इसके पश्चात् बहुत से शोध छात्रों ने पी०एच० डी० और एम० फिल० की उपाधि के लिए विभिन्न प्रदेशों के संसाधन भूगोल को अपने शोध विषय के रूप में चयन किया और संसाधन भूगोल की परिधि को आगे बढ़ाने में योगदान दिया।

12.9.2अधिवास एवं नगरीय भूगोल–

अधिवास भूगोल विशेषतः नगरीय भूगोल के क्षेत्र में देश में सर्वाधिक शोधकार्य हुए हैं। वाराणसी, इलाहाबाद, कलकत्ता और हैदराबाद विश्वविद्यालय अधिवास और नगरीय भूगोल के प्रमुख शोध केन्द्र रहे हैं। यद्यपि नगरीय भूगोल पर 1950 के पश्चात् से ही शोध कार्य ने गति पकड़ लिया था और 1960 के दशक में पी०एच० डी० उपाधि के लिए नगरीय अध्ययनों की बाढ़ सी आगयी थी किन्तु ग्रामीण अधिवास भूगोल पर अभी तक बहुत कम ध्यान दिया गया था। ग्रामीण अधिवास भूगोल के विकास में इनायत अहमद का अग्रणीय योगदान माना जाता है जिन्होंने 1949 में 'आगरा और अवध के संयुक्त प्रांत में ग्रामीण अधिवास'विषय पर लन्दन विश्वविद्यालय में पी०एच०

डी० शोध प्रबंध प्रस्तुत किया था। इसके पश्चात् प्रो० इनायत अहमद ने 1950 के दशक में अधिवास भूगोल से सम्बंधित विषयों पर कई लेख भी प्रकाशित किये। ग्रामीण अधिवास भूगोल के विकास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान प्रो० रामलोचन सिंह का है। प्रो० सिंह 1968 में अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक संघ के 'मानसून एशिया में ग्रामीण अधिवास' आयोग के अध्यक्ष मनोनीत किये गये। प्रो० सिंह ने इस विषय पर स्वयं कई पुस्तकें लिखी और सम्पादित की तथा अपने सहयोगियों और शोध छात्रों को इस विषय पर कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया। इस प्रकार बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में अधिवास भूगोल पर अनेक शोध प्रबंध प्रस्तुत किये गये और कई महत्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित हुए।

अधिवास भूगोल के क्षेत्र में प्रो० रामलोचनसिंह के नेतृत्व एवं निर्देशन में विशेष अध्ययन हुए। प्रो० सिंह ने 1961 ई० में अधिवास भूगोल के उद्देश्य तथा अध्ययन क्षेत्र पर प्रकाश डाला। तत्पश्चात विभिन्न क्षेत्रों के ग्रामीण अधिवासों के प्रकार प्रतिरूप उद्भव एवं आकारिकी नगरीय भूगोल के अध्ययन का वास्तविक आरंभ प्रो० आर० एल० सिंह के शोध प्रबंध के प्रकाशन (1955) से होता है। प्रो० सिंह ने पी०एच० डी० उपाधि के लिए 1953 में अपना शोध प्रबंध लंदन विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया जिसका विषय था,(बनारस–नगरीय भूगोल में एक अध्ययन)। एक पुस्तक के रूप में इसका प्रकाशन 1955 में हुआ। इसके पश्चात् भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों में देश के भिन्न–भिन्न भागों में स्थित व्यक्तिगत नगरों के अध्ययन किये जाने लगे। उजागिर सिंह (1958) और आर० एल० द्विवेदी (1964) ने इलाहाबाद का, ए० के० दत्त (1963) ने जमशेदपुर का, एस० एम० आलम (1965) ने हैदराबाद–सिकन्दराबाद का, हरिहर सिंह (1972) ने कानपुर का, बी० पी० राव (1977) ने विशाखापटनम् नगर का अध्ययन किया। व्यक्तिगत नगरों का अध्ययन इतना लोकप्रिय हुआ कि 1980 तक देश में अधिकांश महत्वपूर्ण नगरों का भौगोलिक अध्ययन किया जा चुका था। इसके अतिरिक्त नगरों के कार्यात्मक वर्गीकरण, नगरों की कार्यात्मक संरचना, नगरों की आकारिकी, नगर–प्रदेश (अमलैण्ड), ग्रामीण–नगरीय उपांत, देश एवं विभिन्न प्रदेशों के नगरीकरण आदि विषयों पर पर्याप्त अध्ययन किये गये और उसके लिए विदेशी विद्वानों द्वारा प्रयुक्त गुणात्मक और परिमाणात्मक दोनों प्रकार की विधियों का प्रयोग किया गया। 1980 के पश्चात् भारतीय भूगोलवेत्ताओं द्वारा भारत में नगरीकरण से उत्पन्न विभिन्न सम–सामयिक समस्याओं के अध्ययन पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है।

वाराणसी एवं कलकत्ता के भूगोल विभागों की प्रेरणा से इस अवधि में नगरीय भूगोल का विस्तृत अध्ययन हुआ। नगरीय भूगोल का अध्ययन भारतीय भूगोलवेत्ताओं में बड़ा लोकप्रिय हो गया। भारत तथा विभिन्न प्रदेशों में नगरीकरण की प्रवृत्ति तथा अनेक छोटे बड़े नगरों का आकारिकीयएवं कार्यात्मक अध्ययन एवं नगर–ग्राम अन्तर्सम्बन्ध के भौगोलिक विवेचन पर विशेष ध्यान दिया गया। नगरों के आन्तरिक कार्यात्मक क्षेत्रों तथा उनके प्रभाव क्षेत्रके सीमांकन की विभिन्न विधियों पर भी सम्यक प्रकाश डाला गया। तथापि विभिन्न कार्यात्मक अन्तर्सम्बन्धों के अध्यारीपण विधि का अधिक उपयोग हुआ। इस क्षेत्र में प्रो० रामलोचन सिंह, प्रो० वी० एल० एस० प्रकाश राव, प्रो० उजागिर सिंह तथा प्रो० मंजूर आलम ने विशेष योगदान किये।

12.9.3 जनसंख्या भूगोल–

भारत में जनसंख्या भूगोल के क्रमबद्ध शोध का आरंभ करने का सर्वप्रथम श्रेय प्रो० जी० एस० गोसल का है जिन्होंने 1956 में जी० टी० ट्रिवार्था के निदेशन में विसकांसिन विश्वविद्यालय (सं० रा० अ०) में अपना शोध प्रबंध प्रस्तुत किया था जिसकाविषय था 'भारत की जनसंख्या का भौगोलिक विश्लेषण पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ में भूगोल के प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष के पद पर रहते हुए प्रो० गोसल ने पंजाब विश्वविद्यालय में 1950 के दशक में ही स्नातकोत्तर स्तर पर जनसंख्या भूगोल का शिक्षण आरंभ कर दिया था। इसीलिए प्रो० गोसल को भारत में जनसंख्या भूगोल का संस्थापक माना जाता है। उन्होंने जनसंख्या भूगोल में जनसंख्या अध्ययनों के लगभग सभी महत्वपूर्ण पक्षों को सम्मिलित किया और अपने विद्यार्थियों को जनसंख्या भूगोल में शोध कार्य करने हेतु प्रोत्साहित किया। प्रो० गोसल के कुशल निर्देशन में गोपाल कृष्ण (1968), आर० सी० चाँदना (1969) और एस० मेहता (1970) ने 1960 के दशक में पी–एच० डी० उपाधि हेतु अपने शोध प्रबंध पंजाब विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया। इस प्रकार पंजाब विश्वविद्यालय जनसंख्या अध्ययन का प्रमुख केन्द्र बन गया। प्रो० गोसल ने 'भारतीय जनसंख्या भूगोलवेत्ता संघ' (भूगोल विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय) की स्थापना किया जिसके द्वारा 1979 से 'पॉपुलेशन जाग्राफी' नामक शोध पत्रिका का प्रकाशन हो रहा है जिसका जनसंख्या भूगोल के प्रचार–प्रसार तथा इसे लोकप्रिय बनाने में सराहनीय योगदान रहा है।

1961 ई० की गणना से प्राप्त आँकड़ों का भौगोलिक विवेचन इस अवधि की प्रमुख विशेषता रही। राष्ट्रीय मानचित्र संगठन ने जनसंख्या वितरण के मानचित्र प्रस्तुत किये। जनगणना संगठन ने भी जनगणना एटलस

प्रस्तुत किये। इनके अतिरिक्त विशेषतः पंजाब विश्वविद्यालय में प्रो० गोसल की प्रेरणा से सम्पूर्ण भारत में जनसंख्या के वितरण एवं घनत्व, जनसंख्या वृद्धि एवं प्रब्रजन, यौन संरचना, साक्षरता, व्यावसायिक संरचना, आदि का भौगोलिक विश्लेषण किया गया। प्रादेशिक स्तर पर भी जनसंख्या के विविध पक्षों का विश्लेषण हुआ। प्रो० गोसल ने संयुक्तराज्य में प्रो० त्रिवार्था के निर्देशन में शोध उपाधि प्राप्त की। इनके माध्यम से संयुक्त राज्य अमेरिका की भूगोल की मान्यतायें सर्वप्रथम भारत में पहुंचीं। प्रो० गोसल ने भारत के विश्वविद्यालयों में 'भौगोलिक चिन्तन' की प्रवृत्ति के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने में विशेष भूमिका निभायी।

12.9.4 राजनीतिक भूगोल–

भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों में स्नात्तकोत्तर स्तर पर राजनीतिक भूगोल को 1950 के पश्चात् सम्मिलित कर लिया गया था किन्तु इसका व्यवस्थित विकास 1960 के पश्चात् हुआ। राजनीतिक भूगोल के विकास में प्रारंभिक कार्य पाश्चात्य भूगोलवेत्ताओं ओ० एच० के० स्पेट, ईस्ट, ग्रिफिथ टेलर आदि ने किया था। ईस्ट और स्पेट ने 1953 में 'चेंजिंग मैप ऑफ एशिया ' नामक पुस्तक प्रकाशित किया था जिसमें भारत के राजनीतिक भूगोल का विवरण भी है। ग्रिफिथ टेलर ने 1962 में 'मॉडर्न इंडिया' नामक पुस्तक लिखा जो भारत के राजनीतिक भूगोल की महत्वपूर्ण पुस्तक है। भारतीय विद्वानों में राजनीतिक भूगोल पर सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य आर० डी० दीक्षित का माना जाता है जिन्होंने भारत के राजनीतिक भूगोल से सम्बंधित अनेक लेख प्रकाशित करने के साथ ही राजनीतिक भूगोल पर दो पाठ्य पुस्तकें भी लिखा हैदृ(1) संघवाद का भूगोल (1975), और (2) राजनीतिक भूगोल (1982)। रोहतक में भूगोल के प्रोफेसर एवं अध्यक्ष रहे प्रो० दीक्षित के अध्ययन विषयों में प्रमुख हैं। राष्ट्रीय एकता, संवाद, राष्ट्र राज्य की उत्पत्ति, निर्वाचन भूगोल आदि। प्रो० दीक्षित ने ही राजनीतिक भूगोल में जननिक उपागम का सर्वप्रथम प्रयोग किया।

1980 के पश्चात् इलाहाबाद विश्वविद्यालय राजनीतिक भूगोल के अध्ययन का प्रमुख केन्द्र बन गया। प्रो० आर० एल० द्विवेदी ने 'फन्डा मेंटलस ऑफ पॉलिटिकल जाग्राफी ' नामक पुस्तक लिख कर राजनीतिक भूगोल के अध्ययन को प्रोत्साहित किया और उनके निदेशन में कई प्राध्यापकों तथा शोध छात्रों ने राजनीतिक भूगोल पर शोध प्रबंध प्रस्तुत किये। बाद के अधिकांश शोध कार्य निर्वाचन भूगोल से सम्बंधित हैं। निर्वाचन भूगोल पर गोरखपुर विश्वविद्यालय में भी कई शोध छात्रों ने शोध प्रबंध प्रस्तुत किये। देश के अन्य विश्वविद्यालयों – पटना, दिल्ली, नई दिल्ली, अलीगढ़, चण्डीगढ़ आदि में भी राजनीतिक भूगोल में महत्वपूर्ण शोध कार्य किये गये हैं।

12.9.5 प्रादेशिक भूगोल–

इसके अन्तर्गत प्रदेश की संकल्पना, प्रादेशीकरण (प्रदेशों का सीमांकन) तथा विभिन्न प्रदेशों के भौगोलिक अध्ययन को सम्मिलित किया जाता है। सर्वप्रथम 1938 में एस० पी० चटर्जी ने मेघालय का प्रादेशिक भूगोल लिखा था। मो० अनस ने न्यूगिनी और मध्यपूर्व के प्रादेशिक भूगोल पर क्रमशः 1960 और 1961 में दो शोध पत्र प्रकाशित किया था। प्रादेशिक भूगोल के विकास में एस० पी० चटर्जी, रामलोचन सिंह और सी० डी० देशपाण्डे के योगदान अधिक महत्वपूर्ण हैं। प्रो० चटर्जी ने प्रादेशिक भूगोल पर कई विद्वतापूर्ण लेख प्रकाशित किया था जिनमें अधिकांश सैद्धान्तिक पक्ष से सम्बंधित थे। प्रादेशिक भूगोल पर प्रकाशित उनके लेखों में – 1. प्रादेशिक भौगोलिक संरचना के अध्ययन के विविध पक्ष (1966), 2. प्रदेश, प्रादेशीकरण और आर्थिक प्रादेशीकरण (1967), और 3. भारत के आर्थिक प्रदेश (1971) विशेष उल्लेखनीय हैं। आर० एल० सिंह ने अपने सहयोगियों की सहायता से भारत को प्रादेशिक प्रदेशों में विभक्त किया और दो पुस्तकों को सम्पादित किया– 1. भारत का प्रादेशिक अध्ययन (1968) और 2. भारत–एक प्रादेशिक भूगोल (1971)। कई दशको से संदर्भ ग्रंथ के रूप में प्रयुक्त होने वाली पुस्तक 'भारत–एक प्रादेशिक भूगोल' में भारत को बृहत, मध्यम और लघु स्तरीय प्रदेशों में विभाजित किया गया है और प्रत्येक का विस्तृत वर्णन किया गया है। पुस्तकों के अतिरिक्त प्रदेश की संकल्पना तथा प्रादेशीकरण पर कई लेख भी प्रकाशित किया है। मोहम्मद शफी एवं मुनिस रजा ने 1971 में 'स्टडीज इन आपोलियड ऐंडरिजनल जाग्राफी ' नामक पुस्तक सम्पादित किया जिसमें अनेक प्रख्यात् भूगोलवेत्ताओं के लेख सम्मिलित हैं।

प्रादेशिक भूगोल पर इस अवधि में ध्यान दिया गया। नेशनल बुक ट्रस्ट के प्रयास से कुछ राज्यों के प्रादेशिक भूगोल प्रकाशित हुए। 1968 ई० में प्रकाशित इंडिया रिजनल स्टडीज में 12 प्रदेशों के माध्यम से भारत की प्रादेशिक विविधता को उमाड़ा गया। 1970 ई० में प्रो० रामलोचन सिंह द्वारा सम्पादित 'इंडिया' एरीजनल जाग्राफी' द्वारा पहली बार भारतीय भूगोलवेत्ताओं द्वारा देश का सम्पूर्ण स्वरूप प्रस्तुत किया गया। इसके अतिरिक्त बिहार का प्रादेशिक भूगोल भी लिखा गया। विभिन्न दृष्टिकोण से भारत के प्रादेशिकरण में भूगोलवेत्ताओं ने अधिक

अभिरूचि ली। नियोजन हेतु प्रादेशिक सर्वेक्षण, नियोजन हेतु प्रादेशीकरण, तथा प्रादेशिक विकास के स्तर के अनुसार प्रदेशों का सीमांकन तथा उनकी प्रादेशिक विकास क्षमताओं एवं विशेषताओं का निरूपण किया गया। इसी क्रम में नदी घाटियों का भी अध्ययन किया गया जिसमें दामोदर घाटी का प्रादेशिक अध्ययन विशेष उल्लेखनीय हैं। इस क्षेत्र में कुमारी पी० सेनगुप्ता का कार्य सराहनीय था। दिवंगत कुमारी सेन गुप्ता राष्ट्रीय जनगणना कार्यालय से सम्बद्ध थीं। उन्होने सोवियत संघ की श्रीमती गेलिना सदास्युक के सहयोग से 1961 ई० में सम्पूर्ण देश को नियोजन प्रदेशों में बाँटकर प्रत्येक प्रदेश की विकास सम्भावनाओं पर प्रचुर प्रकाश डाला था।

12.9.6 भौतिक भूगोल–

1970वें दशक तक भौतिक भूगोल में शोध कार्य की प्रगति अत्यंत मन्द थी। अधिकांश शोध कार्य मानव भूगोल की विभिन्न शाखाओं से सम्बंधित होते थे। भौतिक भूगोल में सर्वाधिक शोध कार्य भू–आकृति विज्ञान से सम्बंधित रहे हैं। 1970 के पश्चात् भू–आकृतिक अध्ययनों में मात्रात्मक विधियों अर्थात् आकारमिति का प्रयोग खूब किया गया। भौतिक भूगोल के अन्तर्गत शैल संरचना, मृदा संरचना, भू–आकृति विश्लेषण, ढाल विश्लेषण, अपवाह तंत्र, जलवायविक एवं मौसम संबंधी अध्ययन आदि सम्मिलित हैं। 1940 के दशक में एस० सी० डेल्टा' पर शोध पत्र प्रकाशित किया था। इनायत अहमद ने 'भारत का तटीय भूआकृति विज्ञान' मजूमदार ने 'बंगाल डेल्टा की नदियां' और के० बागची ने 'गंगा और 'भू–आकृति विज्ञान' नामक दो पुस्तकें लिखा था। के० आर० दीक्षित ने भारत के पश्चिमी तट के भू–आकृतिक स्वरूप का अध्ययन किया है जो अत्यंत महत्वपूर्ण है।

भू–आकृतिविज्ञान के क्षेत्र में सविन्द्र सिंह का विशिष्ट योगदान माना जाता है। उन्होंने 1969 में 'भू–आकृति विज्ञान' नामक पाठ्य पुस्तक लिखा जो हिन्दी भाषी क्षेत्रों में अधिक लोकप्रिय हुई। इसके पश्चात् उन्होंने 'भौतिक भूगोल' और 'पर्यावरण भूगोल' नामक पाठ्य पुस्तकें लिखा। उन्होंने बाद में इन तीनों पुस्तकों को अंग्रेजी भाषा में भी प्रकाशित किया। उन्होंने स्वयं भूआकृति विज्ञान विषय में ही डी० फिल० का शोध प्रबंध (1978) प्रस्तुत किया और इससे सम्बंधित अनेक शोधपत्र प्रकाशित किये। वे भू–आकृति विज्ञान के विशेषज्ञ बन गये और अपने कुशल निर्देशन में अनेक शोधार्थियों को डी० फिल० की उपाधि के निमित्त इसी विषय पर शोध कार्य कराया। उनके नेतृत्व में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में 'भू–आकृति विज्ञानवेत्ताओं की भारतीय संस्था' को गठित किया गया है जिसके माध्यम से 1996 से एक शोध पत्रिका प्रकाशित हो रही है।

भौतिक भूगोल के विकास में पी० दयाल (पटना), आर० पी० सिंह (बोध गया), एस० पाल (दिल्ली), आदि विद्वानों के योगदान भी महत्वपूर्ण हैं। मीरा वातल एवं आर० सी० शर्मा ने समुद्र विज्ञान एस० के० पाल और डी० एस० लाल ने जलवायु विज्ञान और समुद्र विज्ञान नामक पुस्तकें लिखा है जो स्नातक तथा स्नातकोत्तर कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी पाठ्य पुस्तकें हैं। जलवायु विज्ञान में वी० सी० सुब्रमण्यम का भी महत्वपूर्ण योगदान है।

12.9.7 सामाजिक भूगोल–

मानव भूगोल की एक शाखा के रूप में सामाजिक भूगोल का विकास काफी देर से हुआ। इसके अन्तर्गत जाति, प्रजाति, धर्म, भाषा, शिक्षा, रीति–रिवाज, सामाजिक परिवर्तन एवं समस्याओं आदि का अध्ययन किया जाता है। सर्वप्रथम 1957 में लेखराज सिंह ने उत्तर प्रदेश के तराई प्रदेश में रहने वाली 'थाः' जनजाति का भौगोलिक अध्ययन किया और 'तराई रिजनाल – ए स्टडी इन हुमंन् जाग्राफी ' शीर्षक से डी० फिल० शोध प्रबंध प्रस्तुत किया। इसके पश्चात् सी० डी० देशपाण्डे ने 1973 में नागा ग्राम, कुमकुम मजूमदार ने 1973 में ही 'पूर्वी गुजरात में जनजातियों का वितरण और मेहदी रजा ने 1973 मे जीवन पद्धति पर प्रकाश डाला। मुनीस रजा ने 1979 में सामाजिक भूगोल को परिभाषित करने का प्रयास किया। सामाजिक भूगोल में योगदान करने वाले अन्य भूगोलवेत्ताओं में ए० बी० मुखर्जी (1973), आर० एस० श्रीवास्तव, एस० एल० कायस्थ, के० एन० सिंह, बी० के० भारद्वाज आदि के कार्य भी उल्लेखनीय हैं।

12.9.8 तत्वगत मानचित्र–

विशेषतया राष्ट्रीय मानचित्र संगठन तथा जनगणना संगठन के मानचित्र विभाग के प्रयास से इस अवधि में तत्वगत मानचित्रण की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति हुई। ऊपर दिये गये विवरण से प्रकट है कि कुल मिलाकर 1960–70 में भारत में भूगोल का उत्कर्ष हुआ। 1968 ई० में भारत में अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक कॉग्रेस इस उपलब्धि का प्रतीक माना जा सकता है। इस कॉंग्रेस में देश के भूगोलवेत्ताओं ने बड़े उत्साह एवं सक्रियता पूर्वक मान लिया

तथा इससे 1970 के दशक में भूगोल की प्रगति का मार्ग भी प्रशस्त हुआ। उल्लेखनीय है कि 1960 के दशक में भारत में भौगोलिक विवेचन प्रधानतया परम्परागत मानचित्र पर आधारित था। विधि–तन्त्रगत जागरूकता उत्पन्न तो हुई परन्तु उसमें गहनअभिःचि का अभी अभाव था।

12.10 भारतीय भौगोलिक परिषदों का योगदान

सोसायटी तथा उनकी पत्रिकाओं के द्वारा भौगोलिक अनुसंधान को सम्मेलन/गोष्ठी तथा शोध–पत्रों के प्रकाशन द्वारा समृद्ध करने की परम्परा अग्रणी यूरोपीय तथा अमेरिकी देशों ने प्रारम्भ एवं सशक्त की। भारत में भी उनका अनुकरण, प्रारम्भ एवं विकास किया गया है। इनका विकास–क्रम निम्नलिखित है

1. द इण्डियन जियोग्राफिकल सोसाइटी, मद्रास (चेन्नई), 1926 में एन सुब्रमणियम द्वारा प्रारम्भ।
2. जियोग्राफिकल सोसाइटी ऑफ इण्डिया, कलकत्ता,1931।
3. बॉम्बे जियोग्राफिकल एसोसिएशन बम्बई (मुम्बई) 1938 – यहाँ रॉयल जियोग्राफिकल सोसाइटी, लन्दन ने शाखा कार्यालय 1832 में स्थापित किया था। नेशनल जियोग्राफिकल सोसाइटी ऑफ इण्डिया, बनारस,
4. 1946 एच०एल० छिब्बर।
5. ए०एम०यू० जियोग्राफिकल सोसाइटी, अलीगढ़, 1946 (प्रारम्भ 1925–कर्जन जियोग्राफिकल सोसायटी)। काउन्सिल ऑफ जियोग्राफर्स ऑफ इण्डिया, 1947।
6. 1955, डी०एन० वाडिया।
7. इण्डियन जियोग्राफर्स काउन्सिल (आई जी सी), नई दिल्ली,
8. हैदराबाद जियोग्राफी काउन्सिल, 1962, वी०एन० चतुर्वेदी।
9. उत्तर भारत भूगोल–परिषद, गोरखपुर, 1968।
10. इण्डियन जियोग्राफिकल काँग्रेस, 1972, नई दिल्ली।
11. नेशनल एसोसिएशन ऑफ जियोग्राफर्स, इण्डिया (नागी), 1978 (सबसे बड़ी राष्ट्रीय एसोसिएशन)।
12. द एसोसिएशन ऑफ पापुलेशन जियोग्राफर्स ऑफ इण्डिया, चण्डीगढ़ (1979)।

ये भौगोलिक सोसाइटी सामान्यतः नियमित अन्तराल पर आम सम्मेलन तथा विशिष्ट विषयों पर गोष्ठी तथा वर्कशॉप आयोजित करती हैं। इनमें ताजा अनुसंधान के परिणाम प्रस्तुत होते हैं तथा उन पर विवेचना होती है। उल्लेखनीय भौगोलिक गोष्ठी/सम्मेलनों में ए०एम०यू० में अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल सम्मेलन, 1956य पिलानी में IGC का मैप इण्डिया, 1957, कोलकात्म (कलकत्ता) में IGU का अन्तर्राष्ट्रीय भौगोलिक सम्मेलन, 1968 (एस०पी० चटर्जी), बनारस में विकासशील देशों का नगरीय भूगोल सम्मेलन, 1968य इण्डियन जियोग्राफिकल काँग्रेस, 1972 नई दिल्ली (मूनिस रजा)य नागी के वार्षिक सम्मेलन 1979 से प्रतिवर्ष सामान्यतः किसी विश्वविद्यालय मेंय इण्डो–ब्रिटिश गोष्ठी सीरीज, इण्टरनेशनल सम्मेलन ऑन एशियन अर्बेनाजेशन 2000, चेन्नई (एस० सुब्बैय्या)य मैप इण्डिया 99 कॉन्फरेन्स, 1999 नई दिल्ली (आई यस आर ओ तथा सेन्टर फॉर स्पेशलडेटाबेस मैनेजमैण्ट एण्ड सोल्यूशन्स) का उल्लेख वांछनीय है। भारतीय प्रमुख भूगोल पत्रिकाओं (जर्नलस) को यहाँ सूचीबद्ध कर दिया गया है'

1. इण्डियन जियोग्राफिकल जर्नल, चेन्नई (1926)।
2. जियोग्राफिकल रिव्यू ऑफ इण्डिया, कोलकाता (1933)।
3. नेशनल जियोग्राफिकल जर्नल ऑफ इण्डिया, वाराणसी (1946)।
4. द जियोग्रफर, अलीगढ़ (1926–1948)।
5. बॉम्बे जियोग्राफिकल मैगजीन, मुम्बई।
6. इण्डियन जियोग्रफर, नई दिल्ली।

7. द डकन जियोग्रफर, हैदराबाद (1956)।
8. उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, गोरखपुर (1968)।
9. जियोग्राफिकल आउटलुक, रांची।
10. इण्डियन जर्नल ऑफ जियोग्रफर, जोधपुर।
11. द नेशनल जियोग्रफर, इलाहाबाद तथा
12. द ऐनाल्स ऑफ नागी (राष्ट्रीय) (1981)।
13. ट्रॉन्जैक्शनस, आई०आई०जी०।
14. पॉपुलेशन जियोग्राफी, चण्डीगढ़ (1979)।

इनके अलावा कुछ स्थानीय पत्रिकायें भी अस्तित्व में रही हैं द जियोग्राफिकल ऑबजर्वर, मेरठ, जियोग्राफिकल व्यू पॉइण्ट, आगरा, जियोग्राफिकल नॉलेज, कानपुर, भू–दर्शन, उदयपुर, उत्तर प्रदेश जियोग्राफिकल जर्नल, कानपुर, ऐनाल्स ऑफ द राजस्थान जियोग्राफिकल एसोसिएशन, राजस्थान। करीब एक दर्जन मुख्य (राष्ट्रीयध्प्रादेशिक स्तर) तथा आधा दर्जन स्थानीय भौगोलिक पत्रिकाओं में कुछ निरन्तर जीवित और सक्रिय रही, कुछ अनियमित रही हैं तथा कुछ को पुनर्जीवन चाहिये।

12.11 भारत में भूगोल के संस्थापक

बीसवीं सदी के तृतीय दशक तक भारत के कुछ गिने चुने विश्वविद्यालयों अथवा उनसे सम्बद्ध महाविद्यालयों में ही स्नातक स्तरीय कक्षाओं में भूगोल के अध्ययन की व्यवस्था हो पायी थी। स्नातकोत्तर स्तर पर भूगोल के अध्ययन अध्यापन का आरंभ 1935 के पश्चात् सम्भव हो पाया। भारत में भौगोलिक अध्ययन (या चिन्तन) के तीन ऐतिहासिक चरणों की व्याख्या ऊपर की जा चुकी है। प्रथम चरण की अवधि 1920 से 1955 तक, दूसरे चरण की अवधि 1955 से 1975 तक मानी गयी है और 1975 के पश्चात् की कालावधि को तीसरे चरण के अन्तर्गत रखा गया है। उन भारतीय भूगोलवेत्ताओं को जो सामान्यतः 1955 से पूर्व देश के किसी विश्वविद्यालय अथवा महाविद्यालय में भूगोल के प्राध्यापक या प्रोफेसर के रूप में नियुक्त थे और भौगोलिक शिक्षण के प्रचार–प्रसार में संलग्न थे, उन्हें प्रथम पीढ़ी का भूगोलवेत्तामाना जा सकता है। प्रथम पीढ़ी के भूगोलवेत्ताओं ने विभिन्न विश्वविद्यालयों में 1920 से लेकर 1955 तक भूगोल विभाग को स्थापित किया था। इस श्रेणी के अधिकांश भूगोलवेत्ताओं ने संस्थापक विभागाध्यक्ष के रूप में कार्य किया था। इनमें से कुछ भूगोलवेत्ताओं ने 1970 के दशक तक भूगोल के विकास में सक्रिय योगदान दिया था।

भारत में भूगोल के संस्थापक विद्वानों में प्रोफेसर शिव प्रसाद चटर्जी (कलकत्ता) का नाम सबसे पहले आता है। भूगोल विभागों के संस्थापक तथा भूगोल के विकास में उत्कृष्ट योगदान देने वाले अन्य भूगोलवेत्ताओं में एच० एल० छिब्बर (वाराणसी), एस० सी० चटर्जी (पटना), रामनाथ दूबे (इलाहाबाद), जार्ज कुरियन (मद्रास), इबादुर रहमान खाँ तथा ताहिर रिजवी (अलीगढ़) आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनका संक्षिप्त परिचय अग्रांकित हैं।

(1) शिव प्रसाद चटर्जी –बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों में भूगोल विभाग की स्थापना तथा महत्वपूर्ण योगदान करने वाले अग्रणीय विद्वानों में प्रो० एस० पी० चटर्जी का नाम सर्वोपरि है। प्रो० चटर्जी 1941 में कलकत्ता विश्वविद्यालय में स्थापित भूगोल विभाग के संस्थापक अध्यक्ष थे जो 1967 (अवकाश ग्रहण) तक इस पद पर कार्य करते रहे। चटर्जी ने उच्च शिक्षा भौमिकीमें प्राप्त की थी। वे 1926 में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से भूगर्भशास्त्र में एम० एससी० करने के पश्चात् शोध के लिए पेरिस (फ्रांस) चले गये। वहाँ उन्होंने विश्वविख्यात भौतिक भूगोलवेत्ता डी मार्तोन के निर्देशन में 'मेघालय पठार' पर शोध प्रबंध प्रस्तुत किया और डी० लिट० की उपाधि प्राप्त किया। 1928 में वे रंगून विश्वविद्यालय में भूगर्भशास्त्र एवं भूगोल विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए जहाँ 1932 तक रहे। इसके पश्चात् पुनः शोध हेतु लन्दन चले गये जहाँ से टीचर्स डिप्लोमा प्राप्त किया। उन्होंने लंदन विश्वविद्यालय से पी०एच० डी० भी किया। लंदन विश्वविद्यालय से पी०एच० डी० की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् भारत लौटने पर उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय में भूगोल के प्राध्यापक के रूप में कार्य आरंभ किया। मूलतः भौमिकी के विद्यार्थी होने के कारण उनकी विशेष रुचि भौतिक भूगोल विशेषतः भू–आकृति विज्ञान में

होना स्वाभाविक था। इसी कारण उनके नेतृत्व में कलकत्ता विश्वविद्यालय में भौतक भूगोल के अध्ययन पर अधिक बल दिया गया। किन्तु प्रो० चटर्जी ने मानव भूगोल और प्रादेशिक भूगोल के उत्थान हेतु भी महत्वपूर्ण योगदान दिया।

प्रो० चटर्जी ने कलकत्ता ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारत में भूगोल के स्नातकोत्तर स्तर के अध्ययन–अध्यापन को प्रोत्साहित करने का सराहनीय कार्य किया। उन्होंने भारत में भौगोलिक क्षितिज को काफी विस्तृत बनाने का सफल प्रयास किया था। यद्यपि प्रो० चटर्जी भूगोल के समग्र विकास हेतु आजीवन प्रयत्नशील रहे किन्तु उन्होंने 'मेघालय का प्रादेशिक भूगोल' नामक उत्कृष्ट पुस्तक भी लिखा था। भारत के प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता प्रो० रामलोचन सिंह और प्रो० प्रकाश राव प्रो० चटर्जी के ही शिष्य थे जिन्होंने मानव भूगोल, नगरीय भूगोल और प्रादेशिक भूगोल के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया। प्रो० एस० पी० चटर्जी का एक महान योगदान उनके निर्देशन में स्थापित 'नेशनल एटलस आर्गनाइजेशन' है जिसकी स्थापना 1956 में कलकत्ता में हुई थी। इस संगठन के तत्वावधान में मानचित्र निर्माण तथा उससे सम्बंधित शोध कार्य में तीव्रगति से प्रगति हुई। प्रो० चटर्जी के प्रयास से 1968 में दिल्ली में अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल कांग्रेस (आईजी यु) का अधिवेशन हुआ था जिसकी अध्यक्षता भी उन्होंने ही किया था। किसी एशियाई देश में होने वाला यह प्रथम अधिवेशन था।

(2) एच० एल० छिब्बर–छिब्बर मूलतः भू–आकृतिविज्ञानी थे जिन्होंने लन्दन विश्वविद्यालय से डी० एससी० की उपाधि प्राप्त किया था। प्रो० एच० एल० छिब्बर ने भूआकृति विज्ञान में शोध कार्य किया था। वे बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में 1933 में भौमिकी के प्राध्यापक नियुक्त हुए और 1936 में रंगून विश्वविद्यालय में भौमिकी एवं भूगोल विभाग के विभागाध्यक्ष नियुक्त हुए। वे 1946 में बनारस हिन्दू विश्विद्यालय (बी.एच. यू .) बाराणसी में भूगोल विभाग के संस्थापक अध्यक्ष बने और वहाँ 1946 से 1955 तक कार्यरत थे। लम्बी बीमारी के कारण फरवरी 1955 में उनका स्वर्गवास हो गया था। उन्होंने भौगोलिक अध्ययन और शोध को प्रोत्साहित करने का अग्रणीय कार्य किया था। प्रो० छिब्बर मूलतः एक भूगर्भशास्त्री थे और एम० एससी० तथा पी०एच० डी० की डिग्रियाँ भूगर्भशास्त्र में ही प्राप्त किया था। उन्होंने कई पुस्तकों की रचना की।

(3) एस० सी० चटर्जी–एस० सी० चटर्जी ने लन्दन विश्वविद्यालय से पी०एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी। उन्होंने पटना विश्वविद्यालय में 1949 में भूगोल के स्नातकोत्तर विभाग को स्थापित किया था। भूगोल विभाग के संस्थापक अध्यक्ष के पद पर कार्य करते हुए प्रो० चटर्जी ने पटना विश्वविद्यालय में मुख्यतः भौतिक भूगोल के अध्ययन–अध्यापन हेतु सुदृढ़ आधार स्थापित किया था।

(4) रामनाथ दूबे –इलाहाबाद विश्वविद्यालय में भूगोल विभाग के संस्थापक डॉ० रामनाथ दूबे ने 1925 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय (एस० डी० कालेज, कानपुर) से प्रथम स्थान के साथ प्रथम श्रेणी में बी० काम० की लिया और उसी वर्ष उनकी नियुक्ति एस० डी० कालेज कानपुर में लेक्चरर के पद पर हो गयी। अगले वर्ष उनकी नियुक्ति इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वाणिज्य एवं अर्थशास्त्र विभाग में भूगोल के प्रवक्ता पद पर हुई। 1931 में प्रो० दुबे उच्च शिक्षा के लिए पेरिस (फ्रांस) चले गये। वहाँ उन्होंने पेरिस विश्वविद्यालय में प्रवेश लेकर डी मार्तोन तथा डिमांजियां के निर्देशन में अपना शोध प्रबंध प्रस्तुत किया और 1933 में डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त करके स्वदेश लौट आये। इसी बीच उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'इकोनॉमिक एंड कोमार्सियल जाग्राफी ' प्रकाशित किया जो विद्यार्थियों तथा प्राध्यापकों के बीच बहुत लोकप्रिय हुई। पेरिस विश्वविद्यालय ने उनके शोधग्रंथ को 1925 में प्रकाशित किया था। पूर्ण सम्मान और अनुभव के साथ डॉ० दूबे 1935 में पुनः इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अपने पूर्व स्थान (वाणिज्य एवं अर्थशास्त्र विभाग) पर आ गये। उनके प्रयास से 1937 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में स्नातक स्तरीय भूगोल विभाग स्थापित हुआ किन्तु अभी भी उसका संचालन वाणिज्य एवं अर्थशास्त्र विभाग द्वारा ही होता था। बाद में भूगोल विभाग को इतिहास विभाग के अधीन कर दिया गया। प्रोफेसर दूबे के अथक प्रयास से 1946 में भूगोल के स्वतंत्र विभाग की स्थापना हुई और उन्हें रीडर तथा संस्थापक विभागाध्यक्ष के पद पर प्रोन्नति प्राप्त हुई। वे 1953 में भूगोल के प्रोफेसर के पद पर प्रोन्नत हुए जहाँ वे सेवानिवृत्ति (14 नवम्बर, 1958) तक कार्यरत रहे। 5 मई 1960 को उनका स्वर्गवास हो गया।

रामनाथ दूबे प्रोफेसर दूबे अपने लोकप्रिय व्याख्यानों तथा पुस्तकों के माध्यम से भूगोल जगत् की सेवा में आजीवन तत्पर रहे। उनकी सर्वाधिक रुचि आर्थिक भूगोल में थी।

(5) जार्ज कुरियन –जार्ज कुरियन ने लन्दन विश्वविद्यालय से पी०एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी। 1948 में मद्रास विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर भूगोल विभाग की स्थापना हुई और जार्ज कुरियन को भूगोल विभाग का

संस्थापक अध्यक्ष बनाया गया। डॉ० कुरियन ने दक्षिणी भारत में भूगोल के अध्ययन–अध्यापन को प्रोत्साहित किया। उनकी विशेष रुचि आर्थिक भूगोल में थी किन्तु उन्होंने समग्र भूगोल के विकास की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास तथा मार्गदर्शन किया। वे आर्थिक भूगोल के विशेषज्ञ माने जाते हैं यद्यपि उन्होंने समग्र भूगोल के विकास पर बल दिया।

(6) इबादुर रहमान खाँ –भारत के किसी विश्वविद्यालय में भूगोल को स्थापित करने वाले प्रथम भूगोलवेत्ता इबादुर रहमान खाँ थे जिन्होंने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में 1936 में स्नातकोत्तर भूगोल विभाग की स्थापना की थी। डॉ० खाँ लन्दन विश्वविद्यालय से पी०एच० डी० की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् भारत में भौगोलिक अध्ययन को प्रोत्साहित करने का आरंभिक प्रयास किया था। उन्होंने अलीगढ़ विश्वविद्यालय में शिक्षक प्रशिक्षण की व्यवस्था करने के साथ ही शोध सम्बंधी अनेक सुविधाएं उपलब्ध कराने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

(7) सैयद मोहम्मद ताहिर रिजवी –अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में भूगोल विभाग को संगठित करने में प्रोफेसर ताहिर रिजवी का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है। वे प्रो० आई० आर० खाँ के पश्चात् 1949 से लेकर 1962 तक वहाँ भूगोल विभाग के अध्यक्ष के रूप में कार्यरत रहे। प्रो० रिजवी 1950 तक भारत के अग्रगण्य भूगोलवेत्ता के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। वे 1941 में ही भारतीय विज्ञान कांग्रेस के भू–विज्ञान एवं भूगोल अनुभाग के अध्यक्ष चुने गये थे। उनकी विशेष रुचि अनुप्रयुक्त भूगोल में थी।

12.12 अभिनव प्रवृत्ति

1969 के पश्चात भूगोलवेत्ताओं में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भूगोल की अद्यतन प्रवृत्तियों का अनुसरण करते हुए भौगोलिक शोध में अग्रसर होने के स्पष्ट लक्षण दृष्टिगत होते हैं। 1968 ई० में अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल कांग्रेस के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय भूगोल के विधितन्त्रगत विकास–दिशा से भारतीय भूगोलवेत्ता प्रत्यक्षतया परिचित हुए। इसके अतिरिक्त कई युवा भूगोलवेत्ता संयुक्त राज्य अमेरिका से, जो अब भूगोल में विधितन्त्रगत प्रगति का प्रमुख मंच बन गया था, शोध अनुभव प्राप्त करके लौटे। अतएव उनके माध्यम से भी देश में भूगोल को नयी दिशा में विकास करने की प्रेरणा प्राप्त हुई। देश में भूगोल के सम्यक विकास की आवश्यकता अधिक तीव्रता से इस कारण भी अनुभव होने लगी कि विगत तीन पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा देश के आर्थिक विकास का जो भी प्रयास हुआ उसमें क्षेत्रीय असमानता प्रखर हो गयी। अतएव क्षेत्रीय विषमता को कम करने के लिये प्रादेशिक नियोजन की अनिवार्यता को योजना आयोग द्वारा भी स्वीकार किया गया। इस कार्य में भूगोलवेत्ताओं को सक्रिय योगदान करने का अवसर प्राप्त हुआ। अब वे मात्र शैक्षणिक आत्मतुष्टि हेतु नहीं वरन देश की ज्वलन्त समस्याओं के निराकरण में योगदान करने की भावना से शोध कार्य में संलग्न हुए। इस प्रकार की व्यावहारिक समस्याओं के निदान ढूंढ़ने में भूगोलवेत्ताओं की भूमिका स्वीकार करते हुए सरकारी, अथवा स्वायत्त नियोजन एवं शोध संस्थानों ने भूगोल की शोध परियोजनाओं को आवश्यक आर्थिक सहायता भी सुलभ कराना प्रारम्भ किया। इन सभी कारकों के सम्मिलित प्रभाव से भूगोल में शोध–कार्य हेतु अनुकूल वातावरण का सृजन हुआ। अतएव इस अवधि में भूगोल की शोध दिशा में कम से कम अन्य सामाजिक विषयों के समकक्ष निखार आ गया है।

21वीं शताब्दी के प्रथम दशक में भारतीय भूगोल में अनुसंधान के विषयों एवं सरोकार के संकेत नागी के वार्षिक सम्मेलनों के प्रधान विषयों से भी व्यक्त होते हैं। 2000 के नागपुर सम्मेलन (नेशनल ब्यूरो ऑफ सोयल सर्वे एण्ड लैण्ड यूज प्लानिंग) का विषय सम्पोषणीय विकास के लिये भूमि उपयोग नियोजन तथा प्रबन्धन था। अगले सम्मेलन (धारवाड़) का विषय : विकेन्द्रीकृत नियोजन, पर्यावरण तथा विकास रहा। 2002 (दरभंगा) में प्राकृतिक हैजार्ड प्रबन्धन, 2004 में (रोहतक) प्रादेशिक विकास : विजन 2020य 2005 (बंगलुः) में भारत का नगरीय भविष्यय 2006 का पहला अन्तर्राष्ट्रीय भारतीय भूगोल कॉंग्रेस हैदराबाद का विषय : विकास, पर्यावरण तथा जियोइनफमैटिक्सय 2007 (उदयपुर) में विकास तथा संसाधन प्रबन्धन तथा 30वें कॉंग्रेस (2010) काविषय पृथ्वी ग्रह उत्तरजीविता के लिये रूपरेखा–ऐसे विषय चुने गये। इन पर ध्यान देने से बिल्कुल स्पष्ट है कि सबसे बड़ा ध्यान केन्द्र पर्यावरण के विविध पहलू तथा दूसरा प्रमुख विषय विकास था। भारतीय भूगोल का पर्यावरण अध्ययन के लिये ध्यान–केन्द्र अभी भी निरन्तर बना हुआ है। अब पर्यावरणीय समस्याओं को सम्पूर्ण विश्व के वायुमण्डल के सन्दर्भ में, विशेष रूप से उसके ताप वृद्धिके दुष्परिणामों एवं खतरों पर चिन्ता जताई जा रही है।(आई पी सी सी), (डब्लू एम ओ–1988 के 1990, 1992, 1995)द्वारा व्यक्त परिणामों, खतरों एवं प्रवृत्तियों के अनुरूप ही भौगोलिक दुनिया में भी चिन्ता व्यक्त की जा रही है। साथ ही उसको कम करने के उपायों पर विचार किये जा रहे हैं। भारतीय भूगोलवेत्ता भी इस समस्या के अध्ययन तथा सम्भावित आर्थिक–सामाजिक दुष्परिणामों के अध्ययन में

अपनी भूमिका खोज रहे हैं।

दूसरा बड़ा ध्यान केन्द्र विकास तथा उसके विभिन्न पहलू हैं। वर्तमान भारतीय समाज की समस्याओं की प्रकृति पर प्रकाश डालने वाले अमृत्य सेन (भारतीय मूल के अमेरिकी विकास अर्थशास्त्री, नोबल पुरस्कार सम्मानित) के विचारों तथा स्थान से सम्बन्धित उत्तर–आधुनिकवादी दृष्टिकोण से भारतीय विकास के चिन्ताजनक पक्षों की रूपरेखाबताते हुये जगदीश सिंह का नागी काँग्रेस में अध्यक्षीय सम्बोधन भारतीय भूगोल में विकास के लिये नये प्रकार के सरोकार का प्रतिनिधित्व करता है। समाधान के रूप में संविकास को उसकी व्याख्या के साथ प्रस्तुत किया गया है। उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त, वर्तमान समय में भारतीय भूगोलवेत्ताओं के अनुसंधान की रुचियाँ संसाधन प्रबन्धन, प्रादेशिक एवं नगर नियोजन, नई अन्तरिक्ष टेक्नोलोजी (रिमोट सैंसिंग, जी०पी०एस०) एवं सूचना प्रौद्योगिकी (जी०आई०एस०) को भौगोलिक सर्वेक्षण, अनुसन्धान, मानचित्रण तथा नियोजन में अनुप्रयोग करने की विधियों को विकसित करने में है। कुछ भारतीय भूगोलवेत्ता अनुसन्धान प्रश्नों का चुनाव अपने को नवीनतम् उत्तर–आधुनिक भूगोल के चिन्तन के साथ रखकर कर रहे हैं। इनमें जैण्डर भूगोल, अनुसूचित जाति, शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण जैसे गवेषणा के प्रश्न चुने जा रहे हैं। वे अपनी अनुसंधान विधियों में भी नवीनतम् विधियों के लिये जागरूक हैं तथा उनका प्रयोग करने का प्रयास कर रहे हैं।

12.13 सारांश

भारत में वर्तमान काल में जो भूगोल की प्रगति हो रही है, उसमें निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ मुख्य हैं, जो कि संसार के अन्य विकसित देशों में भी हैं भारत के क्रमबद्ध भूगोल के समस्त पक्षों (अधिवास व नगरीय भूगोल , जनसँख्या भूगोल , राजनीतिक भूगोल) पर अधिकाधिक ध्यान देने और प्रादेशिक भूगोल में प्रदेशों का एक सम्मिश्र–समन्वित अध्ययन किया गया है। भारत के प्राकृतिक, मानवीय तथा आर्थिक संसाधनों की खोज, स्थानिक विश्लेषण और मूल्यांकन। संसाधनों के उपयुक्ततम उपयोगों के साथ संरक्षणपर अधिकाधिक बल देना, तथा व्यावहारिक या अनुप्रयुक्तपक्ष का विकास करना। भूआकृतिविज्ञान, जल–विज्ञान और मृदा–विज्ञान के अध्ययनों में पिछड़ेपन को दूर करने के प्रयास, भूमि, जल और मृदा के समुचित उपयोग में अधिक सक्रिय भाग लेना। नगरीय तथा ग्रामीण बस्तियों के विकास की योजनाओं में समुचित भाग लेना। कृषि, उद्योग और यातायात के विकास में भाग लेना। मानचित्रण विधिके पक्ष का आवश्यक विस्तार। क्षेत्रीय अध्ययनों और सर्वेक्षणों पर अधिकाधिक बल देना अधिवास व नगरीय भूगोल , जनसँख्या भूगोल , राजनीतिक भूगोल , तथा प्रादेशिक भूगोल का ब्यौरेवार सम्मिश्र अध्ययन किया गया है। मात्राकरण का समुचित उपयोग तथा विकास का अध्ययन कियागया है।

12.14 स्व मुल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

प्रश्न 1–भूगोल विभागों एवं भूगोल शिक्षकों तथा विद्यार्थियों की संख्या के आधार पर भारत में भूगोल का अधिक विकास किस भाग में हुआ ?

(अ) दक्षिणी भारत (ब) उत्तरी भारत

(स) पश्चिमी भारत (द) पूर्वी भारत

प्रश्न 2–राष्ट्रीय सुदूर संवेदन एजैन्सी (एन आर एस ए) कहाँ अवस्थित है ?

(अ) कोलकाता (ब) पुणे

(स) हैदराबाद (द) नई दिल्ली

प्रश्न 3–बेमेल युग्म को पहचानिये :

(अ) एस०पी० चटर्जीकृकलकत्ता विश्वविद्यालय (ब) मोहम्मद शफीकृदृअलीगढ़ विश्वविद्यालयस

(स) आर०एल० सिंह इलाहाबाद विश्वविद्यालय (द) आर०के० दीक्षित– पूना विश्वविद्यालय

प्रश्न 4– नेशनल एसोसिएशन ऑफ जियोग्राफर्स, इण्डिया (नागी) के जर्नल का नाम बताइये :

(अ) ऐनाल्स (ब) जियोग्राफिकल रिव्यू ऑफ इण्डिया

(स) द जियोग्राफर (द) द डकन जियोग्राफर

प्रश्न 5– जसबीर सिंह भूगोल में किस अध्ययन–क्षेत्र (field) के लिये जाने जाते हैं ?

(अ) नगरीय भूगोल (ब) कृषि भूगोल

(स) औद्योगिक भूगोल (द) प्रादेशिक आयोजना

उत्तरमाला–1. (ब)2. (स)3. (स)4. (अ) 5. (ब)

12.15 संदर्भ– ग्रंथ –सूची

- Philbrick,A.K. (1957), Principle of areal functional organization in regional human geography, Economic Geography, Vol.33, pp.299-366.
- Platt, R.S.(1948), Determinism in Geography.AAAG Vol.38, pp. 126-132.
- Relph, E., (1976), The Phenomenological Foundations of Geography. LDiscussion Paper 2 1, Dept. Of Geography, Toronto.
- Rose, G, (1993),. Feminism and Geography, Cambridge, Polity Press.
- Souer, C.0. (1925), The Morphology of Landscape, University of Calitorinia Publications in Geography, No.2, pp.19-54. Sayer,A., (1985), Realism in Geography, in Johnston, R.J. (Ed.), The Future of Geography, London, Methum, pp. I 59-173.
- Semple, E.C., (1911), Influences of Geographic Environment on the basis of Ratzel's Systems ofAnthropogeography, New York.
- Shafi, M. (1960),Al-Masudi as a Geographer inAl-Masudi Millenary commemoration Volume,Aligarh.
- Simmons, I.G. (1997), Changing the face of the Earth% Culture, Environment, History, Oxford, Blakwell.
- Simon, M. (1960), What isa Geograplhical factor? Geography, vol.5

12.16 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

प्रश्न 1. भारत में भूगोल के विकास की रूपरेखा प्रस्तुत कीजिये।

प्रश्न 2. भारतीय भूगोल की विषय–वस्तुमें परिवर्तन एवं प्रसार तथा अनुसन्धान में नई प्रवृत्तियों की चर्चा कीजिये।

प्रश्न 3. भारत में भूगोल का स्थानिक प्रतिरूप, भूगोल में योगदान तथा प्रमुख भूगोलवेत्ताओं का विवरण दीजिये।

प्रश्न 4. भारत में भूगोल की विभिन्न शाखाओं के विकास की विस्तृत व्याख्या कीजिये।

प्रश्न 5–भारत के प्रमुख भौगोलिक जर्नल तथा उनके प्रकाशक सोसायटी तथा केन्द्रों पर एक निबंध लिखिये।

इकाई–13 अभिनव प्रवृत्तियां, भूगोल की प्रकृति – पृथ्वी तक का विज्ञान, विभिन्नताओं में अंतर संबंध, प्रादेशिक विशिष्टता का निरूपण

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 भूगोल में अभिनव प्रवृत्ति

13.4 भूगोल की प्रकृति

13.5 भूगोल पृथ्वी तल का विज्ञान

13.5.1 तत्वों की विभिन्नताओं में अन्तर्सम्बन्ध का व्यापक विवेचन

13.5.2 प्रादेशिक विशिष्टता का निरूपण

13.5.3 संश्लेषणोन्मुखता

13.5.4 व्यवहारिक की समस्याओं का समाकलन एवं निराकरण

13.6 सारांश

13.7 स्व मूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

13.8 संदर्भ–ग्रंथ–सूची

13.9 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

13.1 प्रस्तावना

बीसवीं शताब्दी में भूगोलवेत्ताओं की मुख्य प्रवृत्ति भूगोल के अन्तर्गत पृथ्वी–तल के विभिन्न स्वरूपों के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों में वातावरण और मानव वर्गों के पारस्परिक सम्बन्धों तथा विभिन्न क्षेत्रीय वितरण की व्याख्या की ओर हुई। इस प्रकार भौतिक तथा मानवीय दोनों तथ्यों के क्षेत्रीय वितरण का अध्ययन सम्मिलित रूप में किया जाने लगा है। भूगोल का प्रयोग मानवीय हितों के लिए किया जाने लगा तथा भूगोलवेत्ताओं द्वारा विषय का अधिकाधिक प्रयोग योजनाओं के निर्धारण में भी किया जाने लगा। इस प्रकार भूगोल के बदलते हुए व्यावहारिक स्वरूप में उसके अध्ययन के अन्तर्गत बहुत सी नूतन प्रवृत्तियों का समावेश हुआ है।

सामाजिक अध्ययन की अन्य शाखाओं की तरह भूगोल की वैचारिक प्रगति का आकलन उसके चारों ओर की हलचलों से कटी हुई विकास की स्वायत्त और आन्तरिक तौर पर पूरी तरह नियंत्रित तर्क प्रक्रिया के रूप में नहीं किया जा सकता। ज्ञान की किसी भी शाखा की वैचारिक प्रगति उसके विकास का ऐसा इतिहास है जिससे व्याख्याकार एक पेशेवर सदस्य और सजग नागरिक दोनों ही रूपों में जुड़ा होता है। इस दृष्टि से यह नितान्त आवश्यक है कि भूगोल की वैचारिक प्रगति की समीक्षा करते समय हम उससे सम्बद्ध सामाजिक और बौद्धिक वातावरण (सन्दर्भ) पर ध्यान केन्द्रित करें क्योंकि इसके बिना इस बात का निर्धारण करना सम्भव नहीं है कि सामाजिक चिंतन की मान्यताओं में ऐतिहासिक प्रगति के साथ–साथ आए परिवर्तनों का ज्ञान की सम्बद्ध शाखा में होने वाले सैद्धांतिक विमर्श और उसकी अध्ययन पद्धति तथा विषय क्षेत्र पर क्या प्रभाव पड़ा। एक समाज वैज्ञानिक के रूप में भूगोल के विद्यार्थी का कर्तृव्य है कि वह मानव पर्यावास के रुप में पृथ्वी के वैज्ञानिक अनुशीलन के साथ–साथ यह जानने का भी प्रयास करे कि पृथ्वी के भिन्न–भिन्न भागों में स्थानीय लोग किस प्रकार जीवन यापन करते हैं और अधिकरण की इस प्रक्रिया में अपने वातावरण को किस प्रकार बदलते और उसका पुनर्निर्माण करते हैं।

13.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन में 1969 ई० में संयुक्त राज्य अमेरिका में क्लार्क विश्वविद्यालय, से भूगोल की एक

नवीन संकल्पना का प्रारम्भ हुआ। बुंगी, हार्बे आदि जिन भूगोलवेत्ताओं ने भूगोल को वैज्ञानिक बनाने के प्रयास में, इसमें मांडल निर्माण पर जोर दिया था, वही अब इसकी निरर्थकता के प्रति जागरूक इसके उद्देश्य किसी क्षेत्र के उन कारकों एवं प्रक्रियाओं का अध्ययन करना है जो सामाजिक असमानता उत्पन्न करते हैं। इसमें प्रादेशिक सामाजिक विषमता को दूर करना भौगोलिक अध्ययन का लक्ष्य माना जाता है।सामाजिक भूगोल, मानव कल्याण पर विशेष बल देता है। भूगोल के सम्पूर्ण अध्ययन को नीरस आंकड़ों के वस्तुनिष्ठ विश्लेषण के बजाय सामाजिक प्रक्रियाओं के विवेचन पर जोर देता था। यह भौगोलिक अध्ययन को निरपेक्ष वैज्ञानिक दृष्टि से नहीं वरन् सामाजिक मूल्यों के सन्दर्भ में करने का हिमायती है।

13.3 भूगोल में अभिनव प्रवृत्ति

1969 ई० में संयुक्त राज्य अमेरिका में क्लार्क विश्वविद्यालय, वरसेस्टर (मसाचुसेट्स) से नामक भौगोलिक शोध पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। उससे भूगोल की एक नवीन संकल्पना का प्रारम्भ हुआ। बुंगी,हावें आदि जिन भूगोलवेत्ताओं ने भूगोल को वैज्ञानिक बनाने के प्रयास में, इसमें मांडल निर्माण पर जोर दिया था, वही अब इसकी निरर्थकता के प्रति जागरूक हुए। उन्होंने महसूस किया कि मॉडलनिर्माण से भूगोल अधिक वैज्ञानिक स्वरूप भले ग्रहण करता हो, यह सामाजिक समस्याओं के निराकरण से विमुख हो जाता है। 1960 के दशक में विश्व स्तर पर बढ़ती हुई सामाजिक विषमता ने इन विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया। विश्व स्तर पर आर्थिक विकास में प्रगति के साथ सामाजिक असमानता में वृद्धि हुई है। समाज के एक वर्ग के पास धन का अधिक संचय होता है तो दूसरी ओर निर्धन, और गरीब होते जाते हैं। अतएव, इन्होंने, भूगोल में निरपेक्ष वैज्ञानिकतावाद की दृष्टि से नहीं वरन् सामाजिक मूल्यों की दृष्टि से अध्ययन करने पर जोर दिया। इसे समाजवादी भूगोल या क्रान्तिकारी भूगोल कहा जाता है। मार्क्स के इस आधारभूत सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए कि, सभी आर्थिक सम्बन्ध, सामाजिक सम्बन्धों से उत्पन्न होते हैं सामाजिक भूगोल में प्रक्रियाओं के क्षेत्रीय आयाम के अध्ययन पर विशेष जोर दिया जाता है। स्मिथ के शब्दों में भूगोल, में कहाँ, क्या, कौन पाता है और कैसे का विवेचन करना चाहिये। भूगोल की इस नयी संकल्पना की निम्न मुख्य विशेषतायें हैं।

1. यह उत्पादन के बदले, किसी क्षेत्र में संसाधन के, समाज के विभिन्न वर्गों में वितरण प्रतिरूप का अध्ययन करने पर जोर देता है।
2. इसका उद्देश्य किसी क्षेत्र के उन कारकों एवं प्रक्रियाओं का अध्ययन करना है जो सामाजिक असमानता उत्पन्न करते हैं।
3. इसमें प्रादेशिक सामाजिक विषमता को दूर करना भौगोलिक अध्ययन का लक्ष्य माना जाता है।
4. सामाजिक भूगोल, मानव कल्याण पर विशेष बल देता है। मानव कल्याण हेतु सम्पूर्ण विश्व में तथा हर राष्ट्र के अन्तर्गत सभी लोगों की मौलिक आवश्यकताओं (भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य) की पूर्ति के लिये उपलब्ध संसाधनों के न्यायपूर्ण वितरण पर ध्यान केन्द्रित करता है।
5. यह भूगोल के सम्पूर्ण अध्ययन को नीरस आंकड़ों के वस्तुनिष्ठ बिश्लेषण के बजाय सामाजिक प्रक्रियाओं के विवेचन पर जोर देता है।
6. यह भौगोलिक अध्ययन को निरपेक्ष वैज्ञानिक दृष्टि से नहीं वरन् सामाजिक मूल्यों के सन्दर्भ में करने का हिमायती है।

स्पष्ट है कि भूगोल की यह संकल्पना मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित होकर विश्व के विभिन्न भागों एवं सामाजिक वर्गों में बढ़ती आर्थिक विषमता को करने की प्रेरणा से उत्पन्न हुई है। तथापि, इसको व्यापक समर्थन नहीं मिल पाया है। अधिसंख्य भूगोलवेत्ता, अभी भी, भूविन्यासिक संगठन की व्याख्या अथवा मानव–वातावरण तन्त्र, के विश्लेषण द्वारा विश्व में बढ़ती पारिस्थितिकी समस्याओं जैसे वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, जहरीले औद्योगिक कचरे के जमाव,को सुलझाने में संलग्न हैं। भूगोल का जन्म एवं विकास मानव जीवन के अभ्युदय तथा उत्थान के साथ–साथ हुआ।

प्राचीन काल में यूनान, मिस्र, बेबीलोनिया, फारस व भारत देशों में जहाँ मानव सभ्यता के उच्च शिखर पर पहुँच चुका था, भूगोल का विकास गणितीय भूगोल तथा खगोल विज्ञान के रूप में हुआ। मनुष्यों ने पर्यवेक्षण , अन्वेषण , कल्पनाओं और गणनाओं के आधार पर भौगोलिक ज्ञान का अधिकाधिक संचय किया तथा अर्जित ज्ञान

के आधार पर मानचित्र भी तैयार किए। अरब भूगोलवेत्ताओं ने यूनान, रोम तथा भारत द्वारा किए गए प्राचीन भौगोलिक ज्ञान की रक्षा ही नहीं की वरन् उन्होंने गणितीय भूगोल एवं खगोलिकी में विशेष प्रगति की। इस प्रकार अरब के विद्वानों की मुख्य प्रवृत्ति भौगोलिक ज्ञान के अधिकाधिक वृद्धि करने की ओर रही। 13वीं से 17वीं शताब्दी तक भी भौगोलिक ज्ञान के संचय की प्रवृत्ति विशेष रूप से रही। इस अवधि में भौगोलिक ज्ञान के उपलब्ध करने का आधार केवल भौगोलिक यात्रियों व अन्वेषकों द्वारा एकत्रित किये गये तथ्य रहे। 17वीं शताब्दी में भूगोल ने वैज्ञानिक रूप धारण कर लिया। 19वीं शताब्दी के अन्त तक भूगोल में 'प्राकृतिक वातावरण और मानव वर्गों के पारस्परिक सम्बन्धों के अध्ययन' पर बल दिया गया तथा ग्रिफिथ टेलर के अनुसार उस समय के भूगोलवेत्ताओं द्वारा भूगोल में शिओकेटिक , जिओक्रेटिक एवं विओक्रेटिक पक्षों का समावेश किया गया।

थिओक्रेटिक (परमेश्वरवादी विचारधारा या ईश्वरीय उद्देश्यवाद) सिद्धान्त को अपनाने वाला जर्मन भूगोलवेत्ता रिटर था। जियोक्रेटिक पक्ष (प्राकृतिक वातावरण निश्चयवाद) के प्रमुख प्रतिपादक हम्बोल्ट तथा रैटजेल थे जबकि वियोक्रेटक (मानव द्वारा नियन्त्रण की विचारधारा या सम्भववाद) के प्रमुख प्रतिपादक विडाल डी ला ब्लाश थे। इन सभी विचारधाराओं का विवेचन तत्सम्बन्धित अध्यायों के अन्तर्गत किया गया है। भूगोल का अध्ययन दो भागों में 'प्राकृतिक भूगोल' तथा 'मानव भूगोल' में विभाजित हो गया था। किन्तु बीसवीं शताब्दी में भूगोलवेत्ताओं की मुख्य प्रवृत्ति भूगोल के अन्तर्गत पृथ्वी–तल के विभिन्न स्वरूपों के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों में वातावरण और मानव वर्गों के पारस्परिक सम्बन्धों तथा विभिन्न क्षेत्रीय वितरण की व्याख्या की ओर हुई। इस प्रकार भौतिक तथा मानवीय दोनों तथ्यों के क्षेत्रीय वितरण का अध्ययन सम्मिलित रूप में किया जाने लगा है। भूगोल का प्रयोग मानवीय हितों के लिए किया जाने लगा तथा भूगोलवेत्ताओं द्वारा विषय का अधिकाधिक प्रयोग योजनाओं के निर्धारण में भी किया जाने लगा। इस प्रकार भूगोल के बदलते हुए व्यावहारिक स्वरूप में उसके अध्ययन के अन्तर्गत बहुत सी नूतन प्रवृत्तियों का समावेश हुआ है।

13.4 भूगोल की प्रकृति

भूगोल को पृथ्वी के धरातल, स्वरूप, भौतिक विशेषताओं तथा राजनैतिक विभाजनों, जलवायु, उत्पादन, जनसंख्या, आदि के अध्ययन का विज्ञान कहा जाता है। पृथ्वी का धरातल स्वयं में विविधतापूर्ण लक्षणों को समेटे हुए है जिसके अन्तर्गत बहुरूपी, अस्थिर, गतिक तथा जटिल स्वरूप पाये जाते हैं। इसके प्राकृतिक लक्षणों के साथ–साथ सांस्कृतिक लक्षणों के बीच, विशिष्ट, परस्परव्यापी एवं जटिल अन्तर्सम्बन्धों की कड़ी मिलती है। इसके कारण भूगोल की परिभाषा, विषय क्षेत्र, प्रकृति तथा दर्शन में नितान्त परिवर्तनशीलता दिखायी पड़ती है। भूगोल के ऐतिहासिक विकासक्रम में विज्ञान के अन्तर्गत क्षेत्र वितरण सम्बन्धीअध्ययन तार्किक एवं सबल रूप में स्थान सुरक्षित किये हुए हैं जो ऐतिहासिक अध्ययनों की भाँति विशेष प्रकार के लक्ष्यों एवं घटनाओं की वास्तविकता का ही नहीं वरन् वास्तविकता के यथार्थ (खण्ड) भाग के अध्ययन का प्रयास करता है। इसी के साथ घटना प्रक्रमों की वास्तविकता के भाग से सम्बन्धित घटना साहचर्य को भी विश्लेषित एवं संश्लेषित करती है। ऐतिहासिक अध्ययनों में वास्तविकता के अल्पकालिक भागों का विचार किया जाता है जबकि क्षेत्र वितरण सम्बन्धी अध्ययन में भूवैन्यासिक भाग पर विचार किया जाता है जिसमें भूगोल के अन्तर्गत भूपटल के क्षेत्रीय भाग का अध्ययन होता है। इस प्रकार नाम के अनुरूप भूगोल में सम्पूर्ण विश्व के विभिन्न क्षेत्रों के बीच अन्तरों का वर्णन एवं विश्लेषण किया जाता है। इस अध्ययन में भूगोल का विज्ञान की अन्य शाखाओं से सम्बन्ध नहीं है बल्कि ऐसे अध्ययन में अन्य विज्ञान के विषयों को शामिल कर लिया जाता है। अन्य विज्ञान विषयों की वर्गानुसार विवेचित विषमांगी घटनायें भूपटल पर प्राकृतिक सानिध्य के संदर्भ में न केवल घालमेल की जाती है वरन् अनियमित रूप में संश्लिष्ट क्षेत्रीय साहचर्य की भाँति अन्तर्सम्बन्धित होती है। भूगोल के अन्तर्गत विश्व के अन्य भागों में मिलने वाली विषमांगी घटनाओं का समाकलित अध्ययन होता है जबकि अन्य विज्ञानों में अलग–अलग अध्ययन होता है। इस तथ्य को प्रभावशाली ढंग से हम्बोल्ट ने सिद्धान्त एवं व्यवहार दोनों में स्थापित किया है। किसी घटनाक्रम का अध्ययन भूगोल में किया जा रहा है तो यह सम्भव है कि उसका अध्ययन उसी समय किसी अन्य क्रमबद्ध विज्ञान में भी हो रहा हो। भूगोल वस्तुतः क्रमबद्ध विज्ञानों की कई शाखाओं का समूह नहीं है, यह तो विशिष्ट क्षेत्र वितरण सम्बन्धी दृष्टिकोण से इन घटनाओं का समाकलित अध्ययन है। चूँकि भूगोल की सीमायें सभी क्रमबद्ध विज्ञानों से होकर गुजरती है जिसके कारण उनके तथा उनके क्षेत्रों के बीच इसका घनिष्ठ तथा पारस्परिक सम्बन्ध मिलता है एक ओर भूगोल में उन सभी जानकारियों का अध्ययन किया जाता है जिनके द्वारा घटनाओं विवरण तथा उनके विश्लेषण का प्रभावशाली ढंग से उपयोग किया जा सके। ऐसे ज्ञान क्रमबद्ध विज्ञानों में विकसित जातिगत संकल्पनायें अथवा प्रकारात्मक प्रारूप विभाजन भी शामिल हो सकते हैं किन्तु जहाँ इनके उपयोग भौगोलिक

उद्देश्यों के वहाँ भूगोल में स्वयं अपनी जातीय संकल्पनायें तथा विभाजन–तंत्र विकसित किये जाते हैं। दूसरी ओर भूगोल का भी क्रमबद्ध विज्ञानों में पर्याप्त योगदान होता है। यथार्थ विश्व के घटनाक्रम के सहज विश्लेषण द्वारा ऐसे तथ्यों का पता लगाने का प्रयास भी होता है जो क्रमबद्ध विज्ञानों सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त भूगोल में घटनाक्रम के एक महत्वपूर्ण पहलू भौगोलिक पक्ष को विवरण भी प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया जाता है जो क्रमबद्ध क्षेत्र के सैद्धान्तिक उपागम के अध्ययन में ओझल हो जाता है और यथार्थवादी आलोचक की भाँति यह समझाने का प्रयास किया जाता है कि क्रमबद्ध विज्ञानों में घटनाक्रम को उनकी सामान्य विशेषताओं एवं प्रक्रमों के संदर्भ में समझा नहीं जा सकता है। भूगोल में घटनाक्रम के बीच अंतरों को भी ध्यान में रखा जाता है जो विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में उनकी यथार्थ अवस्थिति के परिणामस्वरूप घटित होती है। इन अन्तरों को यथार्थ रूप में व्याख्या करने तथा उसके परिणामस्वरूप घटित घटनाक्रम के विश्लेषण हेतु क्रमबद्ध विज्ञानों में भूगोल भी कुछ विशिष्ट तकनीकी विशेष रूप से मानचित्र एवं मानचित्र विश्लेषण का विकास किया जाता है।

13.5 भूगोल पृथ्वी तल का विज्ञान

भूगोल का पृथ्वी तल से सदैव घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। यदि किसी तत्व के सन्दर्भ में भूगोल के विषय–वस्तु को परिभाषित करना हो, तो वह तत्व भूतल ही हो सकता है। प्रारम्भिक दीर्घावधिक चरण में जब मानव का सम्पूर्ण ज्ञानपुंज अत्यन्त सीमित या तथा ज्ञानार्जन का कृत्रिम क्योंकि वास्तविक जगत में तत्वों का कोई सुस्पष्ट विभाजन नहीं मिलता–तत्वगत विभाजन नहीं हुआ था, तब भूगोल को ही सम्पूर्ण पृथ्वी के सम्बन्ध में अध्ययन करने का श्रेय प्राप्त था। पृथ्वी के आकार–विस्तार, किसी भूखण्ड में मिलने वाले तत्व समूह, अथवा भूतल पर किसी स्थल–विन्दु की सापेक्षिक अवस्थिति का अंकन एवं सम्पूर्ण मूर्त तत्वों का चित्रांकन सभी प्रकार के ज्ञान को भूगोल की परिसीमा में समेटा जाता था। ये सभी टोलेमी की शब्दावली में क्षेत्र वर्णन अथवा ग्रीक विद्वानों के भू–विवरण के अभिन्न अंग थे।

पुर्नजागरण काल के पश्चात विशेषतया 17–18 वीं शताब्दी में अनेक सफल अन्वेषण यात्राओं के परिणाम स्वरूप जब विभिन्न भूखण्डों के तत्व पुन्ज सम्बन्धी ज्ञान–भण्डार में अत्यधिक वृद्धि हो गई तो क्रमशः ज्ञान वर्द्धन के साथ विशेषीकरण की प्रवृति प्रबल हुई। क्योंकि, अब किसी भी एक विद्वान के लिये, किसी लघु भूखण्ड में भी सम्पूर्ण तत्वपुंज को समेटना तथा प्रत्येक तत्व की विशेषताओं एवं विशिष्टताओं का गहन एवं सूक्ष्म अध्ययन करना सम्भव नहीं रहा। तथापि, 19 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक कोई भी विद्वान एक तत्व विशेष के अध्ययन तक अपनी दृष्टि संकुचित करने को तत्पर नहीं था। यही कारण है कि भुगोल को यदि सम्पूर्ण पृथ्वी नहीं, तो कम से कम वृहत भूखण्डों (महाद्वीपों) के तत्वपुंज के समवेत कोश के रूप में मान्यता प्राप्त होती रही। इस विवेचन के प्रकाश में यह स्पष्ट हो जाता है कि हम्बोल्ट जैसे प्रकृति विज्ञ के 5 खण्डों में प्रकाशित ग्रन्थ का नामकरण ब्रह्माण्ड तथा रीटर के 19 साथ में प्रकाशित ग्रन्थ भूविज्ञानकी वैज्ञानिकता अथवा सार्थकता पर क्यों कोई प्रश्न वाचक उंगली नहीं उठाता था सम्पूर्ण प्रकृति का एक समष्टि के रूप में अध्ययन करना भी सार्थक माना जाता था।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विज्ञानों के तत्त्वगत विभाजन एवं विभेदीकरण ने जोर पकड़ा। अब कोई भी विद्वान भूतल के सम्पूर्ण तत्व पुंज का गहन अध्ययन करने का दावा करने का साहस नहीं करता था। अतएव विज्ञान, तत्वानुसार, शाखा – प्रशाखाओं (भौतिक शास्त्र, वनस्पति शास्त्र आदि में) विभक्त होने लगा। तथापि, भूगोल अपनी मूल प्रकृति के अनुसार भूतल से विलग नहीं हो सकता था। परन्तु, साथ ही, ब्रह्माण्ड को कौन कहे, सम्पूर्ण पृथ्वी का भी समाकलित, एवं साथ ही, गहन अध्ययन करना भी सम्भव नहीं रह गया। अतएव, भूगोल को भूतल का क्षेत्र – विश्लेषण करने वाला विज्ञान मानाजाने लगाहेटनर के बाद भूगोल एक साथ सम्पूर्ण पृथ्वी का नहीं, भूखण्डों जैसे– महाद्वीप, देश, प्रदेश, का, तत्वगत सम्पन्नता एवं समग्रता की दृष्टि से विश्लेषण (मात्र विवरण नहीं) करने वाला विषयमाना जाने लगा। भूगोलवेत्ताओं के एक वर्ग को, जो सम्पूर्ण पृथ्वी को आधार स्वरूप मानने का समर्थक था न कि भूखण्डों को विषय का परिसीमन, तत्व विशेष अथवा तत्व समूह (जैसे जलवायु, मिट्टी, वन, मानव अधिवास, अथवा प्राकृतिक स्वरूप या आर्थिक कार्य) के सन्दर्भ में करने को विवश होना पड़ा। इस प्रकार विषय में क्रमबद्ध तथा प्रादेशिक, दो विश्लेषणात्मक उपागमों का उद्भव हुआ। निर्विवाद तथ्य यह है कि भूगोल का पृथ्वीतल का किसी न किसी रूप में अभिन्न सम्बन्ध बना रहा।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से भूगोल में पृथ्वीतल के क्षेत्रीय स्वरूप का समाकलन, सम्पूर्ण अध्ययन का केन्द्रबिन्दु बन गया। इसमें हेटनर, ब्लाश, ब्रन्हस, सावर एवं अन्य तत्कालीन सभी ख्याति प्राप्त विद्वानों ने अपने अपने ढंग से योगदान किये। अब, तत्व विशेष के सन्दर्भ में विश्व व्यापी अध्ययनों की, अनुसंगी अथवा परिपूरक

भूमिका रह गई। ऐसे तत्वगत क्रमवद्ध अध्ययन प्रमुखतया भूगोल की अपेक्षा तत्व विशेष के सम्बन्धित विशेषज्ञों द्वारा ही होता था। उदाहरण के लिये, भुआकृति का अध्ययन, डेविस ने किया जो भौमिकी के विद्यार्थी रहे। कम से कम 1960 तक भूगोल का ध्यान प्रदेश की विशिष्टता उभाड़ने पर केन्द्रित रहा। हार्टशोर्न की परिभाषा पृथ्वी का क्षेत्रीय विभेदीकरण' से यह स्पष्टतः प्रतिध्वनित होता है। 1960 के पश्चात लगभग एक दशक तक अधिक वैज्ञानिकता प्रदान करने के मोह में भूगोल को सैद्धान्तिक आधार पर खड़ा करने का प्रयास किया गया, ताकि सार्वजनिक नियमों का प्रतिपादन किया जा सके। तस्व अथवा तत्व समुह का एक अभीष्ट अथवा आदर्श वितरण–स्वरूप करने पर विशेष बल दिया जाने लगा। इसके लिये पृथ्वी का क्षेत्रीय विभेदीकरण की संकल्पना स्पष्टता बाधक थी क्योंकि सर्वथा समरूप सतहकी कल्पना नहीं की जाती तबतक सार्वभौमिक अभीष्ट वितरण प्रतिरूप का निरूपण नहीं किया जा सकता था। परन्तु ज्योहि उक्त आदर्श वितरण प्रतिरूप को व्यावहारिक स्तर पर लाने का प्रयास किया जाता था, पृथ्वीतल की संसाधनता (व्यापक अर्थ में जिसके अंतर्गत प्राकृतिक वातावरण एवं संसाधन सभी समाहित हैं) में प्रादेशिक विषमता अथवा विभित्रता से सामजस्य स्थापित करने की समस्या प्रकट हो जाती। किसी भी शून्य में आदर्श अवस्थितिगत दशा एवं वितरण प्रतिरूप कोखड़ा नहीं किया जा सकता था। उसे पृथ्वीतल पर अवतरित करना अपरिहार्य था। अस्तु, अपनी मूल प्रकृति के अनुरूप भूगोल पृथ्वीतल से उस अवधि मे मी विच्छिन्न नहीं हो सका जब इसे विशुद्ध विज्ञान बनाने के यत्न में ऐसा होने की सर्वाधिक आशंका थी। अन्ततोगत्वा, इस प्रवृति की परिणति अर्वन्यासिक संगठन' की सकल्पना में हुई जिसके अन्तर्गत 'प्रादेशिक आधार' की अवधारणा सन्निहित है क्योंकि विश्व व्यापी सूर्वन्यासिक संगठन का कोई प्रश्न नहीं उठता। अभिनव प्रवृति के अन्तर्गत सर्वाधिक बल मानव कल्याण की उदात्त भावना से अभिप्रेरित मानव–जीवन स्तर एवं उन्नति अवसरमें व्याप्त प्रादेशिक असमानता की निरन्तर बढ़ती खाई को पाटने पर दिया जाता है। इसके अन्तर्गत विभिन्न भूखण्डों अर्थात प्रदेशों के मूलाधार को उपेक्षित करना सम्भव नहीं है। अस्तु यह प्रकट है कि सम्पूर्ण अथवा आंशिक, भौगोलिक अध्ययन का आधारभूत एवं अभिन्न अंग पृथ्वीतल है जिसके बिना भूगोल का एक स्वतंत्र विषय के रूप में अस्तित्व ही असम्भव है। अस्तु, पृथ्वीतल भूगोल का मौलिक आधार है।

13.5.1 तत्वों की विभिन्नताओं में अन्तर्सम्बन्ध का व्यापक विवेचन–

तत्वों के अन्तर्सम्बन्ध एवं अन्तर्प्रक्रिया का व्यापक विवेचन यद्यपि प्रत्यक्षतया भूगोल पृथ्वीतल का अध्ययन करता है तथापि इसके अध्ययन का लक्ष्य सम्पूर्ण पृथ्वीतल अथवा किसी भूखण्ड में मिलने वाले किसी एक तत्व अथवा तत्व समूह विशेष का विश्लेषण नहीं, वरन् उनमें व्याप्त पारस्परिक अन्तर्सम्बन्ध एवं अन्तर्प्रक्रियाओं का विवेचन है। अतएव, भूगोल मूलतया अन्तर्सम्बन्धों का विज्ञान है। इसका अध्ययन विषय अन्य क्रमबद्ध विज्ञानों की तरह किसी तत्व विशेष से परिभाषित एवं परिसीमित नहीं है प्रत्युत, इतिहास की तरह जगत की वास्तविकता के एक विशेष आयाम से निरूपित होता है। विज्ञानों का परम उद्देश्य जगत की वास्तविकता का उद्घाटन करना है। इस सर्वोपरि उद्देश्य की पूर्ति हेतु विभिन्न क्रमबद्ध विज्ञान, अपना विशिष्ट योगदान वास्तविक जगत के किसी तत्व विशेष की प्रकृति के गहन अध्ययन द्वारा करते है। इस प्रकार विभिन्न वैज्ञानिक शाखाओं प्रशाखाओं का कार्य श्रम विभाजन के सिद्धान्त के अनुसार अधिकतम दक्षता के साथ न्यूनतम अवधि में अधिकतम ज्ञानार्जन की दिशा में प्रयास करना है। इस दिशा में विज्ञान पर्याप्त प्रगति कर चुका है परन्तु अभी जगत (सम्पूर्ण प्रकृति) की वास्तविकता का अति अल्पांश ही मानव की पकड़में आया है। वास्तविक जगत के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्वके अध्ययन हेतु विज्ञान की चाहे जितनी शाखायें बन जाँय, उसकी वास्तविकता के समग्र स्वरूप एवं अर्न्तनिहित प्रक्रियाओं का निरूपण तबतक नहीं हो सकता, जबतक एक एक तत्व की विशिष्टतम एवं सूक्ष्मतम प्रक्रियाओं एवं स्वरूप के अध्ययन के समानान्तर क्षेत्रीय एवं कालिक परिप्रेक्ष्य में उनकी समग्र, समवेत प्रक्रियाओं अथवा स्वरूपों का भी अध्ययन नहीं किया जाता। इसका मूल औचित्य यह है कि वास्तविक जगत का कोई जड़ अथवा स्थैतिक स्वरूप नहीं होता। वास्तविक जगत का स्वरूप गत्यात्मक (अर्थात कालक्रमानुसार परिवर्तनशील) तथा विभिन्नतापूर्ण एवं विविधतापूर्ण है। यह विभिन्नतापूर्ण स्वरूप तत्व अथवा तत्वसमूह विशेष की प्रकृति, प्रक्रिया एवं अन्य तत्वों से समायोजन समिश्रण आदि में क्षेत्रानुसार विभेद के कारण उत्पन्न होता है।

अस्तु तत्व समुच्चय के पारस्परिक अन्तर्सम्बन्ध एवं अन्तर्प्रक्रिया एवं उनकी क्षेत्रीय विभिन्नता के गहन विश्लेषण के अभाव में विज्ञानोंका परम उद्देश्य अर्थात वास्तविक जगत का सम्पूर्ण ज्ञान, सदैव अप्राप्य एवं अपूर्ण (जहां तक प्राप्त हो अनिवार्य भी जाय) रहेगा। भूगोल का उत्तरदायित्व प्रमुखतया इसी, परन्तु अन्य क्रमबद्ध विज्ञानों से अछूते पक्ष का सम्यक अध्ययन करना है। हम्बोल्ट ने इसी दृष्टिकोण से तत्वों के परस्पर ग्रन्थित, गुम्फित, अन्योन्याश्रित स्वरूप का अध्ययन एक महत कार्य माना है। तत्वों के परस्पर ग्रन्थित, गुम्फित,

अन्योन्याश्रित स्वरूप में क्षेत्रीय विभिन्नता पायी जाती है। 'विभिन्न प्रदेशों का विशिष्ट स्वरूप,' जो भूगोल का अध्ययन–उद्देश्य है क्षेत्रीय विभिन्नता का ही प्रतिफल है। पृथ्वीतल पर अथवा किसी भूखण्ड विशेष में अनेकानेक (भौतिक, जैविक, मानवीय) तत्वों का परस्पर अन्तर्सम्बन्ध एवं उनकी अन्तर्प्रक्रिया, भूवैन्यासिक संगठन की व्याख्या की दृष्टि से भी अपरिहार्य है, आदर्श भूवैन्यासिक स्वरूप, एवं उसी क्षेत्र में वास्तविक भू–वैन्यासिक संगठन में अन्तर का स्पष्टीकरण इसी से होता है।

मानव कल्याण के उद्देश्य से क्षेत्रीय असमानताओं को (कम से कम मानव कार्यकलाप जनित विषमताओं को) भी बिना क्षेत्र विशेष की समग्रता में ब्याप्त तत्वों की अन्योन्याश्रिता एवं अर्न्तप्रकिया का सम्यक ज्ञान (क्षेत्रीय एवं कालिक परिप्रेक्ष्य में) प्राप्त किये कम नहीं किया जा सकता। मानवोचित वांछित जीवनस्तर एवं उसमें प्रादेशिक अन्तर को सामाजिक न्याय की दृष्टि से सीमित करने हेतु इस प्रकार का विश्लेषण अपरिहार्य है। अतएव, चाहे भौगोलिक ज्ञान में अभिवृद्धि द्वारा सम्पूर्ण वास्तविक जगत की प्रवृति अर्थात चिरन्तन सत्य को उद्घाटित करने के चरम लक्ष्य की प्राप्ति में किंचित योगदान करने की दृष्टि से देखा जाय अथवा मानव की ज्वलंत, तात्कालिक समस्याओं के निराकरण के उद्देश्य से अधिक व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य में आकलन किया जाय, किसी प्रदेश में विभिन्न तत्वों के अन्तर्सम्बन्ध एवं अन्तर्प्रक्रिया का व्यापक एवं गहन विश्लेषण, भौगोलिक ज्ञान का मूलाधार सिद्ध होता है। यही कारण है कि उलमान जैसे भूगोलविद् भूगोल को 'क्षेत्रीय अन्तप्रक्रिया' (जो तत्वों के अन्तर्सम्बन्ध एवं अन्तंप्रक्रियाजन्य प्रादेशिक संसाधन में विषमता का प्रतिफल है) का अध्ययन मानना श्रेयष्कर समझते हैं।

13.5.2 प्रादेशिक विशिष्टता का निरूपण–

भूगोल में प्रदेश सीमांकन एवं प्रादेशिक विवरण का बहुत प्रचलन है। तत्वसमूहों का अन्तर्सम्बन्ध अपने समग्र रूप में विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होता है। इसी के फलस्वरूप किसी क्षेत्र विशेष में विशिष्टता का आविर्भाव होता है जो उस क्षेत्र को प्रादेशिक व्यक्तित्व प्रदान करता है। भूगोल का उद्देश्य प्रादेशिक विशिष्टताजन्य व्यक्तित्व' का निरूपण करना है। रोमन विद्वान स्ट्राबो एवं टालेमी ने भूगोल को अर्थात क्षेत्रविवरणात्मक विषय माना था। 'क्षेत्रविवरणात्मक' विशेषण, विषय की इसी अर्न्तनिहित, मूल उद्देश्य की ओर इंगित करता है कि भूगोल का सर्वप्रमुख कार्य क्षेत्र या प्रदेश विशेष के विशिष्ट स्वरूप को उमाड़ना है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु किसी क्षेत्र में व्याप्त अनेक तत्वों के स्वरुप को निरुपित करना अत्यावश्यक होता है। रिचथोफेन ने भूगोल के इस मूल स्वरुप पर विशेष बल देते हुए इसे क्षेत्र विश्लेषण करने वाला विज्ञान बताया जिसकी पुष्टि हेटनर ने भी की। भूगोल की इसी मूल उद्देश्य के अनुरुप, भौगोलिक विश्लेषण में किसी प्रदेश में आकारिकीपरक विशेषताओंपर अधिक ध्यान दिया जाता है। सावर ने इसी लिये भूगोल को भूदृश्य की आकारिकी का अध्ययन माना था। किसी प्रदेश में विभिन्न तत्वों की आकारिकीगत विशिष्टताओं अर्थात वाह्य स्वरुप तथा उनकी कार्य प्रक्रिया से उत्पन्न समग्र भू स्वरुप को ही आधुनिक युग में प्रादेशिक क्षेत्रीय भूवैन्यासिक संगठन की संज्ञा दी जाती है। यही कारण है कि भूगोल में, प्रदेश विशेष की समस्याओं का स्थाई निराकरण उसके भूवैन्यासिक संगठन में व्याप्त विषमताओं, विसंगतियों अथवा विकृतियों के परिमार्जन द्वारा करने का आग्रह मिलता है। चूंकि किसी प्रदेश विशेष का कोई तत्व समूह, कार्य–कलाप एवं परिणाम स्वरुप, अकारिकी अथवा भूविन्यास अन्य समीपवर्ती अथवा दूरस्थ क्षेत्रों के भूविन्यास से असम्पृक्त एवं निरपेक्ष नहीं रहता, अतएव भूगोल में एक प्रदेश विशेष की विशिष्टताओं का निरुपण अन्य प्रदेशों के सन्दर्भ में भी किया जाता है। इस प्रकार, यद्यपि भूगोल– वेत्ता का ध्यान प्रदेश–विशेष की विशिष्टताओं के निरुपण पर केन्द्रित रहता है, तथापि, वह पृथ्वी तल के अन्य प्रदेशों के तत्वों के समग्र स्वरुप, उनकी प्रक्रियाओं एवं अन्तर्सम्बन्धों तथा विशिष्टताओं की नितान्त उपेक्षा नहीं करता। इसी दृष्टि से हरबर्टसन तथा अन्य भूगोलवेत्ताओं ने विश्व या महाद्वीप या देश के स्तर पर विभिन्न प्रकार के प्रदेशों के सीमांकन पर बहुत जोर दिया। सोवियत संघ में प्रदेश को एक वस्तुनिष्ठ ईकाई माना गया तथा आर्थिक नियोजन ऐसे ही भौगोलिक प्रदेशों के आधार पर आगे बढ़ा।

13.5.3 संश्लेषणोन्मुखता–

भूगोल मूलतःएक संश्लेषणात्मक विज्ञान है क्योंकि इसका प्रमुख कार्यं प्रदेश विशेष के सन्दर्भ में विविध तत्वों के अन्तर्सम्बन्ध एवं तज्जनित समग्र स्वरूप का समाकलन करना है। तथापि इसका तात्पर्य यह नहीं कि इसमें किसी प्रकार का विश्लेषण नहीं किया जाता। वस्तुतः किसी भी विषय के लिए विश्लेषण एवं संश्लेषण दोनों परिपूरक विवेचन माध्यम हैं। भूगोल की संश्लेषण पर अपेक्षाकृत अधिक निर्भरता है क्योंकि इसके अन्तर्गत किसी तत्व विशेष का नहीं, वरन् विविध तत्वों के समाकलित समग्र स्वरुपका अध्ययन होता है। प्राचीन काल में ही

निवास्य जगत में जितने भी तत्व प्रकट थे उनका समाकलित स्वरूप प्रस्तुत करना भूगोल का कार्य था। कालक्रमानुसार जैसे–जैसे मनुष्य का अनुभव एवं ज्ञान विस्तृत होता गया, एक–एक तत्व के स्वरूप का गहन विश्लेषण करने की आवश्यकता बढ़ती गई। फलस्वरुप विज्ञान में विशेषीकरण बढ़ता गया और एक तत्व विशेष का विश्लेषण करना एक विज्ञान विशेष का कार्य क्षेत्र बनता गया। उदाहरणार्थ, उच्चावच, जलवायु, वनस्पति, जीव–जन्तु आदि का सामान्य ज्ञान हो जाने के पश्चात प्रत्येक तत्व के गहन विश्लेषण हेतु भौतिकी, वनस्पति शास्त्र, प्राणिशास्त्र के रुप में विशेषीकरण हुआ। इस प्रकार के विशेषीकरण की प्रवृत्ति 19 वीं शताब्दी से अधिक सबल हुई क्योंकि तब तक विभिन्न अन्वेषण यात्राओं द्वारा विश्व के विभिन्न क्षेत्रों की सामान्य रुप रेखा पर्याप्त स्पष्ट हो गयी थी।

इस प्रकार के विशेषीकृत अध्ययनों से प्राप्त आंकड़ों, सूचनाओं एवं ज्ञान में सामञ्जस्य स्थापित करना भी उतना ही महत्वपूर्ण था, क्योंकि किसी भी तत्व की विशेषतायें सर्वथा निरपेक्ष नहीं होती। एक तत्त्व की विशेषता अन्य तत्त्वों से प्रभावित होती है। जैसे वनस्पति की विशेषतायें जलवायु, मिट्टी की विशेषताओं के अनुरुप होती हैं अथवा अधिवास की विशेषतायें आर्थिक कार्यो, कृषि, खनन, उद्योग को प्रतिबिम्बित करती हैं। अतएव उनका सम्यक ज्ञान अन्य तत्वों की विशेषताओं के परिप्रेक्ष्य में ही हो सकता है। जैसे उच्चावच अथवा वनस्पति की किसी भी विशेषता को, बिना जलवायु तत्वों की विशेषताओं को जाने, पूर्णरुपेण नही जाना जा सकता। इसके विपरीत, जलवायुगत तत्वों की विशेषतायें भी वनस्पति एवं उच्चावच के सन्दर्भ में ही स्पष्ट हो सकती हैं। अस्तु, भूगोल क्षेत्र विशेष के सन्दर्भ में विभिन्न विषयों के गहन अध्ययन से प्राप्त तत्त्वगत विशेषताओं का संश्लेषण करने वाले विषय के रूप में स्थापित होता गया। स्पष्ट है कि इस प्रकार का संश्लेषण सभी तत्वों की विशेषताओं का मात्र यांत्रिक सम्मिश्रण नहीं वरन् एक रासायनिक घोल की तरह होता है। अतएव, विभिन्न तत्वों की अन्तर्सम्बन्ध प्रक्रिया का विश्लेषण करने की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरणार्थ, उष्ण जलवायु एवं चावल की कृषि तथा साधन जनसंख्या के अन्तर्सम्बन्ध का विश्लेषण करके ही मानसून एशिया की जीवन पद्धति का संश्लिष्ट स्वरुप प्रस्तुत किया जा सकता है।

सहारा मरुभूमि तथा टुण्ड्रा दोनों में उच्चावच, जलवायु, वनस्पति, जन्तु के समी सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व विद्यमान होते हैं परन्तु इनके समिश्रण से उत्पन्न स्वरुप सर्वथा भिन्न हैं। रीटर ने भौतिक तत्त्वों से परिपूर्ण प्रदेशों के स्वरुप निरुपण में ही सारा जीवन लगा दिया। भूगोल के विकासक्रम की रुपरेखा से प्रकट है कि अपने विकास के सभी चरणोंमें भूगोल अन्य विषयों से उपलब्ध ज्ञान का क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य में संश्लेषण करता रहा है। पुर्नजागरण काल के पश्चात जब नये अज्ञात क्षेत्रों की खोज में अभूतपूर्व प्रगति हुई, उसी के समानान्तर इन अन्वेषण यात्राओं से प्राप्त सूचनाओं एवं आँकड़ों का व्यवस्थित विवरण प्रस्तुत करने की जिम्मेदारी भूगोल पर आयी।

19 वीं सदी के मध्य तक विषय का यही स्वरुप बना रहा। हुम्बोल्ड्ट एवं रीटर ने अपने विशेष दृष्टिकोणों से विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में भौतिक जगत केज्ञात तथ्यों का, चाहे वे किसी भी तत्वगत विषय के गहन अध्ययन के परिणाम स्वरुप प्रकट हुए हों, समाकलन किया। 1859 में डार्विन के सिद्धान्त की स्थापना के पश्चात जब वैज्ञानिक दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ तथा हर तत्व का उद्भव विकास एवं कार्य–कारण विश्लेषण होने लगा तो भौगोलिक संश्लेषण में भी नियतिवादी प्रवृत्ति का समावेश हुआ जो लगभग 1960 ई० तक, प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष, बना रहा। पुनः जब दूरस्थ संवेदन विधि से असीम आंकड़े–सूचनायें उपलब्ध होने लगीं तथा संगणक की सहायता से उनका परीक्षण– विश्लेषण होने लगा तो भौगोलिक संश्लेषण भी उससे अप्रभावित नहीं रह सका। परिणाम स्वरुप अब किसी क्षेत्र में बारी–बारी से एक तत्त्व का दूसरे तत्त्व से अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करके, प्रदेश का समग्र स्वरुप निरुपित करने के स्थान पर सभी तत्त्वों के सम्यक बहु आयामी अन्तर्सम्बन्ध का विश्लेषण करके, संश्लिष्ट भूवैन्यासिक स्वरुप (न सिर्फ वास्तविक वरन अभीष्ट भी) का निरुपण किया जाने लगा। स्पष्ट है कि भूगोल अन्य सभी विषयों से उपलब्ध सूचनाओं आकड़ों एवं ज्ञान का क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य में संश्लेषण करके उनमें व्याप्त मौलिक अन्तर्सम्बन्धों का विश्लेषण करता है तथा अन्ततोगत्वा एक संशिलष्ट प्रादेशिक भूविन्यास प्रस्तुत करने को सचेष्ट रहता है।

13.5.4 व्यावहारिक समस्याओं का समाकलन एवं निराकरण –

भूगोल के मूल स्वरूप के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह विषय एक व्यावहारिक धरातल पर अवस्थित है। इसका प्रमुख लक्ष्य किसी तत्त्व विशेष की प्रक्रिया का अध्ययन करके सिद्धान्त या नियम प्रतिपादित करना कम, तथा क्षेत्र विशेष में सभी तत्त्वों के पारस्परिक अन्तर्सम्बन्ध से उत्पन्न समाकलित स्वरूप का

निरूपण करना रहा है। यह प्रयास स्वयमेव एक व्यावहारिक कार्य है। इस प्रयास में, सचेतन अथवा अचेतन रूप में, भूगोल, क्षेत्र की समस्याओं की जड़ और उनकी उन्मूलन विधि की ओर भी इंगित करता है। प्राचीन काल से ही 'क्षितिज के पार' देखने–जानने की मनुष्य की आकांक्षा महज एक जिज्ञासा नहीं थी, वरन अपने परिवेश की सीमाओं से निकलकर बेहतर दशाओं में जीवन–यापन करने की व्यावहारिक आवश्यकता से भी जुड़ी थी। जिसको अपने सीमित परिवेश के बाहर की दुनिया का जितना अधिक ज्ञान था, वह अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति में उतना ही सक्षम था। चाहे धार्मिक धर्मान्धता के युग में किसी धर्म के व्यापक प्रचार की आवश्यकता हो अथवा राज्य विस्तार की, चाहे व्यापार द्वारा अधिक धनार्जन की इच्छा हो अथवा अपने ही क्षेत्र में अधिक उत्पादन की हर स्थिति में सम्यक भौगोलिक ज्ञान उपादेय सिद्ध होता रहा। इस प्रकार के ज्ञान का सर्वाधिक लाभ 18 वीं 19 वीं शताब्दी में उन यूरोपीय देशो को प्राप्त हुआ, जिन्होंने हर प्रकार के खतरे उठाकर अन्वेषण यात्राओं द्वारा नये क्षेत्रों का पता लगाया तथा अपने उपनिवेश स्थापित किये।

वस्तुत औपनिवेशिक शासन की स्थापना एवं व्यापार अभिवृद्धि के अवसर प्रदान करने हेतु आवश्यक ज्ञान प्रदान करने के कारण ही 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध एवं 20 वीं सदी के प्रारम्भिक दशकों में यूरोप में भूगोल के अध्ययन हेतु कई विश्वविद्यालयों में स्वतन्त्र विभागों की स्थापना 20वीं शताब्दी में जनसंख्या का विस्फोट, अन्धाधुन्ध औद्योगीकरण, भौतिकवादी जीवन–दृष्टि, अधिकाधिक उन्नति की होड़, तथा औपनिवेशिक साम्राज्यवाद के विघटन, नवस्वतन्त्र राष्ट्रों की आर्थिक उन्नति आदि ने कई प्रकार की नयी समस्याओं को जन्म दिया है जिनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध विभिन्न प्रदेशों के संसाधनों के शोषण, विकृत भूवैन्यासिक संगठन, पारिस्थैतिकी असंतुलन,तथा असमान अन्तप्रीदेशिक व्यापार से है। ये सभी समस्यायें ऐसी हैं जिनका निराकरण एक समग्र समाकलित परिप्रेक्ष्य में ही सम्भव है। ऐसा परिप्रेक्ष्य भूगोल ही प्रदान कर सकता है जिसमें प्रदेश विशेष में भौतिक, जैविक, मानवकृत, सभी प्रकार के तत्वों के संमिलष्ट स्वरूप को प्रस्तुत करने की क्षमता है। इस दिशा में भूगोल अपना अमूल्य योगदान देता रहा है। स्टाम्प द्वारा ब्रिटेन में खाद्य समस्या को हल करने के लिये, गहन भूमि उपयोग सर्वेक्षण एवं भूमि के दुरूपयोग को इंगित करना भूगोल की व्यावहारिक उपयोगिता का ठोस प्रमाण है। सोवियत संघ में 1920 के पश्चात, देश के विद्युतीकरण की योजनाय फिर संसाधन के प्रादेशिकरणहर प्रदेश में उपयुक्त आर्थिक संश्लिष्ठ बनाने का ठोस सुझाव, सभी भूगोल की व्यावहारिक उपयोगिता को रेखांकित करते हैं।

13.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई में वर्तमान काल में आवश्यकताओं के अनुसार भौगोलिक अध्ययनों की तीन प्रवृत्तियाँ मुख्य हैं–(1) भूगोल के समग्र अध्ययन तथा समिश्र–समाकत– प्रादेशिकरण के साथ–साथ विशेषीकरण की प्रवृत्तिय (2) मात्राकरण एवं यन्त्रीकरण की प्रवृत्तिय (3) अनुप्रयोग अर्थात् अनुप्रयुक्त भूगोल के अधिकाधिक प्रचार की प्रवृत्ति। भूगोलवेत्ता जन अन्य विज्ञानों के साथ और इंजीनियरों के साथ मिलकर प्रदेशों की तथा अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक–सांस्कृतिक विकास– योजनाओं में सक्रिय सुरुचि सहयोग दें। संसार के उन्नत देशों, जैसे अमेरिका, सोवियत संघ, जर्मनी, फांस, ब्रिटेन, जापान, आदि देशों के साथ–साथ अन्य विकासशील देशों, जैसे भारत, चीन, कनाडा, मध्य यूरोप, अरब देशों बादि में भी बब उपर्युक्त प्रवृत्तियों पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है और भूगोल का प्रयोग मानवीय सुख–समृद्धि की योजना के लिये किया जा रहा है।

13.7 स्वमूल्यांन एवं आदर्श उत्तर

प्रश्न 1. सर्वप्रथम किस विद्वान ने भूगोल के बदलते स्वरूप का उल्लेख किया ?

(अ) फ्रीमैन(ब) हेटनर(स) हार्टशोर्न (द) टॉलमी

प्रश्न–2 जियोक्रेटिक पक्ष (प्राकृतिक वातावरण निश्चयवाद) के प्रमुख प्रतिपादक कौन हैं ?

(अ)टॉलमी– हेटनर (ब)रिटर– स्ट्रैबो

(स)हम्बोल्ट– रैटजेल (द) मैगलेन– कांट

प्रश्न 3 भू – आकृतिक' का अध्ययन किस विद्वान नेकिया ?

(अ) रिचथोफेन(ब) हम्बोल्ट(स) पेंक (द) डेविस

उत्तरमाला– 1. (अ)2.(स)3. (द)

13.8 संदर्भ–ग्रंथ–सूची

- Losch,A., 1954, The Economics of Lo cation, Translated from German by W. H. Woglom and W. F, Stolper, New Haven
- Maver and Kahn, Readings in Urban Geography.
- Misra, R. P.(Ed.), 1969, Regional Planning % Concepts, Techniques, Policies and Case studies, Mysore.
- RussellEJ., 1954, World Population and World Focd Supplies, London.
- Saunders, C., 1936, World P pulation, Past Growth and Present Trends.
- Smith. 1970, Industr ial Locution,An Economic GeographicalAnalysis, London.
- Taaffe, E J., Burton, I., Ginsburg, N., Gould, P. R., Luckermann, F.., and
- Wagner. P. L., 1970 % Geography, Behavioural and Social Sciences Survey Series, Prentice Hall.
- Zelinsky, W., 1966,A Prologue to Population Geography. N. J.

14.9 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षाकी तैयारी)

प्रश्न 1 भूगोल में अभिनव प्रवृत्ति का उल्लेख कीजिये।

प्रश्न 2 भूगोल तत्वों की विभिन्नताओं में अंतर– संबधों का व्यापक विवेचन करता है इसकी पुष्टि कीजिये।

प्रश्न 1 भूगोल पृथ्वी तल का विज्ञान है 'इस कथन की व्याख्या कीजिये।

इकाई–14 भूगोल का वैज्ञानिक स्वरूप, अन्य विषयों से संबंध

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 भूगोल का वैज्ञानिक स्वरूप

14.4 भूगोल अंतर विषयी विज्ञान है

14.5 भूगोल में वैज्ञानिक व्याख्याओं के रूप

- 14.5.1 मस्तिष्क की समझ पर आधारित वर्णन
- 14.5.2. आकारमित्तीय विश्लेषण
- 14.5.3. कारण तथा परिणाम विश्लेषण
- 14.5.4. कालिक ऐतिहासिक विश्लेषण
- 14.5.5. कार्यात्मक विश्लेषण
- 14.5.6. तंत्र विश्लेषण

14.6 भूगोल का अन्य विषयों से संबंध

- 14.6.1 भूगोल का भौतिकविज्ञानों से संबंध
  - 14.6.1.1 भूगोल और गणित
  - 14.6.1.2. भूगोल और खगोल
  - 14.6.1.3. भूगोल और भू–विज्ञान
  - 14.6.1.4. भूगोल और मौसम विज्ञान
  - 14.6.1.5. भूगोल और जल विज्ञान
  - 14.6.1.6. भूगोल और मृदा विज्ञान
  - 14.6.1.7. भूगोल और वनस्पति विज्ञान
  - 14.6.1.8. भूगोल और जंतु विज्ञान
- 14.6.2 उनका सामाजिक विज्ञानों से संबंध
  - 14.6.2.1. भूगोल और मानव विज्ञान
  - 14.6.2.2. भूगोल और अर्थशास्त्र
  - 14.6.2.3. भूगोल और समाजशास्त्र
  - 14.6.2.4. भूगोल और इतिहास
  - 14.6.2.5. भूगोल और राजनीतिक विज्ञान
  - 14.6.2.6. भूगोल और सैन्य विज्ञान
  - 14.6.2.7. भूगोल और जनांकिकी

14.7 सारांश

14.8 स्वमूल्यांकन एवं आदर्श उत्तर

14.9 संदर्भ– ग्रंथ– सूचि

14.10 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

14.1 प्रस्तावना

भूगोल में प्रादेशिक उपागम का उद्‌भव भी भूगोल की वर्णनात्मक प्रकृति पर बल देता है। हम्बोल्ट के अनुसार, भूगोल प्रकृति से सम्बंधित विज्ञान है और यह पृथ्वी पर पाये जाने वाले सभी साधनों का अध्ययन व वर्णन करता है। हेटनर और हार्टशॉर्न पर आधारित भूगोल की तीन मुख्य शाखाएँ है : भौतिक भूगोल, मानव भूगोल और प्रादेशिक भूगोल। भौतिक भूगोल में प्राकृतिक परिघटनाओं का उल्लेख होता है, जैसे कि जलवायु विज्ञान, मृदा और वनस्पति। मानव भूगोल भूतल और मानव समाज के सम्बंधों का वर्णन करता है। भूगोल एक अन्तरा–अनुशासनिक विषय है। भूगोल का गणित, प्राकृतिक विज्ञानों और सामाजिक विज्ञानों के साथ घनिष्ठ सम्बंध है। जबकि अन्य विज्ञान विशिष्ट प्रकार की परिघटनाओं का ही वर्णन करते हैं, भूगोल विविध प्रकार की उन परिघटनाओं का भी अध्ययन करता है, जिनका अध्ययन अन्यविज्ञानों में भी शामिल होता है। इस प्रकार भूगोल ने स्वयं को अन्तर्सम्बंधित व्यवहारों के संश्लेषित अध्ययन के रूप में स्थापित किया है। भूगोल स्थानों का विज्ञान है। भूगोल प्राकृतिक व सामाजिक दोनों ही विज्ञान है, जोकि मानव व पर्यावरण दोनों का ही अध्ययन करता है। यह भौतिक व सांस्कृतिक विश्व को जोड़ता है। भौतिक भूगोल पृथ्वी की व्यवस्थाओं उत्पन्न प्राकृतिक पर्यावरण का अध्ययन करता है। मानव भूगोल राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और जनांकिकीय प्रक्रियाओं से सम्बंधित है। यह संसाधनों के विविध प्रयोगों से भी सम्बंधित है। प्रारंभिक भूगोल सिर्फ स्थानों का वर्णन करता था। हालाँकि यह आज भी भूगोल के अध्ययन में शामिल है परन्तु पिछले कुछ वर्षों में इसके प्रतिरूपों के वर्णन में परिवर्तन हुआ है। भौगोलिक परिघटनाओं का वर्णन सामान्यतःदो उपागमों के आधार पर किया जाता है जैसे (१) प्रादेशिक और (२) क्रमबद्ध। प्रादेशिक उपागम प्रदेशों के निर्माण व विशेषताओं की व्याख्या करता है। यह इस बात का वर्णन करने का प्रयास करता है कि कोई क्षेत्र कैसे और क्यों एक दूसरे से अलग है। प्रदेश भौतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, जनांकिकीय आदि हो सकता है। क्रमबद्ध उपागम परिघटनाओं तथा सामान्य भौगोलिक महत्वों के द्वारा संचालित है। प्रत्येक परिघटना का अध्ययन क्षेत्रीय विभिन्नताओं व दूसरे के साथ उनके संबंधों का अध्ययन भूगोल आधार पर किया जाता है।

आधुनिक युग में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के विकास के कारण मानव ने बहुत से विषयों का ज्ञान प्राप्त कर लिया है और बहुत सा ज्ञान प्राप्त करना अभी बाकी है। ज्यो– ज्यों ज्ञान प्राप्त करते है त्यो त्यो विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का विकास बढ़ता जाता है ज्ञान की सीमा बड़ी अनन्त है अतः आधुनिक काल को हम विज्ञान का काल भी कह सकते है। भूगोल प्राकृतिक विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान दोनों पर निर्भर करता है और बदले में विज्ञान की अन्य शाखाओं के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

14.2 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य विज्ञान के दार्शनिकों ने इन नियमों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है किन्तु वैज्ञानिक विधियों को विस्तृत रूप में मॉडल के रूप में सिद्ध करना तीन दृष्टिकोण से कठिन होता है। प्रथम का सम्बन्ध खोज के अन्वेषण–संदर्भ में होता है। इसका तात्पर्य वैज्ञानिकों के अन्तर्बोध द्वारा स्थापित कार्य–क्षेत्र से होता है, दूसरा पहलू वैज्ञानिकों द्वारा अपने निष्कर्षों के समर्थन में प्रयुक्त प्रक्रियाओं की क्रियाविधियों को प्रस्तावित करने का प्रयास होता है और तीसरा पहलू इन निष्कर्षों को प्रस्तुत करने का ढंग होता है जिसमें संगठित ज्ञान को सुसंगत तथा सम्बद्ध स्वरूप के साथ जोड़ने का उद्देश्य रहा है। यद्यपि इन तीनों पहलुओं को एक–दूसरे के साथ मिलाकर उलझाना भी खतरनाक होता है तथापि इनको अलग करना भी कठिन होता है। वास्तविक विश्व सम्बन्धी वैज्ञानिक विवरणों में एक सम्बद्ध पदानुक्रम मिलता है। विवरणों के निम्नक्रम को लक्ष्यपरक विवरण, मध्य क्रम को साधारणीकरण या अनुभवजन्य नियम है।

14.3 भूगोल का वैज्ञानिक स्वरूप

संसार में अट्ठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से मुख्यतःयूरोप में, विज्ञानों का उदय हुआ। इससे पूर्व की 20 से भी अधिक शताब्दियों तक पृथ्वी एवं विश्वकी जानकारी का संकलन होता रहा लेकिन उसमें विज्ञान का अंश अत्यन्त कम था। विज्ञान इसी विश्व के तथ्यों एवं घटनाओं, जिनका बोधहोता है, का व्यवस्थित पर्यवेक्षण एवं प्रयोगहै। इसे

स्पष्ट तथा सूक्ष्म रूप से व्यक्त किया जाता है। सामान्यतः विज्ञान प्रकट संसार की वास्तविकता की व्याख्या का प्रयास है। विज्ञान संसार के रहस्यों को स्पष्ट करता है, इसलिये विविधात्मक प्रश्नों के उत्तर ढूढ़ने में जुटा होता है। यह बोधगत पर्यवेक्षण के बाद का मस्तिष्क का वह कार्य है जो अज्ञात प्रश्नों या रहस्यों की व्याख्या करता है तथा अवधारणायें बनाता है जिनका क्षेत्र में परीक्षण भी किया जा सकता है। इसीलिये किसी विज्ञान की सम्पन्नता उसमें सृजित ,अवधारणाओं ,परिकल्पनाओं , सिद्धान्तों , मॉडलएवं सामान्य नियमोंकी मात्रा तथा गुणवत्ता से निर्धारित होती है।

पृथ्वी (प्राकृतिक ग्रह) एवं विश्व (मानव ग्रह) की संकलित जानकारी में महान खोज युग , मुख्यतः15वीं तथा 16वीं शताब्दी में, भारी वृद्धि हुई। संकलित जानकारी एवं उससे सम्बन्धित विज्ञानी का विभाजन एवं वर्गीकरण किया जाने लगा क्योंकि जानकारी तथा विज्ञान का आकार बड़ा होने लगा था तथा वे अलग–अलग किस्में भी सुझाते थे। विज्ञानों के उदय काल (18वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध) में जर्मन दार्शनिक इमेनुअल कान्ट ने विज्ञानों के वर्गीकरण में भूगोल के स्थान को विश्वासजनक तर्कोंसे प्रस्तुत किया जिसने भूगोल विज्ञान का भविष्य का स्वरूप निर्धारित किया। कान्ट के द्वारा विज्ञानों के वर्गीकरण में भूगोल के स्थान तथा इतिहास से उसकी निकटता के विवेचन को वर्तमान भूगोलवेत्ताओं के द्वारा अपने विषय को देखने का दृष्टिकोण बताया है। जैसा कि कान्ट का स्पष्ट एवं तार्किक विचार था, भूगोल आज भी विशिष्ट स्थलों पर तत्वों एवं घटनाओं की स्थान में व्यवस्थातथा उनके अन्तर्सम्बन्ध का विज्ञान हैजिसे प्रदेशों के विज्ञानके रूप में भौगोलिक जगत एवं उसके बाहर भी जाना जाता है।

इसका विकास एक पैराडाइम की तरह 1920–1945 के मध्य हुआ किसी स्थल, चाहे वह लोकेलिटी (जैसे कोई गाँव स्तर का छोटा हो या अन्तर्महाद्वीपीय (जैसे अफ्रीकी–मध्य एशियाई मरुस्थली क्षेत्र) स्तर का बड़ा, उसमें तत्वों एवं घटनाओं की व्यवस्था को सकारण उजागर करना तथा उनके अन्तर्सम्बन्धों को समझाना भूगोलवेत्ता की कला का सर्वोच्च रूप है। स्थल या क्षेत्रोंको उनकी वास्तविकदशा में प्रस्तुत करना तथा तत्वों की ऐसी व्यवस्था में अन्तर्सम्बन्धों की व्याख्या करना तभी सम्भव है जब इन तत्वों से सम्बन्धित विज्ञानों के पारस्परिक सम्बन्धों का ज्ञान हो। ऐसा सम्बन्ध होता ही है क्योंकि कृत्रिम विविध विज्ञान वास्तव में एक ही परम विशाल ज्ञान के छोटे–छोटे अंग हैं। इसी कारण भूगोल एवं भूगोलवेत्ता को तत्वों के वर्गीकरण पर आधारित क्रमबद्ध विज्ञानों के परिणामों की आवश्यकता पड़ती है। क्रमबद्ध विज्ञान भूगोलवेत्ता की इस सर्वोच्च कला (क्षेत्रों में तत्वों की व्यवस्था तथा अन्तर्सम्बन्ध की व्याख्या) को अधिक दक्ष बनाते हैं तथा प्रादेशिक भूगोल को अधिक सम्पन्न बनाने में सहायक हैं। लेकिन भूगोल का स्वयं क्रमबद्ध विज्ञानों को अंगीकृत करना, अधिक सफल नहीं हो सकता क्योंकि इन क्रमबद्ध विज्ञानों के सीमित एवं विशिष्ट क्षेत्रके वैज्ञानिक, उच्च ध्यान केन्द्रणके कारण भूगोलवेत्ताओं से गुणवत्ता में काफी आगे निकलने की सम्भावना रखते हैं। भूगोलवेत्ता प्रादेशिक भूगोल के बड़े एवं व्यापक कार्य के साथ विविध क्रमबद्ध विज्ञानों में दक्षता प्राप्त नहीं कर सकता श्रम विभाजन दक्षता का आधार होता ही है।

यह भी आवश्यक है कि भूगोलवेत्ता प्रदेशों के विविध प्रकारों में से एक या सीमित संख्या के प्रदेशों को अपने अनुसंधान का विशेषीकृत क्षेत्र बनाये तथा उन्हीं की व्याख्या के लिये आवश्यक क्रमबद्ध विज्ञानों के परस्पर सम्बन्धों के पहलुओं में विद्वता प्राप्त कर ले, ताकि प्रदेश की कुशल व्याख्या हो सके। इन प्रदेशों का अध्ययन मानव समाज या उसके हिस्सों के पर्यावासके रूप में ही किया जाता है। प्रदेशों के अध्ययन के उपागमजैसे मानववादी, व्यावहारिक, कल्याण या उग्रपरिवर्तनवादी, समाज, देश, काल के संदर्भ में विचारे एवं चुने जा सकते हैं ताकि भूगोल अपने परम उद्देश्य (i) पृथ्वी की सतह (भू–सतह) के स्थलों, क्षेत्रों, प्रदेशों एवं स्थानों का ज्ञान सृजन करें तथा (ii) इनकी मानव–पर्यावासके रूप में गत्यात्मक व्याख्या कर सके। मानव पर्यावास के रूप में स्थलों की दशाओं में समय के गुजरने के साथ परिवर्तन होता है, इसलिये व्याख्याएँ भी परिवर्तनशील (गत्यात्मक) होंगी।

भूगोल का विज्ञानों के वर्गीकरण में स्थान तथा उसकी प्रकृति के तार्किक एवं दार्शनिक निर्धारण का श्रेय कान्ट को है। कान्ट ने ही भूगोल को वह दार्शनिक आधार दिया जिसने विज्ञान जगत में यह विश्वास पैदा किया कि भूगोल महत्वपूर्ण वैज्ञानिक योगदान करने का विषय है(1981)। कान्ट ने बताया कि संसार के आनुभविक तथ्यों को वर्गीकृत करने की दो विधियाँ हैं(1.) तथ्यों की प्रकृतिअर्थात् वे क्या और कैसे हैं तथा (2.) उनकी समय तथा स्थान में स्थिति अर्थात् कब और कहाँ स्थित हैं, के आधार पर। पहली विधि से किये गये तथ्यों के वर्गीकरण को वह तार्किक तथा दूसरी विधि से किये वर्गीकरण को भौतिक वर्गीकरण कहता है। तार्किक वर्गीकरण से क्रमबद्ध विज्ञान बनते हैं जैसे चट्टानों के अध्ययन के लिये भूगर्भिकी और सामाजिक समुदाय के अध्ययन के लिये समाजशास्त्र आदि। भौतिक वर्गीकरण इतिहास और भूगोल को वैज्ञानिक आधार प्रदान करता है।

इतिहास काल–अनुक्रम विज्ञानहै जो तथ्यों एवं घटनाओं की समय के क्रम में होने की व्याख्या करता है, जबकि भूगोल तथ्यों के स्थान में साथ–साथ होने स्थान को व्यक्त करता है। इसलिये इतिहास तथा भूगोल अनिवार्य ज्ञान के विषयहैं। यह सभी क्रमबद्ध विज्ञानों की पृष्ठभूमि में उपस्थित हैं तथा इनके बिना मनुष्य संसार का पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। इसका कारण यह है कि सभी तत्व एवं घटनाएँ समय और स्थान में होते हैं उनके परे नहीं। इस प्रकार कान्ट ने भूगोल को केन्द्रीय महत्व का विषय बनाया जो सभी क्रमबद्ध विज्ञानों के लिये पूरक की भूमिका में है तथा जिसके बिना बड़ी संख्या के क्रमबद्ध विज्ञानों से सृजित ज्ञान अधूरा है।

बाद में भूगोलवेत्ताओं ने बार–बार कान्ट के इस विचार को भूगोल के अस्तित्व के कारण के रूप दोहराया है। लेकिन ऐलफ्रैड हैटनर (1859–1941) वह भौगोलिक विधितन्त्र का चिंतक है जिसके विचार इस सम्बन्ध में कान्ट के विचारों से पूर्णत सुमेलित हैं। बिना कान्ट के विचारों को जाने उसने भी विज्ञानों के वर्गीकरण में भूगोल का कोरोलोजिकल विज्ञान का ही स्थान पाया। बाद में यह हैटनर ही था जिसने कान्ट के भूगोल की प्रकृति एवं विज्ञानों में स्थान के विचार का सर्वाधिक पुनर्विकास किया। भौगोलिक चिन्तन एवं विधितन्त्र के इतिहास के दार्शनिक अमेरिकी भूगोलवेत्ता रिचर्ड हार्टशोर्न ने भूगोल के चिंतन एवं विधितन्त्र के इतिहास के अपने शास्त्रीय अध्ययन से यही निष्कर्ष निकाला कि कान्ट तथा हैटनर के समान विचार, भूगोल की प्रकृति की सन्तोषजनक व्याख्या एवं अभिव्यक्ति है। ये विचार भूगोल की प्रकृति सम्बन्धी अधिकांश प्रश्नों का उत्तर दे देते हैं। उसके ये निष्कर्ष और भूगोल की प्रकृति के विषय में विचार, कई वर्षों के अनुसंधान के बाद, प्रतिष्ठित अमेरिकी भूगोल पत्रिकाऐनाल्स के कई अंकों में मोनोग्राफ के रूप में प्रकाशित हुये जिन्हें नेचर ऑफ जियोग्राफी , 1939 शीर्षक से एक पुस्तक का रूप दिया गया। यह भूगोल की, प्रकृति पर उसके इतिहास के परिप्रेक्ष्य में सर्वोत्कृष्ट कृति है। 1959 में हार्टशोर्न ने भूगोल का सम्पूर्ण वैज्ञानिक, दार्शनिक तथा विधितन्त्रीय स्वरूप प्रस्तुत किया। ये कृतियाँ 1950 तक भूगोल के विषय में अन्तिम शब्द रहे तथा आज भी भूगोल की वास्तविक प्रकृति के बड़े हिस्से का प्रतिनिधित्व करती हैं।

शेफर द्वारा प्रेरित (1953) मात्रात्मक क्रान्ति या स्थानिक विज्ञान, व्यवहारवादी भूगोल, मानववादी भूगोल, मानव– पारिस्थितिकीय भूगोल एवं तन्त्र उपागम, सामाजिक प्रासंगिकता, राजनीतिक अर्थव्यवस्था तथा उत्तर–आधुनिक भूगोल, वास्तव में भूगोल के विज्ञान के रूप में, उसके दर्शन पर कम तथा उपागम पर अधिक बल देते हैं। ये आन्दोलन क्रान्तियाँ भूगोल की प्रकृति पर कम विचार व्यक्त करते हैं तथा अधिकांशतःयही बताते है कि भौगोलिक अध्ययन कैसे किये जायें। कान्ट द्वारा बताये गये भूगोल के स्थान के कारण ही भूगोल को बार–बार जोड़ने वाला विषय विज्ञान कहा जा सका है तथा बार–बार उभरने वाले भौतिक भूगोल (प्राकृतिक क्रमबद्ध विज्ञान) तथा मानव भूगोल के द्विविभाजन की तीव्रता को कम करके भूगोल को संश्लेषण का विज्ञानबनाने के गम्भीर प्रयास होते रहे हैं। हैगेट की पुस्तक जाग्राफी : अ न्यू सिंथेसिस (1972, 1979) अपेक्षाकृत बाद के ऐसे प्रयासों की भावना का एक उदाहरण है।

वर्तमान भूगोल का सरोकार क्रमबद्ध विज्ञानों तथा प्रादेशिक अध्ययन दोनों से है। क्रमबद्ध विज्ञानों से प्राप्त तत्वों की गहन समझ, भूगोलवेत्ता के लिये प्रदेशों की समझ तथा व्याख्या में सहायक हैं। इस प्रकार भूगोल क्रमबद्ध एवं प्रादेशिक अध्ययन विज्ञान है तथा उसका मौलिक उद्देश्य पृथ्वी की सतह के विविध भागों को मानव–संसार के रूप में समझाना है।

वर्तमान समय में कान्ट के विज्ञानों के उपर्युक्त वर्गीकरण में कुछ विचलन पाया जाता है। विभिन्न क्रमबद्ध विज्ञान अब तथ्यों के समय तथा स्थान पक्ष पर भी विचार करते हैं। इतिहास और भूगोल के मध्य भी उनके अध्ययन की सीमाओं का उल्लंघन होता है क्योंकि इतिहास स्थानों का, तथा भूगोल भूतकालीन ऐतिहासिक दशाओं का अध्ययन भी करता है। हैटनर (1927) के अनुसार भूगोल और इतिहास में सबसे बड़ा अन्तर यही है कि, जबकि इतिहास में समय–तत्व प्रमुख होता है, भूगोल में वह पृष्ठभूमि में रहता है तथा भूगोल ऐतिहासिक विकास के परिणामस्वरूप वर्तमान की स्थानिक व्याख्या में संलग्न रहता है। भूगोल द्वारा कालानुक्रम को पृष्ठभूमि में रखने का नियम, कान्ट की मृत्यु (1804) के बाद भुलाया ही नहीं गया वरना उसका उल्लंघन किया गया। चार्ल्स डार्विन के उद्विकास के सिद्धान्त के प्रभाव से भूगोल में समय पुनः महत्वपूर्ण बन गया। विलियम मॉरिस डेविस तथा फ्रांसीसी भूगोलवेत्ताओं ने भूगोल में उद्विकास सिद्धान्त के अनुरूप प्रक्रम अध्ययन अर्थात काल–क्रमानुसार परिवर्तन के अध्ययन को भूगोल में प्रमुखता दी। फ्रांसीसी प्रादेशिक भूगोल इतिहास की प्रमुखता के साथ लिखा गया। ब्लॉश ने फ्रांस के प्रादेशिक भूगोल में उसके 2000 वर्ष के इतिहास का प्रयोग किया है।

लगभग एक शताब्दी से भी अधिक समय के बाद हैटनर (1927) तथा हार्टशोर्न (1937) ने कान्ट के

वर्गीकरण पर आधारित भूगोल के कोरोलोजिकल विज्ञान का स्थान पुनर्जीवित किया लेकिन कोरोलोजी के रूप में भूगोल के विधितन्त्र पर कोई महत्वपूर्ण मार्गदर्शन नहीं किया। भूगोल को अपनी केन्द्रीय–प्रकृति का दर्शन तो मिल गया, जो भूगोल की कान्ट–हैटनर–हार्टशोर्न–परम्परा कहलाती है लेकिन विधितन्त्र का इतिहास भूगोल के इस प्रादेशिक अध्ययन पैराडाइम के बाद का है। यह नोमोथेटिक (केवल सिद्धान्त बनाकर) विधि, व्यावहारिक विधि, मानववादी विधि, तन्त्र विधि सामाजिक महत्व के प्रश्नों को विचार करने के लिये अनुकूल विधि तथा उत्तर–आधुनिक भूगोल की सभी विधियों के पुनर्मेल की विधि से गुजरा है। वर्तमान भूगोल अधिकांशतःक्रमबद्ध भूगोल है।

भौतिक भूगोल अथवा मानव भूगोल के विषयों का विभिन्न शाखाओं एवं उपशाखाओं में विषयवार अर्थात् क्रमबद्ध अध्ययन होता है। कान्ट–हैटनर–हार्टशोर्न परम्परा के श्रम–साध्य एवं कठिन, लेकिन सच्चे भौगोलिक अध्ययन, जैसे ओ०एच०के० स्पेट का इंडिया , पाकिस्तान ऐंड सीलोन, 1967 का द्वितीय भाग, बहुत कम सृजित हुये हैं। कई बार प्रादेशिक अध्ययन अपनी आन्तरिक संरचना में संश्लेषणात्मक सम्बन्ध के स्थान पर क्रमबद्ध ही बना दिये जाते हैं। प्रदेश विशेष को उसके विषयों जैसे भूआकृति, अपवाह तन्त्र, मिट्टियाँ, अधिवास आदि का विवरण देकर उसे प्रादेशिक भूगोल मान लिया जाता है। स्पेट की तरह किसी प्रदेश में प्राकृतिक, मानवीय तथा सक्रिय तत्वों क्रिया–क्लापों के पारस्परिक सम्बन्ध को बताकर वहाँ के जीवन की अनुभूतियों, समस्याओं एवं सम्भावनाओं को प्रस्तुत करना अर्थात विशद तथ्यों में सम्बन्ध स्थापित कर बनी वास्तविकता को प्रस्तुत करने के लिये भौगोलिक मस्तिष्क स्तरीय विद्वता एवं उच्चके साथ श्रम एवं धैर्य की बड़ी आवश्यकता होती है। वर्तमान भौगोलिक अध्ययनों अनुसंधानों में तीन कार्य किये जाते हैं। अध्ययन समस्या या प्रश्नगत तत्व की अवस्थिति बताना, दूसरे, उस तत्व का वर्णन प्रस्तुत करना तथा तीसरे, प्रश्नों के उत्तर कारण प्रभाव की व्याख्या के रूप में आगमनिक या निगमनिक विधिसे प्रस्तुत करना। जैसा कि विश्व के शीर्षस्थ, परिपक्व एवं अधिक उत्तरदायित्वयुक्त भूगोलवेत्ता बार–बार अपने लेखों में ध्यान दिलाते हैं

भूगोल के अस्तित्व की तार्किकता स्थलों क्षेत्रों का प्रादेशिक अध्ययन है। ऐसे अध्ययन के लिये उसे क्रमबद्ध प्राकृतिक विज्ञानों, सामाजिक विज्ञानों तथा मानविकी(जैसे आंचलिक साहित्य के दर्शन, विषयों एवं विधियों को प्रदेश को समझाने के लिये कुशलता से प्रयोग करना होता है। यही भूगोल की एकीकरण करने की भूमिका है। इसका भौगोलिक चिंतन के साहित्य में व्यापक प्रयोग हुआ है। स्पष्ट है कि भूगोल का विषय एवं उद्देश्य पृथ्वी की सतह या वास्तव में स्थल सतह अर्थात् केवल भूमि की सतह जो कि सागर–सतह से भिन्न है। के स्थलों या क्षेत्रों, जिन्हें समांगता या कार्यात्मक एकता के आधार पर प्रदेशों में प्रदर्शित किया जा सकता है, को अधिकाधिक वास्तविकता के साथ व्यवस्थित एवं तार्किक ढंग से उजागर करना है। भूगोल संसार के निवासियों को उनके तथा अन्य दूर स्थित मानव पर्यावासोंसे परिचित कराने का महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट कार्य करता है। इस प्रकार भूगोल संसार के मानव समाजों को अपने घर को जानने के अधिकार को सम्भव बनाता है। यह जानकारी मानव समाज के भविष्य को ढालने में भी बड़ी भूमिका निभाती है। विश्लेषण के साथ–साथ संश्लेषण आवश्यक है क्योंकि विश्लेषण संश्लिष्ट वास्तविकता को समझने के लिये किया जाता है।

14.4 भूगोल अन्तर–विषयी विज्ञान है–

दूसरे अध्याय में भूगोल अध्ययन के दो उपागम वर्णित हैं–(1.) वर्गीकरण या क्रमबद्ध भूगोल और (2) प्रादेशिक भूगोल।

ये दोनों ही उपागम परस्पर समाविष्ट हैं, अर्थात् दोनों विधियाँ या रीतियाँ एक दूसरे में समाई रहती हैं। भूगोल की दोनों रीतियाँ परस्पर समाविष्ट रहने के साथ–साथ भूगोल विषय की एक विशेषता यह भी है कि भूगोल दूसरे कई विज्ञानों तथा मानवीय विज्ञानों में समाया रहता है तथा उपविषयों को परस्पर जोड़ता है। उपरोक्त दोनों उपागमों में से किसी भी उपागम यानी रीति का प्रयोग किया जाये, भ:गोल सदैव ही एक अन्तरा–अनुशासनिक विज्ञान विषय बना रहता है क्योंकि भूगोल के द्वारा भौतिक विज्ञानों और मानवीय विज्ञानों का परस्पर समाकलन होता है।

1. परस्पर समाविष्ट – क्रमबद्ध या वर्गीकरण रीति तथा प्रादेशिक रीति में चाहे किसी भी एक उपागम के आधार पर अध्ययन किया जाये, किन्तु उस उपागम में दूसरा उपागम स्वतः समाविष्ट हो जाता है।

2. अन्तरा–अनुशासनिक–भूगोल विज्ञान अन्य भौतिक विज्ञानों तथा मानवीय विज्ञानों

3. में समाया हुआ है और इस प्रकार अन्य विज्ञानों को शृंखलाबद्ध करता है।

4. प्रसिद्ध जर्मन भूगोलवेत्ता रिचथोफेन ने उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में, और हैटनर ने बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में ही, अन्य विज्ञानों में भूगोल को समाकलन अनुशासन का स्थान दे दिया था। इसका अभिप्राय यह है कि भूगोल अन्य बहुत से विज्ञानों को परस्पर सम्बद्ध करने में एक श्रृंखला का कार्य करता है और बहुत से विज्ञानों को अपने में समाविष्ट करके एक पूर्ण इकाई बनाता है। रिचथोफेन लीपजिंग तथा बर्लिन में भूगोल के प्रोफेसर रहे थे। वहां उन्होंने भूगोल के क्रमबद्ध उपागम तथा प्रादेशिक उपागम दोनों के समाकलन कार्यों को समझाया था।

हेटनर हाइडेलबर्ग में प्रोफेसर थे। वे बीसवीं शताब्दी के अग्रगण्य रीतिविधायक माने जाते हैं। हैटनर ने यथार्थता की स्थानीय प्रादेशिक संकल्पना को ग्लोबीय प्रादेशिकसंकल्पना से सम्बद्ध करके क्रमबद्ध उपागम के द्वारा भूगोल को दूसरे क्रमबद्ध विज्ञानों से सम्बन्धित किया था। ऊपर दिये गये रेखाचित्र में हैटनर का सिद्धान्त भूगोल की अन्तरा–अनुशासनिक प्रकृति को स्पष्ट करता है। इस रेखाचित्र को देखने से ज्ञात होता है कि भूगोल किसी न किसी रूप तथा मात्रा में दूसरे विज्ञानों में समाया हुआ रहता है, और दूसरे विज्ञान किसी न किसी रूप और मात्रा में भूगोल के अन्दर समाये रहते हैं। दूसरे शब्दों में, भूगोल एक समाकलन –विज्ञान है। इस रेखाचित्र में हैटनर ने भूगोल की विभिन्न शाखाओं को क्रमबद्ध विज्ञानों के आर–पार गुजरता हुआ प्रदर्शित किया है। इसका मन्तव्य है कि भूगोल का क्रमबद्ध विज्ञानों से केवल सतही या मामूली सम्बन्ध नहीं है अपितु गहरा सम्बन्ध है। भूगोल के दोनों पक्ष या उपागम अर्थात् क्रमबद्ध भूगोल और प्रादेशिक भूगोल, अन्य सभी क्रमबद्ध विज्ञानों में समाये हुए हैं। जिन क्रमबद्ध अर्थात् वर्गीकरण विज्ञानों में भूगोल समाया हुआ है उन्हें तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है। (i) भौतिक विज्ञान, (ii) जैव विज्ञान, तथा (iii) सामाजिक विज्ञान। भौतिक विज्ञानों में से ऋतुविज्ञान का भौगोलिक स्वरूप जलवायु विज्ञान है, मृदा विज्ञानों से मृदा– भूगोल और भौमिकी से भूआकृतिकी सम्बद्ध है। जैव–विज्ञानों में, वनस्पति विज्ञान से वनस्पति भूगोल, प्राणी विज्ञान से जन्तु भूगोल और मानवीय शरीर विज्ञान से मानव–प्रजाति भूगोल सम्बद्ध हैं। सामाजिक विज्ञानों में जनसांख्यिकी से जनसांख्यिकीय भूगोल, अर्थशास्त्र से आर्थिक भूगोल, राजनीतिशास्त्र से राजनीतिक भूगोल और समाजशास्त्र से सामाजिक भूगोल सम्बद्ध हैं।

अमेरिकन भूगोलवेत्ता रिचार्ड हार्टशोर्नने हैटनर के मत की पुष्टि की है। हैटनर के उपरोक्त मत की पुष्टि जर्मनी, ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका, रूस, भारत आदि के प्रमुख भूगोलवेत्ताओं ने की है। रिचार्ड हार्टशोर्न ने अपनी सम्मानित पुस्तक 'दी नेचर आफ ज्योग्राफी'में उक्त मत को पुष्ट किया था। हार्टशोर्न ने 15 वर्ष बाद, 1960 में पुनःभूगोल के सिद्धान्तों का विश्लेषण किया और फिर हैटनर के मत की पुष्टि की। ग्रिफिथ टेलरएक प्रसिद्ध आस्ट्रेलियन और कनाडियन भूगोलवेत्ता थे। उन्होंने बीसवीं शताब्दी में भूगोल नामक अपनी पुस्तक में हैटनर के उपरोक्त मत की पुष्टि करते हुए भूगोल को एक समाकलन विज्ञान बतलाया था। ब्रिटिश भूगोलवेत्ताओं, वूल्डरिज तथा ईस्ट ने भी भूगोल को आत्मा एवं उद्देश्य नामक अपनी पुस्तक में हैटनर के उपरोक्त मत को पुष्ट किया है। मोंकहाउस ने भूगोल का अध्ययन पृथ्वी तल से सम्बन्धित है और मानव, वनस्पति तथा अन्य प्राणियों के क्रियाकलाप पृथ्वी तल पर ही सम्पन्न होते हैं। अतःइनसे सम्बन्धित अन्य विज्ञानों की सामग्री पृथ्वी तल से जुड़ी होना स्वाभाविक है। इसी कारण प्राकृतिक और मानव विज्ञानों की विषयवस्तु का भूगोल से जुड़ा होना आवश्यक है। हार्टशोर्न के अनुसार भूगोल एक अन्तर्विषयक विज्ञान है। ब्रिटेनिक विश्व कोष के अनुसार भूगोल सभी विज्ञानों की जननी है। हेटनर के अनुसार भूगोल प्राकृतिक और मानवीय दोनों विज्ञान है। डिकिन्सन ने तो माना है कि भूगोल का विषय क्षेत्र अन्य विषयों से अध्यारोपण करता है।

14.5 भूगोल में वैज्ञानिक व्याख्याओं के रूप

विज्ञान अज्ञात की खोज तथा व्याख्याहै। डेक्सिहार्वे की प्रसिद्ध पुस्तक, 1969 भौगोलिक शोध–विधितन्त्रीय उच्च स्तरीय शोध–मार्गदर्शक रहा है। इसमें उसने भौगोलिक व्याख्याओं के 6 रूप बताये हैं–

1. मस्तिष्क की समझ पर आधारित वर्णन– जिसमें ज्ञात जानकारी को व्यवस्थित एवं वर्गीकृत करने से नये तथ्य और समझ उत्पन्न हो सकती है। वर्तमान समय में मानववादी भूगोलवेत्ता ऐसे वर्णन को, जो गहन समझ(जैस किसी मानव समूह को बारे में) पर आधारित हो, की महत्वपूर्ण मानते हैं तथा समझ की हमेन्यूटिक विधि (अर्थात् अर्थ–निर्णय) को तकनीकियों के प्रयोग से) को अधिक उपयुक्त समझते हैं।

2. आकारमितीय विश्लेषण –इसमें गवेषणा की वस्तु जैसे ग्राम, नगर, परिवहन संजाल के आकृतिमापन द्वारा ज्यामितीय आधार पर वर्गीकरण एवं क्रमबद्ध करके वर्णन किया जाता है। ज्यामिति के नियमों के प्रयोग से (जैसे केन्द्र स्थलों के बारे में) व्याख्या एवं भविष्य–प्रेक्षणकिया जा सकता है जो विज्ञान की सफलता के प्रमाण हैं।

3. कारण तथा परिणाम विश्लेषण–यह इस मान्यता पर आधारित है कि ज्ञात कारण से, प्रदेश में देखी गई कोई बात समझाई जा सकती है, जैसे उत्तरी पश्चिमी भारत में शीतकालीन वर्षा की जनपदवार मात्रा (कारण) से गेहूँ उत्पादन की मात्रा को समझाना यह वर्षा तथा गेहूँ उत्पादन की मात्रा के आँकड़ों की तुलना से या परिकल्पनात्मक निगमनिक विधि से किया जाता है। परिकल्पना अर्थात् सम्भावित व्याख्या यह होगी कि उत्तरी–पश्चिमी भारत में गेहूं का उत्पादन शीतकालीन वर्षा की मात्रा के अनुसार कम या अधिक होता है। इसे दोनों के आँकड़ों के विश्लेषण से सत्य या असत्य प्रमाणित किया जायेगा। लेकिन गेहूँ के उत्पादन की यह अति सरल एवं अधूरी कारण–प्रभाव व्याख्या है। इसमें अन्य सम्भावित कारणों को जोड़कर अधिक जटिल परिकल्पना का सम्बन्धित ऑकड़ों के विश्लेषण से सत्यापनध्परीक्षण किया जा सकता है।

4. कालिकऐतिहासिक–विश्लेषण अध्ययन की वस्तु के साथ परिवर्तन की व्याख्या को कहते हैं तथा किसी एक निर्धारित समय अवधि (जैसे 1991–2011) में ऐसे अध्ययन में अधिक शुद्धता होगी। ऐतिहासिक अध्ययन शोधकर्ताओं के अलग–अलग विश्वासों और तद्नुसार बनायी गई परिकल्पनाओं से भिन्न– भिन्न प्रकार के हो सकते हैं। मॉरिस डेविस किसी प्रक्रम की स्थलाकृतिक परिवर्तन का आधार मानता है तथा मार्क्सवाद वर्तमान को के परिवर्तन का परिणाम मानता है।

5. कार्यात्मक विश्लेषण–किसी प्रदेश या नगर आदि अध्ययन के विषय को एक सम्पूर्ण के रूप में मान कर उसके संघटकों का उस में कार्यात्मक भूमिका की महत्वपूर्ण मानते हुये, सम्पूर्ण तत्वों का कार्यात्मक विश्लेषण कर व्याख्या की जाती है।

6. तन्त्र– विश्लेषण–मुख्यतःबटलिफी की , 1968 के सिद्धान्तों का प्रयोग करते हैं। किसी भी भौगोलिक वास्तविकता को एक तन्त्र के रूप में देखा जाता है तथा उसके अलग–अलग पहलुओं के मॉडल बनाकर तन्त्र के अलग–अलग तत्वों की व्याख्या करने का प्रयास किया जाता है। भौगोलिक शोध में, शोधगत प्रश्न एवं वस्तु के अनुरूप, एक या अधिक व्याख्याओं के रूप प्रयोग किये जा सकते हैं।

14.6 भूगोल का अन्य विज्ञानों से सम्बन्ध

भूगोल एक अंतर्विषयी विज्ञान है जो सामान्यता सभी प्राकृतिक तथा सामाजिक विज्ञानों के अन्तर्गत अध्ययन किये जाने वाले तथ्यों तथा घटनाओं का स्थानिक वितरण के सन्दर्भ में अध्ययन और विश्लेषण करता है। विश्व में घटित होने वाली सभी घटनाएं कहीं न कहीं पृथ्वी के तल से सम्बन्धित होती हैं और प्रत्येक तत्व चाहे वह प्राकृतिक (भौतिक) हो या मानवीय उसकी स्थिति भी धरातल पर ही पायी जाती है। ज्ञातव्य है कि भूतल के अध्ययन पर भूगोल का एकाधिकार है क्योंकि भूतल पर तत्वों के वितरण का विश्लेषण केवल भूगोल ही करता है। इस प्रकार भूगोल का सम्बन्ध सभी विज्ञानों से है चाहे वह शुद्ध प्राकृतिक विज्ञान हो अथवा मानवीय या सामाजिक विज्ञान। सभी तत्व घटनाओं को धरती ने कहीं तो धारी है। इसीलिए सब शास्त्रों से भूगोल की रिश्तेदारी है। 'भौगोलिक काव्यांजलि' से एक अंतर्विषयी विज्ञान के रूप में भूगोल के अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत सम्मिलित पक्षों या तत्वों का अध्ययन तत्सम्बन्धी विभिन्न प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानों में भी होता है। भूगोलवेत्ता स्थानिक विश्लेषण हेतु अन्य विज्ञानों में व्यवहृत सिद्धान्तों, नियमों, माडलों, तकनीकों आदि का प्रश्रय लेता है। इसी प्रकार विभिन्न भौतिक और सामाजिक विज्ञानी भी अवस्थितिक तथा पर्यावरणीय प्रभावों को जानने के लिए भूगोल से सहायता प्राप्त करते हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए यहाँ प्राकृतिक विज्ञानों और सामाजिक विज्ञानों से भूगोल के सम्बन्धों की संक्षिप्त चर्चा अलग–अलग की गयी है।

14.6.1 भूगोल का भौतिक विज्ञानों से सम्बन्ध–

हम भलीभांति जानते हैं कि भूगोल विषय के अंतर्गत भौतिक एवं सांस्कृतिक वातावरण का तथा उनके अंतर्संबंधों का अध्ययन किया जाता है। तथा भूगोल प्राकृतिक व सामाजिक दोनों ही विज्ञान है, जोकि मानव व पर्यावरण दोनों का ही अध्ययन करता है। साथ ही हम यह भी जानते हैं कि भूगोल की विषय वस्तु अथवा अध्ययन क्षेत्र अधिकांशतः प्राकृतिक विज्ञानों तथा मानव विज्ञानों अथवा सामाजिक विज्ञान के विषयों से मिलती जुलती है। इस

आधार पर हम यह कहने में सक्षम हैं कि भूगोल विषय प्राकृतिक विज्ञान व सामाजिक विज्ञान के विषयों से अविच्छिन्न रूप से संबंधित है।

14.6.1.1 भूगोल का प्राकृतिक विज्ञानों के साथ संबंध–

प्राकृतिक विज्ञानों में भौतिक विज्ञान गणित व खगोलिकी, भू विज्ञान ,मौसम विज्ञान, जल विज्ञान, मौसम विज्ञान आदि विषय आते हैं। इन प्राकृतिक विज्ञानों (भौतिक विज्ञानों) से भूगोल किस प्रकार संबंधित हैं इसका विवरण निम्नलिखित है।

भौतिक भूगोल का भौतिक अथवा प्राकृतिक विज्ञानों के साथ गहरा संबंध है। परंपरागत रूप में भौतिक भूगोल भौमिकी, मौसम विज्ञान, जल विज्ञान, मृदा विज्ञान से संबंधित है। अतः भू–आकृति विज्ञान, जलवायु विज्ञान, सामुद्रिक विज्ञान, मृदा भूगोल का प्राकृतिक विज्ञान से निकट का संबंध है। भौतिक भूगोल की ये शाखाएँ अपने से संबंधित विज्ञानों से सूचनाएं प्राप्त करती हैं। इसी प्रकार जैव–भूगोल का जीव विज्ञान, वनस्पति शास्त्र तथा पारिस्थितिकी विज्ञान से निकट का संबंध है।

14.6.1.2 भूगोल एवं गणित का संबंध –एक भूगोलवेत्ता को गणित में निपुण होना चाहिए क्योंकि भूगोल खगोलीय स्थितियों से संबंधित है। यह अक्षांश तथा देशांतर रेखाओं से भी जुड़ा हुआ है जिनसे ग्लोब पर स्थितियाँ निर्धारित करने में सहायता मिलती है। ग्लोब, जोकि पृथ्वी का शुद्ध प्रतिनिधित्व करता है, त्रि–आयामी है जबकि मानचित्र, जो भूगोलवेत्ता का मुख्य उपकरण है, द्वि–आयामी है। पृथ्वी का सही आकार भू–आम है और हम त्रि–आयामी भू–आम को द्वि–आयामी मानचित्र में परिवर्तित करने के लिए मानचित्र प्रक्षेपका प्रयोग करते हैं। रेखात्मक तथा परिमाणात्मक तकनीक में गणित, सांख्यिकी तथा अर्थमिति निपुणता की आवश्यकता होती है।

14.6.1.3 भूगोल और खगोल विज्ञान –खगोल विज्ञान विषय में आकाशीय पिण्डो (ग्रहों , उपग्रहों तारों , धूमकेतुओं , उल्कापिंड , नक्षत्रों , आदि) का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन किया जाता है। गौरतलब है कि भूतल की घटनाओं और तत्वों में उपर्युक्त आकाशीय पिण्डो का प्रत्यक्ष प्रभाव होता है। यह पृथ्वी के धरातल की दैनिक घटनाओं और क्रियाओं में भी प्रभावशाली होते हैं। तथा भूगोल पृथ्वी के धरातल का अध्ययन है। साथ ही भूगोल में सौरमंडल, सूर्य का अपने आभासी पथ पर गमन, पृथ्वी की दैनिक और वार्षिक गतियों तथा उनके परिणामस्वरूप होने वाले परिवर्तनों दिन–रात और ऋतु परिवर्तन, चन्द्र कलाओं, सूर्य ग्रहण, चन्द्रगहण आदि का अध्ययन किया जाता है। तथा इन उपरोक्त तत्वों का मूल रूप से अध्ययन खगोल विज्ञान में किया जाता है। इस प्रकार हम यह पाते हैं कि भूगोल का खगोल विज्ञान से गहरा संबंध है।

14.6.1.4 भूगोल का भू विज्ञान से संबंध –हम यह भली–भांति जानते हैं कि भू विज्ञान में हम पृथ्वी कीधरातलीय बनावट , पृथ्वी की आकृति व आकार , धरातलीय चट्टानें , उन चट्टानों के निर्माण प्रक्रिया अथवा उनकी उत्पत्ति एवं उनका प्रसार , तथा चट्टानों में पाए जाने वाले विविधखनिज तत्व व उनकी प्रकृति व मात्रा आदि का तथा पृथ्वी की अवधि अथवा पृथ्वी का भूवैज्ञानिक विधि से कालक्रम ,पृथ्वी का संघटन और संगठन , भूतल पर क्रियाशील शक्तियों तथा उनसे उत्पन्न संरचनाओं, पृथ्वी की संरचना तथा उसका इतिहास आदि महत्वपूर्ण बिंदुओं का अध्ययन किया जाता है। तथा हम यह भी जानते हैं कि भूगोल में हम पृथ्वी के धरातल का अध्ययन करते हैं जिसका निश्चय ही संबंध पृथ्वी के आंतरिक भाग से होता है। साथ ही पर्वत , पठार भ्रंशन , घाटी , मैदान , वलन आदिका संबंध भी पृथ्वी की आंतरिक अवस्था होती है। इन सभी का अध्ययन भूगोल की भौतिक भूगोल की शाखा के अंतर्गत किया जाता है। भौतिक भूगोल में भी यदि और स्पष्ट करें तो यह भौतिक भूगोल की भू–आकृति विज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। तथा भूगोल में स्थलरूपों के विश्लेषण में भूविज्ञान के सिद्धान्तों तथा सक्ष्यों का सहारा लिया जाता है। इस प्रकार भूगोल भू–विज्ञान से विशिष्ट रूप से संबंधित है।

14.6.1.5 भूगोल और ऋतु विज्ञान का संबंध –भूगोल और ऋतुविज्ञान का गहरा संबंध हमेशा से रहा है। हम जानते हैं कि धरातल को प्रभावित करने वाले कई भौगोलिक कारकों में से जलवायु सबसेप्रमुख , शक्तिशाली ,और महत्वपूर्ण कारक है।

ऋतुविज्ञान वायुमण्डल में घटित होने वाले भौतिक प्रक्रमों का तथा उससे सम्बद्ध स्थलमंडल और जलमंडल के विविध प्रक्रमों का अध्ययन करता है। इस विज्ञान के अंतर्गत पवन , वायुदाब , तापमान , आर्द्रता , वर्षण, मेघाच्छादन , सूर्य का प्रकाश , सौर विकिरण आदि का अध्ययन किया जाता है। मौसम विज्ञान के इन उपरोक्त तत्वों का विश्लेषण भूगोल विषय में भी किया जाता है। जलवायु का प्रभाव मानव की समस्त क्रियाओं की

भांतिआर्थिक क्रियाओं को प्रभावित करता है। कृषि की उपज, वनस्पति, उद्योग और व्यवसाय उस प्रदेश की जलवायु से प्रभावित रहते हैं। इनका अध्ययन भूगोल में किया जाता है। अतः भूगोल और ऋतु विज्ञान में निकट का सम्बन्ध है।

14.6.1.6 भूगोल और जल विज्ञान का संबंध —गौरलतब है कि जल विज्ञान जल के अध्ययन से संबंधित है। दूसरे शब्दों में जल विज्ञान में जल का अध्ययन करते हैं। इसके साथ ही इस विज्ञान में जल के अन्वेषण, प्रयोग, नियंत्रण और संरक्षण का अध्ययन भी समाहित होता है। महासागरीय तत्वों के स्थानिक वितरण का अध्ययन भूगोल की एक शाखा समुद्र विज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। समद्र विज्ञान अथवा सागरीय विज्ञान में महासागरीय जल के पशुओं के पीने से लेकर , फसलों की सिंचाई करने, कारखानों में जलापूर्ति करने , जलशक्ति, जल परिवहन, मत्स्यपालन आदि विभिन्न रूपों में जल आवश्यक ही नहीं अनिवार्य होता है। तथा इन उपरोक्त चीजों का अध्ययन भूगोल में भी किया जाता है। इस प्रकार हम पाते हैं कि भूगोल जल विज्ञान से विशेष रूप से संबंधित हैं।

14.6.1.7 भूगोल और मृदा विज्ञान का संबंध —जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि मृदा विज्ञान के अंतर्गत मिट्टी के विषय मे समस्त अध्ययन किया जाता है। इनमें मिट्टी के प्रकार , मिट्टी के निर्माण , उनकी संरचना , तथा मिट्टी/मृदा की विशेषताओं का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन किया जाता है। भूतल अथवा धरातल पर मिट्टियों का तथा मिट्टियों के वितरण का अध्ययन मृदा भूगोल के अंतर्गत किया जाता है।इस प्रकार हम यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि भूगोल का मृदा विज्ञान से गहरा संबंध है।

14.6.1.8 भूगोल और वनस्पति विज्ञान का संबंध —वनस्पति विज्ञान में वनस्पति से संबंधित अध्ययन किया जाता है तथा।थ ही वनस्पति और उनका वितरण का अध्ययन किया जाता है। हम्बोल्ट ने अपनी दक्षिणी अमरीका यात्रा के समय वनस्पति और प्राकृतिक वातावरण के आपसी सम्बन्ध को स्पष्ट किया था। किसी स्थान की वनस्पति वहां की जलवायु और मिट्टी से प्रभावित होती है। जलवायु, मिट्टी तथा वातावरण भूगोल के अध्ययनके विषय वस्तु में आते है। इसके अलावा इनके अध्ययन के लिए भूगोल की स्वतन्त्र शाखा पादप भूगोल विकसित की गयी है। अतः भूगोल और वनस्पति विज्ञान एक–दूसरे के निकट हैं।

14.6.1.9 भूगोल और जंतु विज्ञान का संबंध —जंतु विज्ञान अथवा प्राणी विज्ञान हमें समस्त प्रकार के प्राणिजीवन की और जीव जंतुओं के व उनके संरचना , वर्गीकरण और कार्यों बारे में वैज्ञानिक अध्ययन कराता है।मनुष्यों के जीवन में जीव जंतुओं और समस्त प्रकार के प्राणियों और पशु संसाधनों का अत्यंत महत्व है।

पशुओं की उपयोगिता मानव जीवन में कितनी है यह हमें बताने की आवश्यकता नहीं है। पशुओं से हमें दूध , मांस , ऊन , चमड़ा आदि प्राप्त होते हैं। इसके अलावा पशु सामान ढोने और यातायात में भी उपयोगी साबित होते हैं।

इन्हीं उपरोक्त विषयों का वैज्ञानिक और विश्लेषणात्मक अध्ययन भूगोल की जैव भूगोल शाखा की जंतु भूगोल उपशाखा के अंतर्गत भी किया जाता है।जंतु भूगोल में विभिन्न प्राणियों के स्थानिक वितरण और विशेषताओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाता है। मानव जीवन के सामाजिक ,आर्थिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में पशुओं और पशु जगत का विशेष महत्व होने के कारण इसको भौगोलिक अध्ययनों में भी विशिष्ट स्थान प्राप्त है। अतःभूगोल का जन्तु विज्ञान से भी घनिष्ठ संबंध प्रमाणित होता है।

14.6.2 भूगोल का सामाजिक विज्ञान के विषयों से संबंध–

जिस प्रकार भूगोल प्राक्रतिक विज्ञानों अथवा प्राकृतिक विज्ञान के सभी विषयों से सम्बंधित है उसी प्रकार भूगोल का सामाजिक विज्ञान के विषयों से भी गहरा संबंध है। मानव भूगोल की शाखाओं का इतिहास, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र, मानवशास्त्र, अर्थशास्त्र, जनांकिकी आदि सामाजिक विज्ञानों के साथ निकट का संबंध है।

इसका विवरण निम्नलिखित है

14.6.2.1. भूगोल और इतिहास का संबंध —इतिहास तथा भूगोल का आपस में गहरा संबंध है क्योंकि ये दोनों विषय क्रमशः काल तथा स्थान के अध्ययन से संबंधित हैं। मानव भूगोल मानव सभ्यता के इतिहास तथा मानव समाज के विकास का अध्ययन भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में करता है। हार्टशोर्न के अनुसार, "काल के अनुसार

विवरण इतिहास है जबकि स्थान के अनुसार विवरण भूगोल है इतिहास कथानक है जबकि भूगोल विवरण है।" किसी भी क्षेत्र का वर्तमान विकास वहाँ पर अतीत में होने वाले घटनाक्रमों पर निर्भर करता है। अतः इतिहास, भूगोल को एक प्रकार की पृष्ठभूमि प्रदान करता है। यूल्ड्रिज तथा ईस्ट के अनुसार, "भूगोलवेत्ता तथा इतिहासकार यह भली–भांति जानते हैं कि उन दोनों के अध्ययन का अन्तसम्बन्ध है और दोनों को एक–दूसरे से ज्ञान लेना पड़ता है।" आगे चलकर वे महानुभाव लिखते हैं कि, "वास्तव में भूगोल, इतिहास से, जिसने इसे बनाया है, अलग नहीं हो सकता।" बदले में, "भूगोल वह मंच प्रदान करता है जिस पर इतिहास का नाटक खेला जाता है।"

14.6.2.2. भूगोल और राजनीति विज्ञान का संबंध –राजनीति विज्ञान के अध्ययन की मुख्य विषय वस्तु किसी देश अथवा संस्था की शासन व्यवस्था का अध्ययन करना। इसके अंतर्गत विभिन्न राष्ट्रों एवं राज्यों की शासन प्रणालियों, प्रशासन , सरकारों, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों आदि का अध्ययन किया जाता है। जिस प्रकार राजनीति विज्ञान के अंतर्गत हम उपरोक्त का अध्ययन करते हैं उसी प्रकार राजनीति भूगोल (जोकि मानव भूगोल की एक शाखा है) में किसी भी संगठित क्षेत्रों की सीमा, विस्तार, उनके विभिन्न घटकों, उप–विभागों, शासित भू–भागों, संसाधनों, आंतरिक तथा विदेशी राजनीतिक संबंधों आदि का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार हम यह पाते हैं कि भूगोल और राजनीति विज्ञान का आपस मे घनिष्ठ संबंध है।

14.6.2.3. भूगोल और अर्थशास्त्र का संबंध –हम जानते हैं कि भूगोल में पृथ्वी के उस भाग का अध्ययन किया जाता है जो मानव के रहने का स्थान है। अगर बात करें मानव की तो मानवों की दैनिक और प्राथमिक आवश्यकताओं में रोटी, कपड़ा और मकान हैं जो हर मानव को चाहिए ही चाहिए। तथा इसके साथ ही मानव या मानव समूह की अन्यान्य सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि आवश्यकताएं भी होती हैं जो बहुत कुछ अर्थव्यवस्था पर आधारित होती हैं। किसी भी व्यक्ति , संस्था अथवा देश आदि की अर्थव्यवस्था का अध्ययन करना अर्थशास्त्र का मूल विषय है।

भूगोल की एक महत्वपूर्ण शाखा आर्थिक भूगोत है जिसके अर्थशास्त्र के साथ घनिष्ठ संबंध हैं। अर्थशास्त्र तथा आर्थिक भूगोल की विषय वस्तु में बहुत सी समानताएँ पाई जाती हैं। अर्थशास्त्र मानव की आर्थिक आवश्यकताओं तथा उनकी आपूर्ति के स्रोतों से संबंधित है। अतः अर्थशास्त्र का मुख्य उद्देश्य उत्पादन, वितरण, विनिमय, उपभोग आदि जैसी अर्थव्यवस्था की मूल विशेषताओं का विवेचन करना है। अर्थव्यवस्था की इन विशेषताओं का स्थानिक पक्ष भी होता है जिसका अध्ययन आर्थिक भूगोल करता है।

14.6.2.4. भूगोल और समाजशास्त्र का संबंध –जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि समाजशास्त्र में हम मनुष्यों और मानव समाज का , उसके व्यवहार , समाज की आवश्यकताओं , समस्याओं , समाधानों तथा अन्य सामाजिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन में मानव समाज की उत्पत्ति, उसका विकास, उसकी संरचना तथा सामाजिक संस्थाओं का भी अध्ययन सम्मिलित होता है। साथ ही मानव समाज के विकास, प्रवृत्ति तथा नियमों , सिद्धान्तों आदि की वैज्ञानिक व्याख्या भी समाजशास्त्र करता है। हम जानते हैं कि समस्त मानव समाज अनेक वर्गों, समूहों तथा समुदायों में विभक्त है जिसके अपने–अपने रीति–रिवाज, प्रथाएं, परंपराएं तथा नियम कानून ,आवश्यकता , उत्पादन , उपभोग आदि होते हैं जिन पर भौगोलिक पर्यावरण का प्रभाव निश्चित रूप से पाया जाता है। यहां तक कि हम यह कह सकते हैं कि मानव की आवश्यकताएं , आपूर्ति , रीति रिवाज आदि उपरोक्त चीजें भौगोलिक परिदृश्यों द्वारा ही निर्धारित होते हैं। उदाहरण के तौर पर हम यह कह सकते हैं कि किसी पहाड़ी क्षेत्रों के तथा किसी रेगिस्तानी क्षेत्रों के जनजीवन के लगभग सभी पहलुओं में अंतर होता है। अतःसमाजशास्त्रीय अध्ययनों में भौगोलिक ज्ञान आवश्यक होता है। इस प्रकार हम यह देखते हैं कि समाजशास्त्र का भूगोल से विशेष संबंध है।

14.6.2.5. भूगोल और जनांकिकी का संबंध –जनांकिकी या जनसांख्यिकी के अंतर्गत जनसंख्या के आकार, संरचना, विकास आदि का परिमाणात्मक अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन में जनसंख्या संबंधी आंकड़ों के एकत्रण, वर्गीकरण, मूल्यांकन, विश्लेषण तथा प्रक्षेपण के साथ ही जनांकिकीय प्रतिरूपों तथा प्रक्रियाओं की भी व्याख्या की जाती है। मानव भूगोल और उसकी उपशाखा जनसंख्या भूगोल में भौगोलिक पर्यावरण के संबंध में जनांकिकीय प्रक्रमों तथा प्रतिरूपों में पायी जाने वाली क्षेत्रीय भिन्नताओं का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार विषय सादृश्य के कारण भूगोल और जनांकिकी में घनिष्ठ संबंध पाया जाता है।

14.6.2.6. भूगोल और कला का संबंध –भूगोल विषय का कला के साथ गहरा संबंध रहा है। संक्षेप में कहें तो भूगोलवेत्ता को एक अच्छा कलाकार भी होना चाहिए क्योंकि मानचित्रों की रचना में कलात्मक कल्पना अति

आवश्यक है खाका, मानस, मानचित्र तथा मानचित्र कला हेतु कला में निपुणता होनी चाहिए।निष्कर्ष–वस्तुतःदेखा जाय तो सभी विषय एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से संबंधित होते हैं।इसी प्रकार हम देखते हैं कि भूगोल प्राकृतिक विज्ञान के तथा सामाजिक विज्ञान के लगभग सभी विषयों से संबंधित है। तथा साराँशतःकहें तो भूगोलवेत्ता को उपरोक्त विषयों की भी सामान्य जानकारी होनी चाहिए।

14.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई में भूगोल के वैज्ञानिक स्वरूप एवं भूगोल का अन्य विषयोंसे संबंध को दर्शायागया है। भूगोल में वैज्ञानिक पद्धति की उपयुक्तता या अनुपयुक्तता के संबंध में भूगोलवेत्ताओं की चार श्रेणियों या समूहों की पहचान की है। पहले समूह में मुख्य रूप से भौतिक भूगोलवेत्ता शामिल हैं जो मानते हैं कि उनका अनुशासन प्राकृतिक विज्ञान का क्षेत्र है और इसलिए, इसमें कोई संदेह नहीं है कि वैज्ञानिक पद्धति उपयुक्त है। दूसरे समूह में वे मानव भूगोलवेत्ता हैं, जो वैज्ञानिक तरीकों को सामाजिक विज्ञान के रूप में अपने अनुशासन के लिए उपयुक्त मानते हैं, हालांकि वे यह भी पहचान सकते हैं कि इस तरह के अनुप्रयोग से कुछ ऐसी समस्याएं उत्पन्न होती हैं जिनका सामना भौतिकी और रसायन विज्ञान जैसे शास्त्रीय प्राकृतिक विज्ञानों में नहीं होता है। तीसरे समूह में वे लोग शामिल हैं जो मानते हैं कि भूगोल की विषय वस्तु वैज्ञानिक या अर्ध–वैज्ञानिक पद्धति को अनुपयुक्त बनाती है। हाल ही में, एक चौथा।मूह उभरा है जो भूगोल में मार्क्सवादी तरीकों को लागू करना चाहता है और मानता है कि ऐसे तरीके वैज्ञानिक हैं न कि शास्त्रीय प्राकृतिक विज्ञान के ढांचे में इन अलग–अलग विचारों को समझने के लिए, वैज्ञानिक सोच और अभ्यास के प्रमुख तत्वों की पहचान करना, वैज्ञानिक पद्धति में शामिल कुछ दार्शनिक समस्याओं की रूपरेखा तैयार करना आवश्यक है जो स्वयं वैज्ञानिकों को हमेशा स्पष्ट नहीं होती हैं, साथ ही कुछ अतिरिक्त मुद्दों की जांच करना भी आवश्यक है जो उत्पन्न होते हैं। जब वैज्ञानिक पद्धति को भूगोल और समान विषयों पर भी लागू किया जाता है'

14.9 संदर्भ–ग्रंथ–सूचि

- Seamon, D. (1979)A Geography of the Lifeworld, London.
- Semple, E. C. (1903)American History in Geographical Conditions, New York.
- Semple, E. C. (191l) Influences of Geographic Environment, New York.
- Semple, E. Environment, p. v. C. (19l) Influences of Geographical
- Semple, E. C. (1911) Influences Environment, New York, pp. 1 - 2.
- Semple, E. C. (1931) The Geography of the Mediterranean Region % Its Relations toAncient History, New York.
- Sen Gupta, P. and Sdasyuk, G. (1958) Economic Regionalisation of India % Problems andApproaches, New Delhi.
- Sen,A. (1999) Freedom as Development, Oxford.
- Shafi, M. (1986) % The Issue of Relevance in Geographical Research (Key NoteAddress at 3rdAnnual Meet-Aligarh Chapter of the NAAGI)Auraiya - (Kanpur University).
- Sharma, H. S. (2008) Repositioning geographical research, environment, development and sustainability (PresidentialAddress)-Annals of the NAAGI, 28(1), pp. 1- 21.
- Singh, J. (2004) Indian Geography- Vision 2020,Annals of the NAAGI, 24 (). pp. 1 - 18. (1970) Industrial Location,An Economic GeographicalAnalysis, London.
- Smith, D. (1977) Human Geography %A WelfareApproach, London.
- Smith, D. M. (1971)America !America ? Views on a potmelting - 2, Radical Geography- The next

revolution,Area, 3, pp. 153 - 157.

- Soja, E. (1989) Modern geography. western Marxism and restructuring of critical social theory, in Peet, R. and Thrift, N. (eds) New Models in Geography Vol. 2, London.

14.8 स्वमुल्यांकन एवं आदर्श उत्तर–

प्रश्न 1 कान्ट की भूगोल के कोरोलॉजिकल विज्ञान का तात्पर्य है

(अ) तत्वों की काल–क्रम में व्यवस्था

(ब) तत्वों का स्थान में पास–पास होना

(स) तत्वों के लक्षण

(द) उपर्युक्त सभी

प्रश्न 2 कोरोलॉजिकल विज्ञान का स्थान पुर्नजीवित किस विद्वान ने किया।

(अ)हार्टशॉर्न(ब)हैटनर (स)कान्ट(द) स्पेट

प्रश्न 3 विधितंत्र के चिंतक कौन है।

(अ) ट्रीवार्था(ब)प्लिनि(स) टॉलमी(द) हेटनर

प्रश्न 4 प्रादेशिक (विश्लेषण) विज्ञान के अग्रणी विद्वान के नाम बताइये

(अ)कैरोटर्स (ब) वाल्टर इजाई(स)मोनेज(द) आर. पी. मिश्रा

उत्तरमाला–1.(ब) 2. (अ)3. (ब) 4.(द)

14.9 अभ्यास प्रश्न (सत्रांत परीक्षा की तैयारी)

प्रश्न1. विज्ञानों के वर्गीकरण में भूगोल के स्थान को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 2. भूगोल की मौलिक प्रकृति एक अन्तरविषयी विज्ञान की हैविवेचना कीजिए।

प्रश्न3. भूगोल का अन्य विषयों से संबंधों की व्याख्या कीजिये।

Note

Note

Note